शराब खून के ज

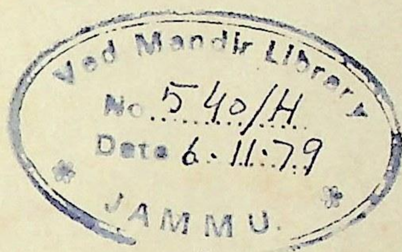
ो नुकसान पहुंच

न का कारण भी

रिए

ती

ब



संक्षिप्त

संत-सुधा-सार

वियोगी हरि



प्रस्तावना

आचार्य विनोबा भावे



१९५८

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५८
मूल्य
पांच रुपये

मुद्रक
उद्योगशाला प्रेस,
किंग्सवे, दिल्ली

प्रकाशकीय

'मण्डल' ने अबतक जितना साहित्य प्रकाशित किया है, उसमें इस बात का ध्यान रखा है कि वह जीवन के सभी प्रमुख पहलुओं का स्पर्श कर सके। इस दृष्टि से जहां उसने राजनैतिक तथा सामाजिक साहित्य निकाला है, वहां ऐसे साहित्य का भी प्रकाशन किया है, जो मानव की आध्यात्मिक क्षुधा को शांत कर सके। संत-वाणी, बुद्ध-वाणी, महावीर-वाणी, तमिलवेद आदि पुस्तकें मुख्यत: इसी विचार से उसने प्रकाशित की हैं।

हमें हर्ष है कि कुछ समय पूर्व इस दिशा में एक वृहद् ग्रंथ प्रकाशित हुआ था, जिसमें लगभग सभी मुख्य-मुख्य उत्तर भारतीय संतों की चुनी हुई वाणियां आगई थीं।

उसका संकलन और संपादन संत-साहित्य के मर्मज्ञ श्रीवियोगी हरि ने किया था।

बड़े परिश्रम और निष्ठा के साथ तैयार किये गये उस ग्रन्थ का यह संक्षिप्त संस्करण निकल रहा है। इसमें आकार कम हो गया है, लेकिन महत्व के सभी पद आ गये हैं।

संतों की वाणियां वैसे तो आसान ही होती हैं, फिरभी इस पुस्तक में जहां-कहीं कठिन वाणियाँ आई हैं, उनका सरल भाषा में संकलन-कर्त्ता ने अर्थ देकर ग्रंथ को सामान्य पाठकों के लिए भी बहुत उपयोगी बना दिया है। संपूर्ण ग्रंथ का मूल्य ११) है। इस संक्षिप्त संस्करण का मूल्य ५) रखा गया है। इस प्रकार अब यह सामान्य स्थिति के पाठकों के लिए भी सुलभ बन गया है।

—मंत्री

दो शब्द

आचार्य विनोबा ने संतवाणी पर प्रस्तावना में अधिकारपूर्वक जो लिखा है उसके बाद मुझे, संपादक के नाते, इस ग्रंथ के सम्बन्ध में बहुत थोड़ा लिखने को रह जाता है। संतवाणी का विश्लेषण-विवेचन करने की न मुझमें वैसी सामर्थ्य है, न योग्यता। तथापि, कुछ सांकेतिक-सा वक्तव्यमात्र दे देता हूँ, जो संभवत: आवश्यक है और कदाचित् सहायक भी।

दस-बारह बरस पहले संत-साहित्य देखने का मेरा चाव बहुत बढ़ गया था। समय निकालकर नित्य उसका कुछ-न-कुछ अध्ययन व चिंतन किया करता था। उन्हीं दिनों बुद्धवाणी को भी कुछ देखा। कहना चाहिए कि मेरी अध्ययन-यात्रा की यह एक नई मोड़ थी। पहले तो सगुण-साकार का मधुर-मधुर रसगान करनेवाले भक्तों की वाणी की ओर ही मेरा रुझान रहा करता था, जिसका एक परिणाम हुआ "ब्रज-माधुरी-सार" का संकलन-सम्पादन।

सूरदास आदि अष्ठछाप की ब्रजवाणी में गहरे अनुराग की अरुणिमा मैंने दूर से तब कुछ-कुछ देखी थी। पीछे, तुलसी की "विनय-पत्रिका" पाई, तो मानों मंदाकिनी की धवलता पर दृष्टि जा दौड़ी।

और जब बुद्धवाणी के साथ-साथ निर्गुण-निराकारी संतों के "सबद" सामने आये, तो जैसे हिमांचल की शुभ्र रजत-रेखा किसीने मानस-क्षितिज पर आकर खींचदी।

कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, पलटू आदि की बानी को छूते ही ऐसा लगा कि अलौकिक महारस का पूर्ण परिपाक तो यहीं पर हुआ

है। साहित्यालोचकों के यह कथन अर्थशून्य-से जँचे कि "इन संतों की अटपटी रचनाओं में न तो साहित्यिक सरसता है, न संगीत की लय है और न कला की ऊँची अभिव्यंजना ही, और भाषा भी उनकी ऊबड़-खावड़-सी है।" मैंने देखा कि रीति-ग्रंथों का फीता लेकर वे साहित्यालोचक संत-वाणी का असीम क्षेत्रफल निर्धारित करने गये थे—चौकोर बँधे हुए तालाब पर धीरे-धीरे सरकनेवाली नौका जैसे असीम अनन्त सागर के बिखरे वैभव को मापने पहुँची हो !

"मसि-कागद" से नाता न रखनेवाले जुलाहों, शिल्पियों और खेतिहरों की अटपटी "बाउल-बानी" की अथाह गहराई में उतरा जाये, तो वहाँ वेद, उपनिषद और त्रिपिटक की झीनी-झीनीं झाँकी तो मिलेगी ही, सूफी औलियों की मौज-मस्ती भी वहाँ लहराती नज़र आयेगी। वेदांत,भागवतभक्ति, ब्रह्मविहार और तसव्वुफ इन सब धाराओं का सहज सुन्दर संगम वहाँ देखने को मिलेगा।

२

मन में उठा कि संतवाणी का एक संग्रह-संकलन किया जाये। बहुत-सी पुस्तकों में की जो साखियाँ और सबद बहुत प्रिय लगे थे, और जिनका अर्थ लगाने में अधिक अड़चन नहीं पड़ी थी, उन सबपर निशान लगा लिये और संग्रह कर डाला। आदि में दो बौद्ध सिद्धों सरहपाद और तिल्लोपाद तथा दो जैन मुनियों देवसेन और रामसिंह की कुछ सूक्तियाँ बानगी के रूप में दी हैं, जो अपभ्रष्ट हिन्दी में हैं। उनका अर्थ भी दे दिया है। संतों की इस मुक्त रस-धारा का उगम यहाँ स्पष्ट दिखता है।

कबीर की बानी को सबसे अधिक लिया, फिरभी तृप्ति नहीं हुई। हो भी कैसे और किसे उस रस-निर्झरणी की एक भी बूँद को छोड़कर, जिसके कण-कण में साईं का नौरँगा नूर झिलमिल-झिलमिल करता हो ?

गुरु नानक के पद पहले मने कुछेक संग्रह-ग्रंथों में देखे थे। सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर द्वारा प्रकाशित नागरी लिपि में 'श्रीगुरु ग्रंथसाहिब'

जब देखा, तो ऐसा लगा कि गुरु-बानी के बिना सचमुच यह संग्रह अपूर्ण ही रह जाता । 'जपुजी' का नाम-ही-नाम सुना था, रसास्वादन उसका नहीं किया था । नानक के जो पद पहले देखे थे वे असल में सब-के-सब नवें गुरु तेगबहादुर के थे । 'सुखमनी' का भी पाठ करते सुना था । दूसरे तीन गुरुओं की बानी का तो पता भी नहीं था । गुरु ग्रंथ साहिब कितनी अनमोल सिद्ध-संपदा है हमारी, जिसे एक ही सम्प्रदाय के अंदर बंद करके आजतक रखा गया । बिगूचन में पड़ गया कि इस महान् रत्नाकर में से किस रत्न को तो लिया जाय और किसे छोड़ा जाय । गुरु-बानी को मैंने फिर भी संग्रह में काफी लिया है, तथापि तृष्णा बुझी नहीं ।

गुरु ग्रंथ साहिब में से महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध संत नामदेव महाराज के कुछ हिंदी पदों को भी लिया है; और उसीसे शेख फरीद की अति अनूठी और अमृत-सी मीठी बानी भी ली है ।

दादू-बानी और दादूजी के कई शिष्यों की बानी भी खूब रसवन्ती है, अंतर पर सीधे चोट करती है । रज्जब और वषना की साखियाँ और सबद बहुत अनूठे और गहरे हैं । इनका चुनाव करते समय भी रत्न-राशि देखकर मेरी महालोभी की जैसी गति हुई ।

गोरखनाथ की, सदियों से घिसी-पिसी, बानी कम-से-कम भावरूप में प्रगटाने का श्रेय स्व० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल को है । उन्हींके सम्पादित ग्रंथ से प्रस्तुत संग्रह में गोरखनाथ की कुछ सूक्तियाँ मैंने ली हैं, और अर्थ भी प्रायः उसी ग्रन्थ के आधार पर किया है ।

नाथ-सम्प्रदाय के एक संत लालनाथ की भी कुछ सूक्तियाँ उनकी "जीवसमझोतरी" नाम की पुस्तक से ली हैं, जिसका प्रकाशन पारक-सदन, रतनगढ़ (राजस्थान) से हुआ है ।

धनी धरमदास, जगजीवन साहब, दरिया साहब, बुल्ला साहब, यारी साहब, चरणदास, सहजोबाई व दयाबाई, पलटू साहब, तुलसी साहब आदि अनेक संतों की बानियों का संकलन प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित "संत-बानी-पुस्तक-माला" में से किया गया है ।

हर संत की ऐसी ही बानी को मैंने इस ग्रंथ में लिया है, जिसमें प्रेम-प्रीति व विरह का गहरा रंग पाया, सत् और श्वेत करनी की निर्मल झाँकी मिली,, चेतावनी और वैराग्य की ऊँची-ऊँची लहरें देखीं। योग की—त्रिवेणी के तट की ओर अनहद बाँसुरी की, और रिमझिम-रिमझिम रस-झड़ी का संकेत करने व खोलनेवाली साखियाँ व सबद इसमें नहीं लिये—बिना अधिकार के उधर, उस घाट की ओर, जाने और दूसरों को ले जाने की हिम्मत नहीं हुई, यद्यपि अनेक संतों की अनोखी सैर की वही ऊँची-से-ऊँची ठौर है।

प्रत्येक संत का 'चोला-परिचय' व बानी-परिचय भी संक्षेप में देने का मैंने प्रयत्न किया है, हालांकि कबीर की यह साखी सदा सामने रही—

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥"

तोभी हम सबका स्वभावतः देह के प्रति अति लगाव रहने के कारण सन्तों का भी यथाप्राप्त शरीर-परिचय थोड़े में दे दिया है। बहुत ऊहापोह में नहीं पड़ा, ऐतिहासिक शोध के विवाद में नहीं उतरा। ऐसा करना आवश्यक और रुचिकर भी नहीं लगा।

बानी-परिचय भी सबका कुछ-कुछ दिया है, जिसे मैं अपनी अनधिकार चेष्टा ही कहूँगा। सभी सन्तों की बानी सरस और आनन्ददायिनी ही लगी है। तुलना की तरफ मन नहीं गया। तोलने के बाँट भी नहीं थे, और यह अच्छा ही हुआ।

ऐतिहासिक एवं साहित्यिक गवेषणा पाठकों को यदि देखनी हो, तो संत-साहित्य के मर्मज्ञ पं० परशुराम चतुर्वेदी के "उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा" नामक बृहद्ग्रथ में देखें। इस पांडित्यपूर्ण ग्रंथ का मैंने कितने ही स्थलों पर सहारा लिया और आभार माना है।

प्रायः हरेक साखी, सबद और पद्य के कठिन शब्दों का अर्थ, और बौद्ध सिद्धों और जैन मुनियों तथा गुरु-बानी के अनेक पदों व शेख फरीद के सलोकों का पूरा भावार्थ देने का मैंने प्रयत्न किया है अनेक टीकाओं

के आधार पर। कुछ शब्दों का अर्थ फिरभी कुछ अस्पष्ट-सा ही रहा है।

संत-सुधा-सार दो-ढाई वर्षतक छपता रहा। पू० ठक्कर बापा के देहावसान के बाद बार-बार, हरिजन-कार्य के सिलसिले में, प्रवास करना पड़ा, इस कारण प्रूफ बराबर नहीं देख सका, जिससे कुछ भूलें भी रह गई हैं, और ग्रन्थ के प्रकाशित होने में इतना अधिक विलंब भी हुआ है।

इस संत-वाणी-संग्रह से यदि संत-साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन की लोगों में कुछ भी अभिरुचि बढ़ी,—विशेषकर विद्यार्थियों में, तो मैं अपने आपको कृतकृत्य मानूँगा।

हरिजन-निवास, दिल्ली
सर्वोदय-दिवस, १९५३

विनीत
वियोगी हरि

संक्षिप्त संस्करण

'संत-सुधा-सार' का यह संक्षिप्त संस्करण है। इसमें स्वामी ग़रीबदास, बाबा धरनीदास, दूलनदासजी, गुलाल साहब तथा लालनाथजी इन संतों को नहीं लिया गया है। चोला-परिचय व बानी-परिचय में कुछ भी हेर-फेर नहीं किया गया है। सबदों और साखियों को मैंने कुछ कम किया है, पर बड़े संकोच के साथ कि किसे छोड़ा जाये। गुरु नानकदेव के 'जपुजी' को ज्यों का त्यों रहने दिया है।

किसी-किसी शब्द के अर्थ में भी संशोधन कर दिया है, और जहाँ-जहाँ पर प्रूफ की भूलें थीं उन्हें भी सुधार दिया है। बस, इतना ही।

विनीत
वियोगी हरि

हरिजन-निवास,
दिल्ली
दीपावली, १९५७

प्रस्तावना

१

संतों की परंपरा अति प्राचीन काल से आजतक चली आरही है। जब से मानवता का उगम हुआ, संतों का आविर्भाव हुआ है। संतों की वाणी का प्रथम नमूना हमें ऋग्वेद में देखने को मिलता है। ऋग्वेद के कुछ कथानकपर सूक्तों को हम छोड़दें, तो बाक़ी का सारा ऋग्वेद संतों की वाणी ही है।

बहुतों का यह ख़याल है कि वेदों में कर्मकांड ही भरा रहता है। यजुर्वेद आदि में कर्मकांड भी मौजूद है, लेकिन ऋग्वेद के मन्त्र भक्तिपर संत-गाथाएँ हैं। उनका संबंध जो भिन्न-भिन्न कर्मों के साथ जोड़ा गया है, उसका उद्देश्य इतना ही है कि उन-उन कर्मों के निमित्त उन-उन प्रसंगों पर अच्छे-अच्छे वचन लोगों के कंठ में रहें। मेरी मां सुबह आटा पीसने के साथ तुकाराम के भजन गाया करती थी। उन भजनों का आटा पीसने के साथ क्या सम्बन्ध था सिवा इसके कि आटा पीसने में उसे कुछ उत्साहवर्धन होता होगा। इसी प्रकार बहुत सारे ऋग्वेद के सूक्तों का कर्मों के साथ संबंध गिना जा सकता है। सामवेद तो ऋग्वेद में के ही भजनों का चुनाव है, जिनकी एक विशेष ढंग से सामपाठियों ने स्वरलिपि बना रखी थी।

कुछ लोगों का यह ख़याल है कि वेदों में भक्ति है भी, तो वह बहु-देवता-भक्ति है। लेकिन इसका उत्तर तो स्वयं ऋग्वेद ने ही दिया है। वेद कहता है कि, सत्‌नाम एक ही है; उपासना के लिए उपासक भिन्न-भिन्न रूप पसंद करते हैं :

एकं सत्, विप्राः बहुधा वदंति।
अग्नि यमं मातरिश्वानं आहुः ॥

अग्नि, यम, वायु ये सारे एक ही परमेश्वर के भिन्न-भिन्न गुणवाचक भिन्न-भिन्न नाम हैं। परमेश्वर परिशुद्ध निर्गुण है, अर्थात् अनंत गुण-वान् है। जिस उपासक को अपने में जिस गुण के विकास की आवश्यकता अनुभव होती है, वह उस गुणवाले भगवान् की भक्ति करता है। जैसे, तुलसीदास ने विनय-पत्रिका में मंगलमूरति गणनायक, प्रेरक सूर्य-नारायण, औढरदानी शंकर, विरक्तिरूपिणी दुर्गा आदि अनेक देवताओं का स्तवन किया, पर हरेक से माँगा यही कि "रामचरण-रति देहु"। ऐसा ही ऋग्वेद के संतों का है। संतों की वाणी में जो भावना की उत्कटता, अंदर की छटपटाहट, भूतमात्र के लिए आदर आदि विशिष्ट भाव दीख पड़ते हैं, वे सारे वैदिक ही हैं। जैसे —

स नः पिताइव सूनवे, अग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥

हे अग्निदेव, ज्योतिर्मय प्रभु, जैसे पिता के पास पुत्र सहज पहुँच जाता है, वैसे ही हम तेरे पास पहुँचें। हमारे मंगल के लिए निरंतर तू हमारे साथ रह।" यह है आर्षवाणी। इसे हम संतवाणी न कहें तो क्या कहें ?

संतवाणी का दूसरा आविर्भाव हमें मिलता है बुद्ध भगवान् की गाथाओं में। वेदवाणी और बुद्धवाणी में वैसा ही फ़रक है, जैसा कि तुलसीदास और कबीर में। तुलसीदास है प्रतिमा वेदवाणी की, और कबीर बुद्धवाणी की। वियोगी हरिजी के **संत-सुधा-सार** का बहुत सारा हिस्सा जो मैंने देखा, बुद्धवाणी का नमूना है।

"**मनो पुब्बंगमा धम्मा, मनो सेट्ठा मनोमया**" यह है धम्मपद का पहला वचन।

इसके साथ देखिए **जपुजी** में गुरु नानक का वचन—

"मन्ने मोख दुवारु मन्नै परवारै साधारु।"

मैं तो इन दोनों में कुछ भी फ़रक नहीं देखता, चाहे अर्थ करनेवाले कितने ही भिन्न-भिन्न अर्थ क्यों न करें। कबीर, नानक, दादू सब एक ही माला के मणि हैं, जिनमें मेरुमणि तो मैं बुद्ध को ही समझता हूँ। बुद्ध ने लोक-भाषा में लिखा, यही पीछे के संतों ने भी किया। वेद-वाणी

भी उस ज़माने की लोक-भाषा में याने वैदिक संस्कृत में प्रगट हुई। वेद-वाणी स्वयं यह प्रगट कर रही है :

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्

"मैं हूँ सब राष्ट्र की वाणी, सबकी वासनाओं का सगम करनेवाली।" अगर वैदिक ऋषि लोक-भाषा में न गाते होते, तो "**अहं राष्ट्री**" ऐसा दावा वे नहीं कर पाते।

संतवाणी का तीसरा आविर्भाव हमें मिलता है दक्षिण के शैव और वैष्णव भक्तों में। **पेरिय आळवार, आंडाळ, नम्माळवार, कुलशेखरर्** आदि वैष्णव, और **संबंधर्, अप्पर्, सुन्दरर्, माणिक्कवाचकर्** आदि शैव भक्तों ने जो परममधुर भजन गाये हैं वे विश्व-साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। वेदवाणी और बुद्धवाणी जो उत्तरभारत से दक्षिण भारत में पहुँचीं, उनका ऋण चुकाने के लिए शंकर, रामानुज आदि वैष्णव आचार्यों ने भक्ति का प्रवाह दक्षिण भारत से उत्तर भारत में बहाया, उन आचार्यों को यह स्फूर्ति तमिल भाषा में गानेवाले वैष्णव और शैव संतों से ही मिली। यहाँ एक भ्रम दूर करने की ज़रूरत है। लोगों का ख़याल है कि रामानुज तो वैष्णव थे, पर शायद शंकर वैष्णव नहीं थे। यह ग़लत है। जहाँ-जहाँ शंकर प्रतीक-उपासना का दृष्टान्त देते हैं वहाँ "**शालग्रामे इव विष्णुः**" ऐसा ही देते हैं। "**अविनयमपनय विष्णो**" यह विष्णुस्तोत्र शंकराचार्य के मठों में प्रतिदिन गाया जाता है। शंकर ने अपनी माता को दर्शन कराया था..."**मम भवतु कृष्णोक्षिविषयः**" इस स्तोत्र से। और भाष्य भी उन्होंने लिखा है भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम पर, जो कि वैष्णव ग्रंथ हैं। हाँ, अद्वैती के नाते वे शिव, विष्णु आदि में भेद नहीं करते थे, और **चिदानन्द रूपः शिवोऽहंशिवोऽहं** गाते थे। शिव और विष्णु का यही अभेद हम तुलसीदासतक में पाते हैं, जो कि श्रीराम के अनन्य उपासक थे।

वेदवाणी, बुद्धवाणी और तमिल भक्तवाणी यह मूलत्रयी है, जिसमें से बाद को सारी भारतीय संतवाणी प्रसृत हुई। ज्ञानदेव, नामदेव और तुकाराम; पुरंदरदास और त्यागराज; नरसी मेहता और अखा-

भगत:; तुलसीदास, सूरदास और मीरां बाई; कबीर, नानक, दादू; शंकरदेव और चैतन्य ये सारे मध्ययुगीन संत विविध पुष्प हैं उस वल्ली के, जिसका मूल उक्त त्रयी में है।

२

संतों की सामान्य सिखावन सर्वलोक-सुलभ और सादी-सी होती है। उनकी जीवन-योजना के मूल में जो बुनियादी विचार पाये जाते हैं वे थोड़े में यह हैं :

(अ) देह की आजीविका के लिए कौटुम्बिक सरणी के या परिस्थिति के अनुसार जिसे जो उद्योग प्राप्त हो उसे निरंतर करते रहना चाहिए। समाज पर भाररूप होकर जीवन बिताना भक्ति के अनुकूल नहीं हो सकता। बल्कि अपने सहजप्राप्त उद्योग की क्रियाओं को ब्रह्मरूप देखने का अभ्यास करना चाहिए। शुद्ध आजीविका के बिना शुद्ध विचार और विवेक संभव नहीं हैं। इसी विश्वास के कारण हम देखते हैं कि नामदेव **"सोने की सूई"** और **"रूपे का धागा"** लेकर भक्ति-भाव से सीवन सीता रहा और चित्तको हरि में पिरोता रहा। कबीर **"झीनी झीनी चदरिया"** बुनता रहा। और दूसरे संत भी इसी तरह अपना-अपना काम करते रहे। उन कामों को उन्होंने कभी बोझ समझा हो ऐसा नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि अपने-अपने उद्योग की परिभाषा में वे अपने अध्यात्म के विचारों को प्रगट करते हुए दीख पड़ते हैं। यद्यपि यह मैं नहीं कह सकता कि **"निष्काम-कर्म=भक्ति"** इस गीतोपदेशित समीकरण को वे मान्य करते थे, या **"निष्काम-कर्म+भक्ति"** ऐसा समुच्चय उनके मन में था। यह बारीक भेद है। इसका निर्देशमात्र करके यहाँ छोड़ देता हूँ।

चाहे समीकरण मानो, चाहे समुच्चय, भक्ति के साथ अकर्मण्यता नहीं टिकती यह बात सभी संतों के अनुभव पर से निश्चित है। जहाँ भक्ति का ही टिकाव न लगे ऐसी किसी अंतिम अवस्था में कर्म गिर पड़े यह संभव है। लेकिन उस स्थिति में तो शरीर ही गिर जाने की बात है। इसलिए यहाँ उसके विचार करने की ज़रूरत नहीं।

दुर्दैव इस बात का है कि वह अंतिम स्थिति मानो प्राप्त ही हो चुकी ऐसे भ्रम में जान-बूझकर कर्म छोड़ने की घातक मनोवृत्ति, बावजूद संतों के जीवन और उपदेश के, हमारे समाज में फैली हुई है, और कभी-कभी किसी संत-वचन का असंबद्ध आधार भी उसे मिल जाता है।

(आ) अपने शरीर से जितना हो सके उतना परोपकार करना चाहिए। परोपकार का मौक़ा कभी खोना नहीं चाहिए। संतों के जीवन की यह बहुत ही बुनियादी बात है; बल्कि यही कहना चाहिए कि उनका सारा जीवन ही परोपकारमय होता है। "**उपकार**" शब्द में हम लोगों को कुछ अहंकार का आभास आता है। वास्तव में ऐसा नहीं है। "**उप**" का अर्थ ही "**अल्प**" होता है। मनुष्य को अपने पाँवों पर ही खड़ा रहना होता है, उसे हम गौणरूप से कुछ मदद पहुँचा देते हैं—यह अर्थ '**उपकार**' शब्द में निहित है।

आजकल हमने सार्वजनिक सेवा का एक आडम्बर-सा बना रखा है। अपने पड़ौसी की और आसपास के लोगों की, सहजभाव से और स्वभाव से, छोटी-मोटी सेवाएँ करते रहना यह मनुष्य का सहज लक्षण होना चाहिए। मीमांसकों की भाषा में, परोपकार एक नित्यकर्म है, जिसके करने में कोई पुण्य-लाभ नहीं होगा, लेकिन न करने में पाप होगा। दाहिने हाथ से किये उपकार का बायें हाथ को पता न लगे, और दोनों हाथों से किये उपकार का मन को पता न लगे।

(इ) "**अहिंसासत्यादीनि चारित्र्याणि परिपालनीयानि**" यह है नारद की आज्ञा, जो थे सब संतों के आदिगुरु। संतों की चारित्र्य-पद्धति में और नीति-शास्त्र-वेत्ताओं की विचार-सरणी में एक बड़ा अन्तर यह है कि संतों की श्रद्धा में अहिंसा-सत्यादि का पालन जाति-देश-काल-समय-निरपेक्ष करना होता है। अर्थात् यह लक्ष्मण की खींची रेखा है, जिसका उल्लंघन सीता भी बिना खतरे के नहीं कर सकतीं। विद्वान नीति-शास्त्री भी अहिसा आदि को मानते तो हैं, लेकिन इनको वे अविचल या शाश्वत धर्म नहीं मानते, बल्कि परिस्थिति-सापेक्ष या सुभीते के अनुसार मानते हैं। कुछ समाज-शास्त्री भी कहते हैं कि ये यम-नियम व्यक्ति के लिए

निरपवाद माने भी जायँ, तोभी समाज के लिए इनका निरपवाद पालन न केवल अशक्य है, बल्कि अयोग्य भी है। इस विचार से संतों का घोर विरोध है।

"**आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, होसी भी सच**" इस तरह की थी उनकी सत्य-निष्ठा। और हमेशा उनकी आतुरतापूर्वक रटन थी : "**किऊ सचियारा होइये, किऊ कूडे तुट्टे पाल।**" कैसे हम सच्चे बनेंगे, और कैसे असत्य का पर्दा टूटेगा? निरपेक्ष-नीति और सापेक्ष-नीति का झगड़ा लोक-जीवन में तो जब मिटेगा तब मिटेगा, लेकिन भगवान् की जिसपर कृपा होगी उसके लिए तो वह झगड़ा इसी क्षण मिटेगा। और जिसके मन में यह झगड़ा मिट गया उसपर भगवान् की कृपा हुई ऐसा समझना चाहिए। भक्ति का यह आरम्भमात्र है।

(ई) सब संतों की सिखावन में और सब धर्मग्रन्थों में भगवन्नाम की महिमा एक सर्वमान्य वस्तु है। इसपर अधिक लिखने की जरूरत नहीं। लेकिन नाम-जप के साथ अर्थ-भावन भी करना होता है। उसमें अपनी-अपनी धारणा के अनुसार अनेक प्रकार हो जाते हैं।

कुछ ज्ञानी निर्गुण-निराकार का ध्यान करते हैं, जो सब कल्पनाओं से रहित है। उसका ध्यान करनेवाले अक्सर 'ओंकार' को पसंद करते हैं। लेकिन राम, गोविंद, नारायण, हरि आदि नाम लेकर भी निर्गुण-निराकार का भावन कर सकते हैं। कबीर, नानक आदि में ही नहीं, तुलसीदासतक में यह पाया जाता है। दुनिया के सारे साहित्य में निर्गुण-निराकार का सबसे श्रेष्ठ प्रतिपादन उपनिषदों में मिलता है।

कुछ ध्यानी नाम के साथ सगुण-निराकार का ध्यान करते हैं। अक्सर हम जहाँ निर्गुण-निराकार को छोड़ते हैं, सगुण-साकार में आ जाते हैं। लेकिन दोनों के बीच सगुण-निराकार की भी एक भूमिका होती है। इसमें भगवान् को निराकार मानते हुए, दया, वात्सल्य आदि अनंत गुणों के परम आदर्श के तौर पर माना जाता है। उपनिषद् में निर्गुण-निराकार के साथ सगुण-निराकारकी पुष्टि करनेवाले वचन भी पाये जाते है, जिनको रामानुज आदि भाष्यकार विशेष महत्त्व देते हैं। इस्लाम

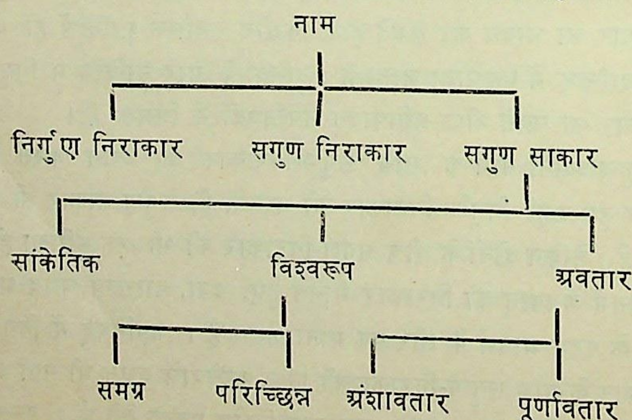
और ईसाई-मत इसीको मानते हैं। ब्रह्मसमाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज इत्यादि आधुनिक समाज सगुण-निराकार की भूमि पर खड़े हैं।

कुछ भक्त नाम के साथ सगुण-साकार की कल्पना करते हैं। इसके भी तीन पंथ हो जाते हैं:

(१) सांकेतिक रूप की उपासना, जैसे शेषशायी विष्णु, अर्धनारी-नटेश्वर इत्यादि।

(२) विश्वरूप की उपासना, जिससे अर्जुन घबड़ा गया था, लेकिन **"खुले नयन पहचानों, हँसि हँसि सुन्दर रूप निहारों"** कहकर कबीर आनन्दित होता है। अर्जुन इसलिए घबड़ा गया था कि उसके ध्यान-दर्शन में तीनों काल और तीनों स्थल एकत्र प्रगट हुए थे। कबीर इसलिए आह्लादित है कि वह विश्वरूप का एक भाग ही देख रहा है, जो कि उसके नेत्रों को अनुकूल है।

(३) विशिष्ट श्रेष्ठपुरुष की अवताररूप में उपासना। इस उपासना के करनेवालों के फिर दो विभाग हो जाते हैं। एक अकल रखे हुए, जो कि अपने पूज्य पुरुष को ईश्वर का अंशावतार मानते हैं। दूसरे अकल खोये हुए या अकल को ही शून्य समझनेवाले, जो **"कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'** कहकर लीलाविभोर हो जाते हैं। इस विवेचन का चित्र इस प्रकार होगा:



लेकिन खूबी यह है कि हमारे संतों की पाचन-शक्ति प्रखर होने के कारण ये सारे भिन्न-भिन्न दर्शन उनको विरोधी नहीं मालूम होते, बल्कि इन सबको वे एकसाथ हज़म कर लेते हैं। मिसाल के तौर पर, तुलसीदासजी पक्ष तो लेंगे सगुण-साकार का, लेकिन निर्गुण-निराकार से पूर्णावतारतक की सब तालिका वे स्वीकार करेंगे। शंकराचार्य अभिमानी बनेंगे निर्गुण-निराकार के, लेकिन "**नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं**" के साथ त्रिपुरसुन्दरी का भी स्तोत्र गा सकेंगे। हाँ, शायद पूर्णावतार की कल्पना वे नहीं निगल सकेंगे। क्योंकि "**अंशेन कृष्णः किल संबभूव**" ऐसा वे लिख चुके हैं। फिरभी भाविकों के साथ पूर्णावतार के भजन में भी वे लीन हो जायँ तो आश्चर्य की बात नहीं; क्योंकि जब वे सारा ही मिथ्या समझते थे, तो किसी चीज़ के लिए क्यों हिचकिचाना ?

कुछ विचारक और उपासक ऐसे ज़रूर होते हैं जो अपना-अपना आग्रह रखते हैं, जैसे मोहम्मद पैग़म्बर सगुण-निराकार माननेवाले थे। यद्यपि निर्गुण-निराकार का वे निषेध नहीं करेंगे, किन्तु सगुण-साकार का निषेध करते हुए दीख पड़ते हैं। वैसे कुरान में वज्हुल्लाह याने "अल्लाह का चेहरा" ये शब्द कई जगह आये हैं, जिनके आधार पर मूर्तिपूजा की अतिशयता का तो बचाव नहीं होगा, लेकिन सगुण-साकार का प्रवेश हो जायगा। कुरान का कुल मिलाकर भाव मैं यही समझता हूँ कि मोहम्मद के सामने विकृत मूर्तिपूजा खड़ी है, जिसके साथ अनेक भ्रष्टाचार जुड़ गये हैं; उस सबका वे निषेध करना चाहते हैं। आखिर, ईश्वर का शब्द वे सुनते थे, "**वही**" उन्हें प्राप्त होती थी, उससे वे भावित होते थे, उसका उनके शरीर पर असर होता था; कुछ रूह, कुछ प्रभा, कुछ आभास, जो भी कहो, उनके अंतर-मानस में प्रगट होती थी। यह सब देहधारी मनुष्य कैसे टालेगा? सारांश, जो शब्दातीत वस्तु है उसको शब्द में प्रगट करने के प्रयत्न में ही दोष आ जाता है। विष्णुसहस्रनाम में तो भगवान् के दो नाम ही यों दिये हैं, "**शब्दातिगः शब्दसहः**" शब्द से परे, किन्तु शब्द को सहन करनेवाला।

इसलिए अचिंत्य विषय में सर्व आग्रह छोड़कर नम्र हो जाना यही सर्वोत्तम लक्षण है।

(उ) सन्तों की जीवन-योजना में आखिरी बात है सत्संग की चाह। सामान्य व्यावहारिक विद्या की प्राप्ति के लिए भी जब उस विद्या के जानकार का सहारा लेना पड़ता है, तब आध्यात्मिक साधन में प्रवेश की इच्छा रखनेवाले को अनुभवी सन्तपुरुषों की संगति ढूँढ़नी ही पड़ेगी। यह बात सहज समझ में आती है। इसीलिए शंकराचार्य ने मनुष्यत्व और मुमुक्षुत्व के बाद महापुरुष-संश्रय को तीसरा महद्भाग्य माना है। आत्मा स्वयं-सिद्ध और अपना निजरूप ही होने के कारण हम ऐसा आग्रही विचार तो नहीं रख सकते कि सूर्योदय के पहले उषोदय के समान आत्मदर्शन के पहले महापुरुष-संश्रय या स्थूल सत्संगति आवश्यक है। और हम यह भी नहीं कह सकते कि सत्संग के लोभ में ऐसे किसी वेषधारी को सत्पुरुष या सद्गुरु के स्थान पर बिठादें। लेकिन यह ज़रूर मानना पड़ेगा कि जहाँ सद्विचार के श्रवण-मनन का मौक़ा मिलेगा वहाँ पहुँचने की या वैसी संगति ढूँढ़ने की अभिलाषा साधक में होनी चाहिए। मैं तो कहूँगा कि सत्संगति की अभिलाषा सत्संगति से भी बढ़कर है। या, अधिक समीचीन भाषा में यों कह सकते हैं कि सत्संगति की अभिलाषा ही सच्ची सत्संगति है।

यह है सन्त-सुधा-सार, जिसका संग्रह एक संस्कृत श्लोक बनाकर मैंने इस तरह रख दिया है :

स्वकर्मणि-समाधानं, परदुःख-निवारणम्।
नामनिष्ठा, सतां संगः, चारित्र्य-परिपालनम्॥

३

अब वियोगी हरिजी के इस संग्रह के बारे में मुझे कुछ कहना चाहिए।

पहली बात तो मैं यह कहूँगा कि हिन्दी के बहुत सारे संतों की वाणी का अध्ययन मैं नहीं कर सका हूँ। सिर्फ़ चार कृतियाँ मेरे नसीब में आई हैं, जिनको कुछ बारीकी से देखने का मौक़ा मुझे मिला है।

रामायण और **विनयपत्रिका**, ये तुलसीदास की दो कृतियाँ। इन दोनों कृतियों का मुझपर बहुत गहरा असर पड़ा है। तुलसीदास की शैली में बोलना हो तो यही कहना पड़ेगा कि, एक है "**रा**" और दूसरा है "**म**" और दोनों मिलकर तुलसीदास का "**राम**" बनता है। दोनों कृतियाँ परस्पर पूरक हैं। इसके अलावा गुरु नानक का जपुजी और गुरु अर्जुन की **सुखमनी**। इस संग्रह में जपुजी का, अर्थ के साथ, पूरा उद्धरण किया गया है। यह मुझे अच्छा लगा। मैं जब पाँच-छह महीने शरणार्थियों के काम में लगा था तब रोज़ सुबह जपुजी का पाठ किया करता था। कुछ दिन नागरी लिपि में किया, फिर गुरुमुखी में पढ़ता रहा। यह एक परिपूर्ण कृति है। याने साधनमार्ग का पूरा चित्र, आदि से अंततक, इसमें थोड़े में मिल जाता है। इसकी तुलना ज्ञानदेव के मराठी हरिपाठ से हो सकती है। जिसको वर्णमाला का पूरा परिचय है, ऐसा हरेक देहाती हरिपाठ को पढ़ ही लेता है। बल्कि जो अक्षर भी नहीं सीखा वह भी दूसरों से सीखकर उसे कंठ करता है। गुरु अर्जुन की **सुखमनी** यद्यपि एक छोटी-सी ही पुस्तक है, तथापि सूत्ररूप नहीं, वह विवरणरूप है। उसमें पुनरुक्ति काफ़ी है। लेकित उसकी शक्ति भी उस पुनरुक्ति में है। उसका यह एक श्लोक जेल में कई दिनोंतक भोजन के पहले मैं बोलता था, जैसा कि सिक्खों में रिवाज है :

काम क्रोध अरु लोभ मोह विनसि जाय अहमेव,
नानक प्रभु शरणागती, कर प्रसाद गुरुदेव।

भोजन के लिए "**प्रसाद**" संज्ञा हिन्दुस्तान की हर भाषा में मिलती है।

इन चार कृतियों के अलावा, बाक़ी का मेरा सारा हिन्दी-अध्ययन भ्रमरवत् है, याने थोड़ा इधर देख लिया, थोड़ा उधर देख लिया। नामदेव के मराठी भजनों में से कुछ चयन मैंने किया था, उसकी पूर्ति में उनके हिन्दी पद्यों का भी अवलोकन **ग्रंथ साहिब** में किया था।

बहरे के कानोंतक भी जो पहुँच गई है उस **कबीर-वाणी** का मुझे कुछ सहज परिचय न हुआ हो, यह कैसे हो सकता है? तुकाराम की

वाणी पर कबीर का बहुत असर पड़ा है। और वह ऋण तुकाराम ने स्वयं प्रगट किया है। तुकाराम का एक भी वचन ऐसा नहीं होगा, जिसे मैं घोलकर पी न गया होऊँ, इसलिए कबीर तो मुझे मुफ्त में मिल गया।

मीराबाई तो एक अद्वितीय व्यक्तित्व है, जिसके मधुरतम भजन आश्रम की प्रार्थना में मैंने सतत सुने, गाये, और ध्याये हैं। सूरदास हिंदी महासागर हैं। उसमें से 'आश्रम-भजनावलि' में जो कुछ दस-पाँच अमृत-बिंदु आये हैं उतने ही मेरे लिए पर्याप्त हो गये हैं।

गोरखनाथ एक ऐसे महान् हैं जिनकी वाणी का तो नहीं, किंतु करनी का स्पर्श समस्त भारत को हुआ है। वे कहाँ और कब जन्मे थे निश्चित रूप से कोई नहीं जानता, लेकिन वे जन्मे थे इसमें किसीको संदेह नहीं है। गूढ़वादी बंगाल उनपर अपना दावा करता है। तमिळ लोग कहते हैं, सारा नाथ-संप्रदाय तमिळनाड का है। और तमिळ भाषा में नाथ-पंथी साहित्य भी बहुत है। उसका परिचय तो राष्ट्रभाषावालों को तब होगा, जब वे आलस्य छोड़कर तमिळ सीखेंगे। जलंधरवाले पंजाबी जालंदरनाथ के पंथ पर क्यों नहीं अपना अधिकार रखेंगे? और गोरखपुर गोरख का पुर है ही। ज्ञानदेव ने ज्ञानेश्वरी में अपनी गुरु-परम्परा का कथन करते हुए मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ का निर्देश किया है, इसलिए महाराष्ट्र के लोग अपना हक़ पेश कर ही सकते हैं। इस संग्रह में पृष्ठ ३६ पर दिया हुआ भजन "**कैसे बोलौं पंडिता देव कवणे ठाँई**" सारा-का-सारा शुद्ध मराठी भजन है। मत्स्येन्द्र और गोरख की कहानियाँ जिन्होंने बचपन में नहीं सुनीं ऐसा कौन बच्चा है?

रैदास का नाम महाराष्ट्र में बहुत प्रसिद्ध है। उनको मराठी में रोहिदास कहते हैं। चोखा मेला महार और रोहिदास "चाँभार" (चमार) इन दो हरिजन संतों की कथा हमारी माँ बहुत सुनाती थीं। मुझे लगता था कि चोखामेला के समान रोहिदास भी कोई मराठी संत होंगे। **भजनावली** में रैदास का एक हिंदी भजन साबरमती-आश्रम में जब मैंने पहली बार सुना, तब मुझे इस बात का पता चला कि रोहिदास का

नाम रैदास है और वे एक हिंदी के संत हैं ।

एक और हिंदी-संत का नाम अहिंदी प्रांतों को परिचित है, जिसने साहित्य का एक नया विभाग खोल दिया । वे हैं भक्तमाल के लेखक नाभाजी । जैसे पश्चिमी साहित्य में प्लूटार्क, दक्षिण में शेक्किलार, वैसे ही उत्तर हिंदुस्तान में नाभाजी अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं । महाराष्ट्र में महिपति ने संत-चरित्र पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें नाभाजी की भक्तमाल का बहुत उपयोग किया है ।

दादू की भक्त-मंडली की ओर से **दादूवाणी** और **सुन्दर-ग्रंथावली** भेंट में मिली थीं, उन्हें देख जाना ज़रूरी ही था । लेकिन दादू-पंथी निश्चलदासजी का **विचार-सागर** अपने ढंग का एक विशिष्ट ग्रन्थ है । कबीर के **बीजक** में उनकी स्वतंत्र प्रतिभा का दर्शन होता है । निश्चल-दास के विचार-सागर में पारिभाषिक वेदांत का गहरा अध्ययन दीख पड़ता है । विचार-सागर का इस संग्रह के साथ कोई संबंध नहीं है । मैंने तो उसका प्रसंगेन उल्लेखमात्र कर दिया है ।

हिंदी अब राष्ट्र-भाषा बनी है, तो उसके साहित्य का अध्ययन हिंदुस्तानभर में होनेवाला है । जैसे अंग्रेजी में **गोल्डन ट्रेज़री** एक सर्वां-गीण और सर्वमान्य संग्रह हुआ है, वैसा कोई संग्रह हिंदी के लिए ज़रूर चाहिए । हरिजी के इस **संत-सुधा-सार** का वैसा दावा तो नहीं है, लेकिन मुझे लगता है कि यह भी एक काफ़ी प्रातिनिधिक संग्रह है, और थोड़े में हिंदी के संत-साहित्य का जो व्यापक अध्ययन करना चाहते हैं उनको इसका बहुत उपयोग होगा, इसमें मुझे संदेह नहीं ।

विनोबा

विषय-सूची

संक्षिप्त

संत-सुधा-सार

सिद्ध सरहपाद

चोला-परिचय

वज्रयानी चौरासी सिद्धों में सरहपाद को आदिम सिद्ध माना गया है। इन्हें सरहपा भी कहते हैं। इनके दूसरे दो नाम राहुलभद्र और सरोजवज्र भी हैं।

पूर्वी प्रदेश के थे यह किसी 'राज्ञी' नगरी के निवासी। पता नहीं, इस नाम की नगरी कहाँपर थी।

जन्म सिद्ध सरहपाद का किसी ब्राह्मण-वंश में हुआ था। यह अच्छे विद्वान् पंडित थे। नालन्दा में भी यह कितने ही वर्षोंतक रहे थे।

पश्चात् यह विद्वान् बौद्ध भिक्षु कालान्तर में मंत्र-तंत्र-प्रधान वज्रयान की ओर आकृष्ट हो गया।

श्रीपर्वत (आन्ध्र देश) पर भी सरहपाद ने वज्रयान तंत्र की कठिन साधना की थी।

सरहपाद पालवंशीय राजा धर्मपाल के समकालिक थे। धर्मपाल का समय ई० ७६८–८०९ माना जाता है।

डाक्टर बिनयतोष भट्टाचार्य ने सरहपाद का काल ६३३ ई० माना है। किन्तु किसी परिपुष्ट प्रमाण से सरहपा का काल यह सिद्ध नहीं होता।

भोटिया भाषा में सिद्धाचार्य सरहपा के ३२ ग्रंथों का अनुवाद खोज में मिला है।

बानी-परिचय

सरहपादीय दोहा एवं **सरहपाद दोहा-कोष** से प्रस्तुत संग्रह में सरहपाद की सिद्ध-बानी संकलित की गई है।

भाषा सरहपा की मगही अप्रभ्रंश है, जो निश्चय ही हिन्दी का पूर्वरूप है। डा० बी० भट्टाचार्य ने इसे बंगला का पूर्वरूप सिद्ध करने की असफल चेष्टा की है।

वज्रयान के परवर्ती सिद्धों की बानी में जो प्रायः अति स्वच्छन्दाचार दिखाई देता है वह सरहपाद की बानी में लगभग नहीं के जैसा है।

सहज शून्यावस्था से प्राप्त महासुख का, सहज में स्थित महारस का, बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है।

समरस सहज अवस्था में स्थित हो जाना ही, सरहपाद के मतानुसार, साधक का परम पुरुषार्थ है। उस अवस्था में कुछ भी भेद-भाव शेष नहीं रह जाता।

वर्ण-व्यवस्था का, उच्च-नीच-भाव का तथा धर्म के नाम पर चलनेवाले बाह्याचारों का सरहपाद ने बड़ा ज़ोरदार खण्डन किया है। ब्राह्मणों की ही नहीं, जैन यतियों की भी खबर ली है; लोमोत्पाटन और पिच्छीग्रहण की हँसी उड़ाई है।

सरहपाद के **दोहा-कोष** पर श्री अद्वयवज्र की संस्कृत-पंजिका खोज में मिली है, जो कलकत्ता-यूनिवर्सिटी के जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स (खंड २८) में प्रकाशित हुई है।

प्रस्तुत संक्षिप्त संग्रह में संकलित दोहों का अर्थ उसी संस्कृत-पंजिका के अनुसार किया गया है।

सरहपाद

मन्तह मन्ते स्सन्ति ण होइ ।
पड़िल भित्ति कि उट्ठिअ होइ ॥१॥
तरुफल दरिसणे णउ अग्घाइ ।
वेज्ज देक्खि किं रोग पसाइ ॥२॥
जाव ण अप्पा जाणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ ।
अन्धँ अन्ध कढ़ाव तिम वेण वि कूव पड़ेइ ॥३॥
पिच्छी गहणे दिट्ठि मोक्ख ता मोरह चमरह ।
उञ्छें भोअणें होइ जाण ता करिह तुरंगह ॥४॥
आइ ण अंत ण मज्झ णउ णउ भव णउ णिव्वाण ।
एहु सो परम महासुह णउ पर णउ अप्पाण ॥५॥

---

१. मंत्र-जाप करने से शान्ति मिलने की नहीं। जो दीवार गिर चुकी वह क्या उठ सकती है ?

२. वृक्ष में लगा हुआ फल देखना उसकी गन्ध लेना नहीं है। वैद्य को देखनेमात्र से क्या रोग दूर हो जाता है ?

३. जबतक अपने आपको नहीं जान लिया, तबतक किसीको शिष्य नहीं करना चाहिए। यह तो वह बात हुई कि एक अंधा दूसरे अंधे को साथ ले चला, और दोनों ही कुएँ में गिर पड़े !

कबीर ने भी यही कहा है—

"अंधै अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पड़न्त।"

४. यदि पिच्छी ग्रहण करने से मुक्ति मिलती हो, तो मोर को पहले ही मुक्त हो जाना चाहिए।

यदि उञ्छ-भोजन से मुक्ति होती हो तो हाथी-घोड़े मुक्ति के पहले अधिकारी हैं।

[उञ्छ का अर्थ है खेत का सीला, अर्थात् अन्न का एक-एक दाना चुनना]

५ (सहज शून्यावस्था का) न तो आदि है, न अन्त और न मध्य। न वहाँ जन्म है, न निर्वाण। यह अलौकिक महासुख है। न इसमें पराये का भान रहता है, न अपना।

घोरान्धारें चन्दमणि जिम उज्जोअ करेइ ।
परम महासुह एक्कु खणे, दुरिआसेस हरेइ ॥६॥
जव्वें मण अत्थमण जाइ तणु तुट्टइ बन्धण ।
तव्वें समरस सहजे वज्जइ णउ सुद्द ण बम्हण ॥७॥

चीअ थिर करि धरहु रे नाइ ।
आन उपाये पार ण जाइ ॥
नौवा ही नौका टानअ गुणे ।
मेलि मेलि सहजे जाउ ण आणे ॥८॥
मोक्ख कि लब्भइ ज्झाण पविट्ठो ।
किन्तह दीवें किन्तह णिवेज्जं ॥
किन्तह किज्जइ मन्तह सेव्वं ॥
किन्तह तित्थ तपोवण जाइ ।
मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाइ ॥९॥

---

६. जैसे घोर अन्धकार में चन्द्रमणि उजेला कर देती है, इसी तरह यह अपूर्व महासुख एक क्षण में ही संपूर्ण दुश्चरितों का नाश कर देता है।

७. जिस क्षण यह मन अस्त या विलीन हो जाता है, उस समय सारे ही बन्धन टूट जाते हैं। उस समरस सहज अवस्था में कुछ भी भेद नहीं रहता—न शूद्र न ब्राह्मण।

८. हे नाविक, चित्त को स्थिर कर सहज के किनारे अपनी नौका लिये चल, रस्सी से खींचता चल—और कोई दूसरा उपाय नहीं।

९ भला ध्यान धरने से कहीं मुक्ति होती है? दीपक दिखाने और नैवेद्य चढ़ाने तथा मंत्र-पाठ से क्या मुक्ति मिल सकती है?
तीर्थ-सेवन और तपोवन में जाने से, और पानी में नहाने से कहीं मोक्ष-लाभ होता है?

सिद्ध तिल्लोपाद

चोला-परिचय

सिद्ध तिल्लोपाद या तिलोपा का भिक्षु-नाम प्रज्ञाभद्र था। कहते हैं, सिद्धचर्या में तिल कूटने के कारण इनका नाम तिलोपा पड़ गया था।

गुरु का नाम विजयपाद था, जो कण्हपा या कृष्णपाद के शिष्य के शिष्य थे।

तिल्लोपाद का जन्म-प्रदेश बिहार था। यह ब्राह्मण थे।

समय इनका १०वीं शताब्दी माना गया है। इनके शिष्य सिद्धाचार्य नारोपा राजा महीपाल (९७४-१०२६ ई०) के समकालीन थे।

वज्रयानी चौरासी सिद्धों में यह एक ऊँचे सिद्ध माने जाते हैं।

मगही हिन्दी में सिद्ध तिल्लोपाद के ४ ग्रंथ मिले हैं।

बानी-परिचय

प्रस्तुत-संग्रह-ग्रंथ मे तिल्लोपाद के **दोहा-कोष** से केवल ९ दोहे संकलित किये गये हैं। **दोहा-कोष** में कुल ३४ दोहे हैं। भाषा इन दोहों की प्राचीन मगही हिन्दी है।

सहज-साधना को तिल्लोपाद की बानी में बड़ा महत्त्व दिया गया है। कहा है कि चित्त-विशुद्धि का एकमात्र साधन सहज-साधना ही है।

अद्वैतवादियों की भाँति इन्होंने भी कहा है—"मैं जगत् हूँ, मैं बुद्ध हूँ और मैं ही निरंजन हूँ।"

तीर्थ-सेवन तथा तपोवन-वास को अन्य सिद्धों और सन्तों की तरह तिल्लोपाद ने भी मोक्ष-लाभ का साधन नहीं माना है। देव-प्रतिमा के पूजन को भी निरर्थक बतलाया है।

महासिद्ध तिल्लोपाद के **दोहा-कोष** पर संस्कृत में एक पंजिका है, जिसका नाम 'सारार्थ पंजिका' है। इसी टीका की सहायता से संकलित दोहों का अर्थ किया गया है।

तिल्लोपाद

वढ़ अएँ लोअअ गोअर तत्त पण्डित लोअ अगम्म ।
जो गुरुपाअ पसएण तँहि कि चित्त अगम्म ॥१॥

सहजें चित्त विसोहहु चङ्ग ।
इह जम्महि सिद्धि मोक्ख भङ्ग ॥२॥

सचल णिचल जो सअलाचार ।
मुण णिरंजण म करु विआर ॥३॥

हँउ जगु हँउ बुद्ध हँउ णिरंजण ।
हँउ अमणसिआर भवभंजण ॥४॥

देव म पूजहु तित्थ ण जावा ।
देव पूजाहि ण मोक्ख पावा ॥५॥

परम आणन्द भेउ जो जाणइ ।
खणहि सोवि सहज बुज्झइ ॥६॥

---

१. जो तत्त्व, जो सत्य मूढ़जनों के लिए अगोचर है वह पण्डितों के लिए भी अगम्य है; (क्योंकि वे शास्त्राध्ययन में उलझे रहते हैं) सत्य का साक्षात्कार तो उसी पुण्यवान् व्यक्ति को होता है, जिसपर कि सद्गुरु प्रसन्न होते हैं।

२. सहज की साधना से चित्त को तू अच्छी तरह विशुद्ध करले। इसी जीवन में तुझे सिद्धि प्राप्त होगी, और मोक्ष भी।

३ जितने सब आचार-व्यवहार हैं, वे या तो सचल हैं या निश्चल। किन्तु शून्य निरंजन सकल विकल्पों से रहित है। उसका विचार नहीं करना चाहिए, विचार से वह परे है।

४. मैं जगत् हूँ, मैं बुद्ध हूँ, और मैं ही निरंजन हूँ। मैं ही मानसिक अकर्त्ता हूँ, और भव का भंजन करनेवाला भी मैं ही हूँ।

५. न देव-प्रतिमा की पूजा करो, न तीर्थ-यात्रा; देवाराधन से तुम्हें मोक्ष मिलने का नहीं।

६. अपूर्व आनन्द के भेद को जो जानता है, उसे सहज का ज्ञान एक क्षण में ही प्राप्त हो जाता है।

गुण दोस रहिअ एहु परमत्थ ।
सह संवेअण केवि णत्थ ॥ ७ ॥
आवइ जाइ कहवि ण णइ ।
गुरु उपएसें हिअहि समाइ ॥ ८ ॥
हउ सुण जुग सुण तिहु अण सुण ।
णिम्मल सहजे ण पाप ण पुण ॥ ९ ॥

७. परमार्थ अर्थात् परमसत्य यही है, जिसमें न गुण है न दोष । स्वसंवेध कुछ भी नहीं है, न गुण, न दोष ।

८. (वहपरम तत्व) न कहीं से आता है, न कहीं जाता है, न किसी स्थान पर ठहरता है । तथापि गुरु के उपदेश से वह हृदय में प्रविष्ट होता है ।

९. मैं भी शून्य हूँ, जगत् भी शून्य है, त्रिभुवन भी शन्य है ! महासुख निर्मल सहजस्वरूप है; न वहाँ पाप है, न पुण्य ।



मुनि देवसेन

चोला-परिचय

मुनि देवसेन का इतिवृत्त अज्ञात-सा ही है। इतना ही कहा जा सकता है कि यह एक उच्चकोटि के जैन-संत थे । **'सावय धम्म दोहा'** का रचयिता कौन था यह प्रश्न विवादास्पद है। लक्ष्मीचन्द्र या लक्ष्मीधर को इस ग्रंथ का कर्त्ता मान लिया गया था, और कुछ विद्वानों ने सुप्रसिद्ध जैन मुनि योगीन्द्रदेव को इसका रचयिता माना था । विद्वद्वर हीरालाल जैन ने अपनी शोध के परिणामस्वरूप **'सावय धम्म दोहा'** का कर्त्ता मुनि देवसेन को सिद्ध किया है । उनका निर्णय अनेक दृष्टियों से प्रामाणिक है । योगीन्द्रदेव की रचनाओं और **सावय धम्म दोहा** में, भाषा और विषय दोनों ही दृष्टियों से, अन्तर पाया जाता है, जबकि देवसेन-रचित **भाव-संग्रह** तथा **सावय धम्म दोहा** में विशेष सादृश्यताएँ मिली हैं ।

मुनि देवसेन मालवा प्रदेश के निवासी थे, और दसवीं शताब्दी में विद्यमान थें । **दर्शन-सार** ग्रंथ की रचना देवसेन ने धारानगरी के पार्श्वनाथ-मंदिर में बैठकर संवत् ९९० में की थी ।

बानी-परिचय

प्रस्तुत संक्षिप्त संग्रह में हमने '**सावय धम्म दोहा**' से केवल ७ दोहे ही लिये हैं। इस ग्रंथ का विषय श्रावक का धर्म अथवा आचार है। सामान्य गृहस्थों के लिए **सावय धम्म दोहा** की रचना की गई है। श्रावक का भी जीवन-ध्येय विषय-भोगों का सेवन नहीं है, किन्तु आत्मदर्शन से उपलब्ध आनन्द ही उसका साध्य है, जिसके साधन हैं सत्य, अहिंसा, शील, सदाचार तथा इन्द्रियजन्य सुखों से उपराम।

श्रावक-धर्म, मुनि देवसेन के कथनानुसार, सबके लिए है, उसका साधक चाहे ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, अथवा जैन हो या अजैन। एक दोहा है—

"एहु धम्म जो आयरइ बंभगु सुद्द ु वि कोइ।
सो सावउ कि सावयहं अएणु कि सिर मणि होइ॥"

अर्थात्, इस धर्म का जो भी आचरण करता है, फिर चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, कोई भी हो, वही श्रावक है। श्रावक के सिर पर क्या कोई मणि चिपकी रहती है?

अवहट्ठा याने अपभ्रष्ट भाषा का यह अति प्राचीन ग्रंथ है। इसका अच्छा प्रचार और आदर था। लक्ष्मीचन्द्र ने '**सावय-धम्म**' पर एक पंजिका और मुनि प्रभातचन्द्र ने 'तत्त्वदीपिका' नाम की वृत्ति लिखी है।

मुनि देवसेन

एहु धम्मु जो आयरइ बंभगु सुद्दु वि कोइ।
सो सावउ किं सावयह अएणु कि सिरि मणि होइ॥१॥
धम्मु करउं जइ होइ धणु इहु दुव्वयणु म बोल्लि।
हक्कारउ जमभडतणउ आवइ अज्जु कि कल्लि॥२॥

---

१. इस धर्म का जो भी आचरण करता है, फिर चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे शुद्र, कोई भी हो, वही श्रावक है। श्रावक के सिर पर क्या कोई मणि चिपकी रहती है?

२. मत ऐसा दुर्वचन कह कि यदि धन प्राप्त हो जाय तो मैं धर्म करूँ। कौन जाने, यमदूत आज बुलाने आजाय या कल।

काइं बहुत्तइं जंपयइं ज अप्पहु पडिकूलु ।
काइं मि परहुण तं करहि एहु जि धम्मु ममूलु ॥३॥
धम्मु विसुद्धउ तं जि पर जं किज्जइ काएण ।
अहवा तं धणु उज्जलउ जं आवइ णाएण ॥४॥
रूवहु उप्परि रइ म करि णयण णिवारहि जंत ।
रूवासत्त पयंगडा पेक्खहि दीखि पडंत ॥५॥
मणगच्छहं मणमोहणहं जिय गेयहं अहिलासु ।
गेयरसें हियकण्णडा पत्ता हरिण विणाहु ॥६॥
एक्कहिं इंदियमोक्कलउ पावइ दुक्खसयाइं ।
जसु पुणु पंच वि मोक्कला तुसु पुच्छञ्जर काइं ॥७॥

---

३. अधिक क्या कहें, जो अपने प्रतिकूल हो उसे दूसरों के प्रति कभी न करो ; धर्म का यही मूल है ।

४. धर्म विशुद्ध वही है, जो अपनी काया से किया जाता है; और धन भी वही उज्ज्वल है, जो न्याय से प्राप्त होता है ।

५. रूप से प्रीति मत कर । रूप पर खिंचते हुए नेत्रों को रोकले । रूपासक्त पतिंगे को तू दीपक पर पड़ते हुए देख ।

६. हे जीव, अच्छे मनमोहक गीत सुनने की लालसा न कर ! देख, कर्ण-मधुर संगीत-रस से हरिण का विनाश हुआ ।

७. जब एक ही इन्द्रिय के स्वच्छन्द विचरण से जीव सैकड़ों दुःख पाता है, तब जिसकी पाँचों इन्द्रियाँ स्वच्छन्द हैं, उसका तो फिर पूछना ही क्या ।



मुनि रामसिंह

चोला-परिचय

इतिवृत्त इतना ही केवल कि यह एक जैन मुनि थे, और सुप्रसिद्ध प्राकृतवैयाकरण हेमचन्द्राचार्य के यह पूर्ववर्ती थे, अर्थात् ११वीं शताब्दी म यह विद्यमान थे ।

'करहा' अर्थात् ऊँट शब्द का अनेक बार प्रयोग इनके दोहों में मिला है, इससे अनुमान कर लिया गया है कि मुनि रामसिंह कदाचित

राजपूताने के निवासी रहे होंगे। पर इस अनुमान के पीछे कोई और पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं।

'पाहुड़-दोहा' की एक हस्तलिखित प्रति के अन्त में 'योगीन्द्रदेव' नाम भी आया है, और अनुमान किया गया था कि **'योगसार'** के रचयिता योगीन्द्रदेव का परम्परागत नाम रामसिंह रहा हो। पर इसका भी कोई प्रबल प्रमाण नहीं।

अनुमान है कि मुनि रामसिंह 'सिंह' नामक संघ के अनुयायी रहे होंगे, जिसे आचार्य अर्हद् बलि ने स्थापित किया था।

'पाहुड़-दोहा' से पता चलता है कि मुनि रामसिंह स्वतन्त्र प्रकृति के एक ऊँचे रहस्यवेत्ता संत थे।

बानी-परिचय

'पाहुड' का संस्कृत रूपान्तर 'प्राभृत' किया गया है, जिसका अर्थ 'उपहार' होता है, अतः **'पाहुड़-दोहा'** का अर्थ हुआ दोहों का उपहार। कुन्दकुन्दाचार्य के भी अधिकांश ग्रंथ 'पाहुड़' कहलाते हैं।

भाषा इनकी 'अवहट्ठा' अर्थात् अपभ्रष्टा है। हिन्दी का यह एक पूर्वरूप है।

मुनि रामसिंह की पाहुड़-बानी में उच्चकोटि का अनुभवगम्य अध्यात्मरस मिलता है। कई दोहों को पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है मानो उपनिषदों की सूक्तियाँ पढ़ रहे हैं।

स्वानुभवशून्य कोरे ज्ञानवाद और निस्सार क्रिया-काण्ड को पाहुड़-बानी में कुछ भी महत्त्व नहीं दिया गया है।

धर्म के नाम पर जो अनेक बाह्याडंबर और पाखंड प्रचलित हुए उन सबका इस जैन संत ने प्रबल खंडन किया है। कहता है—"घट के अन्तर में बसनेवाले देव का दर्शन करो। क्यों व्यर्थ तीर्थों में भटकते हो ? क्यों पत्थर के बड़े-बड़े मन्दिर बनवाते हो ?"

और—"यह देह ही देवालय है; इसमें वह परमदेव अधिष्ठित है, जिसकी अनेक शक्तियाँ हैं। उसीकी आराधना करो।"

पाहुड़-बानी में योग-साधन की निर्मल झाँकी मिलती है, लगभग

वैसी ही, जैसी कि ब्राह्मण एवं बौद्ध-काव्यों में।

उपमाएँ अनूठी हैं। शैली सरल और सरस है। काव्य-रस अनुभव-गम्य है, जो कोरे शब्द-पाण्डित्य में कहीं खोजने पर भी नहीं मिलता।

सांप्रदायिक संकीर्णता तथा भेद-भावना को मुनि रामसिंह ने अपनी वानी में कहीं भी स्थान नहीं दिया।

मुनि रामसिंह

मूढा सयलु वि कारिमउ मं फुडु तुहुं तुस कंडि।
सिवपइ णिम्मलि करहि रइ घरु परियणु लहु छंडि ॥१॥

सप्पि मुक्की कंचुलिय जं विसु तं ण मुएइ।
भोयहं भाउ ण परिहरइ लिंगग्गहणु करेइ ॥२॥

उपलाणहिं जोइय करहुलउ दावणु छोडहि जिम चरइ।
जसु अखइणि रामइ गयउ मणु सो किम बुहु जगि रइ करइ ॥३॥

ढिल्लउ होहि म इंदियहं पंचहं विण्णि णिवारि।
एक्क णिवारहि जीहाडिय अण्ण पराइय णारि ॥४॥

मणु मिलियउ परमेसरहो परमेसरु जि मणस्स।
विण्णि वि समरसि हुइ रहिय पुज्ज चडावउं कस्स ॥५॥

---

१. अरे मूढ़, यह सारा ही कर्म-जंजाल है। मत कूट तू भूसी को। गृह और परिजनों को तुरंत त्यागकर तू निर्मल शिव-पद में अनुरक्त होजा।

२. साँप केंचुल तो त्याग देता है, किंतु विष को नहीं त्यागता। ऐसे ही मनुष्य मुनि का वेश तो धारण कर लेता है, किंतु वह भोगों की भावना को नहीं छोड़ता।

३. जैसे हस्ति-कुमार कमलों को देखते ही बन्धन को तोड़-ताड़कर विचरने लगते हैं, वैसे ही जिसका मन अक्षयिनी रामा अर्थात् मुक्ति-रमणी पर चला गया वह जगत् के प्रति फिर कैसे प्रीति कर सकता है?

४. इन्द्रियों के विषय में तू ढील मत दे। पांच में से इन दो का तो अवश्य निवारण कर—एक तो जिह्वा और दूसरी परस्त्री।

५. मन मिल गया है परमेश्वर से और परमेश्वर मिल गया है मन से, दोनों एकाकार हो गये हैं। अब पूजा में किसे अर्पण करूँ?

सइं मिलया सइं विहडिया जोइय कम्म णि भंति।
तरलसहावहिं पंथयहिं अएणु कि गाम वसंति ॥६॥
पंडिय पंडिय पंडिया कणु छंडिवि तुस कंडिया।
अत्थे गंथे तुट्ठो सि परमत्थु ण जाणहि मूढो सि ॥७॥
णाण तिडिक्की सिक्खि वढ कि पढ़ियइं बहुएण।
जा सुंधुक्की णिड्डहइ पुएण वि पाउ खणेण ॥८॥
तूसि म रूसि म कोहु करि कोहें णासइ धम्मु।
धम्मि नट्ठि णरयगइ अह गउ माणुसजम्मु ॥९॥
बहुयइं पढियइं मूढ पर तालू सुक्कइ जेण।
एक्कु जि अक्खरु तं पढहु सिवपुरि गम्मइ जेण ॥१०॥
हसं सगुणी पिउ णिग्गुणउ णिल्लक्खणु णीसंगु।
एकहिं अंगि वसंतयहं मिलिउ ण अंगहिं अंगु ॥११॥
जीव वहंति णरयगइ अभय पदाणें सग्गु।
वे पह जव ला दरसियइं जहिं भावइ तहिं लग्गु ॥१२॥

---

६. हे योगी, कर्म स्वयं मिलते हैं, और स्वयं विलग हो जाते हैं, इसमें कोई भ्रांति नहीं। चंचल प्रकृति के पथिकों से क्या गाँव बसते हैं ?

७. पण्डित-श्रेष्ठ, कणों को छोड़कर तूने भूसी को ही कूटा है। ग्रंथ और उसके अर्थ में तुझे संतोष है, किंतु रे मूढ़, परमार्थ से तेरा परिचय नहीं।

८. मूर्ख, वहुत पढ़ लिया तो क्या ? ज्ञान की चिनगारी को पढ़, जो प्रज्वलित होते ही पुण्य और पाप को एक क्षण में भस्म कर देती है।

९. न तोष कर, न रोष कर, न क्रोध कर। क्रोध धर्म को नष्ट कर देता है। और धर्म नष्ट होने से नरक-वास। मनुष्य-जन्म ही नष्ट हो गया।

१०. इतना अधिक पढ़ा कि तालू सूख गया, पर रहा तू मूर्ख ही। उस एक ही अक्षर को पढ़ कि जिससे तू शिवपुरी जा सके।

११. मैं सगुण हूँ, और प्रियतम मेरा निर्गुण, निर्लक्षण और निस्संग। एक ही अंग में, एक ही कोठे में, हम दोनों रहते हैं, फिरभी अंग से अंग नहीं मिल पाया।

१२. प्राणियों के वध से नरक और अभय-दान से स्वर्ग मिलता है। ये दो पंथ हैं, चाहे जिसपर चलाजा।

हलि सहि काइं करइ सु दप्पणु ।
जहिं पडिबिंबु ण दीसइ अप्पणु ॥
धंधवालु मो जगु पडिहासइ ।
घरि अच्छंतु ण घरवइ दीसइ ॥१३॥

पुण्णेण होइ विहओ विहवेण मओ मएण मइमोहो ।
मइमोहेण य णरयं तं पुण्णं अम्ह मा होउ ॥१४॥

कासु समाहि करउं को अंचउं ।
छोपु अछोपु भणिवि को वंचउं ॥
हल सहि कलह केण सम्माणउं ।
जहिं जहिं जोवउं तहिं अप्पाणउं ॥१५॥

दया विहीणउ धम्मडा णाणिय कह विण जोइ ।
बहुएं सलिल विरोलियइं करु चोपडो ण होइ ॥१६॥

देवलि पाहणु तित्थि जलु पुत्थइं सव्वइं कव्वु ।
वत्थु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सव्वु ॥१७॥

मूढ़ा जोवइ देवलइं लोयहिं जाइं कियाइं ।
देह ण पिच्छइ अप्पणिय जहिं सिउ संतु ठियाइं ॥१८॥

---

१३. अयि सखि, उस दर्पण को लेकर क्या करूँ, जिसमें अपना प्रतिबिम्ब न दीखे ? लगता है कि यह जगत् मुझे लज्जित कर रहा है । गृह में रहते हुए भी गृह-स्वामी का दर्शन नहीं होता ।

१४ छोड़ा ऐसा पुण्य जिससे विभव प्राप्त होता हो, और विभव से मद, फिर मद से मति-मोह और मति-मोह से नरक ।

१५ समाधि किसकी लगाऊँ ? पूजूँ किसे ? छूत अछूत कहकर किसे छोड़ूँ ? भला किसके साथ कलह करूँ ? जहाँ भी देखता हूँ, सर्वत्र अपनी ही आत्मा दिखाई देती है ।

१६ हे ज्ञानवान् योगी, बिना दया के धर्म हो नहीं सकता । कितना ही पानी बिलोया जाये, उससे हाथ चिकना होने का नहीं ।

१७ देवालय में पत्थर हैं, तीर्थ में जल, और पुस्तकों में काव्य; जो भी वस्तुएँ फूली-फली दीख रही हैं, वे सब ईंधन हो जानेवाली हैं ।

१८ मूर्ख, उन देवालयों का तो तू दर्शन करने जाता है, जिनका मनुष्यों ने निर्माण किया है, किंतु अपनी काया को नहीं देखता, जहाँ सदा ही शिव विराजमान हैं !

अप्पापरहं ण मेलयउ आवागमणु ण भग्गु ।
तुस कंडंतहं कालु गउ तंदुलु हत्थि ण लग्गु ॥१९॥
वेपंथेहिं ण गम्मइ वेमुह सूई ण सिज्जए कंथा ।
विण्णि ण हुंति अयाणा इंदियसोक्खं च मोक्खं च ॥२०॥

१९ न आत्मा और परमतत्त्व का मिलन हुआ, न आवागमन का भंग। भूसी कूटते-कूटते ही काल चला गया, चावल एक भी न हाथ लगा।

२० एकसाथ दो मार्गों से जाना नहीं बनता : दो मुँहवाली सूई से कंथा नहीं सिया जाता। मूर्ख, एकसाथ दो-दो बातें नहीं सधतीं—इंद्रिय-सुख भी और मोक्ष भी।



गोरखनाथ

चोला-परिचय

गोरखनाथ या गोरक्षनाथ के विषय में इतना ही निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि भारतवर्ष की धर्माचार्य-परम्परा में यह एक महान् योगी और सुप्रसिद्ध महापुरुष थे।

विक्रम-संवत् की दसवीं शती के अन्त में, अथवा ग्यारहवीं शती के आदि में इस योगिराट् का प्राकट्य हुआ था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा स्व० डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने अपनी विद्वत्तापूर्ण शोधों के परिणामस्वरूप इस आविर्भाव-काल को निश्चित किया है।

जन्म-स्थान भी निश्चित रूप से स्थिर नहीं हो सका। कोई इनका जन्म-स्थान गोदावरी-तट का प्रदेश बतलाता है, तो कोई बंगाल और कोई पंजाब !

इसी प्रकार न इनके कुल का निश्चित पता चल सका है, और न जाति का ही। इन बातों का कोई खास महत्त्व भी नहीं।

पर इतना तो निस्सन्दिग्ध है कि सुप्रसिद्ध कौलज्ञानी मत्स्येन्द्रनाथ या मछन्दरनाथ इनके गुरु थे। मत्स्येन्द्रनाथ ही नाथ-परम्परा के सबके प्रथम आचार्य हैं। यह जालन्धरपाद के गुरुभाई थे, जिनका सिद्ध-परंपरा में बड़ा ऊँचा स्थान है। इनका एक नाम हाड़िपा या हाड़िफा भी है।

कौलाचार की साधना के आदिकाल में 'पंचपवित्र'—वाद को पंच मकार' का अध्यात्मपरक अर्थ लगाया जाता था। पीछे, वामाचार में उसका स्थूल अर्थ किया जाने लगा। परिणामतः सहजयानियों, वज्रयानियों और नाथपंथियों का भी अधःपतन हुआ।

गोरखनाथके योग-मार्ग में हठयोग का प्राधान्य है सही, किन्तु परवर्ती कौलाचार योग की क्रियाओं का प्रवेश उसमें नहीं हो पाया था। उन्होंने अपने उपदेशों में अखंड ब्रह्मचर्य और शील-सदाचार पर ही सदा बल दिया।

किन्तु पीछे चमत्कारपूर्ण प्रवादों और मनोरंजक किंवदन्तियों ने गोरखनाथ और मछन्दरनाथ के नामों को इतना अधिक उलझा दिया कि शोधकों के लिए ऐतिहासिक एवं तात्त्विक तथ्योंतक पहुँचना दुरूह हो गया। यहाँतक कि उलझन का एक नाम 'गोरख-धन्धा' भी पड़ गया।

तथापि, गोरखनाथ का पवित्र नाम आज भी भारत के एक छोर से दूसरे छोरतक वैसा ही प्रसिद्ध है, जैसा कि शताब्दियों पूर्व था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन सही है कि, "शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरुष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भक्ति-आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का योग-मार्ग ही था।"

बानी-परिचय

प्रस्तुत संग्रह-ग्रंथ में डाक्टर बड़थ्वाल द्वारा संपादित **गोरख-बानी** से कुछ सबदियाँ और कुछ पद लिये गये हैं। विद्वान् संपादक ने बानी में 'सबदी' को सबसे प्राचीन माना है। फिरभी भाषा की दृष्टि से इसे दसवीं या ग्यारहवीं शती की रचना मानने में संदेह के लिए कुछ-न-कुछ स्थान तो रहता ही है। वह काल अपभ्रंश भाषाओं का था। गोरखबानी में जिन अनेक शब्दों के प्रयोग हुए हैं, वे परवर्ती काल के हैं।

समाधान यों हो सकता है कि गोरखनाथ की मूल बानी का, शताब्दियों से घिसते-घिसते, काफी रूपान्तर तो हो गया, फिरभी उसकी मौलिकता का सर्वथा लोप नहीं हो पाया। जीर्ण हो जाने पर भी अनेक

परिवर्तनों के बाद भी रंग सबदियों पर का आज भी वैसे-का-वैसा ही है।

योगमार्ग के गहनतम सिद्धांतों एवं क्रियाओं का विशद निरूपण लोक-भाषा में गोरखनाथ ने जिस शैली में किया है, वह उनकी अपनी मौलिक शैली है। गोरख की बानी में हम स्वानुभूति की ऊँची दृढ़ता, आध्यात्मिक साधना की पारदर्शी निर्मलता, और थोड़े में अधिक कह डालने की तीव्र अभिव्यंजना-शक्ति पाते हैं।

प्रस्तुत संग्रह-ग्रंथ में संकलित सबदियों तथा पदों के कठिन और गूढ़ शब्दों का अर्थ हमने विद्वद्वर डॉ० बड़थ्वाल द्वारा संपादित 'गोरखबानी' की संपूर्ण सहायता से किया है। यदि वह अत्यन्त शोधपूर्ण ग्रंथ हमारे सामने न होता, तो बानी में आये हुए अनेक गूढ़ एवं रहस्यात्मक पदों का अर्थ लगाना हमारे लिए सम्भव नहीं था।

गोरखनाथ

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महिं बालक बोलै ताका नाँव धरहुगे कैसा ॥१॥
हँसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं। अहनिसि कथिबा ब्रह्मगियानं।
हँसै षेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ कै संग ॥२॥
अहनिसि मन लै उनमन रहै, गम को छांड़ि अग की कहै।
छाँड़ै आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूँ ताका दास ॥३॥
अरधै जाता उरधै धरै, काम दग्ध जे जोगी करै।
तजै अल्यंगन काटै माया, ताका बिसनु पषालै पाया ॥४॥

---

१ बसती=बसा हुआ, अर्थात् 'है'। सुन्यं=शून्य। गगन-सिषर=शून्य; ब्रह्मरन्ध्र से आशय है। बालक=परमवस्तु अर्थात् विशुद्ध आत्मा।

२ नाथ=ब्रह्म से तात्पर्य है।

३ उनमन=उन्मनावस्था; मन की वृत्तियों के अंतर्मुख कर लेने की स्थिति। अग=अगम्य; अध्यात्म का देश।

४ अरधै...धरै=नीचे को पतित होनेवाले वीर्य को जो ऊपर की ओर खींचता है। अल्यंगन=आलिंगन। बिसनु=विष्णु। पषालै पाया=पैर पखारता है।

मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणीं मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा ॥५॥
हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरैं धरिबा पावं।
गरब न करिबा सहजैं रहिबा, भणत गोरष रावं ॥६॥
स्वामी बनषंडि जाउं तो षुध्या ब्यापै, नग्री जाउं त माया।
भरिभरि षाउं त बिन्द बियापै, क्यों सीझति जल ब्यंद की काया ॥७॥
धाये न षाइबा, भूषे न मरिबा, अहनिसि लेबा ब्रह्म-अगनि का भेवं।
हठ न करिबा पड्या न रहिबा यूं बोल्या गोरषदेवं ॥८॥
अति अहार यंद्री बल करैं, नासै ग्यांन मैथुन चित धरैं।
ब्यापै न्यंद्रा झंपै काल, ताके हिरदै सदा जंजाल ॥९॥
दूधाधारी परिघरि चित्त। नागा लकड़ी चाहै नित्त।
मोनी करै म्यंत्र की आस। बिन गुर गुदड़ी नहीं बेसास ॥१०॥
मन मैं रहिणां भेद न कहिणां बोलिबा अंमृत-बाणीं।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पांणीं ॥११॥

---

५. वे=हे। दीठा=देखा; आत्म-साक्षात्कार किया।
मरणी=जीवन्मुक्ति से आशय है।
६. हबकि=फट से बिना विचारे। ठबकि=ज़ोर से पटक-पटककर।
भणत=कहता है। रावं-नाथ।
७. षुध्या=क्षुधा, भूख। नग्री=नगरी, बस्ती। बिंद=वीर्य-बिन्दु; काम-वासना से आशय है। क्यों=कैसे, किस साधन से। सीझति=सिद्ध हो।
जल-ब्यंद=वीर्य और रज।
८. धाये न षाइबा=ठूँस ठूँसकर नहीं खाना चाहिए। भेवं=भेद, रहस्य।
९. यंद्री=इन्द्रियाँ। न्यंद्रा=निद्रा। झंपै=चढ़ बैठता है।
१०. लकड़ी चाहै=धूनी जलाने के लिए लकड़ी चाहता है, जिससे नग्न शरीर सदा गरम बना रहे। म्यंत्र=मित्र, साथी, जिसके द्वारा अपने आशय को समझा सके। बेसास=विश्वास।
११. मन मैं रहिणां=मन को बहिर्मुख वृत्तियों को अन्तर्मुख करके उन्मनी अवस्था में लीन रहना। आगिला=सामने का आदमी। अगनी होइबा=गरम पड़े। पाणी होइबा=पानी हो जाये, क्षमा दिखाये।

गोरष कहैं सुणहुरे अवधू, जग मैं ऐसैं रहणां ।
आंषैं देषिबा काणैं सुणिबा मुष थैं कछू न कहणां ॥१२॥
नाथ कहै तुम आपा राषौ, हठ करि बाद न करणां ।
यहु जग है कांटे की बाड़ी, देषि देषि पग धरणां ॥१३॥
आसण दिढ अहार दिढ जे न्यद्रा दिढ होई ।
गोरष कहै सुणों रे पूता, मरै न बूढा होई ॥१४॥
षांयें भी मरिये अणषांयें भी मरिये । गोरष कहै पूतसंजमि ही तरिये ।
मधि निरंतर कीजै वास । निहचल मनुवा थिर होइ सास ॥१५॥
जोगी होइ परनिंद्यां झषै । मदमास अरु भांगि जो भषै ।
इकोतर सै पुरिषा नरकहि जाई । सति सति भाषंत श्री गोरषराई ॥१६॥
एकाएकी सिध नांउं, दोइ रमति ते साधवा ।
चारि पंच कुटंब नांउं, दस बीस ते लसकरा ॥१७॥
महमां धरि महमां कूं मेटै, सति का सबद बिचारी ।
नांन्हां होय जिनि सतगुर षोज्या, तिन सिर की पोट उतारी ॥१८॥
जे आसा ते आपदा, जे संसा ते सोग ।
गुरमुषि बिना न भाजसी (गोरष) ये दून्यों बड़ रोग ॥१९॥
जपतप जोगी संजम सार । बाले कंद्रप कीया छार ।
येहा जोगी जग मैं जोय । दूजा पेट भरै सब कोय ॥२०॥

---

१३. आपा राषौ=आत्मा की रक्षा करो ।
१४. पूता=पुत्रो अर्थात् शिष्यो ।
१५. मधि=मध्यम रहनी । सास–श्वास ।
१६. झषै=बके । इकोतर सै=इकहत्तर सौ ।
१७. एकाएकी=अकेला । सिध=सिद्ध । लसकरा=जमात ।
१८. धरि=धारणकर, प्राप्त करके । मेटैं=मान नहीं देते हैं ।
नांन्हां=नम्र, निरहंकार । पोट=कर्मों की गठरी ।
१९. संसा=संशय; द्वैत-बुद्धि । सोग=शोक । गुरमुषि विना=सतगुरु का उपदेश लिये विना । भाजसी=भागेंगे, नष्ट होंगे ।
२०. वाले=बालकपन में । कंद्रप=कंदर्प; काम-वासना ।
जोय=समझना चाहिए ।

राग असावरी

कैसैं बोलौं पंडिता, देव कौनै ठांईं,
निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें नहीं।
पषांणची देवली पषांण चा देव, पषांण पूजिला कैसे फीटीला सनेह।
सरजीव तोड़िला निरजीव पूजिला, पाप ची करणीं कैसैं दूतर तिरीला॥
तीरथि तीरथि सनांन करीला, बाहर धोये कैसैं भीतरि भेदीला।
आदिनाथ नाती मछीन्द्रनाथ पूता, निज तात निहारैं गोरष अवधूता॥१॥

आरती

नाथ निरंजन आरती गाऊं। गुरदयाल अग्यां जो पाऊं॥
जहाँ अनन्त सिधां मिलि आरती गाई। तहाँ जम की बाँव न नैड़ी आई।
जहाँ जोगेसुर हरि कूँ ध्यावैं। चंद सूर तहाँ सीस नवावैं।
मछींद्र प्रसादे जती गोरखनाथ आरती गावै।
नूर भिलमिल दीसै तहाँ अनत न आवै॥२॥

नरवै-बोध

सुणौ हो नरवै, सुधि बुधि का विचार। पंच तत ले उतपनाँ सकल संसार।
पहलै आरम्भ घट परचा करौ निसपती। नरवै बोध कथंत श्री गोरषजती॥
पहलै आरम्भ छाँड़ौ काम क्रोध अहंकार। मन माया विषै विकार।
हंसा पकड़ि घात जिनि करौ। तृस्नाँ तजौ लोभ परहरौ॥२॥

---

१. ठांईं=स्थान। निज... नहीं=आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर न तो हम रहते हैं, और न तुम। पषांणची देवली=पत्थर का देवालय! ची, चा=की, का=(मराठी प्रयोग) फीटीला=फूटता है, पसीजता है।
सरजीव=सजीव, फूल पत्ती आदि। दूतर=दुस्तर। सनाँन=स्नान। भेदीला=भेद सकता है, निर्मल कर सकता है।

२. वाव=वायु, हवा; स्पर्शतक। नैड़ी=निकट। प्रसादे=प्रसाद अर्थात् कृपा से। नूर=आत्मा का प्रकाश। अनत=अन्यत्र; अन्य अवस्था।

नरवै-बोध

१. नरवै=नृपति। आरम्भ...निसपती=योग की चार अवस्थाएँ हैं—आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति। उतपनां=उत्पन्न हुआ है।

२. हंसा=प्राणी।

छाँडो दंद रहौ निरदंद । तजौ अल्यंगन रहौ अबंध ।
सहज जुगति ले आसण करौ । तन मन पवनाँ दिढ करि धरौ ॥३॥
संजम चितओ जुगत अहार । न्यंद्रा तजौ जीवन का काल ।
छाँड़ौ तंत मंत बैदंत । जंत्रं गुटिका धात पाषंड ॥४॥
जड़ी बूटी का नाँव जिनि लेहु । राज दुवार पाव जिनि देहु ।
थंभन मोहन बिसिकरन छाड़ौ औचाट ।
सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभ की बाट ॥५॥
और दसा परहरौ छतीस । सकल विधि ध्यावो जगदीस ।
बहु विधि नाटारंभ निबारि । काम क्रोध अहंकारहि जारि ॥६॥
नैंण महा रस फिरौ जिनि देस । जटा भार बंधौ जिनि केस ।
रूष बिरष बाड़ी जिनि करौ । कूवा निवाँण षोदि जिनि मरौ ॥७॥
टूटै पवनाँ छीजै काया । आसण दिढ करि वैसो राया ।
तीरथ बर्त कदै जिनि करौ । गिर परबताँ चढि प्रानमति हरौ ॥८॥
पूजा पाति जपौ जिनि जाप । जोग माहि विटंबौ आप ।
छाँडौ बैद बणज ब्यौपार । पढ़िबा गुणिबा लोकाचार ॥९॥
बहुचेला का संग निबारि । उपाधि मसाँण बाद विष टारि ।
येता कहिये प्रतच्छि काल । एकाएकी रहौ भुवाल ॥१०॥

---

३. दंद=द्वन्द्व, द्वैतभाव, प्रपंच । अल्यंगन=आलिंगन, काम-वासना । पवनां···धरौ=श्वास को प्राणायाम द्वारा निश्चल करो ।

४. संजम चितओ=संयम-साधन में चित्त लगाओ । जुगत=युक्त, नियंत्रित । न्यंद्रा=निद्रा । वैदंत=वैद्यक । गुटिका=गोली । धात=पारा आदि । धातु भस्मों का सिद्ध करना ।

५. थंभन=स्तम्भन । औचाट=उच्चाटन । बाट=मार्ग ।

६. छतीस=क्षितीश, नृपति । नाटारम्भ=बाहरी प्रदर्शन, पाखण्ड । निवारि=दूर करके ।

७. रूष=पेड़ । निवांण=गहरा ।

८. वर्त=व्रत । कदै=कभी ।

९. बिटंबो=विडंबना कराते हो । बैद=वैद्य का धन्धा ।

१०. उपाधि मसाँण=उपाधि है मानो श्मशान । बाद विष टारि=शास्त्रार्थ को विष के समान समझकर टालदो । एकाएकी=अकेले हो ।

सभा देषि मांडौ मति ग्यांन । गूंगा गहिला होइ रहौ अजांण ।
छाड़व राव रंक की आस । भिछ्या भोजन परम उदास ॥११॥
रस रसाइंन गोटिका निवारि । रिधि परहरौ सिधि लेहु विचारि ।
परहरौ सुरापांन अरुभंग । तातैं उपजै नांनां रंग ॥१२॥
नारी, सारी, कींगुरी । तीन्यूं सतगुर परहरी ।
आरम्भ घट परचै निसपती । नरवै बोध कथंत श्री गोरख जती ॥१३॥

११. गहिला=पागल ।

१३. सारी=मैना, मैना पालकर उससे राम का नाम जपवाते हैं । कींगुरी=सारंगी

नामदेव महाराज

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१३२७ वि०

जन्म-स्थान—नरुसी बमनी (सातारा ज़िला)

जाति—छीपी

पिता—दामा शेट

माता—गोणाई

गुरु—खेचरनाथ नाथपंथी

योगमार्ग-प्रेरक—ज्ञानदेव महाराज

निर्वाण-संवत्—१४०७ वि०

निर्वाण-स्थान—पंढरपुर

महाराष्ट्र के सुविख्यात कृष्ण-भक्त वामदेव इनके नाना थे । नामदेव पर भी, स्वभावत:, कृष्ण-भक्ति का प्रभाव बाल्यपन से पड़ा था । सगुणोपासना-विषयक इनके अनेक अभंग मराठी में प्रसिद्ध हैं । हिन्दी में भी इनके कृष्ण-भक्तिसम्बन्धी कई पद मिलते हैं । एक पद है—

धनि धनि मेघा रोमावली, धनि धनि कृष्ण ओढ़ें काँवली ।
धनि धनि तू माता देवकी, जेहि गृह रमैया कँवलापती ।

धनि धनि बनखँड बृन्दावना, जहँ खेलें श्री नारायणा।
बेनु बजावें, गोधन चारें, नामे का स्वामी आनँद करै॥

इन पदों तथा मराठी के अभंगों से सिद्ध होता है कि नामदेव आरंभ में सगुणोपासक थे। पश्चात्, गोरखनाथ की शिष्य-परम्परा के सुप्रसिद्ध संत ज्ञानदेव महाराज ने इन्हें, कहा जाता है, निर्गुणोपासना की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया, और उन्हें सफलता भी मिली। कहते हैं कि एक बार श्री ज्ञानदेव इन्हें अपनी संत-मंडली में लेकर तीर्थाटन को निकले। नामदेव अपने इष्टदेव विठोबा (भगवान् विट्ठलनाथ) के वियोग में व्याकुल रहते थे। ज्ञानदेव ने बहुत समझाया कि, "यह तुम्हारा मोह है, भगवान् तो सर्वत्र हैं, तुम्हारी यह कच्ची भक्ति है। पक्की भक्ति तो निर्गुण पक्ष की ही होती है। सो तुम उसीका अभ्यास करो।" एक दिन एक गाँव में सब संतों की परीक्षा हुई। परीक्षक था एक कुम्हार। कुम्हार ने घड़ा पीटने का पिटना हाथ में लिया, और सबके सिर उससे ठोकने लगा। सब संत चोटें खाकर भी अचल बैठे रहे। पर नामदेव अपना सिर पिटवाने को तैयार नहीं हुए, उसपर बिगड़ भी पड़े। कुम्हार बोला—और "संत तो सब पक्के घड़े हैं, यही एक कच्चा घड़ा है।' नाथपंथ का अनुयायी बनाने के लिए ज्ञानदेवजी ने और भी कितने ही प्रयत्न किये। पश्चात्, ज्ञानदेव के देहावसान के उपरान्त नामदेव ने खेचरनाथ नाम के एक नाथपंथी योगी को अपना गुरु बना लिया, जैसा कि प्रसिद्ध है

"मन मेरी सूई, तन मेरा धागा।
खेचरजी के चरण पर नामा सिंपी लागा॥"

योगमार्ग पर पैर रखने के पश्चात् नामदेवजी ने निर्गुणोपासना के अनेक अभंगों और पदों की रचना की। किंतु निर्गुणोपासना अथवा नाथपंथी या योगमार्गी हो जाने पर भी पंढरपुर के विठोबा के प्रति इनकी भक्ति में अन्तर नहीं पड़ा। नामदेव का देहावसान विट्ठल-मंदिर के महाद्वार की सीढ़ी पर संवत् १४०७ में ८० वर्ष की अवस्था में हुआ।

नामदेव के सम्वन्ध में भक्तमाल तथा अन्य ग्रंथों में अनेक चमत्कारों का वर्णन मिलता है; जैसे, बचपनमें विठोबा की मूर्ति का प्रत्यक्ष होकर इनके हाथ से दूध पीना, बादशाह के सामने एक मरी हुई गाय को जिला देना, नागनाथ महादेव के मन्दिर का द्वार इनकी ओर घूम जाना आदि।

बानी-परिचय

जैसा कि ऊपर कहा गया है सगुण-भक्ति एवं निर्गुण-भक्ति दोनों ही पक्षों के पद इनके हिंदी में मिलते हैं। गुरु ग्रंथसाहब में नामदेव के ६० से अधिक पद संकलित हैं। पंजाब में १५ वर्षतक भगवद्भक्ति का प्रचार करते रहने के कारण इनकी मराठीयुक्त हिन्दी में पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। सगुणोपासना के पदों की भाषा जहाँ कुछ-कुछ ब्रज की जैसी है तहाँ निर्गुणोपासना की बानी पर खड़ी हिंदी का प्रभाव पड़ा है।

नामदेव की बानी यद्यपि सीधी-सादी भाषा में है, तथापि वह भक्ति रसमयी तथा अंतर को भेदनेवाली है। उसमें हम योग-साधना की निर्मलता के साथ-साथ भक्ति की विह्वलता भी पाते हैं। हिन्दी के संत-साहित्य को नामदेव महाराज की अनुभवपूर्ण बानी पर गर्व है।

नामदेव महाराज

राग आसा

एक, अनेक सु व्यापक पूरक जित देखौं तित सोई।
माया चित्र-विचित्र विमोहिनि बिरला बूझै कोई॥
सब गोबिंदु है सब गोबिंदु है, गोबिंदु बिनु नहिं कोई।
सूतु एक मनि सत सहस्र जैसे, ओतिपोति प्रभु सोई॥
जल, तरंग अरु फेन, बुदबुदा जल ते भिन्न न होई।
इहु प्रपंच ब्रह्म की लीला, बिचरत आन न होई॥

१. सूत...सोई=एक धागे में जैसे सैंकड़ों-हज़ारों मणियाँ गूँथी जा सकती हैं, वैसे ही परमात्मा जगत् की प्रत्येक वस्तु में और प्रत्येक वस्तु उसमें समाई हुई है।

मिथ्या भ्रम अरु सुपन मनोरथ सत्ति पदारथु जान्या ।
सुकिरत-मनसा गुरु-उपदेसै जागत ही मन मान्या ॥
कहत नामदेव हरि की रचना देखहु रिदै विचारी ।
घट-घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी ॥१॥

राग आसा

मन मेरो गज, जिहवा मेरी काती ।
मपि-मपि काटौं जम की फाँसी ॥
कहा करौं जाती कहा करौं पाँती ।
राम को नाम जपौं दिन राती ॥
भगति-भाव सूँ सीवनि सीवौं ।
राम नाम बिनु घरी न जीवौं ॥
भगति करौं हरि के गुन गावौं ।
आठ पहर अपने खसम को ध्यावौं ॥
सोने की सूई, रूपे का धागा ।
नामे का चित हरि सूँ लागा ॥२॥

सारंग

बदहु कि न होइ माधौ, मोसूँ ।
ठाकुर ते जन जन ते ठाकुर ख्याल पर्यो है तोसूँ ॥
आपन देव देहुरा आपन, आप लगावै पूजा ।
जल ते तरंग तरंग ते है जल, कहन सुनन को दूजा ॥
आपहि गावै आपहि नाचै, आप बजावै तूरा ।
कहत नामदेव तूं मेरो ठाकुर, जन ऊरा तूं पूरा ॥३॥

ओतिप्रोति=ओतप्रोत, परस्पर इतना उलझा या मिला हुआ कि अलग-अलग करना असम्भव-सा हो । बुदबुदा=बुलबुला । विचरत=विचार करने पर । आन=अन्य, भिन्न । सुकिरत मनसा=पवित्र मन से । रिदै=हृदय में ।

२. काती=कैंची । मपि-मपि=माप-मापकर । खसम=स्वामी ।

३. देहुरा=देवालय । तूरा=तुरही, सिंगा । ऊरा=अधूरा, न्यून ।

मलार

मो को तूं न बिसारि, तूं न बिसारि, तूं न बिसारि रमैया।
तेरे जन की लाज जाहिगी, मुझ ऊपरि सब कोपिला।
सूदु सूदु करि मारि उठायो, कहा करौं बाप बीठुला॥
मूए परि जौ मुकति देहुगे, मुकति न जानै कोई।
ए पंडिया मो को ढेढ़ कहत तेरी पैज पिछौंडी होई॥
तू जु दयालु कृपालु कहियतु है, अति भुज भयो अपारला।
फेरि दिया देहुरा नामे कौ, पंडियन को पिछवारला॥४॥

राग भैरव

जैसी भूखे प्रीति अनाज।
त्रिषावंत जल सेती काज॥
जैसे मूढ़ कुटंब परायण।
ऐसी नामे प्रीति नारायण॥
नामे प्रीति नरायण लागी।
सहज सुभाय भयो बैरागी॥
जैसी परपुरषारत नारी।
लोभी नर धन का हितकारी॥
कामी पुरुष कामिनी प्यारी।
ऐसी नामे प्रीति मुरारी॥
सोई प्रीति जि आपे लाए।
गुरपरसादी दुबिधा जाए॥

---

४. कोपिला=कुपित हैं, नाराज हैं। सूद=शूद्र। बीठुला=विट्ठल (विष्णु); पंढरीनाथ भी कहते हैं, जो नामदेव के इष्टदेव थे। मुए परि= मरने पर। ढेढ़=अंत्यज, अछूत। पैज पिछौंडी होई=तेरा प्रण पीछे पड़ जायगा। अति...अपारला= भुजा बहुत बढ़ादी। फेरि...पिछवारला=मंदिर का मुहँ (द्वार) नामदेव की ओर कर दिया, ताकि वह दर्शन ले सके, क्योंकि उसे मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया था, और मंदिर की पीठ पंडों की ओर करदी।

५. सेती=प्रति, से। पुरषा=पुरुष। हितकारी=लोभी। परसादी=कृपा। तूटसि=

कबहुँ न तूटसि रह्या समाइ ।
नामे चित लाया सचि भाइ ।।
जैसी प्रीति बालक अरु माता ।
ऐसा हरि सेती मन राता ।।
प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति ।
गोबिंदु बसै हमारे चीति ।।५।।

माली गौड़

मेरो बाप माधौ तूं धन केसौ, सांवलियो बीठुलराइ ।
कर धरे चक्र बैकुंठ ते आयो, तूं रे गज के प्रान उधार्‌यो ।।
दुहसासन की सभा द्रोपदी अंबर लेत उबार्‌यो ।
गोतम नारि अहल्या तारी, पापिन केतिक तार्‌यो ।।
ऐसा अधम अजाति नामदेउ तव सरनागति आयो ।।६।।

राग गौड

मोहि लागति तालाबेली ।
बछरा बिनु गाइ अकेली ।।
पानी बिनु ज्यूं मीन तलफै ।
ऐसे रामनाम बिनु नामा कलपै ।।
जैसे माइ का बाछा छूटला ।
थन चोखता माखन घूटला ।।
नामदेउ नारायन पाया ।
गुर भेटत ही अलख लखाया ।।
जैसे बिषै हेत परनारी ।
ऐसे नामे प्रीति मुरारी ।।
जैसे ताप ते निरमल घामा ।
तैसे रामनाम बिनु बापुरो नामा ।।७।।

तूटा । सचि भाइ=सच्चे भाव से । राता=अनुरक्त, लगा हुआ । चीति=चित्त ।
६. केसौ=केशव । दुहसासन=दुःशासन । अंबर लेत=वस्त्र खींचते हुए । पापिन… तार्‌यो=कितने ही पापियों को पवित्र किया और तार दिया ।
७. तालाबेली=बेचैनी । कलपै=व्याकुल हो रहा है । बापुरो=बेचारा ।

राग गौड़

हमरो करता राम सनेही।
काहे रे नर गरब करत है, बिनसि जाइ झूठी देही॥
मेरी मेरी कैरव करते दुरजोधन से भाई।
बारह जोजन छत्र चलैथा, देही गिरझन खाई॥
सरब सोने की लंका होती, रावन से अधिकाई।
कहा भयो दर बाँधे हाथी, खिन महिं भई पराई॥
दुरबासा सूं करत ठगौरी, जादव वे फल पाये।
कृपा करी जन अपने ऊपर नामा हरिगुन गाये॥८॥

राग धनाश्री

मारवाड़ि जैसे नीर बालहा, बेलि बालहा करहला।
ज्यूं कुरंग निसि नाद बालहा त्यूं मेरै मनि रमइया॥
तेरा नाम रूड़ो रूपु रूड़ो अति रंग रूड़ो मेरो रमइया।
ज्यूं धरणी को इन्द्र बालहा, कुसम बास जैसे भवँरला॥
ज्यूं कोकिल को अंब बालहा, त्यूं मेरै मनि रमइया॥
चकवी कौं जैसे सूर बालहा, मानसरोवर हंसला।
ज्यूं तरुणी कौं कन्त बालहा, त्यूं मेरै मनि रमइया॥
बारक कौं जैसे खीर बालहा, चातक मुख जैसे जलधरा।
मछली कौं जैसे नीर बालहा, त्यूं मेरै मनि रमइया॥
साधिक सिद्ध सगल मुनि चाहहिं, बिरले काहू डीठुला।
सगल भवन तेरो नाम बालहा, त्यूं नामे मनि बीठुला॥९॥

भाई रे, इन नैनन हरि देखौ।
हरि की भगति साध की संगति, सोई दिन धनि लेखौ॥

---

८. गिरझ=गीध। खिन=क्षण, पल। ठगौरी=धोखा।

९. बालहा=प्रिय। करहला=फूल की कली। कुरंग=मृग। रूड़ो=सुन्दर। अंब=आम। सूर=सूर्य। बारक=बालक। जलधरा=स्वाति नक्षत्र के मेघ से अभिप्राय है। डीठला=देखा।

१०. रसना...दूजा=वही जिह्वा या वाणी धन्य है, जो हरिनाम ही जपती है, दूसरा

चरन सोइ जे नचत प्रेमसूं कर सोई जे पूजा ।
सीस सोइ जो नवै साधकूं रसना अवर न दूजा ।।
यह संसार हाटका लेखा, सब कोइ बनिजहिं आया ।
जिन जस लाद्या तिन तस पाया, मूरख मूल गँवाया ।।
आतमराम देह धरि आया तामें हरि कूं देखौं ।
कहत नामदेव बलि बलि जैहौं, हरि भजि और न लेखौं ।।१०।।
परधन परदारा परिहरी । ताके निकट बसहिं नरहरी ।।
जे न भजंते नारायना । तिनका मैं न करौं दर्सना ।।
जिनके भीतर रहै अंतरा । जैसा पसु तैसा वह नरा ।।
प्रनमत नामदेव, ताके बिना ना सोहै बत्तीस लच्छना ।।११।।
किसू हूँ पूजूँ दूजा नजर न आई ।
एके पाथर किज्जे भाव । दूजे पाथर धरिये पाव ।।
जो वो देव तो हम बी देव । कहै नामदेव हम हरि की सेव ।।१२।।

शब्द नहीं बोलती । लेखा=समान । लाद्या=कर्म किया । मूल=पूँजी । आत्म-रूप=आतमस्वरूपी ब्रह्म ।

११. अंतरा=मंदबुद्धि, द्वैतभाव । किज्जे=करते है ।

१२. भाव=भक्ति-भावना । बी=भी ।

कबीर साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत—१४५६ वि०

जन्म-स्थान—काशी

भारत का तत्कालीन शासक—सिकन्दर लोदी

माता-पिता के नाम अज्ञात; नीरू जुलाहे और उसकी पत्नी नीमा द्वारा पालित ।

गुरु—स्वामी रामानन्द

सत्यलोक-प्रयाण-संवत्—१५७५ वि०

कहते हैं कि नीरू जुलाहा जब अपनी स्त्री का गौना कराकर घर को वापस आ रहा था, तब रास्ते में उसे काशी के पास लहरतारा तालाब पर एक हाल का जन्मा बालक पड़ा दिखाई दिया। उस नवजात बालक को उठाकर वह घर ले आया, यद्यपि लोकापवाद के डर से नीमा ने पति को ऐसा करने से रोका। यही परित्यक्त बालक आगे चलकर कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कबीरदास का पालन-पोषण जिस जुलाहे के कुल में हुआ था, वह नव-धर्मान्तरित मुसलमान-कुल था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी 'कबीर' पुस्तक में गहरी गवेषणा के परिणामस्वरूप इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं।

स्वामी रामानन्दजी को कबीरदास ने अपना गुरु स्वीकार किया था—"काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताये।' सद्गुरु के प्रति कबीर ने ज्वलन्त श्रद्धाभाव अनेक साखियों व शब्दों में प्रकट किया है।

मगर मुसलमान कबीर-पन्थी मानते हैं कि कबीर ने सूफी फकीर शेख तकी से गुरु-दीक्षा ली थी। इसके प्रमाण में यह वाक्य प्रस्तुत किया जाता है—"घट-घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख।" पर इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि शेख तकी कबीर के गुरु थे। 'शेख' शब्द का प्रयोग यहाँ विशेष आदरभाव से नहीं किया गया है, बल्कि शेख तकी को उलटे उपदेश-सा दिया गया है। हाँ, यह सम्भव है कि ऊँजी के पीर शेख तकी का सत्संग कुछ कालतक उन्होंने किया हो।

ज्ञानभक्ति की सतत साधना करते हुए भी अपना घरेलू व्यवसाय नहीं छोड़ा—'हम घर सूत तनहि नित ताना।' किन्तु कपड़ा बुनते समय भी लौ उनकी राम से ही लगी रहती थी। ताने-बाने के रूपक के अनेक सुन्दर शब्द कबीर के मिलते हैं।

एक लोक-प्रचलित कथा है। कहते हैं कि एक दिन एक थान बुन-कर कबीर साहब उसे बाज़ार में बेचने के लिए घर से निकले। रास्ते में एक साधु मिल गया और उसने कहा—'बाबा, ला कुछ दे।' इन्होंने

आधा थान फाड़कर दे दिया। 'पर इतने से तो बाबा, मेरा काम नहीं चलेगा।' कबीर साहब ने दूसरा आधा थान भी उसे दे दिया, और प्रसन्न-चित्त घर लौट आये।

अन्य अनेक संत-महात्माओं की तरह कबीर साहब के विषय में भी कितनी ही अलौकिक चमत्कारपूर्ण लोक-कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जैसे—व्यापारी के भेष में भगवान् का कबीर के घर पर सन्तों के भण्डारे के लिए आटा, घी शकर आदि बैलों पर लादकर ले जाना, दिव्यदृष्टि से यह देखकर कि जगन्नाथपुरी में जगन्नाथजी का कपड़ा आग से जलना चाहता है, कबीर का दूर से ही पानी डालकर आग को बुझा देना, और जब बादशाह सिकन्दर लोदी ने पाया कि कबीर स्वयं अपने को ईश्वर कहता है, तो क्रोध में आकर उन्हें आग में फेंकवाना, पर उनका उससे साफ़ बच जाना, फिर उन्हें चिरवाने के लिए हाथी भेजवाना, पर उनके सामने से मारे डर के हाथी का भाग जाना, इत्यादि।

आयु का प्रायः सारा ही भाग मोक्षदायिनी काशीपुरी में कबीर साहब ने बिताया, पर मृत्यु के समय वे मगहर चले आये—

सकल जन्म सिवपुरी बिताया,
मरति बात मगहर उठि धाया।

प्रसिद्ध है कि काशी में प्राण छोड़ने से मुक्ति मिलती है, और मगहर में मरने से नरक। पर कबीर इस लोकप्रचलित अन्ध धारणा के क़ायल नहीं थे। उन्होंने कहा—

जो काशी तन तजै कबीरा।
तो रामहिं कौन निहोरा ?

कहते हैं कि मगहर में कबीर साहब के हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में उनके शव को लेकर झगड़ा खड़ा हो गया—हिन्दू कहते थे कि हम दाहसंस्कार करेंगे, और मुसलमान चाहते थे कि उन्हें वे दफनायेंगे। मगर जब कफन को उठाकर देखा तो वहाँ कबीर साहब का शव नहीं था, उसकी जगह कुछ फूल बिखरे पड़े थे। हिंदू-मुसलमानों ने उन फ़ूलों को आपस में आधा-आधा बाँट लिया।

कबीर साहब की जैसी बानी अलौकिक, वैसी ही उनकी लोक-प्रसिद्ध जीवन-कथा भी अलौकिक। कबीर एवं उनकी कोटि के अन्य संतों की जीवन-कथाएँ तथाकथित इतिहास की वस्तु नहीं हैं। उन्होंने कहाँ, कब, किस कुल में पंचरंग चोला धारण किया, और कहाँ और कब उसे उतारकर रख दिया इस सबकी खोज में उलझना व्यर्थ-सा लगता है। उनका जीवन-दर्शन तो उनकी रसवंती बानी के पद-पद में झलकता है। तो फिर उसीको साधना के सहारे गहरे उतरकर क्यों न खोजा जाये?

बानी-परिचय

भक्तमाल में नाभाजी ने कहा है—

'आरूढ़ दसा ह्वै जगत परमुख देखी नाहिंन भनी।'

कबीर ने जो कुछ भी कहा अपने खुद के जीवित-जागृत अनुभव से कहा, दूसरों के मुहँ की कही बात उन्होंने नहीं कही। पढ़-पढ़कर भी कोई बात नहीं कही—

'मसि कागद छूयौ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'

जो कहा अनूठा कहा, किसीका जूठा नहीं। इसीलिए जिस किसी-ने केवल शास्त्रीय पांडित्य का सहारा लेकर कबीर के सिद्धांतों की गवे-षणा और आलोचना की, वह अपने प्रयत्न में प्रायः सफल नहीं हुआ। कबीर के तत्त्वदर्शन की थाह दार्शनिक विवेचन और विश्लेषण के द्वारा नहीं, प्रत्युत सत्य की सहज साधना के द्वारा ही किया जा सकता है। कबीर की बानी में जहाँ हम ज्ञान-विज्ञान का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म निरूपण पाते हैं, वहाँ योग का गूढ़ातिगूढ़ भेद भी हमें मिलता है और भक्ति का गहरे-से-गहरा रहस्यवाद भी। वेदांत भी उसमें पूरा-पूरा उतरा है, और साथ ही सूफी सिद्धांत भी। किन्तु वहाँ उनकी तत्वदर्शन की विविध विवेच-नाएँ तथा मान्यताएँ उन्हीं सब अर्थों में नहीं मिलेंगी, जिन अर्थों में कि उन्हें हम अनेक शास्त्रों में सामान्यतया स्थिर पाते हैं, परिणामतः उनके आधार पर कबीर के स्वानुभूत तत्त्वदर्शन का विवेचन और विश्लेषण एकांगी या अधूरा रहता है।

कबीर की निपट गहरी और ऊँचे घाट की बानी के विषय में ऊपर-ऊपर से कुछ कहा जा सकता है, तो केवल इतना ही कि—

१. उसमें निरपेक्ष ज्ञान-विज्ञान की ओर पद-पद पर गूढ़ संकेत हैं। पर वह लोगों को धोखे में नहीं रखना चाहती। वह 'गुन में निरगुन की और निरगुन में गुन' की बाट बताती है–निर्गुण भी उसका अनूठा और सगुण भी उसका अनूठा। उसका प्रतिपाद्य ब्रह्म इसी प्रकार द्वैत और अद्वैत दोनों से परे और ऐसा ही उसका राम भी।

२. उस बानी में जगह-जगह पर योगमार्ग का उल्लेख आया है। पर रास्ता वह वैसा टेढ़ा-मेढ़ा और विकट नहीं है। तथापि योगी तो उसे फिसलता हुआ ही दिखाई देता है; योग उसका सहज-ही-सहज है, वैसा ही जैसा कि आत्मा का परमात्मा से मिलन। खुद ही थके-माँदे मार्गदर्शक प्रियतम के निकट कैसे पहुँचा सकते हैं?

३. भक्ति-मार्ग पर चलने की वह सलाह देती है। कहती है कि बड़े चाव से, 'जतन करो सखि पिया मिलन की।' राह रपटीली है, उस-पर गिर-गिरकर और उठ-उठकर बड़े जतन से चलना पड़ता है, और जब उस ठौर पर पहुँचते हैं, लाल की लाली में सब कुछ रँगा हुआ दीखता है। सो, 'भक्तिमार्ग' भी उसका अपना ही है।

४. बाह्याचारों की उसे तनिक भी अपेक्षा नहीं—उसकी दृष्टि में वह कुबाट है। भले ही चला करें पंडित-पांडे और शेख-मुल्ले उस रास्ते से; वह अपने साधु भाई को उसपर कभी नहीं चलने व भटकने देगी।

५. हिन्दू और मुसलमान दोनों ही, उसकी नज़र में, सही रास्ते नहीं जा रहे थे, दोनों ही अहं या खुदी को गले से लगाये उल्टी राह जा रहे थे, तो उन्हें तो उसे फटकारना ही था, उन्हें ही जो वेद और कुरान की गहराई में न पैठकर उनके पन्नों के उलटने-पलटने में ही अपनी पंडिताई और मुल्लाई को खर्च कर रहे थे।

६. सत्य की राह में जो भी आड़े आया, उसे उसने बख्शा नहीं। कर्मकांड, जात-पाँत और छूतछात को चिपटाये जिसे भी उसने देखा गुमराह पाया, और उसे झकझोर डाला। उसके प्रखर प्रवाह में तिनके की

तरह बह गये सारे बाह्याचार, सारे मिथ्याचार।

७. कुछ उलटबाँसियाँ भी उस बानी में आई हैं—मौज के अटपटे उद्गार हैं वे। 'सहज' साधना में उनका वैसे खास महत्त्व नहीं।

८. भाषा को उस बानी का 'अधिनायकत्व' स्वीकार करना पड़ा। उसके विद्युत्-वेग को देखकर वह दिङ्-मूढ़-सी हो गई। उसके एक-एक इंगित पर मोहित भाषा ने अपने रूप को काँपते हुए साधा और सँवारा।

ऐसी है कबीर की अनूठी बानी! कौन और कैसे उसका बखान करे? बेचारा पंगु साहित्य-समीक्षक कहाँ पहुँच सकेगा उस अत्यन्त ऊँचे घाट तक!

प्रस्तुत सार-संग्रह में थोड़े-से शब्द और साखियाँ ही हमने ली हैं, रमैनी नहीं; उलटबाँसी एक भी नहीं ली। बानी में ऐसे ही अंगों को लिया है, जिनमें सतगुरु और नाम की महिमा, प्रेम और विरह का निरूपण, शील और सदाचार का विवेचन तथा बाह्याचारों और मूढ़-ग्राहों का खण्डन किया गया है।

कबीर साहब

सबद

दुलहनी गावहु मंगलचार।
हम घरि आये हो राजा राम भरतार॥
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत मोर बराती।
रामदेव मोरै पाँहुने आये, मैं जोबन मैं माती॥
सरीर सरोबर वेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचारा।
रामदेव संगि भाँवरि लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमारा॥
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनियर सहस अठासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी॥१॥

सबद

१. भरतार=स्वामी। रत=अनुरक्त, पाहुनैं=अतिथि; वर। भाँवरि=फेरे, अग्नि की परिक्रमा, जो विवाह के समय वर और वधू मिलकर देते हैं। कौतिग=कौतुक। मुनियर=मुनिवर।

तनना बुनना तज्या कबीर, रांम नांम लिखि लिया सरीर ।।
जबलग भरौं नली का बेह, तबलग टूटै रांम सनेह ।।
ठाढी रोवै कबीर की माय, ए लरिका क्यूं जीवै खुदाय ।।
कहै कबीर सुनहुं री माई, पूरणहारा त्रिभुवनराई ।।२।।

अपनैं में रंगि आपनपौ जानूं,
जिहि रंगि जानि ताही कूं मानूं ।।टेक।।
अभिअंतरि मन रंग समानां, लोग कहैं कबीर बौरानां ।।
रंग न चीन्हैं मूरखि लोई, जिहि रंगि रंग रह्या सब कोई ।।
जे रंग कबहूं न आवै न जाई, कहै कबीर तिहि रह्या समाई ।।३।।

जो पैं करता बरण बिचारै,
तौ जनमत तीनि डांडि किन सारै ।।टेक।।
उतपति व्यंद कहां थैं आया, जोति धरी अरु लागी माया ।।
नहीं को ऊंचा नहीं को नींचा, जा का प्यंड ताही का सींचा ।।
जो तूं बांभन बंभनी जाया, तौ आंन बाट ह्वै काहे न आया ।।
जो तूं तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया ।।
कहै कबीर मधिम नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि रांम न होई ।।४।।

हम तौ एकएक करि जानां ।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नाहिंन पहिचानां ।।टेक।।
एकै पवन एक ही पानीं, एक जोति संसारा ।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा ।।

---

२. नली=नाल, ढरकी के अन्दर की नली, जिसपर तार लपटा रहता है। बेह=छेद। खुदाय=या खुदा। पूरणहारा=पालनेवाला।

३. आपनपौ=आत्मस्वरूप। लोई=लोग।

४. जोपै...सारै=यदि सरजनहार ने चार वर्णों के भेद का विचार किया है, तो जन्म से ही एकसमान सबके साथ वह भौतिक, दैहिक और दैविक ये तीन दण्ड क्यों लगा देता? खतना=सुन्नत, एक मुस्लिम संस्कार, जिसमें मूत्रेन्द्रिय के अगले भाग का चमड़ा काट देते हैं। भीतर=गर्भ में ही। मधिम=हलका, उतरकर।

५. एक-एक करि=अभेद-रूप से। दोजग=दोजख, नरक, दुर्गति। बाढ़ी=बढ़ई।

जैसैं बाढ़ी काष्ठ ही काटै, अगिनि न काटै कोई।
सब घटि अंतरि तूं ही व्यापक, धरैं सरूपैं सोई ॥
माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे कूं गरबानां।
नरभै भया कछू नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवानां ॥५॥

बागड़ देस लूवन का घर है,
तहां जिनि जाइ दाझन का डर है ॥टेक॥
सब जग देखौं कोई न धीरा, परस धूरि सिरि कहत अबीरा ॥
न तहां सरवर न तहां पाणी, न तहां सतगुर साधू बांणी ॥
न तहां कोकिल न तहां सूवा, ऊँचै चढ़ि चढ़ि हंसा मूवा ॥
देस मालवा गहर गंभीर, डग डग रोटी पग पग नीर ॥
कहै कबीर घरहीं मन मानां, गूंगे का गुड़ गूंगै जाना ॥६॥

हरि ठग जग कौं ठगौरी लाई,
हरि कै बियोग कैसैं जीऊं मेरी माई ॥टेक॥
कौन पुरिष को काकी नारी, अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी ॥
कौन पूत को काको बाप, कौन मरै कौन करै संताप ॥
कहै कबीर ठग सों मनमानां, गई ठगौरी ठग पहिचानां ॥७॥

काहे कूं माया दुख करि जोरी,
हाथि चूंन, गज पांच पछेवरी ॥टेक॥
नां को बंध न भाई साथी, बांधे रहे तुरंगम हाथी ॥
मैड़ी महल बावड़ी छाजा, छाड़ि गये सब भूपति राजा ॥
कहै कबीर रांम ल्यौ लाई, धरी रही माया काहू खाई ॥८॥

दिवानां=दीवाना, मस्त।

६. बागड़=मरुभूमि, यहाँ त्रिताप-संतप्त संसार से अभिप्राय है। लुवन का घर= जहाँ दिन-रात लुवें (गरम हवा) चलती हों। दाझन का=जलने का। मालवा=प्रियतम के हरेभरे लोक से अभिप्राय है।

७. ठग=मन को चुरा लेनेवाला; यहाँ प्रियतम प्रभुको प्रेमातिरेक से 'ठग' कहा है। ठगौरी=मोहिनी।

८. पछेवरी=पिछौरी, छोटा-सा दोपट्टा। वंध=बंधु। मैड़ी=मेड़, राज्य की सीमा। छाजा=छज्जा।

हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा ।।टेक।।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहैं न तेते ।।
कर गहि केस करै जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ।।
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ।।९।।

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ।।टेक।।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहुरिया ।।
किया स्यंगार मिलन कै ताईं, काहे न मिलौ राजा रांम गुसाईं ।।
अब की बेर मिलन जो पाऊं, कहै कबीर भौ-जलि नहीं आऊं ।।१०।।

राम बान अन्ययाले तीर, जाहि लागैं सो जानैं पीर ।।टेक।।
तन मन खोजौं चोट न पाऊं, औषध मूली कहां घसि लाऊं ।।
एकहीं रूप दीसै सब नारी, ना जानौं को पीयहि पियारी ।।
कहै कबीर जा मस्तिक भाग, ना जानूं काहू देइ सुहाग ।।११।।

रांम बिन तन की ताप न जाई,
जल मैं अगिनि उठी अधिकाई ।।टेक।।
तुम्ह जलनिधि मैं जलकर मीनां,
जल मैं रहौं जलहि बिन षींना ।।
तुम्ह प्यंजरा मैं सुवनां तोरा,
दरसन देहु भाग बड़ मोरा ।।
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला,
कहैं कबीर रांम रमूं अकेला ।।१२।।

राम भंणि राम भंणि राम चिंतामणि,
भाग बड़े पायो छाडै जिनि ।।टेक।।

---

९. बकसहु=माफ करो। न हेत उतारै=स्नेहभाव में कमी नहीं करती है।
१०. बहुरिया=वधू। लहुरिया=उम्र में छोटी। स्यंगार=श्रृंगार।
११. अन्ययाले=अनियारे, तेज नोकवाले। नारी=स्त्री, जीवात्मा। काहू=किसको।
१२. षीनां=क्षीण, दुर्बल। सुवनां=तोता। नौतम=बिल्कुल नया।

असंत संगति जिनि जाइ रे भुलाइ,
साध संगति मिलि हरि गुण गाइ ॥
रिदा कवल में राखि लुकाइ,
प्रेम गांठ दे ज्यूं छूटि न जाइ ॥
अठ सिधि नव निधि नांव मंझारि,
कहै कबीर भजि चरन मुरारि ॥१३॥

डगमग छाड़ि दे मन बौरा।
अब तो जरें बरें बनि आवै, लीन्हों हाथ सिंधौरा ॥टेक॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाडौ।
सूरा कहा मरन थैं डरपै, सती न संचैं भांडौ।
लोक वेद कुल की मरजादा, इहै गलै में पासी।
आधा बलिकरि पीछा फिरिहै, ह्वै है जगमें हासी ॥
यहु संसार सकल है मैला, राम कहैं ते सूचा।
कहै कबीर नाव नहीं छाड़ौं, गिरत परत चढ़ि ऊंचा ॥१४॥

जौपैं पिय के मनि नहीं भायें, तौ का परोसनि कैं हुलरायें ॥
का चूरा पाइल झमकांयैं, कहा भयो बिछवा ठमकांयैं ॥
का काजल स्यंदूर के दीयें, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयें ॥
अंजन मंजन करै ठगौरी, का पचि मरै निगौड़ी बौरी ॥

---

१३. भंणि=कह, जप। रिदा कवल=हृदय-कमल। राखि लुकाइ=छिपाकर रख। ज्यूं=जिससे कि। नांव मंझारि=रामनाम में ही।

१४. डगमग=दुविधा। सिंधौरा=सिंदोरा, सौभाग्यसूचक सिंदूर रखने की डिबिया, जिसे लेकर सती अपने पति के शव के साथ जाती थी। न संचै भांडौ=शरीर को रखने का लोभ नहीं करती हैं। पासी=फाँसी। सूचा=पवित्र। चढ़ि ऊँचा=ऊँचे ब्रह्मपद पर पहुँच जाओ।

१५- तौ का···हुलराये=तब पड़ोसिन के पुत्र को दुलार-प्यार करने से क्या होता है? चूरा=चूड़ा, कड़ा। पाइल=पाजेब। झमकायैं=बजाने और चमकाने से। बिछुवा=पैर की अंगुलियों में पहनने का एक गहना। ठगौरी=मोहिनी।

जौपैं पतिव्रता है नारी, कैसैं ही रहौ सो पियहि पियारी।
तन मन जोवन सोंपि सरीरा, ताहि सुहागनि कहै कबीरा ॥१५॥

सब दुनी सयांनीं मैं बौरा, हम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ॥टेक॥
मैं नहीं बौरा राम कियो बौरा, सतगुरु जारि गयौ भ्रम मोरा।
बिद्या न पढ़ूं बाद नहीं जानूं, हरि गुन कहत सुनत बौरानूं।
काम क्रोध दोऊ भये बिकारा, आपहिं आप जरै संसारा।
मींठो कहा जाहि जो भावै, दास कबीर राम गुन गावै ॥१६॥

कहा करौं कैसै तिरौं भौजल अति भारी।
तुम्ह सरणागति केसवा, राखि राखि मुरारी ॥टेक॥
घर तजि बनखंडि जाइये, खनि खइये कंदा।
विषै विकार न छूटई, ऐसा मन गंदा।
विष विषिया की बासना तजौं तजी नहीं जाई।
अनेक जतन करि सुरझिहैं, फुनि फुनि उरझाई॥
जीव अछित जोवन गया कछू कीया न नीका।
यहु हीरा निरमोलिका कौड़ी पर बीका।
कहैं कबीर सुनि केसवा, तूं सकल-बियापी।
तुम्ह समान दाता नहीं, हम से नहीं पापी ॥१७॥

तेरा जन एक आध है कोई।
काम-क्रोध अरु लोभ-विवर्जित हरिपद चीन्हैं सोई ॥टेक॥
राजस तांमस सातिग तीन्यूं ये सब तेरी माया।
चौथे पद कौं जे जन चीन्हैं तिनहि परमपद पाया।
असतुति निंद्या आसा छांडै तजै मांन अभिमानां।
लोहा कंचन सम करि देखै ते मूरति भगवाना॥

निगौड़ी=जिसके आगे-पीछे कोई न हो, अभागिनी।

१६- बौरा=बावला, पागल। औरा=और कोई। बौरानूं=पागल हो गया।

१७. खनि=खोदकर। विष विषिया=इन्द्रियों के विषैले भोग। फुनि फुनि=पुनः पुनः, फिर फिर।

१८. विवर्जित=रहित। सातिग=सात्विक। चौथा पद=गुणातीत; समाधि-अवस्था।

च्यतै तो माधो च्यंतामणि हरिपद रमै उदासा।
त्रिस्ना अरु अभिमान रहत है, कहै कबीर सो दासा ॥१८॥

तूं माया रघुनाथ की खेलण चली अहेड़ै।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छौड्या नेड़ै ॥टेक॥
मुनियर पीर डिगम्बर मारे, जतन करंता जोगी।
जंगल महिं के जंगम मारे, तूं रे फिरै बलिवंती॥

बेद पढंता बांम्हण मारा, सेवा करतां स्वांमी।
अरथ करंता मिसर पछाड्या, तूं रे फिरै मैंमंती।
साषित कै तूं हरता करता, हरि-भगतन कै चेरी।
दास कबीर रांम कै सरनैं, ज्यूं लागी त्यूं तोरी ॥१९॥

जग सूं प्रीति न कीजिये, समझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइये, को निकसै सूरा॥
एक कनक अरु कामिनी जग मैं दोइ फंदा।
इनपै जो न बंधावई ताका मैं बंदा॥
देह धरें इन मांहिं बास कहु कैसैं छूटे।
सीव भये ते ऊबरे, जीवत ते लूटे।
एक एक सूं मिलि रह्या तिनहीं सचु पाया।
प्रेम मगन लैलीन मन सो बहुरि न आया॥
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया।
संसा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया ॥२०॥

उदासा=अनासक्त।

१९. अहेड़ै=अहेर; शिकार। चिकारा=छिकरा; हिरन की जाति का एक फुर्तीला जानवर। नेड़ै=पास। डिगम्वर=दिगम्बर; नग्न साधु। जंगम=चलता-फिरता साधु। मिसर=कथावाचक से अभिप्राय है। मैंमंती=मतवाली। साषित=वाममार्गी; हरि-विमुख। ज्यूं लागी त्यूं तोरी=आसक्ति को तत्काल तोड़ दिया।

२०. सीव भये ते ऊवरे=जो शव अर्थात् जीवन-मृतक हो गये, वे ही बचे। सचु-पाया=शान्ति पाई।

जाइ रे दिन ही दिन देहा। करिलै बौरी रांम सनेहा ॥टेक॥
बालापन गयो, जोवन जासी। जुरा मरण भौ संकट आसी ॥
पलटे केस नैन जल छाया। मूरिख चेति बुढ़ापा आया ॥
रांम कहत लज्या क्यूं कीजै। पल पल आउ घटै तन छीजै ॥
लज्या कहै हूं जम की दासी। एकै हाथि मुदिगर दूजैं हाथि पासी ॥
कहै कबीर तिनहूं सब हार्‌या। रांम नांम जिनि मनहु बिसार्‌या ॥२१॥

कहु पांडे सुचि कवन ठांव, जिहि घरि भोजन बैठि खाव ॥टेक॥
मात जूठी पिता पुनि जूठा, जूठे फल चित लागे।
जूठा आवन जूठा जानां, चेतहु क्यूं न अभागे ॥
अंन जूठा पानी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।
जूठी कड़छी अंन परोस्या, जूठे जूठा खाया ॥
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठा सभी पसारा।
कहै कबीर तेइ जन सूचे, जे हरि भज तजहिं बिकारा ॥२२॥

अलह रांम जीऊं तेरे नाईं, बंदे ऊपरि मिहर करौ मेरे साईं ॥टेक॥
क्या ले माटी भुंइ सूं मारैं, क्या जल देह न्हवायें।
जोर करै मसकीन सतावै, गुन हीं रहे छिपायें ॥
क्या तु जू जप मंजन कीयें, क्या मसीति खिर नांयें।
रोजा करैं निमाज गुजारैं, क्या हज काबै जायें ॥
बांम्हण ग्यारसि करै चौबीसों, काजी मुहरम जान।
ग्यारह मास जुदे क्यूं कीये, एकहि मांहि समांन ॥
जौ रे खुदाइ मसीति बसत है और मुलिक किस केरा।
तीरथ मूरति रांम-निवासा, दुहु मैं किनहूं न हेरा ॥

---

२१. जासी=जायेगा। जुरा=जरा, बुढ़ापा। भौ=भय। आसी=आयेगा। पलटे केस=काले बाल सफेद हो गये। आउ=आयु। छीजे=क्षीण होता जाता है।
२२. आंवन=जन्म। जानां=मरण। कड़छी=चम्मच। पसारा=सृष्टि। सूचे=पवित्र।
२३. नांईं=नाम पर। जोर=जुल्म। मसकीन=गरीब, बेचारा। तु जू=तो जो। मसीति=मसजिद। ग्यारसि=एकादशी। मुहरम=मोहर्रम। ग्यारह…समान=यदि एक रमजान का महीना ही धर्म का महीना है, तो फिर अलग से ग्यारह

पूरब दिसा हरी का बासा, पच्छिम अलह मुकामां।
दिल ही खोजि दिलै दिल भीतरि, इहां रांम रहिमांनां॥
जेती औरति मरदां कहिये, सब मैं रूप तुम्हारा।
कबीर पंगुड़ा अलह रांम का, हरि गुर पीर हमारा॥२३॥

तुम्ह घरि जाहु हमारी बहनां, बिष लागैं तुम्हारे नैनां॥
अंजन छाड़ि निरंजन राते, नां किसहीं का दैनां।
बलि जाउं ताकी जिनि तुम्ह पठई, एक माइ एक बहनां॥
राती खांडी पेखि कबीरा, देखि हमारा सिंगारौ।
सरग लोक थैं हम चलि आई, करन कबीर भरतारौ॥
सर्ग लोक मैं क्या दुख पड़िया, तुम आई कलि मांहीं।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहूं पतीज्यौ नांहीं॥
तहां जाहु जहाँ पाटपटंबर, अगर चन्दन घसि लीनां।
आइ हमारैं कहा करौगी, हम तौ जाति कमीनां॥
जिनि हम साजे साज्य निवाजे, बांधे काचै धागै।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, पांणी आगि न लागै॥
साहिब मेरा लेखा मांगै, लेखा क्यूं करि दीजै।
जे तुम जतन करौ बहुतेरा, तौ पाहंण नीर न भीजै॥
जाकी मैं मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू।
टुक एक तुम्हारैं हाथ लगाऊं, तौ राजा रांम रिसालू॥

महीने क्यों रचे, फिर तो एक ही मास होना चाहिए था! हेरा=देखा, समझा। पंगुड़ा=मूर्ख शिष्य।

२४. बहनां=बहिन; मोहिनी माया से अभिप्राय है। अंजन=नाशवान् संसार। निरंजन=अक्षय पुरुष; माया से निर्लिप्त ईश्वर। एक माई एक बहनां=तुम मां और बहिन के बराबर हो। राती खांडी=रक्त से रंगी तलवार, घातक मोहिनी डालनेवाली। पतीज्यौ नाहीं=विश्वास नहीं करती हो। जिनि···धागै=जिसने हमें रचा, और सब कुछ देकर हमें उपकृत किया, उसीके प्रेम के कच्चे धागे से हम बँधे हुए हैं; हम उसी मालिक के अनन्य सेवक हैं। पाहंण नीर न भीजै=पत्थर के अंदर पानी नहीं पैठ सकता; मोहिनी माया की दाल गलने की नहीं।

जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरौं उदासी ।
असिपासि तुम्ह फिरि फिरि वैसौ, एक माउ एक मासी ।।२४।।

रांम राइ भई बिगूचनि भारी ।
भले इन ग्यांनियन थैं संसारी ।।टेक।।
इक तप तीरथ औगांहैं, इक मांनि महातम चाहैं ।।
इक मैं-मेरी मैं बीझैं, इक अहमेव में रीझैं ।।
इक कथि-कथि भरम लगावैं, संमिता सी बस्त न पावैं ।।
कहै कबीर का कीजै, हरि सूझै सो अंजन दीजै ।।२५।।

तुम्ह बिन रांम कवन सौं कहिये, लागी चोट बहुत दुख सहिये ।।
बेध्यौ जीव विरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै ।।
को जांनैं मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ।।
तुम्ह से बैद न हम से रोगी, उपजी बिथा कैसे जीवै वियोगी ।।
निस बासुरि मोहि चितवन जाई, अजहूँ न आइ मिले रांमराई ।।
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, विन दरसन क्यूं जीवहि मुरारी ।।२६।।

वै दिन कब आवैंगे माइ ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ ।।टेक।।
हौं जांनूं जे हिलमिलि खेलूं, तन मन प्रांन समाइ ।
या कामनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांमराइ ।।
मांहिं उदासी माधौ चाहै, चितवत रैन बिहाइ ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाइ ।।
यहु अरदास दास की सुनिये, तन की तपति बुझाइ ।
कहै कबोर मिलै जो सोई, मिलि करि मंगल गाइ ।।२७।।

उदासी=विरक्त । रिसालू=नाराज होंगे । वैसौ=बैठती हो । एक माउ एक मासी=तुम माँ और मौसी के बराबर हो ।

२५. बिगूचनि=अड़चन, असमंजस । संसारी=दुनियादार । औगांहैं=अवगाहन अर्थात् स्नान करते हैं । बीझैं=लिप्त होते हैं, फँसते हैं ।

२६. सालै=कसकता है, चुभता है । बहि गयौ=बेध गया, आरपार हो गया । बासुरी=वासर, दिन । चितवत जाई=राह देखने जाता है ।

२७. मांहि=अंतर में । स्यंघ=सिंह । अरदास=अर्जदास्त, विनती ।

बाल्हा आव हमारे ग्रेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ।।टेक।।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अंदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तबलग कैसा नेह रे ।।
आंन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बिन धरै न धीर रे।
ज्यूं कामीं कौं काम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे ।।
हैं कोई ऐसा पर-उपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखें जीव जाइ रे ।।२८।।

राग भैरूँ

भलैं नींदौ भलैं नींदौ, भलैं नींदौ लोग,
तन मन रांम पियारे जोग ।।टेक।।
मैं बौरी मेरे रांम भरतार, ता कारनि रचि करौं स्यंगार ।।
जैसैं धुबिया रज मल धोवै, हरत परत सब निंदक खोवै ।।
न्यंदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप ।।
न्यंदक मेरे प्रांन अधार, बिन बेगारि चलावै भार ।।
कहै कबीर न्यंदक बलिहारी, आप रहै, जन पार उतारी ।।२९।।

क्या ह्वै तेरे न्हांई धोई, आतम रांम न चीन्हां सोई ।।टेक।।
क्या घट ऊपरि मंजन कीयैं, भीतरि मैल अपारा।
रांम नांम बिन नरक न छूटै, जे धोवै सौ बारा ।।
का नट भेष भगवां बस्तर, भसम लगावै लोई।
ज्यूं दादुर सुरसुरी जल भीतरि हरि बिन मुकति न होई ।।
परिहरि काम रांम कहि बौरै, सुनि सिख बन्धू मोरी।
हरि कौ नांव अभै-पद-दाता कहै, कबीरा कोरी ।।३०।।

---

२८. बाल्हा=प्यारे। अंदेह=अंदेशा, संदेह। आंन=अन्न, भोजन।
२९. भलै नींदौ=भले ही निंदा करें। ता कारनि=उसी स्वामी को रिझाने के लिए। हरत-परत= मैल के दाग व शिकन याने कपट। आप रहै, जन पार उतारी= पर-निंदा के पाप से खुद तो संसार-सागर में पड़ा रहता है, पर जिन हरिभक्तों की वह निंदा करता है उन्हें सहिष्णु बना-बनाकर पार उतार देता है।
३०. भगवां बस्तर=संन्यासी का गेरुवा कपड़ा। सुरसुरी=सुरसरि, गंगा। दादुर=मेंढ़क। काम=विषय-वासना। कोरी=जुलाहा।

आसण पवन कियैं दिढ रहु रे, मन का मैल छाड़िदे बौरे ॥टेक॥
क्या सींगी मुद्रा चमकायैं, क्या भिभूति सब अंगि लगायैं ॥
सो हिंदू सो मुसलमांन, जिसका दुरस रहै ईमांन ॥
सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म ग्यिांन, काजी सो जानैं रहिमान ॥
कहै कबीर कछू आन न कीजै, रांम नाम जपि लाहा लीजै ॥३१॥

काहे कूं भीति बनाऊं टाटी, काजानूं कहां परिहै माटी ॥टेक॥
काहे कूं मंदिर महल चिणांऊं, मूवां पीछै घड़ी एक रहण न पाऊं ।
काहे कूं छाऊं ऊंच उसेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा ॥
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुंइ लीजै ॥३२॥

राग बिलावल

रांम भजै सो जानिये, जाकै आतुर नांहीं ।
सत संतोष लीयै रहै, धीरज मन मांहीं ॥टेक॥
जन कौं काम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णां न जरावै ।
प्रफुलित आनन्द मैं रहै, गोव्यंद गुण गावै ॥
जन कौं परनिंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषै ।
काल कलपनां मेटि करि, चरनूं चित राषै ॥
जन समद्रिष्टि सीतल सदा, दुबिधा नहीं आनैं ।
कहै कबीर ता दास सूं, मेरा मन मानैं ॥३३॥

नहीं छाडौं बाबा रांम नाम,
मोहिं और पढ़न सूं कौन काम ॥टेक॥
प्रहलाद पधारे पढ़न साल, संग सखा लीयें बहुत बाल ॥
मोहि कहा पढ़ावै आल जाल, मेरी पाटी मैं लिखि दे श्रीगोपाल ॥

३१. सींगी=हरिन के सींग का बना बाजा, जिसे मुंह से बजाते हैं ।
३२. टाटी=छप्पर । माटी=शरीर से अभिप्राय है । साढ़े···मेरा=मेरा असली घर याने कब्र या मरघट तो साढ़े तीन हाथ ही लम्बा है ।
३३. आतुर=अधीरता । सत=सत्य । जनकौं=हरिभक्त को । दुविधा=द्वैतभाव ।
३४. साल=पाठशाला । आल जाल=झंझट-बखेड़ा । संना मुरकां=शंडा और मर्क, शुक्राचार्य के पुत्र जो असुरों के पुरोहित थे । वांनि=आदत । गिलारि=

तब संना सुरकां कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बंधायौ बेगि ग्राइ ॥
तूं रांम कहन कौ छाड़ि बांनि, वेगि छुड़ाऊं मेरौ कह्यौ मांनि ॥
मोहि कहा डरावै बारबार, जिनि जलथल गिरि कौ कियो प्रहार ॥
बांधि मारि भावै देह जारि, जे हूं रांम छाड़ौं तौ मेरे गुरहि गारि ॥
तब काढ़ि खड़ग कोप्यौ रिसाइ, तौहि राखनहारौ मोहि बताइ ॥
खंभा मैं तैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्‌यौं नख बेदारि ॥
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रगट कियौ भगति भेव ॥
कहे कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद उबार्‌यौ अनेक बार ॥३४॥

राग सारंग

धंनि सो घरी महूरत्य दिना।
जब ग्रिह आये हरि के जना ॥टेक॥
दरसन देखत यहु फल भया, नैंना पटल दूरि ह्वै गया ॥
सब्द सुनत संसा सब छूटा, स्रवन कपाट बजर था तूटा ॥
परसत घाट फेरि करि घड़्या, काया कर्म सकल झड़ि पड़्या ॥
कहै कबीर संत भल भाया, सकल-सिरोमनि घट मैं पाया ॥३५॥

लोका मति के भोरा रे।
जौ कासी तन तजे कबीरा, तौ रांमहिं कहा निहोरा रे ॥
तब हम वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा।
ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, यूं ढुरि मिल्या जुलाहा ॥
रांम-भगति परि जाकौ हित चित, ताकौ अचरज काहा।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीते जाइ जुलाहा ॥
कहै कबीर सुनहु रे सन्तो, भरमि परै जिनि कोई।
जस कासी तस मगहर ऊसर, रिदै रांम सति होई ॥३६॥

सिंह से आशय है। नख बिदारि=नखों से चीरकर। भेव=भेद, रहस्य

३५. महूरत्य=मुहूर्त। पटल=अज्ञान का परदा। बजर=वज्र। परसत घड्या=हाथ लगा कर मिट्टी के शरीर को कंचन का बना दिया।

३६. निहोरा=एहसान। लाहा=लाभ। पैसि=पैठकर, मिलकर। मगहर=एक स्थान, जो बस्ती जिले में है; मगहर को मगध का भी अपभ्रंश माना जाता है। ऊसर=यहाँ निष्फल से अभिप्राय है।

अब मोहि जलत रांम जल पाइया।
रांम उदक तन जलत बुझाइया॥
मन मारन कारन बन जाइयै।
सो जल बिन भगवंत न पाइयै॥
जेहि पावक सुर नर हैं जारे।
रांम उदक जन जलत उबारे॥
भवसागर सुखसागर मांहीं।
पीव रहे जल निखुटत नांहीं॥
कहि कबीर भजु सारिंगपानी।
रांम उदक मेरी तिषा बुझानी॥३७॥

अवर मुये क्या सोग करीजै। तौ कीजै जो आपन जीजै॥
मैं न मरौं मरिबो संसारा। अब मोहि मिल्यो है जियावनहारा॥
या देही परमल महकंदा। ता सुख बिसरे परमानंदा॥
कुअटा एकु पंच पनिहारी। टूटी लाजु भरै मतिहारी॥
कहि कबीर इकु बुद्धि बिचारी। ना ऊ कुअटा ना पनिहारी॥३८॥

क्या जप क्या तप क्या व्रत पूजा। जाकै रिदै भाव है दूजा॥
रे जन, मन माधव स्यों लाइयै। चतुराई न चतुर्भुज पाइयै॥
परिहरि लोभ अरु लोकाचार। परिहरि काम क्रोध अहंकार॥
कर्म करत बद्धे अहमेव। मिल पाथर की करहीं सेव॥
कहि कबीर भगति कर पाया। भोले भाइ मिले रघुराया॥३९॥

गंगा के सँग सलिता बिगरी। सो सलिता गंगा होइ निबरी॥
बिगर्‌यो कबीरा राम दुहाई। साचु भयो अन कतहिं न जाई॥

---

३७. उदक=जल। मन मारन=मन को जीतने। निखुटत नाहीं=घटता नहीं है। सारिंगपानी=धनुर्धारी राम। तिषा=प्यास।

३८. अवर मुये=और के मरने पर। सोक=शोक। जीजै=जीवें। परमल=सुगन्ध। महकन्दा=महकती है। कुअटा=कुआँ, मन से आशय है। पंच पनिहारी= पाँचों इन्द्रियों से अभिप्राय है। लाजु=रस्सी।

३९. रिदै=हृदय। चतुराई=पांडित्य। बद्धे=बंधन में पड़े। भाइ=भाव।

४०. सलिता=सरिता, नदी। बिगरी=संगति में अपना रूप खो दिया। निबरी=

चन्दन कै संगि तरवर बिगर्‌यो। सो तरवर चन्दन ह्वै निबर्‌यो।
पारस के सँग ताँबा बिगर्‌यो। सो ताँबा कंचन ह्वै निबर्‌यो ॥४०॥

पाती तोरै मालिनी, पाती पाती जीउ।
जिसु पाहन को पाती तोरै, सो पाहनु निरजीउ ॥
भूली मालिनी है एउ। सतिगुरु जागता है देउ ॥
ब्रह्म पाती बिस्नु डारी फूल संकर देव।
तीन देव प्रतख्य तोरहिं करहि किसकी सेव ॥
पषान गढिकै मूरति कीनी देकै छाती पाउ।
जे एइ मूरति साची है तो गढ़णहारे को खाउ ॥
भातु पहिति और लापसी करकरा कासारु।
भोगनुहारे भोगिया इसु मूरति के मुख छारु ॥
मालिन भूली जग भुलाना, हम भुलाने नाहिं।
कहि कबीर हम रांम राखे कृपाकरि हरिराइ ॥४१॥

स्वर्गबास न बाछियै, डरियै न नरक-निबासु।
होना है सो होइहै, मनहिं न कीजै आसु ॥
रमय्या गुन गाइयै, जाते पाइयै परमनिधानु।
क्या जप क्या तप संयमो क्या ब्रत क्या इस्नानु ॥
जब लग जुक्ति न जानियै भाव भक्ति भगवान।
सम्पै देखि न हर्षियै बिपति देखि न रोइ ॥
ज्यों सम्पै त्यों बिपत है बिधि ने रच्या सो होइ ॥
कहि कबीर अब जानिया संतन रिदै मंझारि।
सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि ॥४२॥

परिणत हो गई। अन कतहि=कहीं दूसरी जगह।

४१. पाहन=पत्थर की मूर्ति। जागता=सजीव। देउ=देव। प्रतख्य=प्रत्यक्ष। सेव=सेवा-पूजा। देकै=रखकर। गढ़णहारा=गढ़नेवाला, शिल्पी। पहिति=दाल। करकरा=खरा, अच्छा भुना हुआ। कासारु=कसार, एक प्रकार का पकवान। भोगनुहारे भोगिया=पुजारी खा गये।

४२. बाछियै=इच्छा करे। सम्पै=सम्पत्ति, खुशहाली। रिदै=हृदय।

संतन जात न पूछो निरगुनियाँ ।
साध ब्राह्मन, साध छत्तरी, साधै जाती बनियाँ ।
साधन माँ छत्तीस कौम है, टेढ़ी तोर पुछनियाँ ।
साधै नाऊ, साधै धोबी, साध जाति है बरियाँ ।
साधन माँ रैदास संत है सुपच रिषी सो भँगियाँ ।
हिन्दु-तुर्क दुइ दीन बने हैं, कछू नहीं पहचनियाँ ॥४३॥

निसदिन खेलत रही सखियन सँग, मोहि बड़ा डर लागै ।
मोरे साहब की ऊँची अटरिया, चढ़त में जियरा काँपै ॥
जो सुख चहै तो लज्जा त्यागै, पिया सूं हिलमिल लागै ।
घूंघट खोल अंगभर भेंटे, नैन आरती साजै ॥
कहै कबीर सुनो सखि मोरी, प्रेम होय सो जानै ।
निज प्रीतम की आस नहीं है, नाहक काजर पारै ॥४४॥

घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अन्ध है ।
लखत लखत लखि परै, कटै जम-फंद है ॥
कहन-सुनन कछु नाहिं, नहीं कछु करन है ।
जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है ॥
जोगी पड़े बियोग कहैं घर दूर है ।
पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है ॥
बाह्मन दिच्छा देत सो घर घर घालिहै ।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै ॥
ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है ।
नहीं जोग नहिं जाप, पुन्न नहिं पाप है ॥४५॥

---

४३. पुछनियाँ=पूछना, प्रश्न । बरियाँ=बारी, एक जाति जो पत्तो-दोने बनाने और सेवा का काम करती है । सुपच रिषि=सुदर्शन नामक श्वपच ऋषि से अभिप्राय है, जिनका उल्लेख महाभारत में आया है ।

४४. अंग=अंक, छाती । काजर पारै=दीपक के धुवें की कालिख को किसी बरतनमें जमाये; व्यर्थ सोहाग दिखाये ।

४५. दीपक=आत्मज्योति से आशय है । पाहन पालिहै=पत्थर की मूर्तियों को पूजता है । सलोना=सुन्दर ।

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गाँठ गँठियायो, बारबार वाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले ।।
सुरत कलारी भइ मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल तलैया क्यों डोले ।।
तेरा साहब है घर माहीं, बाहर नैना क्यों खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गये तिल-ओले ।।४६।।

जाग पियारी, अब का सोवै। रैन गई दिन काहेको खोवै ।।
जिन जागा तिन मानिक पाया। तैं बौरी सब सोय गँवाया ।।
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी। कबहुँ न पिय की सेज सँवारी ।।
तैं बौरी बौरापन कीन्हा। भर-जोवन पिय अपन न चीन्हा ।।
जाग देख पिय सेज न तेरे। तोहि छाँड़ि उठि गये सवेरे ।।
कहै कबीर सोइ धन जागै। सब्द-बान उर-अंतर लागै ।।४७।।

सन्तो सहज समाधि भली।
साँई तें मिलन भयो जा दिन तें, सुरत न अन्त चली ।।
आँख न मूँदूँ कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन मैं हँस-हँस देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ ।।
कहूँ सो नाम, सुणूँ सो सुमिरन, जो कुछ करूँ सो पूजा।
गिरह-उद्यान एक सम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा ।।
जहँ जहँ जाऊँ सोई परिकरमा, जो कछु करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत, पूजूँ और न देवा ।।

---

४६. सुरत कलारी=ध्यान ; लौरूपी कलवारी। तिल-ओले=आँख के तिल की ओट में।

४७. मानिक=लाल रंग का एक रत्न; यहाँ प्रियतम से आशय है। धन=स्त्री।

४८. अन्त=अनत, अन्यत्र। रूँधूँ= बन्द करता हूँ। कहूँ सो नाम=जो कुछ बोलता हूँ, वही नाम-जप हो जाता है। गिरह-उद्यान=घर और वन। भाव दूजा= द्वैतभाव। परिकरमा=परिक्रमा, प्रदक्षिणा। जब सोऊँ···दण्डवत्=पैर फैलाकर सो जाना ही मेरा दण्डवत् प्रणाम है। तारी=समाधि, ध्यान।

सब्द निरन्तर मनुआ राता मलिन वचन को त्यागी।
ऊठत-बैठत कबहुँ न बिसरै, ऐसी तारी लागी॥
कहै कबीर यह उन्मुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
सुख-दुख के इक परे परमसुख तेहि में रहा समाई॥४८॥

जब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई।
किरिया-करम-अचार मैं छाँडा, छाँडा तीरथ का न्हाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना।
ना मैं जानूँ सेवा-बंदगी, ना मैं घंट बजाई।
ना मैं सूरत धरि सिंघासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई।
ना हरि रीझै जप तप कीन्हे, ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोती छाँड़े, ना पाँचों के मारे।
दाया राखि धरम को पालै, जगसूँ रहै उदासी।
अपना-सा जिव सबका जानै, ताहि मिलै अविनासी।
सहै कुसब्द बाद को त्यागै, छाँडै गर्व-गुमाना।
सत्तनाम ताही को मिलिहै, कहै कबीर दिवांना॥४९॥

मन न रँगाये रँगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मन्दिर में बैठे, ब्रह्म छाड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले, काम जलाय जोगी होइ गैले हिजरा॥
मथवा मुँडाय जोगी कपरा रँगेले, गीता बाँचके होइ गैले लबरा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, जम-दरवजवा बाँधल जैबे पकरा॥५०॥

सुख-दुख=सान्सारिक सुख-दुःख। परमसुख=ब्रह्मसुख।

४९. जुगत=योग-युक्ति। अचार=आचार। धोती छाँड़े=धोती उतारकर लँगोटी लगाने से। पाँचों के मारे=पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में करने से। उदासी=अनासक्त।

५०. धुनिया रमौले=धूनी रमा ली, सामने आग जलाकर शरीर को तपाने वा तप करने बैठ गये। लबरा=झूठा, बकवादी।

जो खोदाय मसजीद बसतु है, और मुलुक केहिकेरा।
तीरथ-मूरत रांम-निवासी, बाहर केहिका डेरा।
पूरब दिसा हरी को बासा, पच्छिम अलह मुकांमा।
दिल में खोज दिलहिमें खोजौ इहैं करीमा रांमा।
जेते औरत-मरद उपानी, सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगड़ा अलह-राम का, सो गुरु पीर हमारा ॥५१॥

नैहर से जियरा फाट रे।
नैहर-नगरी जिसकी बिगड़ी, उसका क्या घर-बाट रे।
तनिक जियरवा मोर न लागै, तनमन बहुत उचाट रे।
या नगरी में लख दरवाजा, बीच समुन्दर घाट रे।
कैसेकै पार उतरिहैं सजनी, अगम पंथ का पाट रे।
अजब तरह का बना तँबूरा, तार लगे मन सात रे।
खूंटी टूटी तार बिलगाना, कोउ न पूछत बात रे।
हँस हँस पूछै मातु पितासों, भोरें सासुर जाब रे।
जो चाहैं सो वोही करिहैं, पत वाही के हाथ रे।
न्हाय-धोय दुलिहन होय बैठी, जोहै पिय की बाट रे।
तनिक घुंघटवा दिखाव सखी री, आज सोहाग की रात रे॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, पिया-मिलन की आस रे।
भोरे होत बंदे याद करोगे, नींद न आवे खाट रे॥५२॥

पांडे, बूझि पियहु तुम पानी।
जिहि मटिया के घरमहँ बैठे, तामहँ सिस्टि समानी।
छपन कोटि यादव जहँ सीजे, मुनिजन सहज अठासी॥

---

५१. डेरा=निवासा। करीमा=कृपालु, परमेश्वर। उपानी=उत्पन्न हुए। पोंगड़ा=मूर्ख, चेला।

५२. नैहर=मायका; इस लोक से एवं शरीर से अभिप्राय है। पाट=चढ़ाव, फैलाव। खूँटी···बिलगाना=देह से प्राण अलग हो जाने पर। भोरें=सवेरे ही। सासुर=ससुराल, प्रियतम का घर। पत=लाज।

५३. सिस्टि=सृष्टि। सीजे=गल गये, खप गये। पैग पैग=पग-पग पर। बूझि=जाति

पैग पैग पैगंबर गाड़े, सो सब सरि भौ माटी।
तेहि मटिया के भाँड़े पाँड़े, बूझि पियहु तुम पानी ॥
कच्छ-मच्छ-घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया।
नदिया नीर नरक बहि आवै. पसु-मानुस सब सरिया ॥
हाड़ झरी-झरि गूद गरी-गरि, दूध कहाँतें आया।
सो लै पाँडे जेंवन बैठे, मटियहिं छूति लगाया ॥
बेद-किताब छाँडि देउ पाँडे, ई सब मन के भरमा।
कहहिं कबीर सुनहु हो पाँडे, ई तुम्हरे हैं करमा ॥५३॥

दुलहिन, अँगिया काहे न धोवाई।
बालपने की मैली अँगिया, बिषय-दाग परि जाई।
बिन धोये पिय रीझत नाहीं, सेज ते देत गिराई ॥
सुमिरन ध्यान कै साबुन करिले, सत्तनाम-दरियाई।
दुविधा के भेद खोल बहुरिया, मन कै मैल धोवाई।
चेत करो तीनों पन बीते, अब तो गवन नगिचाई।
पालनहार द्वार हैं ठाड़े, अब काहे पछिताई।
कहत कबीर सुनो री बहुरिया, चित अंजन दे आई ॥५४॥

वै क्यूं कासी तजैं मुरारी। तेरी सेवा-चोर भये बनवारी ॥
जोगी जती तपी संन्यासी । मठ-देवल बसि परसैं कासी ॥
तीन बार जे नितप्रति न्हावैं। काया भीतरि खबरि न पावैं ॥
देवल देवल फेरी देहीं । नाम निरंजन कबहुँ न लेहीं ॥
तरन-बिरद कासी कों न दैहूँ। कहै कबीर मल नरकहिं जैहूँ ॥५५॥

पूछकर। बियाने=पैदा हुए। नरक=मल-मूत्र। सरिया=सड़ गये। झरि-झरि=झर-झरकर। गूद=गूदा, हड्डी के भीतर का भेजा। गरी-गरि=-गलगलकर।

५४. अँगिया=चोली; यहाँ मन की मलिन वृत्ति या वासना से आशय है। गवन नगिचाई=गौना अर्थात् मरण समीप आ गया है। बहुरिया=बहू, वधू।

५५. बनवारी=बनमाली; विष्णु का एक नाम। काया···पावैं=पता नहीं कि शरीर के भीतर कितना मल-मूत्र भरा है। फेरी=परिक्रमा। तरन-बिरद=संसार से मुक्त होने का यश।

तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, तलफ-तलफके भोर किया॥
तन-मन मोर रहँट-अस डोलै, सून सेज पर जनम छिया।
नैन थकितभ ये थ पंन सूझै, साँई बेदरदी सुध हू न लिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरो पीर दुख जोर किया॥५६॥

करो जतन सखी साँई मिलन की।
गुड़िया गुड़वा सूप सुपलिया, तजिदे बुधि लरिकैयाँ खेलन की॥
देवता पित्तर भुइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की॥
ऊँचा महल अजब रँग बंगला, साईं की सेज वहाँ लागी फूलन की॥
तन मन धन सब अर्पन कर वहाँ, सुरत सम्हार परूँ पइयाँ सजन की॥
कहै कबीर निर्भय होय हंसा, कुंजी बतादूयों ताला खुलन की॥५७॥

पीले प्याला हो मतवाला, प्याला नाम-अमीरस का रे।
बालपना सब खेलि गँवाया, तरुन भया नारी-बस का रे।
बिरध भया कफ बायने घेरा, खाट पड़ा न जाय खसका रे।
नाभिकँवल बिच है कस्तूरी, जैसे मिरग फिरे बन का रे।
बिन सतगुरु इतना दुख पाया, वैद मिला नहिं इस तनका रे।
मात-पिता बन्धू सुत तिरिया, संग नहि कोई जाय सका रे।
जबलग जीवै गुरु गुन लेगा, धन-जोबन है दिन दस का रे।
चौरासी जो उबरा चाहे, छोड़ कामिनी का चसका रे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, नखसिख पूर रहा बिस का रे॥५८॥

तोको पीव मिलैंगें घूंघट के पट खोल रे।
घट-घट में वही साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे॥

---

५६. छिया=मलिन, घृणित, धिक्कार; क्षीण हो रहा है—यह अर्थ भी किया जा सकता है।

५७. गुड़िया...सुपलिया=लड़कियों के खेलने के खिलौने। बुधि=बुद्धि, स्वभाव। चौरासी चलन की=चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने को। अजब रँग=अद्-भुत शोभा। सजन=स्वामी। हंसा=मुक्त जीवात्मा से अभिप्राय है।

५८. बाय=वायु। गुरु गुन लेगा=परमात्मा लगान या कर्मों का लेखा लेगा।

धन जोबन का गरब न कीजै, झूठा पंचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बार ले, आसन सों मत डोल रे॥
जोग जुगत सों रंग महल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनन्द भयौ है, बाजत अनहद ढोल रे॥५९॥

साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।
स्याही रंग छुड़ायके रे, दियो मजीठा रंग।
धोये से छूटे नहीं रे, दिन दिन होत सुरंग॥
भाव के कुण्ड नेह के जल में प्रेम-रंग दई बोर।
दुख देइ मैल छुटाय दी रे, खूब रँगी झकझोर॥
साहिब ने चुनरी रंगी रे, पीतम चतुर सुजान।
सब कुछ उन पर वार दूँ रे, तन मन धन औ प्रान॥
कहैं कबीर रंगरेज पियारे मुझपर हुए दयाल।
सीतल चुनरी ओढ़िके रे, भई हौं मगन निहाल॥६०॥

अरे, इन दोहुन राह न पाई॥
हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।
वेस्या के पायन तर सोवै, यह देखो हिन्दुआई॥
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै, घरहिं में करै सगाई॥
बाहर से इक मुर्दा लाये धोय-धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिलि जेमन बैठीं, घर-भर करै बड़ाई॥
हिंदुन की हिंदुवाई देखी, तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, कौन राह ह्वै जाई॥६१॥

---

५९. पंचरंग चोल=पंचतत्व का रचा शरीर।

६०. मजीठा=एक लता जिसकी सूखी जड़ और डंठलों को उबालकर पक्का लाल रंग तैयार किया जाता है। सुरंग=लाल; अनुरागमय। सीतल=शान्ति देनेवाली, ताप दूर करनेवाली।

६१. खाला केरी=मौसी की। मुर्दा=हलाल किया हुआ जानवर। चढ़वाई=देगची में पकाया।

यह जग अंधा मैं केहि समुझावों ॥
इक-दुइ होंय उन्हैं समुझावौं, सब ही भुलाना पेट के धंधा ।
पानी के घोड़ा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस के बुंदा ॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा पड़िगा फंदा ।
घर की वस्तु निकट नहिं आवत दियना बारिके ढूँढ़त अंधा ॥
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरुग्यान भटकिया बंदा ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, एक दिन जाय लंगोटी झार बंदा ॥६२॥

मोको कहाँ ढूँढ़ो बन्दे मैं तो तेरे पास में ।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गँड़ास में ॥
नहीं खाल में नहीं पोंछ में, ना हड्डी ना माँस में ।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में ॥
ना तो कौनो क्रिया-कर्म में, नहीं जोग-बैराग में ।
खोजी होय तौ तुरतै मिलिहौं पलभर की तालास में ॥
मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब साँसों की साँस में ॥६३॥

जेहि कुल भगत भाग बड़ होई ।
अबरन बरन न गनिय रंक धनि, बिमल बास निज सोई ॥
बाम्हन छत्री बैस सूद्र सब भगत समान न कोई ।
धन वह गाँव ठाँव असथाना, ह्वै पुनीत सँग लोई ॥
होत पुनीत जपै सतनामा, आपु तरै तारै कुल दोई ।
जैसे पुरइन रह जल भीतर, कह कबीर जग में जन सोई ॥६४॥

---

६२. असवरवा=सवार । पानी के घोड़ा=क्षणभंगुर देह से आशय है । पवन असवरवा=प्राण-वायु से आशय है । धरवा=धार । बंदा=सेवक, जीव ।

६३. गँडास=गंडासा, घास के टुकड़े करने का हथयार । खोजी=सत्य-शोधक । मवास=दुर्गम गढ़ ; अन्तरात्मा से आशय है । सहर के बाहर=पंचभौतिक सृष्टि से परे ।

६४. लोई=लोग । पुरइन=कमल का पत्ता, जो जल में रहते हुए भी जल से अलिप्त रहता है । जन सोई=वही सच्चा भक्त है ।

हूँ बारी, मुख फेरि पिया रे। करवट दे मोहि काहे को मारे ॥
करवत भला, न करवट तेरी। लाग गरे सुन बिनती मेरी ॥
हम तुम बीच भया नहिं कोई। तुमहि सो कंत, नारि हम सोई ॥
कहत कबीर सुनो नर लोई। अब तुम्हरी परतीत न होई ॥६५॥

पंडित बाद बदौ सो झूठा।
राम के कहे जगत गति पावै, खाँड कहे मुख मीठा ॥
पावक कहे पाँव जो दाझै, जल कहे तृषा बुझाई।
भोजन कहै भूख जो भागै, तो दुनियां तरि जाई ॥
नर के संग सुवा हरि बोलै, हरि प्रताप नहिं जानै।
जो कबहूँ उड़िजाय जंगल को, तौ हरि-सुरति न आनै ॥
बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु, नाम लिये का होई।
धन के कहे धनिक जो होतो, निरधन रहत न कोई ॥
साँची प्रीति बिषय-माया सों, हरि-भगतन की हाँसी।
कह कबीर एक राम भजे बिन बाँधे जमपुर जासी ॥६६॥

मेरा तेरा मनुआं कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तूं कागद की लेखी रे।
मैं कहता सुरझावनहारी, तूं राख्यो अरुझाइ रे ॥
मैं कहता तूं जागत रहियो, तूं रहता है सोइ रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तूं जाता है मोहि रे ॥
जुगन-जुगन समझावत हारा, कहा न मानत कोइ रे।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डार्‌या खोइ रे ॥
सतगुरु-धारा निरमल बाहै, वा में काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तबही वैसा होइ रे ॥६७॥

---

६५. हूँ बारी=मैं बलैयाँ लेती हूँ। करवत=लकड़ी चीरने का बड़ा आरा। बीच=भेद डालनेवाला। लोई=लोगो।

६६. गति=मोक्ष। दाझै=जले। अरस=मिलन। हाँसी=मज़ाक, अपमान। जासी= जाओगे।

६७. बिहंडी=नाश करनेवाली। बाहै=बहती है। वैसा होई रे=अरे, तभी तू सद्‌गुरु के समान निर्मल होगा।

अरे मन, समझकै लादु लदनियाँ।
काहे कै टटुवा काहे कै पाखर, काहे क भरी गवनियाँ।
मन कै टटुवा सुरति कै पाखर, भर पुन-पाप गवनियाँ॥
घर के लोग जगाती लागे, छीन लेयँ कर धनियाँ।
सौदा करु तो यहिं करु भाई, आगे हाट न बनियाँ॥
पानी-पियै तो यहीं पी भाई, आगे देश निपनियाँ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सत्तनाम का बनियाँ॥६८॥

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी।
ऊ रंगरेजवा कै मरम न जानै,
नहिं मिलै धोबिया कवन करै उजरी॥
तन कै कूँडी ग्यान कै सउँदन,
साबुन महँग बिकाय या नगरी॥
पहिरि-ओढ़ि कै चली सुसरिया,
गौवाँ के लोग कहैं बड़ी फुहरी॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बिन सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी॥६९॥

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो।
चंदन-काठ कै बनल खटोलना, ता पर दुलहिन सूतल हो॥
उठो सखी मोरी माँग सँवारो, दुलहा मोसे रूसल हो।
आये उमराज पलँग चढ़ि बैठे, नैनन आँसू टूटल हो॥
चारि जने मिलि खाट उठाइन, चहुँ दिसि धूधू ऊठल हो॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता छूटल हो॥७०॥

---

६८. टटुवा=छोटा घोड़ा, जिसपर माल लादते है। पाखर=टाट की झूल। गवनियाँ=गोन, टाट का थैला, खास। पुन=पुण्य, सत्कर्म। जगाती=महसूल उगाहनेवाला। कर धनियाँ=हाथ का धन या पूँजी। निपनियाँ=बिना पानी का।

६९. कूँडी=छोटी नाँद। सऊँदन=रेह-मिला पानी, जिसमें धोने से पहले धोबी कपड़ों को भिगोता है। फुहरी=फूहड़, गँवार।

७०. नगरिया=नगरी, देह से आशय है। दुलहिन=जीव। सूतल=सोगई। रूसल=रूठ गया। टूटल=निकल पड़े। धूधू=आग के दहकने का शब्द।

रमैया कै दुलहिन लूटा बाजार ।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मचा हाहाकार ।।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि कै परी पिछार ।
स्त्रिंगी की मिंगी करि डारी, पारासर कै उदर बिदार ।।
कनफूँका चिद्‌कासी लूटे, लूटे जोगेसर करत बिचार ।
हम तो बचिगे साहब-दया से, सब्द-डार गहि उतरे पार ।।७१।।

साखी

गुरुदेव कौ अंग

राम नाम कै पंटतरै, देबै को कुछ नाहिं ।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन माहिं ।।१।।
सतगुरु लई कमांण करि, बांहण लागा तीर ।
एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतर रह्या सरीर ।।२।।
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट ।
पूरा किया बिसाहुँणां, बहुरि न आवौं हट्ट ।।३।।
चौसठ दीया जोइ भरि, चौदह चंदा मांहिं ।
तिहिं घरि किसकौ चानिणौं, जिहि घरि गोबिंद नांहिं ।।४।।
गुरु गोबिंद तौ एक है, दूजा यहु आकार ।
आप मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ।।५।।

---

७१. रमैया कै दुलहिन=माया से अभिप्राय है। स्त्रिंगी=शृंगी ऋषि । मिंगी=गिरी, चूरचूर । चिदकासी=आकाश के समान निर्लिप्त चेतनरूप ।

गुरुदेव कौ अंग

१. पटंतरै=तुलना, उपमा । हौंस=साहसरूपी इच्छा, हौसला ।
२. कमांण=धनुष । बांहण लागा, चलाने लगा ।
३. अघट्ट=जो कभी न घटे, अक्षय । बिसाहुणां=सौदा लेना । हट्ट=हाट, पेठ ।
४. चानिणौं=चाँदना, उँजेला ।
५. आप मेट जीवत मरै=अहंभाव को नष्टकर देहभाव को भूल जाये ।

पासा पकड़्या प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६॥

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ।
अंतरि भीगी आत्मां, हरी भई बनराइ ॥७॥

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोबिंद दियो बताय ॥८॥

कबिरा ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठै गुरु ठौर हैं, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥९॥

यह तन विष की बेलरी, गुरु अंमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तौ भी सस्ता जान ॥१०॥

सुमिरण कौ अंग

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ॥१॥

कबीर सूता क्या करे, उठि ना रोवै दुक्ख।
जाका वासा गोर में, सो क्यूँ सोवै सुक्ख ॥२॥

जिहि हरि जैसा जांणियां, तिनकूँ तैसा लाभ।
ओसों प्यास न भाजई, जबलग धसै न आभ ॥३॥

राम पियारा छाड़िकरि, करै आन का जाप।
वेस्वा केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सूँ बाप ॥४॥

---

६. सारी=चौपड़।
१०. बेलरी=लता।

सुमिरण कौ अंग

१. रामहिं आहि=राम के ही लिए है।
२. गोर=कब्र।
३. आभ=आब, पानी।
४. वेस्वा=वेश्या।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अंमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यूँ जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ ॥५॥
सुमिरन सुरत लगाइके मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइके अंतर के पट खोल ॥६॥
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारिदे, मन का मनका फेर ॥७॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो दहुँदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥८॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ॥९॥

बिरह कौ अंग

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति ॥१॥
अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसौ कहियां।
कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पासि गयां ॥२॥
जबहूँ मार्‍या खैंचिकरि, तब मैं पाई जांणि।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छांणि ॥३॥

---

५. संधे संधि=जोड़ से जोड़।

६. बाहर…खोल=विषयों के लिए इन्द्रियों के द्वार बंद करदे और अंतर के किवाड़ स्वरूप-दर्शन के लिए खोलदे।

७. फेर=(१)भेद, द्वैतभाव (२) माला जपना। मनका=गुरिया, सुमिरनी का दाना।

८. दहुँ=दसों।

९. वारी=बलिहारी।

बिरह कौ अंग

१. बिछुटी=बिछड़ी। परभाति=प्रभात, सवेरे।

२. अंदेसड़ा न भाजिसी=अंदेशा नहीं जायेगा।

३. गई छांणि=भेदकर पार कर गई।

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सचु पाऊँ नहीं ॥४॥
बिरह-भुवंगम तन बसै, मन्त्र न लागै कोइ।
राम-बियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ॥५॥
सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै सांई कै चित्त ॥६॥
अंषड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड्या, राम पुकारि-पुकारि ॥७॥
इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूं जीव।
लोही सींचौं तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव ॥८॥
जौ रोऊँ तौ बल घटै, हँसौं तौ राम रिसाइ।
मनहीं मांहिं बिसूरणां, ज्यूँ घुण काठहि खाइ ॥९॥
कै बिरहनि कूँ मीच दै, कै आपहिं दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाइ ॥१०॥
सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै ॥११॥
बिरह भुवंगम पैठिकै, किया कलेजे घाव।
बिरही अंग न मोड़िहै, ज्यों भावै त्यों खाव ॥१२॥
बिरहिन ओदी लाकड़ी, सपचै औ धुँधुआय।
छूट पड़ौं या बिरह से, जो सगरो जरि जाय ॥१३॥

---

४. सर=सद्‌गुरु के शब्द-बाण से आशय है। सचु=चैन।

५. बियोगी=वियोगी।

६. तंत=तार। रबाब=एक प्रकार का बाजा, इसरार।

७. झाँई=अँधेरा।

९. बिसूरणां=मन में दुःख मानना, चिंता करना।

१०. दाझणां=जलना।

१३. ओदी=गीली। सपचै=सुलगे।

हिरदे भीतर दव बलै, धुआँ न परगट होय।
जाके लागी सो लखै, की जिन लागी सोय ॥१४॥
मूए पाछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥१५॥
कबिरा बैद बुलाइया, पकरिके देखी बाहिं।
बैद न वेदन जानई, करक कलेजे माहिं ॥१६॥

परचा कौ अंग

कबीर तेज अनंत का, मानौं ऊगी सूरज सेणि।
पति सँगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि ॥१॥
अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति।
जहाँ कबीरा बंदिगी, (तहाँ) पाप पुन्य नहीं छोति ॥२॥
देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख ॥३॥
पाणीं ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कह्या न जाइ ॥४॥
अंक भरे भरि भेंटिया, मन में नांहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूँ मिलैं, जबलग दोइ सरीर ॥५॥

---

१४. दव=आग। लागी=(१) लगी है (२) लगाई है।

१६. वेदन=वेदना, पीड़ा। करक=कसक, दर्द।

परचा कौ अंग

१. सेणि=श्रेणी। सुन्दरी=प्रेम-लक्षणा भक्ति की साधिका जीवात्मा से आशय है। कौतिग=कौतुक, लीला।

२. छोति=छूत, प्रवेश।

३. दोसत=दोस्त, मित्र। अलेख=अलख, जिसका वर्णन न किया जा सके।

४. पाणी···बिलाइ=आशय यह है कि जीवात्मा परमात्मा का अंश थी, सो उसीमें लीन हो गई, जैसे पानी से बनी बरफ गलकर पानी में ही मिल गई, पानी ही हो गई।

५. मांहि=घट के अंदर।

जा कारणि मैं ढूँढता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ ॥८॥
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥७॥
उलटि समाना आप सें, प्रगटी जोति अनंत।
साहेब सेवक एक सँग, खेलैं सदा बसंत ॥८॥
पंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उजास।
सुख करि सूती महल सें, बानी फूटी बास ॥९॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहरि गँभीर।
चहुँदिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ॥१०॥

रस कौ अंग

कबीर हरि-रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि ॥१॥
कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाइ ॥२॥
सबै रसांइण मैं किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥३॥

निह्कर्मी पतिव्रता कौ अंग

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझसौं, बहु गुणियाले कंत।
जे हँसि बोलौं और सौं, तौं नील रँगाऊँ दंत ॥१॥

---

८. धन=स्त्री, जीवात्मा।

९. पंजर=शरीर। उजास=प्रकाश।

१०. गगन=समाधि की शून्यस्थिति से आशय है। गरजि=अनाहत नाद से अभिप्राय हैं।

रस कौ अंग

१. थाकि=अतृप्ति, भूख।

निह्कर्मी पतिव्रता कौ अंग

१. नील रँगाऊँ दंत=मुहँ काला करूँ, अपने आपको कलंक लगाऊँ।

नैनां अतंरि आव तूँ, ज्यूँ हौं नैन झँपेऊँ।
ना हौं देखौं औरकूँ, ना तुझ देखन देऊँ ॥२॥
कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥३॥
मन प्रतीति न प्रेम रस, ना इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूँ, कैसैं रहसी रंग ॥४॥
उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज।
पतिव्रता नांगी रहै, तौ उसही पुरिस कौं लाज ॥५॥
पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ॥६॥
पतिबरता पति कों भजै, औंर न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय ॥७॥
पतिबरता मैली भली, गले कांच की पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि-ससि की जोत ॥८॥
सती बिचारी सत किया, काँटों सेज बिछाय।
लै सूती पिया आपना, चहुँदिस अगिन लगाय ॥९॥

चितावणी कौ अंग

कबीर नौबति आपणीं, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पट्टन ए गलीं, बहुरि न देखन आइ ॥१॥
सातों सबद जु बाजते, घरि-घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, वैसण लागे काग ॥२॥

---

२. झँपेउँ=मूँदलूँ।
४. कैसैं रहसी रंग=कैसे प्रेम रहेगा या मिलेगा।
५. पुरिस=पुरुष, स्वामी।
६. कुचिल=मैले वस्त्रवाली।
७. बचा=बच्चा। लंघना=भूखा।

चितावणी की अंग

२. सातों सबद=सातों स्वर। वैसण लागे=बैठने लगे।

कबीर कहा गरबियौ, चाम लपेटे हड्ड।
हैवर ऊपरि छत्र सिरि, तो भी देबा खड्ड ॥३॥
हाड़ जलैं ज्यूँ लाकड़ी, केस जलैं ज्यूं घास।
सब तन जलता देखकरि, भया कबीर उदास ॥४॥
आजि कि काल्हि कि पाँच दिन, जंगल होइगा बास।
ऊपरि ऊपरि फिरहिंगे, ढोर चरंदे घास ॥५॥
इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूँ पाली देह।
रामनाम जाण्या नहीं, अंति पड़ी मुख खेह ॥६॥
मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारंबार।
तरवर थैं फल झड़ि पड्या, बहुरि न लागै डार ॥७॥
कबीर यहु तन जात है, सकै तौ ठाहर लाइ।
कै सेवा करि साध की, कै गोविंद गुण गाइ ॥८॥
यहु तन कांचा कुंभ है, लिया फिरैं था साथि।
ढबका लागा फूटि गा, कछू न आया हाथि ॥९॥
खंभा एक गइंद दोइ, क्यूँ करि बंधसि वारि।
मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥१०॥
ऊजल कपड़ा पहरिकरि, पान सुपारी खाहिं।
एकै हरि का नांव बिन, बाँधे जमपुरि जाहि ॥११॥
मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तौ निकसौ भाजि।
कबलग राखौं हे सखी, रुई-लपेटी आगि ॥१२॥

---

३. हैवर=बढ़िया घोड़ा। खड्ड=क़ब्र से मतलब है।

४. उदास=विरक्त।

६. खेह=धूल।

८. ठाहर लाइ=अच्छे ठौर पर लगादे।

९. ढबका=धक्का, ठोकर।

१०. मानि=मान, अहंभाव।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैंषड़ा, मेरी गल की पास ॥१३॥
कबीर नाँव जरजरी, कूड़े खेवणहार।
हलके-हलके तिरि गये, बूड़े जिनि सिर भार ॥१४॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥१५॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥१६॥
माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं ॥१७॥
मोर मोर की जेवरी, बटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधै, जाके नाम अधार ॥१८॥
आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर।
इक सिंघासन चढ़ि चले, इक बँधि जात जँजीर ॥१९॥
मैं, भँवरा तोहिं बरजिया, बन-बन बास न लेइ।
अटकैगा कहुँ बेल से, तड़पि-तड़पि जिय देइ ॥२०॥
इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं ॥२१॥
चलती चक्की देखिके, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइके, साबित गया न कोय ॥२२॥

---

१३. मेरी मूल बिनास=ममता विनाश का मूल है। पैंपड़ा=पैरों की बेड़ी। पास=फाँसी।

१४. कूडे=अनाड़ी।

१७. रूँदै=पैरों से कुचलता है।

१८. जेवरी=रस्सी।

२०. बरजिया=मना किया। बेल=काम-वासना से तात्पर्य है।

२१. नारी=(१) स्त्री (२) नाड़ी।

माली आवत देखिके कलियाँ करैं पुकार।
फूली-फूली चुनि लईं, कालिह हमारी बार ॥२३॥
कबिरा रसरी पाँव में, कह सोवै सुख चैन।
स्वाँस-नगाड़ा कूँच का बाजत है दिन-रैन ॥२४॥
दस द्वारे का पींजरा, ता में पंछी पौन।
रहिबे को आचरज है, जाइ तो अचरज कौन ॥२५॥

मन कौ अंग

कबीर मारूँ मन कूँ, टूक-टूक ह्वै जाइ।
बिष की क्यारी बोइकरि लुणत कहा पछिताइ ॥१॥
हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ।
मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुबिधा जाइ ॥२॥
मैमंता मन मारि रे, घटहीं मांहैं घेरि।
जबही चालै पीठि दे, अंकुस दे-दे फेरि ॥३॥
मैमंता मन मारि रे, नांन्हां करि-करि पीसि।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलक्कै सीसि ॥४॥
मनह मनोरथ छाड़िदे, तेरा किया न होइ।
पाणी मैं घीव नीकसै, तौ रूखा खाइ न कोइ ॥५॥
मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोइ साध।
जो मानै गुरु-बचन को, ताको मता अगाध ॥६॥
मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिं।
कह कबीर क्या कीजिए, यह मन ठहरै नाहिं ॥७॥

---

२५. पंछी पौन=प्राणरूपी पक्षी।

मन कौ अंग

१. लुणत=फसल काटते हुए।

२. आरसी=दर्पण।

३. मैमंता=मतवाला (हाथी)।

६. मुरीद=शिष्य। मता=सिद्धान्त।

पहले यह मन काग था, करता जीवन-घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि-चुगि खात ॥८॥
अपने-अपने चोर को, सब कोइ डारै मार।
मेरा चोर मुझे मिलै, सरबस डारूँ वार ॥९॥
कबिरा मनहिं गयंद है, आंकुस दै-दै राखु।
विष की वेली परिहरी, अंमृत का फल चाखु ॥१०॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइए मनहीं की परतीत ॥११॥

सूषिम मारग कौ अंग

उतथैं कोइ न आवई, जाकूँ बूझौं धाइ।
इतथैं सबै पठाइये, भार लदाइ-लदाइ ॥१॥
चलौ चलौ सब को कहैं, मोहि अँदेसा और।
साहिब सूँ पर्चा नहीं, ए जाहिंगे किस ठौर ॥२॥
जहाँ न चींटी चढि सकै, राई ना ठहराइ।
मन पवन का गमि नहीं, तहाँ पहूँचे जाइ ॥३॥
सुर नर थाके मुनिजनां, जहाँ न कोई जाइ।
मोटे भाग कबीर के, तहाँ रहे घर छाइ ॥४॥
नाँव न जानू गाँव का, बिन जानें कित जाँव।
चलता-चलता जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥५॥

माया कौ अंग

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घाणि।
कोई एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की काणि ॥१॥

---

९. मेरा चोर=मेरा प्रियतम, जिसने मन को चुरा लिया है।

सूषिम मारग कौ अंग

४. मोटे=बड़े। तहाँ⋯छाइ=वहाँ, अर्थात् निर्विकल्प समाधि की सहज शून्य अवस्था में जाकर रम गये।

माया कौ अंग

१. घाल्या घांणि=घानी (कोल्हू) में पेलने को डाल दिया।

माया मुई न मन मुवा, मरि-मरि गया सरीर।
आसा त्रिसणां नां मुई, यूँ कहि गया कबीर ॥२॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगैं कूँ होइ।
सीस चढायें पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥३॥
माया की झल जग जल्या, कनक कामिणीं लागि।
कहु धौं किहि बिधि राखिये, रुई-लपेटी आगि ॥४॥
माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगतां के पीछैं फिरै, सनमुख भागै सोय ॥५॥
माया तो है राम की, मोदी सब संसार।
जाकी चिट्ठी ऊतरी, सोई खरचनहार ॥६॥
आंधी आई ग्यान की, ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ि गई, लागी नाम से प्रीति ॥७॥
जिनको साँई रँग दिया, कभी न होइ कुरंग।
दिन-दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥८॥

चाणक कौ अंग

स्वामीं हूणां सौहरा, दोद्धा हूणां दास।
गाडर आणीं ऊन कूँ, बांधी चरै कपास ॥१॥
चारिउं बेद पढ़ाइकरि, हरि सूँ न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत ॥२॥
बाह्मण गुरू जगत का, साधू का गुरु नाहिं।
उरझि-पुरझिकरि मरि रह्या, चारिउं बेदन मांहिं ॥३॥

---

४. झल=ज्वाला।

८. बानी=आभा, दमक। आगरी=बढ़कर, अधिक-अधिक।

चाणक कौ अंग

१. हूणां=होना, बनना। सोहरा=सरल। दोद्धा=दुर्लभ, कठिन। गाडर=भेड़; अर्थात् आशा यह की थी कि स्वामीजी ज्ञानोपदेश देंगे, पर वे उलटे दूसरों को लूट रहे और मौज कर रहे हैं।

कासी कांठै घर करैं, पीवैं निरमल नीर।
मुकति नहीं हरि-नांव बिन, यूँ कहै दास कबीर ॥४॥

कथणी बिना करणी कौ अंग

कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुसतक देइ बहाइ।
बांवन आषिर सोधिकरि, ररै ममै चित लाइ ॥१॥
कबीर पढ़िबा दूरि करि, आथि पढ्या संसार।
पीड़ न उपजी प्रीति सूँ, तौ क्यूँ करि करै पुकार ॥२॥
कथनी मीठी खाँड सी, करनी विष की लोइ।
कथनी तजि करनी करै, विष से अंमृत होइ ॥३॥
पद जोरै साखी कहैं, साधन परि गई रौस।
काढ़ा जल पीवैं नहीं, काढ़ि पियन की हौंस ॥४॥
कहता तो बहुत मिला, गहता मिला न कोइ।
सो कहता बहि जान दे, जो नहि गहता होइ ॥५॥

कामी नर कौ अंग

नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम।
कहै कबीर ते राम के, जे सुमिरैं निहकाम ॥१॥
एक कनक अरु कामनी, विष फल के ये उपाइ।
देखै हीं थैं विष चढ़ै, खांयें सूँ मरि जाइ ॥२॥

---

४. कांठै=किनारे, पास।

कथणीं बिना करणीं कौ अंग

१. आषिर=अक्षर। ररै ममै=रकार और मकार ये दो अक्षर, अर्थात् राम।
३. लोइ=गोली।
४. जोरै=रचता है। रौस=चाल-ढाल, रंग-ढंग।
५. गहता=सच्चे अर्थ को ग्रहणकर उसके अनुसार आचरण करनेवाला।

कामी नर कौ अंग

१. सकाम=काम-वासना से युक्त।

भगति बिगाड़ी कामियां, इन्द्री केरै स्वादि।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गँवाया बादि ॥३॥
कामीं लज्या नां करै, मन मांहैं अहिलाद।
नींद न मांगै सांथरा, भूष न मांगै स्वाद ॥४॥
ग्यानी मूल गँवाइया, आपण भये करता।
ताथैं संसारी भला, मन मैं रहै डरता ॥५॥
परनारी पैनी छुरी, मति कोइ लाओ अंग।
रावन के दस सिर गये परनारी के संग ॥६॥

साँच कौ अंग

लेखा देणां सोहरा, जे दिल सांचो होइ।
उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकड़ै कोइ ॥१॥
काजी मुल्लां भ्रंमयां, चल्या दुनीं कै साथि।
दिलथैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥२॥
साँईं सेती चोरियां, चोरां सेती गुझ।
जाणैंगा रे जीवड़ा, मार पड़ैगी तुझ ॥३॥
खूब खांड है खीचड़ी, मांहिं पड़ै टुक लूँण।
पेड़ा रोटी खाइकरि, गला कटावै कूँण ॥४॥

---

३. बादि=व्यर्थ।

४. अहिलाद=आह्लाद, आनन्द। सांथरा=बिस्तर।

५. आपण भये करता=अहंकारवश अपने आपको सबको कर्त्ता मान बैठे। ताथैं=उससे।

साँच कौ अंग

१. सोहरा=सहल। दीवान=दरबार, कचहरी।

२. दीन=धर्म। करद=बड़ी छुरी।

३. गुझ=गुह्य, गुप्त भेद या सलाह।

४. खूब=बड़ी बढ़िया, स्वादिष्ट। टुक लूँण=ज़रा-सा नमक। कूँण=कौन।

प्रेम-प्रीति का चोलना, पहिरि कबीरा नाच।
तन मन तापर वारहूँ, जो कोई बोलै सांच ॥५॥
सांच कहूँ तो मारिहैं, झूठे जग पतियाइ।
ये जग कालो कूकरी, जो छेड़ै तो खाइ ॥६॥

भ्रम-बिधौंसण कौ अंग

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाणि।
दसवां द्वारा देहुरा, तामें जोति पिछाणि ॥१॥
कबीर दुनियां देहुरै, सीस नवावण जाइ।
हिरदा भीतरि हरि बसैं, तूँ ताही सूँ ल्यौ लाइ ॥२॥
पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव।
पूजणहारा अंधला, लागा खोटी सेव ॥३॥

भेष कौ अंग

कबीर माला मन की, और संसारी भेष।
माला पहर्‌याँ हरि मिले, तौ अरहट कै गलि देष ॥१॥
पष ले बूड़ी पृथमीं, झूठी कुल की लार।
अलष बिसार्‌या भेष मैं, बूड़े काली धार ॥२॥
चतुराई हरि नां मिलै, ए बातां की बात।
एक निसप्रेही निरधार का गाहक गोपीनाथ ॥३॥

---

५. चोलना=लंबा ढीला-ढाला कुरता, जिसे फकीर पहनते हैं।

भ्रम-बिधौंसण कौ अंग

१. दसवां द्वारा=ब्रह्म-रन्ध्र से आशय है। देहरा=देवालय।
३. खोटी सेव=झूठी सेवा-पूजा।

भेष कौ अंग

१. अरहट=रहँट। गलि=गले में।
२. पष=पक्ष, संप्रदायवाद। बूड़ी पृथमीं=दुनिया डूब गई। लार=साथ, संबंध।
३. बातां की बात=सौ बात की एक बात। निसप्रेही=निस्पृह, जिसे कोई इच्छा नहीं, कोई स्वार्थ नहीं।

जबलग पीव परचा नहीं, कन्या कँवारी जाणि।
हथलेवा हौंसें लिया, मुसकल पड़ी पिछाणि ॥४॥
हम तो जोगी मनहि के, तन के हैं ते और।
मन का जोग लगावते, दसा भई कछु और ॥५॥

संगति कौ अंग

कबीर तन पंषी भया, जहँ मन तहँ उड़ि जाइ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ ॥१॥
काजल केरी कोठड़ी, तैसा यहु संसार।
बलिहारी ता दास की, पैसि ज निकसणहार ॥२॥
कबिरा संगत साधु की, जौ की भूसी खाइ।
खीर खांड भोजन मिलै, साकट संग न जाइ ॥३॥
कबिरा खाई कोट की, पानी पिवै न कोइ।
जाइ मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होइ ॥४॥
तोहिं पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काँची सरसों पेरिकै खली भया ना तेल ॥५॥
दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोइ।
कोटि जतन परबोधिए, कागा हंस न होइ ॥६॥

साध कौ अंग

मेरे संगी दोइ जणां, एक वैष्णों एक नाम।
यो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै राम ॥१॥

---

४. हथलेवा=विवाह में वर द्वारा कन्या का हाथ अपने हाथ में लेने की रीति; पाणिग्रहण। हौंसें=साहसपूर्ण इच्छा या हौसले से।

संगति कौ अंग

२. पैसि ज निकसणहार=जो पैठकर बिना कालिख लगाये बाहर निकल आये।
३. साकट=शाक्त, वाममार्गी जो मद्य-मांस आदि का सेवन करते थे; हरिविमुख।
५. पाका सेती खेल=पक्के साधु की संगति कर। पेरिकै=पेलकर।

साध कौ अंग

३. लैंहडे=झुंड।

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं।
अंक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौं जाहिं ॥२॥
सिहों के लेंहडे नहीं, हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चलें जमात ॥३॥
साध कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेमरस, गिरै तो चकनाचूर ॥४॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी सों नेह।
कह कबीर ता साध की हम चरनन की खेह ॥५॥
वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर ॥६॥
जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥७॥
हद चलै सो मानवा, बेहद चलै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै, ता का मता अगाध ॥८॥

साध साषीभूत कौ अंग

संत न छाड़ै संतई, जे कोटिक मिलैं असंत।
चंदन भुवंगा बैठिया, तउ सीतलता न तजंत ॥१॥
कबीर हरि का भावता दूरैं थैं दीसंत।
तन षीणां मन उनमनां, जग रूठड़ा फिरंत ॥२॥
कबीर हरि का भावता, झीणां पंजर तास।
रैणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मांस ॥३॥
राम-बियोगी तन विकल, ताहि न चीन्हैं कोइ।
तंबोली के पान ज्यूँ, दिन-दिन पीला होइ ॥४॥

---

५. खेह=धूल।

साध साषीभूत कौ अंग

२. दीसंत=दीख जाता है। भावता=प्यारा भक्त। षीणां=क्षीण, कृश। उनमनां=उदासीन। रूठड़ा=विरक्त।

३. पंजर=देह।

जिहि हिरदैं हरि आइया, सो क्यूँ छानां होइ।
जतन-जतन करि दाबियें, तऊ उजाला सोइ॥५॥
सब घटि मेरा सांइयां, सूनी सेज न कोइ।
भाग तिन्हों का हे सखी, जिहि घटि परगट होइ॥६॥
पावकरूपी राम है, घटि-घटि रह्या समाइ।
चित चकमक लागै नहीं, तार्थें धूवां ह्वै-ह्वै जाइ॥७॥

साध-महिमा कौ अंग

है गै गैंवर सघन धन, छत्र धजा फरराइ।
ता सुख थैं भिष्या भली, हरि-सुमिरत दिन जाइ॥१॥
है गै गैंवर सघन धन, छत्रपती की नारि।
तास पटंतर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि॥२॥
साषत बांभण मति मिलै, बैसनौं मिलै चँडाल।
अंकमाल दे भेंटिये, मानौं मिले गोपाल॥३॥

विचार कौ अंग

आगि कह्यां दाझै नहीं, जे नहीं चंपै पांइ।
जबलग भेद न जाणिये, राम कह्या तौ कांइ॥१॥

---

५. छानां=छिपा, गुप्त।

७. चकमक=एक प्रकार का कड़ा पत्थर, जिसपर चोट पड़ने से फौरन आग निकलती है।

साध-महिमा कौ अंग

१. है=हय, घोड़ा। गै=गज. गैंवर=गजराज। सघन=अत्यधिक, अखूट। फरराइ=फहराये। भिष्या=भित्ता।

२. पटंतर=तुलना, उपमा। पनिहारि=पानी भरनेवाली नौकरानी।

३. साषत=शाक्त, वाममार्गी। अंकमाल=आलिंगन, गले लगाना।

विचार कौ अंग

१. आगि···पांइ=आग कहदेने मात्र से वह जलाती नहीं है, जबतक कि पैर से दब नहीं जाती। कांइ=क्या होता है।

कबीर सोचि विचारिया, दूजा कोई नाहिं।
आपा पर जब चीन्हियां, तब उलटि समाना माहिं ॥२॥
सहज तराजू आनिकरि, सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ-रस, जो कोइ जानै बोल ॥३॥

उपदेस कौ अंग

बैरागी बिरकत भला, गिरहीं चित्त उदार।
दुहूँ चूकां रीता पड़े, ताकूँ वार न पार ॥१॥
जो तोकों कांटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥२॥
दुरबल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वाँस से लोह भसम ह्वै जाय ॥३॥
या दुनिया में आइके छांड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात हैं पैंठ ॥४॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिए, वही एक की एक ॥५॥
उदर समाता अन्न लै, तनहिं समाता चीर।
अधिकहि संग्रह ना करै, ताका नाम फकीर ॥६॥
पढ़ि-पढ़िके पत्थर भये, लिखि-लिखि भये जो ईंट।
कबिरा अंतर प्रेम की लागी नेक न छींट ॥७॥

---

२. तब उलटि समाना माहिं=विषयों की ओर से मुड़कर अंतर्मुखी तथा ब्रह्मलीन हो जाता है।

३. जीभ-रस=सच्ची मीठी वाणी; प्रभु-नाम का उच्चारण।

उपदेस कौ अंग

१. विरकत=विरक्त। गिरही=गृहस्थ। दुहूँ चूकां रीतां पड़ै=यदि वैरागी में वैराग्य न हो और गृहस्थ में उदारता न हो, तो दोनों ही व्यर्थ हैं।

४. ऐंठ=अभिमान। पैंठ=हाट।

६. चीर=कपड़ा। समाता= आवश्यकताभर।

न्हाए धोए क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोए बास न जाय ॥८॥
ऊँचे गाँव पहाड़ पर, औ मोटे की बांह।
ऐसो ठाकुर सेइए, उबरिय जाकी छांह ॥९॥

समृथाई कौ अंग

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरिगुण लिख्या न जाइ ॥१॥
सांई मेरा बांणियां, सहजि करै ब्यौपार।
बिन डांडी बिन पालड़ै, तोलै सब संसार ॥२॥
सांई सूँ सब होत है, बंदे थैं कुछ नाहिं।
राई थैं परबत करै, परबत राई माहिं ॥३॥
साहेब-सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर।
औगुन छोडै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ॥४॥
जाको राखै साँइयाँ, मारि न सक्कै कोय।
बाल न बांका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥५॥
सांई तुझसे बाहिरा, कौड़ी नाहिं बिकाय।
जाके सिर पर धनी तू, लाखों मोल कराय ॥६॥

सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर में, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, ताथैं छूटि भरंति ॥१॥
ज्यूँ-ज्यूँ हरिगुण साँभलौं, त्यूँ-त्यूँ लागै तीर।
लागैं थैं भागा नहीं, साहणहार कबीर ॥२॥

समृथाई कौ अंग

१. बनराइ=वृक्ष-समूह।

५. बाहिरा=विना, रहित।

सबद कौ अंग

१. गुण=तार से तात्पर्य है। तंति=तंत्री, वीणा। भरंति=भ्रांति।

२. साँभलौं=स्मरण व ध्यान करता हूँ। साहणहार=सहनेवाला।

सब्द बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल ।
हीरा तो दामों मिलै, सब्दहिं मोल न तोल ।।३।।
सीतल सब्द उचारिए, अहम् आनिए नाहिं ।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रू भी तुझ माहिं ।।४।।

जीवनमृतक कौ अंग

घर जालौं घर ऊबरै, घर राखौं घर जाइ ।
एक अचंभा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ ।।१।।
जीवन थैं मरिबो भलौ, जौ मरि जानैं कोइ ।
मरनैं पहलें जे मरें, तौ कलि अजरावर होइ ।।२।।
आपा मेट्यां हरि मिलैं, हरि मेट्यां सब जाइ ।
अकथ कहाणीं प्रेम की, कह्यां न को पत्याइ ।।३।।
मैं मरजीव समुन्द्र का, डुबकी मारी एक ।
मूठी लाया ग्यान की, जामें वस्तु अनेक ।।४।।
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देय ।
साधू ऐसा चाहिए, ज्यों पैंड़े की खेह ।।५।।
खेह भई तो क्या भया, उड़ि-उड़ि लागै अंग ।
साधू ऐसा चाहिए, जैसे नीर निपंग ।।६।।

जीवनमृतक कौ अंग

१. घर जालौं घर ऊबरै=यदि देहभिमान को नष्ट करदूँ, तो आत्मभाव सुरक्षित रहता है । अथवा, विषय-रस जला दे तो ब्रह्म-रस सुलभ हो जाता है । मड़ा=मरा हुआ, जिसने अपने अहंभाव को मार दिया है । काल कौं खाइ=अमर हो जाता है ।

२. मरनैं⋯होइ=मरने से पहले ही जो देह को नाशवान या मृत समझले, वह अजर और अमर हो जाये । कलि=कल, तुरन्त ।

४. मरजीवा=जो कार्य-सिद्धि के लिए प्राण देने पर उतारू हो जाये ।

५. पैंडे की खेह=रास्ते की धूल ।

६. निपंग=विना पंक का; स्वच्छ ।

नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिए, जो हरि जैसा होय ॥७॥
हरि भया तो क्या भया, करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिए, हरि भज निरमल होय ॥८॥
निरमल भया तो क्या भया, निरमल माँगै ठौर।
मल निरमल से रहित है, ते साधू कोइ और ॥९॥

सूरातन कौ अंग

गगन दमामां बाजिया, पड्या निसानैं घाव।
खेत बुहार्‌या सूरिवैं, मुझ मरणे का चाव ॥१॥
सूरा तबहीं परषिये, लड़ै धणीं कै हेत।
पुरिजा-पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत ॥२॥
अब तौ झूझ्यां हीं बणैं, मुड़ि चाल्यां घर दूरि।
सिर साहिब कौं सौंपतां, सोच न कीजै सूर ॥३॥
कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहिं।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसै घर माहिं ॥४॥
प्रेम न खेतौं नीपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥५॥
भगति दुहेली राम की, जसि खांडे की धार।
जे डोलै तौ कटि पड़ै, नहीं तौ उतरैं पार ॥६॥
भगति दुहेली राम की, जैसि अगनि की झाल।
डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ॥७॥

---

७. ताता-सीरा=गरम और ठंडा।

सूरातन कौ अंग

१. दमामां=नगाड़ा। पड्या निसांनैं घाव=डंके पर चोट पड़ी। सूरिवैं=शूरवीरों ने।

२. पुरिजा-पुरिजा=टुकड़ा-टुकड़ा।

३. झूझ्यां ही बणैं=जूझना ही होगा।

४. खाला=मौसी। पैसै=पैठे।

७. झाल=ज्वाला। डाकि पड़े=फाँद जाये, लाँघ जाये। कौतिगहार=तमाशा-देखनेवाले।

सती जलन को नीकली, पीव का सुमरि सनेह ।
सबद सुनत जीव नीकल्या, भूलि गई सब देह ।।८।।
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की, कटि उंजियारा होय ।।९।।
खोजी को डर बहुत है, पल-पल पड़ै बिजोग ।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहेबजोग ।।१०।।
तीर तुपक से जो लड़ै, सो तो सूर न होय ।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ।।११।।

काल कौ अंग

आज कहै हरि काल्हि भजौंगा, काल्हि कहै फिरि काल्हि ।
आज ही काल्हि करंतड़ां, औसर जासी चालि ।।१।।
बारी बारी आपणीं, चले पियारे म्यंत ।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै नित ।।२।।
मालिन आवत देखिकरि, कलियां करीं पुकार ।
फूले-फूले चुनि लिए, काल्हि हमारी बार ।।३।।
फागुण आवत देखिकरि, बन रूना मन मांहिं ।
ऊंची डाली पात है, दिन-दिन पीले थांहिं ।।४।।
जो ऊग्या सो आँथिवै, फूल्या सो कुमिलाइ ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ।।५।।
पाणीं केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति ।
एक दिनां छिप जांहिंगे, तारे ज्यूँ परभाति ।।६।।
पात पडंता यौं कहै, सुनि तरवर बनराइ ।
अब के बिछुड़े नां मिलै, कहिं दूर पड़ैंगे जाइ ।।७।।

काल कौ अंग

१. करंतड़ां=करते । जासी चालि=चला जायेगा ।
४. रूना=उदास, दुखी । थाहिं=हो रहे हैं ।
५. जो……आँथिवै=जो उदय हुआ वह अस्त होगा । चिणिंया=चिना, बनाया ।

मेरे बीर लुहारिया, तूँ जिनि जालै मोहिं।
इक दिन ऐसा होइगा, हूँ जालौंगी तोहिं ॥८॥
कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नां जांणै कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस ॥९॥
काएँ चिणांवै मालिया, लांबी भीति उसारि।
घर तौ साढ़ी तीनि हथ, घणौं तौ पौणां चारि ॥१०॥
बरियां बीती बल गया, अरु बुरा कमाया।
हरि जिन छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥११॥
बिष के वन में घर किया, सरप रहे लपटाइ।
ताथैं जियरै डर गह्या, जागत रैंणि बिहाइ ॥१२॥
रोवणहारे भी मुए, मुए जलांवणहार।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार ॥१३॥

पारिष कौ अंग

हीरा तहाँ न खोलिए, जहँ खोटी है हाटि।
कसकरि बाँधो गाठरी, उठकरि चालो बाट ॥१॥
हंसा बगुला एक-सा मानसरोवर माहिं।
बगा ढंढोरैं माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥२॥
चंदन गया बिदेसड़े, सब कोइ कहै पलास।
ज्यों-ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों-त्यों अधकी बास ॥३॥
ग्यान-रतन की कोठरी, चुप करि दीन्हों ताल।
पारखि आगे खोलिए, कुंजी बचन रसाल ॥४॥

---

८. वीर=भाई।

१०. मालिया=धनी। उसारि=दालान, बरामदा। घर=कब्र या श्मशान से अभिप्राय है।

११. बरियां=यौवन का अवसर। बुरा कमाया= बुरे कर्म किये। नेड़ा=पास।

पारिष कौ अंग

२. ढंढ़ोरैं=खोजता है।

४. ताल=ताला। कुंजी वचन रसाल=मीठे वचन की चाभी से।

हीरा परा बजार में, रहा छार लपटाय ।
बहुतक मूरख चलि गए, पारखि लिया उठाय ।।५।।

निंद्या कौ अंग

दोष पराये देखिकरि, चल्या हसंत हसंत ।
अपनैं च्यंति न आवई, जिनका आदि न अंत ।।१।।
निंदक नेड़ा राखिये, आँगणि कुटी बँधाइ ।
बिन साबण पाणी बिना, निरमल करै सुभाइ ।।२।।
कबीर घास न नींदिये,जो पाऊँ तलि होइ ।
ऊड़ि पड़ै जब आँखि मैं, खरा दुहेला होइ ।।३।।
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यां दुख होइ ।।४।।
अबकै जे सांई मिलै, तौ सब दुख आषौं रोइ ।
चरनूँ ऊपरि सीस धरि, कहूँ ज कहणा होइ ।।५।।
सातो सायर मैं फिरा, जंबुदीप दै पीठ ।
निंद पराई ना करै, सो कोई परला दीठ ।।६।।

निगुणां कौ अंग

हरिया जाणैं रूंखड़ा उस पाणीं का नेह ।
सूका काठ न जाणई, कबहूँ बूठा मेह ।।१।।

---

५. छार=धूल ।

निंद्या कौ अंग

१. च्यंति न आवई=ध्यान में नहीं आते हैं ।

२. सुभाइ=सहज ही ।

३. न नींदिये=निंदा न करे । खरा दुहेला=बहुत ही मुश्किल, भारी तकलीफ़ ।

५. आषौं=कहूँ ।

६. जंबुदीप दै पीठ=जंबूद्वीप (अपने घर से) चलकर । परला=विरला ।

निगुणां कौ अंग

१. रूँषड़ा=पेड़ । बूठा=बरसा ।

ऊँचा कुल कै कारणैं, बंस बध्या अधिकार।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार ॥२॥
कबीर चंदन कै निड़ैं, नींव भी चंदन होइ।
बूड़ा बंस बड़ाइतां, यौं जिनि बूड़ै कोइ ॥३॥

बीनती कौ अंग

कबीर सांईं तौ मिलहिंगे, पूछहिंगे कुसलात।
आदि अंति की कहूँगा, उर अंतरि की बात ॥१॥
करता केरे बहुत गुण, औगुण कोई नाहिं।
जे दिल खोजौं आपणा, तौ सब औगुण मुझ मांहिं ॥२॥
ज्यूँ मन मेरा तुझ सौं, यौं जे तेरा होइ।
ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ ॥३॥
सुरति करौ मेरे साँइयाँ, हम हैं भवजल माहिं।
आपे ही बहि जाहिंगे, जो नहिं पकरौ बाहिं ॥४॥
क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत अवगुन करौं, कैसे भावों तोहिं ॥५॥
अवगुन मेरे बापजी, बकस गरीब-निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता कों लाज ॥६॥
मन परतीति न प्रेमरस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौं उस पीव से, क्योंकरि रहसी रंग ॥७॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सोंपते, क्या लागत है मोर ॥८॥

---

२. वंस=(१) वंश, कुल (२) बाँस का पेड़, जो लंबा ऊँचा होता है।
३. निड़ै=पास। बड़ाइतां=बड़ाई से, ऊँचा होने से।

बीनती कौ अंग

१. ताता=गरम। संधि=जोड़।
३. रहसी रंग=प्रीति निभेगी।

तुम तो समरथ साँइयाँ, दृढ़करि पकरो बाहिं।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छाँड़ो मग माहिं ॥६॥

विविध

तरवर सरवर संतजन, चौथे बरसै मेह।
परमारथ के कारने, चारौं धारैं देह ॥१॥
कबीरा मैं तो तब डरौं, जो मुझ ही में होय।
मीच बुढ़ापा आपदा, सब काहू में सोय ॥२॥
देहधरे का दंड है, सब काहू को होय।
ग्यानी भुगतै ग्यान करि, मूरख भुगतै रोय ॥३॥
जूआ, चोरी, मुखबिरी, ब्याज, घूस, परनार।
जो चाहे दीदार को, एती बस्तु निवार ॥४॥
राज-दुवारे साधुजन तीनि वस्तु कों जाय।
कै मीठा, कै मान कों, कै माया की चाय ॥५॥
नाचै गावै पद कहै, नाहीं गुरु सों हेत।
कह कबीर क्यों नीपजैं बीज-बिहूनो खेत ॥६॥
करु बहियाँ बल आपनी, छाँड बिरानी आस।
जाके आँगन नदी है, सो कस मरै पिआस ॥७॥
लिखापढ़ी में परे सब, यह गुण तजै न कोइ।
सबै परे भ्रम-जाल में, डारा यह जिय खोइ ॥८॥
मानुष तेरा गुण बड़ा, माँस न आवै काज।
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजै बाज ॥६॥

---

४. धुर ही=ठिकाने पर ही।

विविध

३. मीच=मौत।

४. मुखबिरी=भेद की खबर देने का काम, जासूसी। दीदार=ईश्वर का दर्शन।

१०. सिलिहिली गैल=पैर रपटानेवाला रास्ता। पिपीलिका=चींटी।

घर कबीरका सिखरपर, जहाँ सिलिहिली गैल।
पायँ न टिकै पिपीलिका, खलक न लादै बैल ॥१०॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तूँ सेवै मूल कों, फूलै फलै अघाय ॥११॥
सब काहू का लीजिये साँचा सब्द निहार।
पच्छपात ना कीजिए, कहै कबीर बिचार ॥१२॥
रचनहार को चीन्हिले, खाने कों क्यों रोय।
दिल-मंदिर में पैठकरि तानि पिछौरा सोय ॥१३॥

---

१२. सब्द=उपदेश।

१३. तानि पिछौरा सोय=चादर फैलाकर सोजा, निश्चिंत होजा।

●

रैदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अज्ञत; कबीरदास के सम-सामयिक
जन्म-स्थान—काशी
जाति—चमार
पिता—रग्घू
माता—घुरबिनिया
गुरु—स्वामी रामानन्द
आश्रम—गृहस्थ

इतिवृत्त केवल इतना ही कि रैदासजी जाति के चमार थे और काशी के रहनेवाले। रैदासजी ने स्वयं ही अपने को काशी-वासी चमार-कुल का कहा है—

"जाके कुटुँब सब ढोर ढोवंत फिरहिं अजहुँ बानारसी आसपासा।
आचारसहित बिप्र करहिं डंडउति तिन तनै रैदास दासानुदासा॥"

कबीरदास के यह गुरु-भाई थे, अर्थात् स्वामी रामानन्द के शिष्य। भक्तमाल में वर्णित इनकी कथा अनेक चमत्कारों से भरी हुई है। चमार-कुल में जन्म लेने की कथा तो बड़ी ही विचित्र है, नाभाजी के मूल छप्पय में यद्यपि वैसा कोई उल्लेख नहीं है। टीका में लिखा है कि स्वामी रामानन्दजी का एक शिष्य एक दिन एक ऐसे बनिये के घर से भिक्षा ले आया, जिसका कारबार एक चमार के साथ था। स्वामीजी के ठाकुर-जी ने उस दिन थाल स्वीकार नहीं किया। पूछने पर जब पता चला कि उनका ब्रह्मचारी शिष्य उस बनिये के यहाँ से सीधा लाया था, तब स्वामी-जी ने शाप दिया कि 'जा, चमार के यहाँ जन्म ले।' बेचारे ब्रह्मचारी ने चमारिन के गर्भ से जन्म तो ले लिया, पर उस अछूत के स्तनों का दूध नहीं पिया। जब स्वामी रामानन्द ने पूर्वजन्म के ब्राह्मण ब्रह्मचारी को राममंत्र का उपदेश किया, तब कहीं उसने माता के स्तनों का दूध पिया! पूर्वजन्म में की हुई अपनी उस महाभूल का स्मरण कर शिशु रैदास को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। इस विचित्र कथा के पीछे जो कल्पना है उसका इतना ही अर्थ समझा जाये कि चमार-कुलोत्पन्न जीव भगवान् का भक्त हो नहीं सकता; भक्ति पर तो द्विजाति का ही एकमात्र अधिकार है। रैदास की गणना इसीलिए भक्तों में हुई कि वे पूर्वजन्म के शापित ब्राह्मण थे। अंत्यजों के प्रति द्वेषभाव किस सीमातक पहुँचा था, इसका स्पष्ट प्रमाण इस विचित्र कल्पित कथा में मिलता है। एक ऐसी ही दूसरी कथा के अनुसार रैदासजी ने एक दिन अपने पूर्वजन्म का ब्राह्मणत्व सिद्ध करने के लिए अपने शरीर की त्वचा को उधेड़कर 'स्वर्ण-यज्ञो-पवीत' सबको दिखलाया था।

रैदासजी गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी उच्चकोटि के विरक्त संत थे। जूते सीते-सीते ही उन्होंने ज्ञान-भक्ति का ऊँचा पद प्राप्त किया था।

प्रसिद्ध है कि चित्तौर की झाली नाम की एक रानी ने काशी में जाकर रैदासजी से गुरु-मंत्र लिया था। उसकी प्रार्थना पर वे चित्तौर भी गये थे। कहते हैं कि झाली महाराणा उदयसिंह की रानी थी, किन्तु इसका कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं।

मीरां बाई को भी रैदासजी की शिष्या कहा जाता है उनके कुछ पदों के आधार पर, जैसे—

"मेरो मन लाग्यो गुरु सों, अब न रहूँगी अटकी।
गुरु मिलिया रैदासजी म्हानें. दीनी ग्यान की गुटकी।।"
"सतगुरु संत मिले रैदासा, दीनीं सुरत सहदानी।"

मीरां की अधिक-से-अधिक पद-रचना सगुणोपासना की होने के कारण, तथा काल की दृष्टि से परवर्ती होने से भी यह कथानक विवादास्पद-सा है। मीरां बाई ने चैतन्य महाप्रभु का भी एक-दो पदों में गुरुवत् स्तवन किया है, जैसे—

"अब तो हरीनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखनचोरा, नाम धर्‌यौ बैरागी।।
कित छाँड़ी वह मोहन मुरली, कित छाँड़ीं वे गोपी।
मूँड़ मुड़ाइ डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन-टोपी।।
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाके पाँव।
स्याम किसोर सोइ तन गोरा, चैतन्य जाको नाँव।।
पीतांबर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै।
गौर कृष्ण की दासी मीरां, रसना कृष्ण बसै।।"

इसी प्रकार मीरां बाई को कुछ विद्वानों ने वल्लभ-कुल की भी शिष्या माना है। इसका समाधान इस प्रकार हो जाता है कि रैदासजी के परवर्ती काल में होते हुए भी मीरां ने उनका पुण्य स्मरण 'सद्‌गुरु' के रूप में किया है, अथवा किसी रैदासी साधु के प्रति उनका गुरुभाव रहा हो।

रैदास के समसामयिक तथा परवर्ती संतों ने रैदास को एक बहुत बड़े हरिभक्त के रूप में स्वीकार किया था। स्वामी दादूदयाल के शिष्य रज्जबजी ने भगवद्-भक्ति के सँबंध में तो यहाँतक कहा है—

"आदि मिली जयदेव कूं, रैदास समानीं।"

रैंदासजी का प्रभाव दूर-दूरतक फैला हुआ था, और आज भी भारत के अनेक प्रदेशों में उनके पंथ के अनुयायी रविदासी लाखों की

संख्या में मिलते हैं। रैदासजी 'रविदास' तथा महाराष्ट्र में 'रोहिदास' नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

बानी-परिचय

रैदासजी की बानी के संबंध में नाभाजी की यह पंक्ति प्रसिद्ध है—

"सन्देह-ग्रन्थि-खंडन-निपुन बानि बिमल रैदास की।"

यह उनकी 'विमल' बानीं का ही प्रभाव था कि—

"बर्नाश्रम-अभिमान तजि पद-रज बंदहिं जासकी।"

महात्मा रैदास की बड़े ऊँचे घाट की बानी है। प्रेमपराभक्ति का कई शब्दों में बड़ा ही विशद निरूपण उन्होंने किया है। समता और सदाचार पर बहुत बल दिया है। भक्ति-रस का ऐसा सुन्दर परिपाक अन्यत्र कम देखने में आता है। खंडन-मंडन की ओर उनका ध्यान नहीं था। सत्य की शुद्ध निर्मल अभिव्यक्ति ही, अपरोक्षानुभूति ही उनका परम ध्येय था। भाषाने भी भाव का मूक अनुसरण किया है। अनेक जनपदों के शब्दों का उनकी बानी में समावेश हुआ है, फिरभी रस एकरस ही सर्बत्र प्रवाहित दीखता है।

आधार

१ श्री गुरु ग्रन्थ साहब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर

२ रैदास—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

३ भक्तमाल—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

४ भगवान रविदास की सत्य कथा—महात्मा रामचरण कुरील, कानपुर

रैदास

शब्द

भैरव

बिनु देखे उपजै नहिं आसा।
जो दीसै सो होइ बिनासा॥

शब्द

१. दीसै=दीखता है। निहकामु=निष्काम, कामना-रहित। रवै=रमण करता है,

बरन सहित जो जापै नामु।
सो जोगी केवल निहकामु॥
परचै रामु रवै जो कोई।
पारसु परसै न दुबिधा होई॥
सो मुनि, मन की दुबिधा खाइ।
बिनु द्वारे त्रैलोक समाइ॥
मन का सुभाव सब कोई करै।
करता होइ सु अनभै रहै॥
फल कारन फूली बनराइ।
फलु लागा तब फूल बिल्हाइ॥
ग्यानै कारन कर अभ्यासू।
ग्यान भया तहँ करमह नासू॥
घृत कारन दधि मथै सयान।
जीवत मुकत सदा निरबान॥
कहि रविदास परम बैराग।
रिदै रामु को न जपसि अभाग॥१॥

मलार

मिलत पियारो प्राननाथ कवनि भगति।
साध-संगति पाई परम गति॥
मैले कपरे कहाँ लउ धोवउँ॥
आवैगी नींद कहाँ लउ सोवउँ॥

प्रत्यक्ष अनुभव करता है। पारसु=ब्रह्मरस से तात्पर्य है। दुबिधा=द्वैतभाव। सो मुनि......खाइ=जिसके मन में द्वैतभाव का लेश भी नहीं रहा, उसे ही 'मुनि'......कहना चाहिए। बिनु......समाइ=उस मुनि को त्रिलोक का ज्ञान, बाह्य साधनों के बिना ही, प्राप्त हो जाता है। अनभै रहै=अनुभव-ज्ञान पर स्थित रहता है; अथवा, निर्भय रहता है। बनराइ=वृक्षावली। बिल्हाइ=लुप्त हो जाता है। निरबान=मुक्त। रिदै=हृदय में।

२. परमगति=मोक्ष। जोर्‍यो=सम्बन्ध जोड़ा। फाट्यो=बिछड़ गया। बनजि=व्यापार।

जोई-जोई जोर्‌यो सोई-सोई फाट्‌यो।
झूठै बनजि उठि ही गई हाट्‌यो॥
कहि रविदास भयो जब लेख्यो।
जोई-जोई कीन्यो सोई-सोई देख्यो॥२॥

बिलावल

जिहि कुल साधु बैसनौं होइ।
बरन अबरन रंक नहिं ईस्वर, बिमल बासु जानिये जग सोइ॥
बाँभन बैस सूद अरु ख्यत्री, डोम चंडाल मलेच्छ किन सोइ।
होइ पुनीत भगवंत-भजन ते आपु तारि तारै कुल होइ॥
धनि सु गाउँ धनि धनि सो ठाऊँ, धनि पुनीत कुटंब सभ लोइ।
जिनि पिया सार-रस तजे आन रस, होइ रसमगन डारे बिषु खोइ॥
पंडित सूर छत्रपति राजा, भगत बराबरि औरु न कोइ।
जैसे पुरैन-पात जल रहै समीप, भनि रविदास जनमे जगि ओइ॥३॥

राग सूही

सह की सार सुहागनि जानै।
तजि अभिमान सुख रलिया मानै॥
तनु मनु देइ न सुनै अंतर राखैं।
अवरा देखि न सुनै न माखै॥
सो कत जानै पीर पराई।
जाकै अन्तर दरद न पाई॥

हाट्‌यो=हाट, पेठ।

३. बैसनौं=वैष्णव, हरि-भक्त। ईस्वर=राजा से अभिप्राय है। ख्यत्री=क्षत्रिय। किन=क्यों न। लोइ=लोग। सार-रस=प्रेम-लक्षणा भक्ति से आशय है। आन-रस=बिषय-भोग। पुरैन-पात=कमल का पत्ता, जो जल में रहते हुए भी भींगता नहीं। जनमे जगि ओइ=जगत् में उसीका जन्म लेना सार्थक है।

४. सह=मिलन। सार=सेज का सुख; आनन्द-तत्त्व। सुख रलिया=एकाकार हो जाने का आनन्द। अवरा=अन्य। दुहागनि=अभागिनी। दुइ पखहीनो=लोक

दुखी दुहागनि दुइ पखहीनी।
जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी॥
राम-प्रीति का पंथ दुहेला।
संगि न साथी गवन अकेला॥
दुखिया दरदमंद दरि आया।
बहुतै प्यास जवाब न पाया॥
कहि रविदास सरनि प्रभु तेरी।
ज्यूँ जानहु त्यूँ करि गति मेरी॥४॥

सूही

जो दिन आवहिं सो दिन जाहीं।
करना कूच रहन थिरु नाहीं॥
संगु चलत हैं हम भी चलना।
दूरि गवनु सिर ऊपरि मरना॥
क्या तू सोया जाग अयाना।
तैं जीवन जगि सचु करि जाना॥
जिनि दिया सु रिजकु अंबरावै।
सभ घट भीतरि हाटु चलावै॥
करि बंदिगी छाँड़ि मैं-मेरा।
हिरदै नामु सम्हारि सवेरा॥
जनमु सिरानो पंथु न सँवारा।
साँझ परी दह दिसि अँधियारा॥
कह रविदास नदान दिवांने।
चेतसि नाहीं दुनिया फनखाने॥५॥

परलोक जिसके दोनों बिगड़ गये। नाह=नाथ, स्वामी। दुहेला=कठिन, दुःखदायी।

५. रिजक=रोज़ी, जीविका। अंबरावै=जुटाता है। हाटु=पेंठ, लेन-देन। सम्हारि=स्मरण कर। सवेरा=जल्दी। दह=दस। नदान=नादान, मूर्ख। फनखाने=नाशवान्।

धनाश्री

चित सिमरन करौ नैन अवलोकनो,
स्रवन बानी सुजसु पूरि राखौं ॥
मनु सु मधुकरु करौं चरण हिरदे धरौं
रसन अमृत रामनाम भाखौं ॥
मेरी प्रीति गोबिंद सिउ जनि घटै ।
मैं तो मोलि महँगी लई जीउ सटै ॥
साध संगति बिना भाव नहिं उपजै,
भाव बिन भगति न होय तेरी ॥
कहै रविदास एक बेनती हरि सिउ
पैज राखहु राजाराम मेरी ॥६॥

जैतिश्री

नाथ, कछुवै न जानउँ ।
मनु माया कै हाथि बिकानउँ ॥
तुम कहियत हौं जगतगुर स्वामी ।
हम कहियत कलिजुग के कामी ॥
इन पंचन मेरो मन जु बिगार्यो ।
पलु पलु हरिजी ते अंतरु पार्यो ॥
जित देखौं तित दुख की रासी ।
अजौं न पत्याइ निगम भये साखी ॥
इन दूतन खलु बध करि मार्यो ।
बड़ो निलाजु अजँहु नहिं हार्यो ॥
कहि रविदास कहा कैसे कीजै ।
बिनु रघुनाथ सरनि काकी लीजै ॥७॥

---

६. पूरि राखौं=भरलूँ । रसना=रसन, जिह्वा । जीव सटै=प्राणों के मोल । पैज=टेक ।

२. अंतर पार्यौ=भेद डाल दिया । पत्याइ=विश्वास करता है । निगम=वेद । साखी=साक्षी, गवाह ।

गौरी

मेरी संगति पोच, सोच दिनु-राती।
मेरा करम-कुटिलता जनमु कुभाँती ॥
राम गुसइयाँ जीउ के जीवना।
मोहिं न बिसारहु मैं जनु तेरा ॥
हरहु बिपति जन करहु सुभाई।
चरण न छाँड़ौं सरीर कल जाई।
कहि रविदास परौं तेरी साभा।
बेगि मिलहु जन करि न बिलाँबा ॥८॥

रामकली

गाइ गाइ अब का कहि गाऊँ।
गावनहार को निकट बताऊँ ॥
जबलगि है इहि तन की आसा, तबलगि करै पुकारा।
जब मन मिल्यौ आस नहिं तन की, तब को गावनहारा ॥
जबलगि नदी न समुँद्र समावै, तबलगि बढ़ै हँकारा।
जब मन मिल्यौ रामसागर सौं, तब यह मिटी पुकारा ॥
जबलगि भगति मुकति की आसा, परमतत्व सुनि गावै।
जहँ-जहँ आस धरत है इहि मन, तहँ-तहँ कछू न पावै ॥
छाँड़ै आस निरास परम पद, तब सुख सति कर होई।
कहि रैदास जासौं और करत है, परमतत्व अब सोई ॥

राग रामकली

राम-भगत को जन न कहाऊँ, सेवा करूँ न दासा।
जोग जग्य गुन कछू न जानूँ, ताते रहूँ उदासा ॥
भगत भया तो चढ़ै बड़ाई, जोग करूँ जग मानै।
जो गुन भया तो कहैं गुनी जन, गुनी आपको जानै ॥

---

८. पोच=नीच। कल=भले कल ही।

९. हँकारा=अहंकार। सति कर=सत्य का, निश्चय ही। निरास=तृष्णा-रहित, अनासक्त।

ना मैं ममता मोह न महिया, ये सब जाहिं बिलाई ।
दोजख भिस्त दोउ सम करि जानूँ, दुहुँ ते तरक है भाई ।।
मैं अरु ममता देखि सकल जग, मैं से मूल गवाँई ।
जब मन ममता एक-एक मन, तबहि एक है भाई ।।
क्रस्न करीम राम हरि राघव, जबलगि एक न पेखा ।
बेद कितेब कुरान पुरानन, सहज एक नहिं देखा ।।
जोइ-जोइ पूजिय सोइ-सोई काँची, सहज भाव सति होई ।
कहि रैदास मैं ताहि को पूजूँ, जाके ठाँव नाँव नहिं होई ।।१०।।

राग रामकली

नरहरि, चंचल है मति मेरी, कैसे भगति करूँ मैं तेरी ।
तूँ मोहिं देखै हौं तोहिं देखूँ, प्रीति परस्पर होई ।
तूँ मोहिं देखै तोहिं न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई ।।
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना ।
गुन सब तोर मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना ।।
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा ।
कहि रैदास क्रस्न करुनामय, जै जै जगत-अधारा ।।११।।

राग रामकली

भगती ऐसी सुनहु रे भाई । आइ भगति तब गई बड़ाई ।।
कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हें ।
कहा भयो जे चरन पखारे, जौलौं तत्त्व न चीन्हें ।।
कहा भयो जे मूँड़ मुँड़ायो, कहा तीर्थ ब्रत कीन्हें ।
स्वामी दास भगत अरु सेवक, परम तत्त्व नहिं चीन्हें ।।

---

१०. बड़ाई=महिमा । महिंया=मथा । भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग । तरक=असहकार, त्याग ।

११. रमसि=रमता है, व्यापक है । कृत=किया हुआ । असमझि=अज्ञान, भ्रान्ति ।

१२. पिपिलक=पिपीलिका, चींटी । धूल में शकर मिल गई हो तो चींटी ही शकर को अलग करके खा सकती है, यह कार्य हाथी नहीं कर सकता । रस-प्राप्ति के

कहि रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सों पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक ह्वै चुनि खावै ॥१२॥

राग गौड़ी

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ। फल अरु फूल अनूप न पाऊँ॥
थनहर दूध जो बछरू जुठारी। पुहुप भँवर जल मीन बिगारी॥
मलयागिरि बेधियो भुअंगा। बिष अंम्रित दोउ एकै संगा॥
मनही पूजा मनही धूप। मनही सेऊँ सहज सरूप॥
पूजा अरचा न जानूँ तेरी। कहि रैदास कवन गति मेरी ॥१३॥

राग सोरठ

जो तुम तोरौ राम, मैं नहिं तोरौं।
तुम सों तोरि कवन सों जोरौं॥
तीरथ बरत न करौं अँदेसा। तुम्हरे चरनकमल का भरोसा॥
जहँ-जहँ जावौं तुम्हरी पूजा तुम-सा देव और नहिं दूजा॥
मैं अपनो मन हरि सों जोर्‌यो। हरि सों जोरि सबन सों तोर्‌यो॥
सबहीं पहर तुम्हारी आसा। मन क्रम बचन कहै रैदासा ॥१४॥

थोथो जनि पछोरौ रे कोई।
सोई रे पछोरौ जा में निज कन होई॥
थोथी काया थोथी माया। थोथा हरि बिन जनम गँवाया॥
थोथा पंडित थोथी बानी। थोथी हरि बिन सबै कहानी॥
थोथा मंदिर भोग बिलासा। थोथी आन देव की आसा॥
साँचा सुमिरन नाम बिसासा। मन बच कर्म कहै रैदासा ॥१५॥

राग बिलावल

मैं बेदनि कासनि आखूँ,
हरि बिन जिव न रहै कस राखूँ॥

लिए नन्हें-से-नन्हा बनने की आवश्यकता है।

१३. थनहर=थन से दुहा हुआ। पुहप=पुष्प, फूल। मलयागिरि=मलयगिरि का चन्दन।

१५. थोथो=पोला, निस्सार। पछोरना=फटकना, सूप में रखकर अन्न साफ़ करना। निजकन=आत्म-सुख-कणों से आशय है। बिसासा=विश्वास।

जिव तरसै ल्यौं आसरु तेरा, करहु सँभाल न सुर मुनि मेरा ।।
बिरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै ।।
सखी सहेली गरब गहेली, पिउ की बात न सुनहु सहेली ।
मैं रे दुहागिनि अघ करि जानी, गया सो जोबन साध न मानी ।।
तूँ सांईं औ साहिब मेरा, खिजमतगार बन्दा मैं तेरा ।
कहि रैदास अँदेसा येही, बिन दरसन क्यों जिवहि सनेही ।।१६।।

राग कानड़ा

चल मन, हरि-चटसाल पढ़ाऊँ ।
गुरु की साटि, ग्यान का अच्छर,
बिसरै तौ सहज समाधि लगाऊँ ।।
प्रेम की पाटी, सुरति की लेखनि,
ररौ ममौ लिखि आँक लखाऊँ ।
इहि बिधि मुक्त भये सनकादिक,
रिदै बिचार-प्रकास दिखाऊँ ।।
कागद-कँवल,मति मसि करि निर्मल,
बिन रसना निसिदिन गुन गाऊँ ।
कहि रैदास, राम भजु भाई,
सन्त साखि दे बहुरि न आऊँ ।।१७।।

राग गौड़

आज दिवस लेऊँ बलिहारा ।
मेरे घर आया राम का प्यारा ।।टेक।।
आँगन बँगला भवन भयो पावन ।
हरिजन बैठे हरिजस गावन ।।

---

१६. वेदनि=वेदना, पीड़ा । आखूँ=कहूँ । भोज=भोजन । आसरु=आश्रय, शरण । दुहागिनि=अभागिनी । अघ करि जानी=पाप करना ही जाना ।

१७. चटसाल=पाठशाला । साटि=छड़ी । पाटी=तख्ती । ररौ ममौ=रकार, मकार यही दो अक्षर अर्थात् राम । कँवल=हृदय-कमल से आशय है । मति-मसि=बुद्धिरूपी स्याही । बहुरि न आऊँ=फिर जन्म न लूँ ।

करूँ डँडवत, चरन पखारूँ।
तन मन धन उन ऊपरि वारूँ॥
कथा कहैं अरु अर्थ बिचारैं।
आप तरैं, औरन कों तारैं॥
कहि रैदास मिलैं निज दासा।
जनम-जनम कै काटै पासा॥१८॥

राग धनाश्री

मैं का जानूँ देव, मैं का जानूँ।
मन माया के हाथ बिकानूँ॥
चंचल मनुवाँ चहूँदिसि धावै।
पाँचों इन्द्री थिर न रहावै॥
तुम तौ आहि जगतगुरु स्वामी।
हम कहियत कलिजुग के कामी॥
लोक बेद मेरे सुकृत बड़ाई।
लोक-लीक मोपै तजी न जाई॥
इन मिलि मेरा मन जो बिगार्यो।
दिन-दिन हरि सों अंतर पार्यो॥
सनक सनंदन महामुनि ग्यानी।
सुक नारद अरु ब्यास बखानी॥
गावत निगम उमापति स्वामी।
सेस सहसमुख कीरति-गामी॥
जहँ जाऊँ तहँ दुख की रासी।
जो न पतियाइ साधु हैं साखी॥
जमदूतन बहु बिधि करि मार्यो।
तऊ निलज अजहूँ नहिं हार्यो॥

---

१८. पासा=(कर्म के) फंदे।

१९. लीक=मर्यादा, नियम। उमापति=शिव। गामी=यहाँ 'गायक' यह अर्थ लिया

हरिपद-बिमुख आस नहिं छूटै।
तातें तृस्ना दिन दिन लूटै॥
बहु विधि करम लिये भटकावै।
तुम्हें दोष हरि कौन लगावै॥
केवल रामनाम नहिँ लीया।
संतत बिषय-स्वाद चित दीया॥
कहि रैदास कहाँलगि कहिये।
बिनु रघुनाथ बहुत दुख सहिये॥१६॥

राग धनाश्री

दरसन दीजै, राम दरसन दीजै।
दरसन दीजै, बिलँब न कीजै॥
दरसन तोरा जीवन मोरा। बिन दरसन क्यूँ जिवै चकोरा॥
माधो सतगुरु सब जग चेला। अब के बिछुरे मिलन दुहेला॥
धन जोबन की झूठी आसा। सत सत भाषै जन रैदासा॥२०॥

आरती

अब कैसे छूटै नामरट लागी।
प्रभुजी, तुम चन्दन हम पानी। जाकी अँग-अँग बास समानी॥
प्रभुजी, तुम घनबन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिनराती॥
प्रभुजी, तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सुहागा॥
प्रभुजी, तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा॥२१॥
प्रभुजी, तुम संगति सरन तिहारी।
जग-जीवन राम मुरारी॥
गली-गली को जल बहि आयो, सुरसरि जाय समायो।
संगति के परताप महातम, नाम गंगोदक पायो॥

जायेगा। संतत=सदा।
२१. बास=सुगन्ध।
२२. फनि=साँप। विषै=विष ही। निपजै=पैदा होता है। अधिकाई=बड़ाई,

स्वाँति-बूँद बरसै फनि ऊपर, सोहि बिषै होइ जाई।
ओहि बूँद कै मोती निपजैं, संगति की अधिकाई॥
तुम चन्दन हम रेंड बापुरे, निकट तुम्हारे आसा।
संगति के परताप महातम, आवै बास सुबासा॥
जाति भी ओछी करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
नीचै से प्रभु ऊँच कियो है, कहि रैदास चमारा॥२२॥

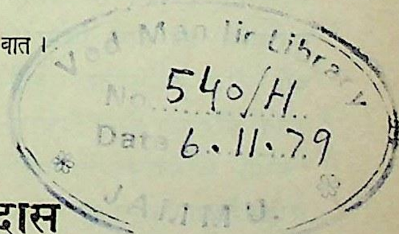
साखी

हरि-सा हीरा छाँड़िकै, करैं आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास॥१॥
अंतरगति राचैं नहीं, बाहर कथैं उदास।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास॥२॥
जा देखे घिन ऊपजै, नरककुण्ड में वास।
प्रेम-भगति सौं ऊधरे, प्रगटत जन रैदास॥३॥
रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजू सुमिरिये, छाँड़ि सकल प्रतिवाद॥४॥
सब सुख पावैं जासुतें, सो हरिजू को दास।
कोउ दुख पावैं जासुतें, सो न दास हरिदास॥५॥

महिमा। रेंड=रेंडी, अरंड। कसब=पेशा।

साखी

२. राचैं=प्रेम से रंगे। उदास=वैराग्य की बात।
३. ऊधरे=उद्धार हो गया।
४. प्रतिवाद=बकवास, झन्झट।



धनी धरमदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अनुमानतः १४६० वि०
जन्म-स्थान—बाँधोगढ़

जाति—बनिया

गुरु—कबीरदास

चोला-त्याग-संवत्—अनुमानतः १६०० वि०

धरमदासजी बाँधोगढ़ के एक बड़े धनी व्यापारी थे। भजन-पूजन, दान-पुण्य और तीर्थाटन पर इनकी भारी श्रद्धा थी। नित्य-नियम से शालिग्राम की पूजा करते और ब्राह्मणों को विधिवत् दान देते थे। भगवान् का कीर्तन भी घर पर नित्य होता था।

कथा है कि एक बार मथुरा में कबीर साहब से इनकी भेंट हुई। मूर्तिपूजा और तीर्थयात्रा का कबीर साहब ने खंडन किया, और निर्गुण निराकार की उपासना का मंडन। कबीर साहब की बात इनके मन में कुछ-कुछ तो धँसी, पर पूरी तरह नहीं। दूसरी बार धरमदासजी कबीर साहब से काशी में जाकर मिले, और संत-मत का पूरा उपदेश पाया। सतगुरु ने उनके अन्तर पर पड़ा पर्दा हटा दिया। 'अमर-सुखनिधान' में विस्तार से इस प्रसंग का वर्णन आया है। लिखा है कि काशी में कबीर साहब जिंद के रूप में इनसे मिले थे, किन्तु संतमत का ऊँचा उपदेश सुनकर अन्त में इन्होंने उनको पहचान लिया। कबीर साहब ने जब इन्हें चेताया उस समय की कुछ चौपाइयाँ उक्त ग्रन्थ में से हम नीचे देते हैं—

धरमदास हरषित मन कीन्हा। बहुरि पुरुष मोहिं दरसन दीन्हा॥
मन अपने तब कीन्ह विचारा। इन कर ग्यान महा टकसारा॥
दोइ दीन के करता कहाई। इन कर भेद कोउ नहिं पाई॥
इतना कहि मन कीन्ह विचारा। तब कबीर उन ओर निहारा॥
"आओ धरमदास पगु धारो। चिहुँकि चिहुँकि तुम काहे निहारो॥
कहिये छिमा कुसल हौ नीके। सुरत तुम्हार बहुत हम भींके॥
धरमदास हम तुमकों चीन्हा। बहुत दिनन में दरसन दीन्हा॥
बहुत ग्यान कहसी हम तुमहीं। बहुरिके अब तुम चीन्हों हमहीं॥
तुम तो भक्त हम जिंद फकीरा। सुधि करि देखौ सतमत धीरा॥

भली भई दरसन मिले, बहुरि मिले तुम आय।
जो कोऊ मोसों मिलै, सो जुग बिछुरि न जाय॥"

धरमनिदास हिये सुख भरे। सनमुख धाय पायँ जा परे॥
दयासिंधु चितये भरि नैना। धरमदास अंकहि भरि लीना॥
पाई सत्तधाम कै बाटा। सत्त सब्द कै खुले कपाटा॥

धरमदास ने अपनी सारी धन-संपत्ति लुटादी। उन्हें अब वह अखूट धन मिल गया, जो कितना ही खरचा दिन-दिन बढ़ता ही गया। धनी धरमदास का अब पलटकर यह व्यापार हो गया—

"हम सत्तनाम के बैंपारी।
कोइ-कोइ लादै काँसा-पीतल, कोइ-कोइ लौंग सुपारी।
हम तो लाद्या नाम धनी का, पूरन खेप हमारी॥
पूँजी न टूटे नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी।
हाट जगाती रोकि न सकिहै, निर्भय गैल हमारी॥
मोती बिंदु घटहि में उपजै, सुकिरत भरत कोठारी।
नाम-पदारथ लाद चला है, धरमदास बैंपारी॥"

कबीर साहब जब संवत् १५७५ में सत्तलोक को सिधारे तब उनकी गद्दी और बीजक आदि ग्रन्थों का अधिकारी धनी धरमदासजी को बनाया गया।

बानी-परिचय

प्रेम-प्रीति, विरह और शब्द-रहस्य इन अंगों में धरमदासजी ने सद्गुरु कबीर की बानी के साथ तादात्म्य-सा किया है। बानी बड़ी सरल और सरस है। कठोरता का कहीं लेश भी नहीं। खंडन के फेर में न पड़कर संत-मत की सात्त्विकी साधना से उपलब्ध प्रेम-तत्व का विशद निरूपण किया है। सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना इनकी बड़ी सुन्दर तथा मार्मिक है।

मंगल, होली और सोहर के गीत इनके बड़े ही हृदयस्पर्शी है। "सूतल रहलौं मैं सखियाँ, तो विषकर आगर हो; सतगुरु दिहलैं जगाइ पायौं सुख-सागर हो"—यह मंगल तो इनका अत्यंत प्राणवान् तथा

रहस्यात्मक है ।

भाषा इनकी पूर्वी हिन्दी का अच्छा परिमार्जित रूप है । उसमें ओज भी है, और माधुर्य भी । लोकभाषा का उसमें हम अच्छा निखरा रूप पाते हैं ।

धरमदासजी की बानी सचमुच बड़े ऊँचे घाट की बानी है । कबीर साहब की उज्ज्वल प्रसादी का इस अति गहरी बानी को विमल प्रतिबिम्ब कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी ।

आधार

१. धनी धरमदासजी के शब्द—बेलिवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२. हिन्दी-साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल

धनी धरमदास

गुरु मिले अगम के बासी ॥
उनके चरन कमल चित दीजे, सतगुरु मिले अबिनासी ।
उनकी सीत प्रसादी लीजै, छूटि जाय चौरासी ॥
अमृत बुंद झरै घट भीतर, साध-संतजन लासी ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सार सब्द मन बासी ॥१॥

नाम-रस ऐसा है भाई ॥
आगे आगे दहि चलै, पाछे हरियर होइ ।
बलिहारी वा बृच्छ की, जड़ काटे फल होइ ॥
अति कडुवा खट्टा घना रे, वाको रस है भाई ।
साधत साधत साध गये हैं, अमली होय सो खाई ॥

१. अगम=वह लोक, जहाँ पहुँचना महाकठिन है । सीत=गिरा-पड़ा जूठन चौरासी=८४ लाख योनियों का आवागमन । लासी=चाशनी (साधु-सन्तों के लिए) बासी=रहनेवाला, अनुरक्त ।

२. आगे-आगे दहि चलै=आगे-आगे कर्मों को जलाता जाता है । पाछे हरियर होइ=पीछे हरा होता जाता है, प्रेम की हरियाली बढ़ाता जाता है । जड़ काटे फल होइ=बंधन की मूल आसक्ति कट जाने पर मुक्ति-फल लाता है । अमली=

सूँघत के बौरा भये हो, पीयत के मरि जाई।
नाम-रस्स सो जन पिये, धड़ पर सीस न होई॥
संत जवारिस सो जन पावै, जाको ग्यान परगासा।
धरमदास पी छकित भये हैं, और पिये कोइ दासा॥२॥

हम सत्तनाम के बैपारी॥
कोइ कोइ लादै काँसा पीतल, कोइ कोइ लौंग सुपारी।
हम तौ लाद्यौ नाम धनी को, पूरन खेप हमारी॥
पूँजी न टूटै नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी।
हाट जगाती रोक न सकिहै, निर्भय गैल हमारी॥
मोती बुंद घटहिं में उपजै, सुकिरत भरत कोठारी।
नाम-पदारथ लाद चला है, धरमदास बैपारी॥३॥

थोरे दिन की जिंदगी, मन चेत गँवार॥
कागद कै तन पूतरा, डोरा साहेब हाथ।
नाना नाच नचावही, नाचै संसार॥
काचि माटी कै घइलिया, भरि लै पनिहार।
पानी परत गल जावही, ठाड़ी पछिताय॥
जस धूआँ कै धरोहरा, जस बालू कै रेत।
हवा लगे सब मिटि गये, जस करतब प्रेत॥
ओछे जल कै नदिया हो, बहै अगम अपार।
उहाँ नाव नहिं बेरा हो, कस उतरब पार॥
धरमदास गुरु समरथ हो, जाको अदल अपार।
साहेब कबीर सतगुरु मिले, आवागवन निवार॥४॥

अनुराग-रस का अभ्यास। बौरा=बावला। सीस=अहंता से तात्पर्य है। जवारिस=एक औसधि। परगासा=प्रकाश।

३. खेप=लदान। न टूटै=घटती नहीं है। बनिज=व्यापार। जगाती=कर उगाहने-वाला, कर्मों का लेखा माँगनेवाला। गैल=राह। सुकिरत=सत्कर्म, पुण्य।

४. डोरा=सूत्र। घइलिया=गगरी, नाशवान देह से आशय है। धरोहरा=ऊँचा मीनार। ओछे=थोड़े। बेरा=बेड़ा। अदल=शासन।

कहो केते दिन जियबौ हो, का करत गुमान ।।टेक।।
कच्चे बाँसन का पिंजरा हो, जामें पवन समान ।
पंछी का कौन भरोसा हो, छिन में उड़ि जान ॥
कच्ची माटी कै घडुवा हो, रस-बूँदन सान ।
पानी बीच बतासा हो, छिन में गलि जान ।।
कागद की नइया बनी, डोरी साहेब हाथ ।
जौने नाच नचैहैं हो, नाचब वोही नाच ।।
धरमदास एक बनिया हो, करै झूठी बजार ।
साहेब कबीर-बनजारा हो, करैं सत बैपार ।।५।।
सतगुरु आवौ हमरे देस, निहारौं बाट खड़ी ।।
वाहि देस की बतियाँ रे, लावैं संत सुजान ।
उन संतन के चरन पखारौं, तन मन करि कुरबान ।।
वाही देस की बतियाँ हमसे, सतगुरु आन कही ।
आठ पहर के निरखत हमरे, नैन की नींद गई ।।
भूल गई तन मन धन सारा, ब्याकुल भया सरीर ।
बिरह पुकारै बिरहनी, ढरकत नैनन नीर ।।
धरमदास के दाता सतगुरु, पल में कियो निहाल ।
आवागवन की डोरी कटि गई, मिटे भरम-जंजाल ।।६।।
मैं हेरि रहूँ नैना सो नेह लगाई ॥
राह चलत मोहि मिलि गये सतगुरु, सो सुख बरनि न जाई ।
देइ के दरस मोहि बौराये, लै गये चित्त चुराई ।।
छबि सत दरस कहाँलगि बरनौं, चाँद सुरज छपि जाई ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, पुनि पुनि दरस दिखाई ।।७।।

---

५. गुमान=गर्व । समान=समाया हुआ है । पंछी=प्राण-पक्षी । घडुवा=घड़ा । रस-बूँदन-सान=रज-वीर्य या रक्त की बूँदों से सानकर । बतासा=बुलबुला । बाजार=वनिज-व्यापार । बनजारा=सौदागर ।

६. बतियाँ=खबरें । कुरबान=न्यौछावर । निहाल=पूर्णकाम, सारी इच्छाएँ पूरी कर देना । आवागमन=जन्म-मरण ।

७. बौराये=बावला बना दिया । छपि जाई=निस्तेज पड़ गये ।

साहेब, तेरी देखौं सेजरिया हो ॥
लाल महल के लाल कँगूरा, लालिनि लागि किवरिया हो ॥
लाल पलंग के लाल बिछौना, लालिनि लागि झलरिया हो ॥
लाल साहेब की लालिनी मूरत, लालि लालि अनुहरिया हो ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, गुरु के चरन बलिहरिया हो ॥८॥*

पिया बिन मोहिँ नींद न आवै ॥
खन गरजै खन बिजुली चमकै, ऊपर से मोहिं झाँकि दिखावै।
सासु ननद घर दारुनि आहैं, नित मोहि बिरह सतावै॥
जोगिन ह्वैके मैं बन-बन ढूँढूँ, कोऊ न सुधि बतलावै।
धरमदास बिनवै कर जोरी, कोई नेरे कोई दूर बतावै॥९॥

भगति-दान गुरु दीजिये देवन के देवा हो।
चरनकँवल बिसरौं नहीं, करिहौं पदसेवा हो॥
तिरथ बरत मैं ना करौं, ना देवल पूजा हो।
तुमहिं ओर निरखत रहौं, मेरे और न दूजा हो॥
आठ सिद्धि नौ निद्धि हैं बैकुण्ठ-निवासा हो।
सो मैं ना कछु माँगहूँ, मेरे समरथ दाता हो॥
सुख सम्पति परिवार धन, सुन्दर वर नारी हो।
सुपनेहुँ इच्छा ना उठै, गुरु आन तुम्हारी हो॥
धरमदास की बीनती साहेब सुनि लीजै हो।
दरसन देहु पट खोलिकै, आपन करि लीजै हो॥१०॥
बिन दरसन भई बावरी, गुरु द्यो दीदार॥टेक॥

---

८. सेजरिया=सेज। किवरिया=किवाड़। झलरिया=झालर। अनुहरिया=रूप।
९. खन=क्षण में। दारुनि=निठुर स्वभाव की। नेरे=पास। सुधि=पता।
१०. तिरथ=तीर्थ-यात्रा। बरत=व्रत। आन तुम्हारी=तुम्हारो सौगन्द। पट खोलिकै=परदा हटाकर।

---

* कबीर साहब की इस साखी से मिलाइए—
लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

ठाढ़ि जोहौं तोरी बाट मैं, साहेब चलि आवौ।
इतनी दया हम पर करौ, निज छबि दरसावौ॥
कोठरी रतन जड़ाव की, हीरा लागे किवार।
ताला कुंजी प्रेम की, गुरु खोलि दिखावौ॥
बंदा भूला बंदगी, तुम बकसनहार।
धरमदास अरजी सुनो, कर द्यो भव-पार॥११॥

मैं तौ तोरे भजन-भरोसे अबिनासी॥टेक॥
तीरथ बरत कछू नहिं करहूँ, वेद पढ़ौं नहिं कासी।
जंत्र मंत्र टोटका नहिं जानौं, निसदिन फिरत उदासी॥
यहि घट भीतर बधिक बसत है, दिये लोभ की टाटी।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरनन दासी॥१२॥

अब मोहिं दरसन देहु कबीर॥टेक॥
तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत सरीर।
अमृत भोजन हंसा पावै, सब्द-धुनन की खीर॥
जहँ देखौं जहँ पाट पटंबर, ओढ़न अम्बर चीर।
धरमदास की अरज गोसाँई, हंस लगावो तीर॥१३॥

साहेब मोहिं दरसन दीजे हो, करुना-निधि मिहर करीजे हो।
पपिहा के चित स्वाँति बसै, भावै नहिं जल दूजा हो।
जैसे काग जहाज चढ़े, वाकों और न सूझा हो॥
बारबार बिनती करूँ, मेरी अरज सुनीजे हो।
भवसागर से काढ़िके, अपना करि लीजे हो॥

---

११. द्यो=दो। दीदार=दर्शन। दरसावो=दिखाओ। बंदगी=सेवा। बकसनहार=माफ करनेवाले।

१२. उदासी=विरक्त, लापर्वाह। बधिक=बहेलिया।

१३. हंसा=ज्ञानस्वरूप मुक्त जीवात्मा। खीर=क्षीर, दूध। पाटंबर=रेशमी वस्त्र। अंबर=वस्त्र। लगावो तीर=पार उतारदो।

१४. पपिहा=चातक। स्वाँति=स्वाति-नक्षत्र में बरसा हुआ जल। सुरत=सुध। धर्मनि=धरमदास को।

सत्त लोक से सुरत करी, तब जग में आये हो।
जम से जीव छोड़ायके, धर्मनि मन भाये हो ॥१४॥

मिहरवान है साहेब मेरा। दिलभर दरसन पाऊँ तेरा॥
तुम दाता मैं सदा भिखारी। देव दीदार जाउँ बलिहारी॥
करूँ बंदगी खिजमत दीजै। बकसो चूक दया बहु कीजै॥
सेवक तें बिगरै सौ बारा। सतगुरु साहेब लेव उबारा॥
सेवक-ओगुन साहेब जानै। साहेब मन में ना गिल्यानै॥
धरमदास लई तुम्हरि पनाह। अगले पछिले बकस गुनाह ॥१५॥

झरि लागै महलिया, गगन घहराय ॥टेक॥
खन गरजै खन बिजुली चमकै,लहर उठै सोभा बरनि न जाय।
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम अनंद होइ साध नहाय॥
खुली किवरिया मिटी अँधियरिया, धन सतगुरु जिन दिया है लखाय।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय ॥१६॥

मंगल

सतगुरु के उपदेस, फिरो धन बावरी।
उठि चलो आपन देस, इहै भल दाव री॥
हम कहि दिया है सनेस, तुम्हारे पीव का।
बिनु समुझे नहिं काज, आपने जीव का॥
जुगन जुगन हम आइ कहा समुझाइकै।
बिनु समुझे धनि परिहौ, कालमुख जाइकै॥

---

१५. दीदार=दर्शन। खिजमत=खिदमत, सेवा। बकसो=क्षमा करो। ना गिल्यानै=घृणा नहीं होती है। पनाह=शरण।

१६. झरि...घहराय=निर्विकल्प शून्यावस्था में अमृत की झड़ी लग रही है और अनहद नाद हो रहा है। खुली किवरिया=माया द्वारा डाला हुआ परदा हट गया। अँधियरिया=अविद्या का अंधकार।

१७. फिरो= संसारी मार्ग से लौट पड़ो। दाव=अवसर। सनेस=संदेश। काज=लाभ। जुगन...समुझाइकै=हरयुग में सतगुरु के शब्द द्वारा जगत् को चेताया

काम क्रोध मद लोभ, छाँड़ु सब दुंद रे।
का सोवै दिन-रैन, बिरहिनी जागु रे॥
भवसागर की आस, छाँड़ु सब फंद रे।
फिरि चलु आपन देस, यही भल रंग रे॥
सुन सखि पिय कै रूप, तो बरनत ना बने।
अजर अमर तो देस, सुगंध सागर भरे॥
फूलन सेज सँवार, पुरुष बैठ जहाँ।
ढुरै अग्र कै चंवर, हंस राजै जहाँ॥
कोटिन भानु अंजोर, रोम एक में कहा।
ऊगे चन्द्र अपार, भूमि सोभा जहाँ॥
सेत बरन वह देस, सिंहासन सेत है।
सेत छत्र सिर धरे, अभय पद देत है॥
करो अजपा कै जाप, प्रेम उर लाइये।
मिलो सखी सत पीव, तो मंगल गाइये॥
जुगन जुगन अहिवात, अखंड सो राज है।
पिय मिले प्रेमानंद, तो हंस-समाज है॥
कहैं कबीर पुकार, सुनो धरमदास हो।
हंस चले सतलोक, पुरुष के पास हो॥१७॥
सतगुरु सरन में आइ, तो तामस त्यागिये।
ऊँच नीच कहि जाय, तो उठि नहिं लागिये॥
उठि बोलैं रारै रार, सो जानो नींच है।
जेहि घट उपजै क्रोध, अधम अरु नीच है॥

है। धन=सखी, जीवात्मा से आशय है। अजर=जो जीर्ण न हो, नित्य एकरस। पुरुप=परमपुरुष परमात्मा। अग्र कै=आगे से। हंस=मुक्त जीवात्माएँ। अंजोर=प्रकाश। ऊगे=उदित हुए। सेत बरन=शुभ्र, निर्मल। अजपा=जो जप वाणी से न होकर हर सांस में सुरत से होता रहता है। अहिवात=सोहाग।

१८ तामस=क्रोध। ऊँच-नीच=भला-बुरा। नहिं लागिये=मुहँ न लगे, प्रत्युत्तर न

माला वाके हाथ, कतरनी काँख में।
सूझै नाहीं आगि, दबी है राख में॥
अंमृत वाके पास, रुचै नहिं राँड को।
स्वान को यही सुभाव, गहै निज हाड़ को॥
का भे बात बनाये, परचै नहिं पीव सों।
अंतर की बदफैल, होइ का जीव सों॥
कहैं कबीर पुकारि, सुनो धरम आगरा।
बहुत हंस लै साथ, उतरो भवसागरा॥१८॥

सूतल रहलौं मैं सखियाँ, तो विष कर आगर हो।
सतगुरु दिहलै जगाइ, पायौं सुखसागर हो॥
जब रहली जननी के ओदर, परन सम्हारल हो।
जबलौं तन में प्रान, न तोहि बिसराइब हो॥
एक बुंद से साहेब, मंदिल बनावल हो।
बिना नेंव के मंदिल, बहु कल लागल हो॥
इहवाँ गाँव न ठाँव, नहीं पुर पाटन हो।
नाहिन बाट बटोही, नहीं हित आपन हो॥
सेमर है संसार, भुवा उधराइल हो।
सुन्दर भक्ति अनूप, चले पछिताइल हो॥
नदी बहै अगम अपार, पार कस पाइब हो।
सतगुरु बैठे मुख मोरि, काहि गोहराइब हो॥

दे। रारै रार=लताई ही लड़ाई से पैदा होता है। घींच=भगड़ा बढ़ानेवाला। काँख=बगल। राँड को=अभागा। परचै=परिचय, पहचान। बदफैल=कुकर्मी। आगरा=आगर, खान।

१६. विषकर आगर=गाफिल पड़े रहना। विष की खान; या प्रियतम के प्रति अचेत रहना मरण था। दिहलै जगाइ=चेता दिया। ओदर=उदर, गर्भ। परन=प्रण, प्रतिज्ञा। सम्हारल=ध्यान रखा। विसराइब=भूलूँगा। मंदिल=मंदिर; शरीर से तात्पर्य है। बूँद से=वीर्य-विन्दु से। नेंव=नींव, बुनियाद। पाटन=नगर। हित=हितू, प्रिय। उधराइल=उधेड़कर उड़ गया। गोहराइब=पुका-

सत्तनाम गुन गाइब, सत ना डोलाइब हो।
कहैं कबीर धरमदास, अमर घर पाइब हो ॥१९॥
धनुष-बान लिये ठाढ़, जोगिनि एक माया हो।
छिनहिं में करत बिगार, तनिक नहिं दाया हो ॥
झिरि-झिरि बहै बयार, प्रेम-रस डोलै हो।
चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो ॥
पिया पिया करत पुकार, पिया नहिं आया हो।
पिय बिन सून मंदिलवा, बोलन लागे कागा हो ॥
कागा हो तुम का रे, कियो बटवारा हो।
पिया-मिलन की आस, बहुरि ना छूटहि हो ॥
कहैं कबीर धरमदास, गुरू संग चेला हो।
हिलिमिलि करो सतसंग, उतरि चलो पारा हो ॥२०॥

सोहर

कहँवाँ से जीव आइल, कहँवाँ समाइल हो।
कहँवाँ कइल मुकाम, कहाँ लपटाइल हो ॥
निरगुन से जिव आइल, सगुन समाइल हो।
कायागढ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो ॥
एक बुंद से काया-महल उठावल हो।
बुंद परे गलि जाय, पाछे पछितावल हो ॥
हंस कहै, भाई सरवर, हम उड़ि जाइब हो।
मोर तोर एतन दिदार, बहुरि नहिं पाइब हो ॥
इहवाँ कोइ नहिं आपन, केहि संग बोलै हो ॥
बिच तरवर मैदान, अकेला हंस डोलै हो ॥

रूँगा। सत ना डोलाइब हो=सत्य पर से न डिगूँगा।
२०. बिगार=विनाश। मंदिलवा=मन्दिर। बटवारा=बेठिकाने।
२१. सगुन=सगुण, त्रिगुणात्मिका प्रकृति। उठावल=बनाया। सरवर=सरोवर, तालाब, यहाँ देह से आशय है। हंस=यहाँ जीव से आशय है। दिदार=

लख चौरासी भरनि, मनुष-तन पाइल हो।
मानुष-जनम अमोल, अपन सों खोइल हो॥
साहेब कबीर सोहर सुनावल, गाइ सुनावल हो।
सुनहु हो धर्मदास, एही चित चेतहु हो॥२१॥

सत्तनामै जपु, जग लड़ने दे॥
यह संसार काँट की बारी, अरुझि-अरुझिके मरने दे।
हाथी चाल चलै मोर साहेब, कुतिया भुँकै तौ भुँकने दे॥
यह संसार भादों की नदिया, डूबि मरै तेहि मरने दे।
धरमदास के साहेब कबीरा, पथर पूजै तो पुजने दे॥२२॥

हमरे का करे हाँसी लोग॥
मोरा मन लागा सतगुरु से, भला होय कै खोर।
जब से सतगुरु-ग्यान भयो है, चलै न केहुके जोर॥
मात रिसाई पिता रिसाई, रिसाये बटोहिया लोग।
ग्यान-खड़ग तिरगुन को मारूँ, पाँच पचीसो चोर॥
अब तो मोहिं ऐसी बनि आवे, सतगुरु रचा संजोग।
आवत साध बहुत सुख लागै, जात बियापै रोग॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, सुनु हो बंदी-छोर।
जाको पद त्रयलोक से न्यारा, सो साहेब कस होय॥२३॥

साहेब येहि बिधि ना मिलै, चित चंचल भाई॥
माला तिलक उरमाइके, नाचै अरु गावै।
अपना मरम जानै नहीं, औरन समुझावै॥

दीदार, दर्शन, मिलन। तरवर=वृक्ष। अपन सों खोइल=अपने हाथों गँवा दिया। सोहर=बालक के जन्म लेने पर जो गीत स्त्रियाँ गाती हैं उसे 'सोहर' कहते हैं।

२२. बारी=बाड़ी। भादों की नदिया=वर्षा की तेज धारवाली नदी; तृष्णा से आशय है। पथर पूजै=मूर्ति-पूजा करता है।

२३. खोर=बुरा, बिगाड़। रिसाई=नाराज होते हैं। तिरगुन=तीनों गुण-सत्त्व, रज और तम। जात बियापै रोग=बिछुड़ने पर दुःख होता है। बंदी-छोर=संसार-बंधन से छुड़ानेवाले। कस होय=कैसा होगा।

देखे को बक ऊजला, मन मैला भाई।
आँखि मूँदि मौनी भया, मछरी धरि खाई ॥
कपट-कतरनी पेट में मुख वचन उचारी।
अंतरगति साहेब लखै, उन कहा छिपाई ॥
आदि अंत की बार्ता, सतगुरु से पावो।
कहै कबीर धरमदास-से मूरख समझावो ॥२४॥

गाँठ परी पिया बोलै न हमसे ॥
माल मुलुक कछु संग न जैहै, नाहक बैर कियो है जग से ॥
जो मैं जनितिउँ पिया रिसियैहै, नाहक प्रीति लगाती न जग से ॥
निसुवासर पिया संग मैं सूतिउँ, नैन अलसानी निकरि गये घर से ॥
जस पनिहार धरे सिर गागर, सुरति न टरै बतरावत सब से ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, साहेब कबीर को पावै भाग से ॥२५॥

मेरे मन बसि गये साहेब कबीर ॥
हिन्दू के तुम गुरू कहावो, मुसलमान के पीर।
दोऊ दीन ने झगड़ा मांडेव, पायो नहीं सरीर ॥
सील संतोष दया के सागर, प्रेम प्रतीत मति-धीर।
बेद कितेब मते के आगर, दोऊ दीनन के पीर ॥
बड़े-बड़े संतन हितकारी, अजरा अमर सरीर।
धरमदास की बिनय गुसाँई, नाव लगावो तीर ॥२६॥

मुक्ति-लीला

हीरा जन्म न बारम्बार, समुझि मन चेत हो ॥
जैसे कीट पतंग पषान, भये पसु पच्छी।

---

२४. उरमाइके=लटकाकर, पहनकर। मरम=भेद; संसार से तरने का उपाय। बक=बगला। आदि अन्त=जन्म और मरण।

२५. रिसियैहै=रूठ जायगा। सूतिउँ=सोई, साथ रही। नैन अलसानी=ज़रा-सी असावधानी होने पर। बतरावत=बातचीत करता है। सुरति=ध्यान।

२६. मांडेव=मचाया। कितेब=किताब, कुरान से तात्पर्य है। दीनन के=धर्मों के। पीर=धर्मगुरु। अजरा=अजर, जो कभी वृद्ध न हो।

जल तरंग जल माहिं रहे कच्छा औ मच्छी ॥
अंग उघारे रहे सदा, कबहुँ न पावै सुक्ख।
सत्य नाम जाने बिना, जन्म जन्म बड़ दुक्ख ॥१॥
सीतल पासा ढारि, दाव खेलौ संम्हारी।
जीतौ पक्की सार, आव जनि जैहौ हारी ॥
रामै राम पुकारिके, लीन्हो नरक निवास।
मूँड़ गड़ाय रहे जिव, गर्भ माहिं दस मास ॥२॥
नहिं जाने केहि पुन्य, प्रगट भे मानुष-देही।
मन बच कर्म सुभाव, नाम सों करले नेही ॥
लख चौरासी भर्मिके, पायो मानुष-देह।
सो मिथ्या कस खोवते, झूठी प्रीति-सनेह ॥३॥
बालक बुद्धि अजान, कछू मन में नहिं आने।
खेलै सहज सुभाव, जहीं आपन मन माने ॥
अधर कलोले होइ रह्यो, ना काहू का मान।
भली बुरी ना चित धरै, बारह बरस समान ॥४॥
जोवन रूप अनूप, मसी ऊपर मुख छाई।
अंग सुगंध लगाय, सीस पगिया लटकाई ॥
अंध भयो सूझै नहीं, फूटि गईं हैं चार।
झटकै पडै पतंग ज्यों, देखि बिरानी नार ॥५॥
जोवन जोर झकोर, नदी उर अंतर बाढ़ी।
संतो हो हुसियार, कियो ना बांहू गाढ़ी ॥

मुक्ति-लीला

(१) कच्छा=कच्छप, कछुवा। (२) सीतल पासा=शील-संतोष से तात्पर्य है। दाव=दाँव=बाजी; जुआ खेलने का पासा, चौसर। आव=आयु। मूँड़ गड़ाइ=नीचे की ओर सिर किये हुए। (३) स्नेही,=स्नेह, प्रेम। मिथ्या=व्यर्थ।

५. मसी ऊपर मुख छाई=मसि भींग गई, रेख आगई। चार=चारो आँखें, दो चर्मचक्षु और दो ज्ञानचक्षु। बिरानी नार=पराई स्त्री।

६. दसो दुवार=दसों इन्द्रियाँ–पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। मूँदो=

दे गजगीरी प्रेम की, मूँदो दसो दुवार।
वा साँई के मिलन में, तुम जनि लावो बार ॥६॥
वृद्ध भये पछिताय, जबै तीनों पन हारे।
भई पुरानी प्रीति बोल, अब लागत प्यारे॥
लचपच दुनियां ह्वै रही, केस भये सब सेत।
बोलत बोल न आवई, लूटि लिये जम खेत ॥७॥
माया रंग कुसुम्म महा देखन को नीको।
मीठो दिन दुइ चार, अंत लागत है फीको॥
कोटिन जतन रह्यो नहीं, एक अंग निज मूल।
ज्यों पतंग उड़ि जायगो, ज्यों माया काफूर ॥८॥
नाम क रंग मंजीठ, लगै छूटै नहिं भाई।
लचपच रहो समाय, सार ता में अधिकाई॥
केती बार धुलाइये, देदे करड़ा धोय।
ज्यों-ज्यों भट्ठी पर दिये, त्यों-त्यों उज्जल होय ॥९॥
सोवत हौ केहि नींद, मूढ़ मूरख अग्यानी।
भोर भये परभात, अबहिं तुम करो पयानी।
अब हम साँची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार।
छुटि जैहौ या दुक्ख तें, तन-सरवर के पार ॥१०॥
नाम झाँझरी साजि, बाँधि बैठौ बैपारी।
बोझ लद्यो पाषान, मोहिं डर लागै भारी॥
मांझ धार भव तखत में, आइ परैगी भीर।
एक नाम केवटिया करिले, सोई लावै तीर ॥११॥

विषयों की ओर न जाने दो। वार=देरी।

७. लचपच=मग्न, लीन।

८. एक अंग=एक-सा। निजमूल=अपना असली रंग। काफूर=कपूर।

९. मंजीठ=पक्का लाल रंग। लचपच रहौ समाय=घुलमिल जाओ।

१०. पयानी=प्रयाण, कूच।

११. तखत=यहाँ नाव से तात्पर्य है। तीर=किनारा, पार।

सौ भइया की बांह, तपै दुर्जोधन राना।
परे नरायन बीच, भूमि देते गरबाना॥
जुद्ध रच्यो कुरुछेत्र में, बानन बरसे मेह।
तिनहीं के अभिमान तें, गिधहुँ न खायो देह ॥१२॥
जोधा आगे उलट-पुलट, यह पुहमी करते।
बस नहिं रहते सोय, छिने इक में बल रहते॥
सौ जोजन मरजाद सिंध के, करते एकै फाल।
हाथन पर्बत तौलते, तिन धरि खायो काल ॥१३॥
ऐसा यह संसार, रहँट की जैसी घरियाँ।
इक रीती फिरि जाय, एक आवै फिरि भरियाँ॥
उपजि-उपजि बिनसत करैं, फिरि फिरि जमे-गिरास।
यही तमासा देखिके, मनुवा भयो उदास ॥१४॥
जैसे कलपि-कलपिके, भये है गुड़ की माखी।
चाखन लागी बैठि, लपट गइ दोनों पांखी॥
पंख लपेटे सिर धुनै, मनहीं मन पछिताय।
वह मलयागिरि छाँड़िके, इहाँ कौन बिधि आय ॥१५॥
खेत बिरानो देखि, मृगा एक बन को रीझेव।
नितप्रति चुनि चुनि खाय, बान में इक दिन बीधेव॥
उचकन चाहै बल करै, मनहीं मन पछिताय।
अब सो उचकि न पाइहौं, धनी पहूँचो आय ॥१६॥

---

१२. तपै=अत्याचार से शासन किया। परे नरायन बीच=श्रीकृष्ण दूत होकर गये, और समझाया। गरबाना=अभिमान किया। गिधहुँ=गीधों ने भी।

१३. पुहमी=पृथिवी। फाल=फलाँग।

१४. घरियाँ=घड़ियाँ। रीती=खाली, विना पानी के। जमे-गिरास=मृत्यु का ग्रास, काल के मुहँ में जाना।

१६. उचकन चाहै=कूदना चाहता है। बल करे=जोर लगाता है। धनी=खेतवाला; काल से आशय है।

गुरु-बानी

"आदि ग्रन्थ" या "गुरु ग्रन्थ साहिब" में ६ सिक्ख गुरुओं की बानी संगृहीत है। पाँचवें गुरु अर्जुनदेव ने आदिगुरु बाबा नानकदेव की बानी से लेकर अपनी निज की बानीतक को संग्रह कराके भाई गुरुदास के द्वारा गुरुमुखी लिपि में लिखवाया था। इस महान् संग्रह को "आदि ग्रन्थ" अथवा "गुरु ग्रन्थ साहिब" नाम दिया गया। आदि ग्रन्थ का संकलन भादों सुदी १ संवत् १६६१ को संपूर्ण हुआ। कहते हैं कि कुछ कोरे पन्ने उन्होंने इस विश्वास से छोड़वा दिये थे कि नवें गुरु की जो रचनाएँ होंगी उनको उन पन्नों पर विभिन्न रागों के अनुसार भविष्य में लिखा जायगा।

गुरु नानक के पश्चात् जिन परवर्ती गुरुओं ने समय-समय पर रचनाएँ कीं उनके अंत में अति नम्र भावना से प्रेरित होकर अपने नाम न देकर 'नानक' ही सबने नाम दिया है। यह कठिनाई देखकर कि लोग आखिर कैसे पहचानेंगे कि कौन रचना किस गुरु की है, गुरु अर्जुनदेव ने उस-उस रचना के ऊपर 'महला १' 'महला २' 'महला ३' आदि संकेत लिखा दिये, जिनका अर्थ यह हुआ कि 'महला १' की बानी गुरु नानकदेव की है, 'महला २' की बानी गुरु अंगद की है, 'महला ३' की बानी गुरु अमरदास की है, 'महला ४' की बानी गुरु रामदास की है, 'महला ५' की बानी गुरु अर्जुन की है और 'महला ९' की बानी गुरु तेगबहादुर की है। छठे, सातवें और आठवें गुरु ने कोई रचना नहीं की। 'महला' या महल्ला आदिग्रन्थरूपी नगर के मानों भिन्न-भिन्न भाग हैं

इन सब बानियों को गुरुओं के क्रमानुसार न देकर गुरु ग्रन्थ साहिब में निम्नलिखित ३१ रागों के अनुसार संकलित किया गया है—

सिरी (श्री), गउड़ी, आसा, गूजरी, देव गंधारी, बिहागड़ा, वड़हंस, सोरठि, धनासरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावलु, गौंड़, रामकली, नट-नाराइन, गउड़ा, मारू, तुखारी, केदारा, भैरउ, बसंत, सारंग, मलार,

कानड़ा, कलिग्रान, प्रभाती ग्रौर जैजावंती ।

किन्तु बाबा नानक-रचित जपुजी, सो दरु, सुणि वड्डा ग्रौर सोहिला इनको रागों में नहीं बाँधा गया है ।

इन छह गुरुग्रों की बानी के ग्रलावा कबीर, नामदेव रविदास, त्रिलोचन, शेख फरीद ग्रादि कुछ भगतों की भी बानियाँ प्रत्येक राग के ग्रन्त में संगृहीत हैं ।

गुरु नानक, गुरु ग्रंगद ग्रौर गुरु ग्रमरदास की रचनाएँ प्रायः पंजाबी भाषा-बहुल हैं । गुरु रामदास की रचनाग्रों की भाषा कुछ पंजाबी ग्रौर बहुत-कुछ हिन्दी है । गुरु ग्रर्जुन की भाषा में ग्रपेक्षाकृत हिन्दी के ग्रधिक शब्दों का प्रयोग हुग्रा है । नवें गुरु तेगबहादुर की सारी रचनाएँ शुद्ध हिन्दी में हैं । गुरु नानक के नाम से ग्राज हिन्दी-पद-संग्रहों में जितने भी पद मिलते हैं, उनमें से ग्रधिकांश नवें गुरु तेगबहादुर के रचे हुए हैं ।

दसवें गुरु श्री गोविंद राय (सिंह) के भी नाम का एक 'ग्रंथ' है, जिसे उनकी मृत्यु के पश्चात् भाई मानीसिंह ने संकलित किया था । इसमें गुरु गोविंदसिंह की इन रचनाग्रों को संगृहीत किया गया है—जापजी, ग्रकाल उसतत, वचित्तर नाटक, देवी माहात्म्य, ज्ञान परबोध, त्रिया चरित्तर ग्रौर ज़फ़र नामा ।

प्रस्तुत ग्रंथ में हमने केवल गुरु ग्रंथ साहिब में से ही उक्त छहों गुरुग्रों की बानियों से पदों व सलोकों का संकलन किया है ।

गुरु नानकदेव का 'जपुजी' सबसे ग्रधिक प्रसिद्ध है ग्रौर यह बड़ी उत्कृष्ट रचना है । इन का 'सो दरु' पद ग्रौर 'सोहिला' भी बड़े भक्ति-भाव से गाये जाते हैं ।

गुरु ग्रंगद की रची केवल 'वारें हैं, जो ग्रासा, माझु, सोरठि, सूही, रामकली, सारंग ग्रादि कई रागों में पाई जाती हैं ।

गुरु ग्रमरदास की 'ग्रानन्दु' नामक रचना बड़ी मनोहारिणी ग्रौर ग्राह्लाद-कारिणी है । उत्सवों पर 'ग्रानन्दु' बड़े चाव से गाया

जाता है।

गुरु रामदास के भी अनेक भावपूर्ण, पद, वारें और छंत है। 'सो पुरखु' पद इनका बहुत प्रसिद्ध है।

गुरु अर्जुन की 'सुखमनी' तो लाखों के कंठ की मणिमाला बनी हुई है। बड़ी ऊँची रचना है। इसके अतिरिक्त, गुरु अर्जुन के रचे हजारों भक्ति-भावपूर्ण पद हैं।

गुरु तेगबहादुर के पदों और सलोकों में संसार की अनित्यता एवं वैराग्य की तीव्र अभिव्यंजना हुई है। बड़े भाव से सिक्ख इन सलोकों का पाठ मृतक-संस्क़ार के अवसर पर करते हैं।

'जपुजी' का पाठ प्रातःकाल किया जाता है। इसके बाद प्रायः 'आसा दी वार' को कहते हैं।

संध्या समय 'रहिरास' के पद गाये जाते हैं, और 'कीर्तन सोहिला' का पाठ रात को सोते समय किया जाता है।



गुरु नानकदेव

चोला-परिचय

जन्म संवत्—१५२६ वि०, वैशाख शु० ३
जन्म-स्थान—तलबंडी गाँव
जाति—खत्री
पिता—कालूचंद
माता—तृप्ता
भेष—गृहस्थ
निर्वाण-संवत्—१५६५ वि०, आश्विन शु० १०
निर्वाण-स्थान—करतारपुर

नानकदेव का जन्म-स्थान तलबंडी गाँव लाहौर के दक्षिण-पश्चिम

लगभग ३० मील दूर है। यह स्थान आजकल नानकाना साहब के नाम से प्रसिद्ध है। सिक्खों का यह बहुत बड़ा तीर्थ-स्थान माना जाता है।

नानकदेव के पिता कालूचंद तलबंडी के पटवारी थे और खेती-बाड़ी भी करते थे।

गुरु नानक बचपन से ही बड़े प्रतिभावान् और शांतस्वभाव के व्यक्ति थे। पिताने इन्हें पंजाबी, हिंदी, संस्कृत और फारसी की शिक्षा दिलाई, और इन्होंने विद्याभ्यास में असामान्य योग्यता का परिचय दिया। किंतु इनके चित्त का झुकाव तो एकान्त-सेवन, सत्संग और ईश्वर-चिंतन की ओर ही सदा रहता था।

पिताने इन्हें विवाह-बंधन में बाँध दिया। पत्नी का नाम सुलक्खनी था। वह ज्यादातर मायके में रहती थीं। कालांतर में इन्हें दो पुत्र हुए—श्रीचंद और लक्ष्मीचंद। श्रीचंद ने संन्यास लेकर सुप्रसिद्ध 'उदासी संप्रदाय' चलाया।

कालूचंदने अपने पुत्र नानक को एक मोदी के यहाँ नौकरी में लगाया, पर उसने इनकी लापर्वाही देखकर इन्हें नौकरी से अलग कर दिया। कहते हैं कि एक दिन वह आटा तोल रहे थे। जब तोलते-तोलते 'तेरह' पर आये तो वह 'तेरा-तेरा' ही करते रह गये, और न जाने कितने सेर आटा ग्राहक को तोलकर दे दिया।

तब खेती-बाड़ी में लगाया, पर वहाँ भी मन नहीं लगा। पिता को उलटे सच्ची खेती करने का उपदेश करने लगे—

"इहु तनु धरती बीजु करमा करों,
सलिल आपाउ सारंगपाणी।
मनु किरसाणु हरि रिदै जम्माइ लै,
इउ पावसि पदु निरबाणी॥—(रागु सिरी)

फिर कुछ बनिज-व्यापार करने के लिए पिताने कहा, जिसका उत्तर यह दिया गया—

"वणजु करहु वणजारि हो, वक्खरु लेहु समालि।
तैसी वसतु विसाहिए, जैसी निबहै नालि॥
अग्गै साहु सुजाणु हैं, लैसी वसतु समालि॥—(रागु सिरी)

और कहा—"खोटे वणजि वणंजिए म नु तनु खोटा होइ ।" खोटे बनिज-व्यापार पर उनका चित्त नहीं डोला; वे तो राम-नाम के सच्चे व्यापारी बन चुके थे। पुत्र की यह ऊँचे घाट की वैराग्य-वृत्ति देखकर पिता कालू हैरान थे।

नानकदेव घर से निकल पड़े। देश-विदेश में भ्रमण करने लगे। साथ में इनका एक पक्का साथी रवाब बाजे पर भजन गानेवाला हो लिया, जिसका नाम मर्दाना था। इनकी यात्रा के कई सुन्दर प्रसंग प्रसिद्ध हैं।

सैयदपुर में, जिसे आजकल अमीनाबाद कहते हैं, ये दोनों गुरु नानक और मर्दाना लालो नामक एक बढ़ई के घर पर ठहरे। एक शूद्र के घर की रोटी खाते हुए देखकर वहाँ के ब्राह्मण-खत्रियों में हलचल मच गई। पर गुरु नानक ने उस श्रमजीवी बढ़ई की रोठी को ही श्रेष्ठ ठहराया, और कहा कि, "इस गरीब की रोटी म दूध-ही-दूध है, क्योंकि यह इसके पसीने की कमाई की रोटी है। तुम्हारे ज़मींदार मालिक भागो की रोटी में यह स्वाद और यह पवित्रता कहाँ, वह तो ज़ुल्म की कमाई की रोटी है, जो ख़ून से सनी हुई है।"

कुरुक्षेत्र होतें हुए गुरु नानक अपने साथी मर्दाना के साथ हरिद्वार पहुँचे। वहाँ देखा कि लोग अपने पितरों को तर्पण कर रहे हैं। नानकदेव भी वहीं बैठकर जल उलीचने लगे, मगर पश्चिम की तरफ। पंडितों ने आपत्ति की कि तर्पण पश्चिम की तरफ नहीं, पूर्व की तरफ किया जाता है। गुरु नानकदेव ने इसपर जवाब दिया—"मैं पछाहँ का रहनेवाला हूँ; घर पर एक हरा लहलहा खेत छोड़कर आया हूँ। उसे सींचनेवाला वहाँ कोई आदमी नहीं। सो मैं यहीं से खेत को सींच रहा हूँ, जिससे वह सूख न जाये। जब तुम लोग लाखों कोस पर रहनेवाले अपने प्यासे पितरों को यहाँ से पानी पहुँचा सकते हो, तो मेरा खेत तो यहाँ से बहुत ही पास है।"

हरिद्वार से यह काशी गये। वहाँ से गया और गया से कामरूप व जगन्नाथपुरीतक पूरब के देशों में घूमते रहे। इस यात्रा में गुरु नानक

मुसलमान फकीरों या कलंदरों की जैसी टोपी पहनते थे, और माथे पर हिंदू साधुओं की तरह तिलक भी लगाते थे। गले में माला भी डाल लेते थे। हिंदू और मुसलमान दोनों की मिली-जुली विचित्र-सी वेश-भूषा रखते थे।

जब ये कामरूप से चले तब, कहते हैं, कलियुग इन्हें डराने व प्रलोभन देने वहाँ पहुँचा। मर्दाना बहुत भयभीत हो गया। गुरु नानक ने उसे धीरज बँधाया और कहा, 'तू कलियुग से डरता है ? अरे, किसीसे डरना ही है, तो एक ईश्वर से डरना चाहिए।' और यह शब्द कहा—

"डरि धरु घरि डरु डरि डरु जाइ।
सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ॥
तुधु बिनु दूजी नाही जाइ।
जो कछु बरतै सभ तेरी रजाइ॥
डरीऐ जे डरु होवै होरु।
डरि डरि डरणा मन का सोरु॥"–(रागु गउड़ी)

पंजाब वापस आकर ये दोनों यात्री शेख फरीद से मिलने अजोधन पहुँचे, जिसे आजकल पाकपट्टन कहते हैं। शेख़ फरीद इस पहुँचे हुए फकीर की उपाधि थी। असल नाम शेख़ ब्रह्म या इब्राहीम था। गुरु नानक और शेख़ फरीद ने जंगल में काफी देरतक अध्यात्म-विषय पर चर्चा की। दोनों महात्माओं ने घंटों खूब घनघोर ब्रह्म-रस बरसाया। मर्दाना ने रबाब का सुर छेड़ा और गुरु नानक ने यह शब्द कहा—

"जप तप का बंधु बेड़ुला जितु लंघहि वहेला।
ना सरवरु ना ऊछलै, ऐसा पंथु सुहेला॥
तेरा एको नामु मंजीठड़ा रता मेरा चोला सदरंग ढोला॥
साजन चले पिआरिआ किउ मेला होई।
जे गुण होवहि गंठडीऐ मेलेगा सोई॥
मिलिआ होइ न बीछुड़ै जे मिलिया होई।
आवागउणु निवारिआ है साचा सोई॥

हउमै मारि निवारिश्रा सीता है चोला ।
गुर वचनी फलु पाइश्रा सह के श्रंमृत बोला ।।
नानकु कहै सहेली हो सहु खरा पिश्रारा ।
हम सह केरीश्रा दासीश्रा साचा खसमु हमारा ।।-(रागु सूही)

श्रर्थात्, जप श्रौर तप का तू बेड़ा बनाले, श्रौर धार को पार करजा ।
न फिर भील है, न प्रवाह; ऐसा सहज पंथ है वह ।
प्रभो, तेरा नाम ही वह मंजीठ है, जिसमें मैं श्रपना यह चोला रँग डालूँ । प्यारे, वही रंग पक्का है ।
साजन से तेरी भेंट कैसे होगी फिर ?
तेरी गाँठ में गुण होंगे, तभी तो वह तुझे मिलेगा ।
श्रौर तुझसे मिलकर एकाकार होकर वह फिर बिछड़ेगा नहीं ।
श्रावागमन से वह सच्चा स्वामी ही छुड़ा सकता है ।
जिसने श्रहंकार को निकाल बाहर कर दिया, उस सखी ने श्रपने स्वामी को रिझाने के लिए श्रपना चोला सी लिया ।
गुरु के उपदेश से उसे फल मिल गया श्रपने स्वामी के साथ श्रमृत-बोल बोल-बोलकर ।
नानक कहता है, हे सहेलियो, वह स्वामी पूरा प्यारा है ।
हम सब उसकी दासियाँ हैं, वह हमारा सच्चा स्वामी है ।

श्रौर फिर इसी मस्ती में शेख फरीदने कहा--

"दिलहु मुहबति जिन्ह सेई सचिश्रा ।
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढ़े कचिश्रा ।।
रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के ।
बिसरिश्रा जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए ।।
श्रापि लीए लाड़ लाइ दर दरवेस से ।
तिन्ह धंनु जणेदी माउ श्राए सफलु से ।।
परवदगार श्रपार श्रगम बेश्रंत तूँ ।
जिन्हा पछाता सचु चुंमा पैर मूं ।।

तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी।
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी ।।–(रागु आसा)

अर्थात्, जिनकी दिली मुहब्बत है उस परमात्मा के लिए, वे ही सच्चे हैं। जिनके मन में कुछ और है, और मुहँ में कुछ और, उनकी गिनती कच्चों में की जायेगी।

वे भी सच्चे हैं, जो खुदा के इश्क में रँग गये हैं, और उसके दर्शन के प्यासे हैं।

जिन्होंने उसका नाम भुला दिया, वे भार हैं पृथिवी के।

जो उसके दर के दरवेश हो गये, उनको उस प्रियतम ने अपने दामन से बाँध लिया। धन्य है उन माताओं को, जिन्होने कि उन्हें जन्म दिया; उनका संसार में आना सफल है।

हे पालनकर्त्ता, तू अपार है, अगम है और अनंत है।

जिन्होंने तुझ सच्चे स्वामी को पहचान लिया, मैं उनके पैर चूमता हूँ।

अय खुदा, मै तेरी शरण चाहता हूँ; तू बख्शदे मुझे।

शेख फरीद को अपनी सेवा तू खैरात में देदे।

शेख फरीद से गुरु नानक का इतना अधिक प्रेम हो गया था कि उनसे यह दोबारा भी मिलने गये थे।

गुरु नानक और मर्दाना ने दक्षिण भारत की भी यात्रा की थी। सिंहल द्वीप भी वे पहुँचे थे। कहा जाता है कि 'प्राण-संगली' ग्रन्थ को उन्होंने सिंहल में ही बैठकर रचा था।

इसी प्रकार पश्चिम की यात्रा में गुरु नानक मक्केतक गये थे। प्रसिद्ध है कि एक दिन वहाँ क़ाबे की तरफ़ पैर फैलाकर यह लेट गये। इस बेअदबी को देखकर जब वहाँ के मुल्ले ने डांटते हुए पूछा कि, "अल्लाह की तरफ तुम क्यों अपने पैर फैलाये हुए हो ?" तब इन्होंने जवाब में उससे कहा—"अच्छा भाई, तो जिधर अल्लाह न हो उधर मेरे पैर घुमादो।" पर ऐसी कौन-सी दिशा थी, जहाँ अल्लाह का वास न हो ? मुल्ला हैरान था।

गुरु नानकदेव ने इस प्रकार देश-देशान्तरों में सत्य और ईश्वर की भक्ति का प्रचार किया और मौज से हरिनाम का अनमोल रस लुटाया। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उनके ऊँचे व गहरे उपदेशों को प्रेम से सुना और ग्रहण किया।

अपने प्रिय शिष्य लहिणा को, जो बाद को गुरु अंगद के नाम से प्रसिद्ध हुए, अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी बनाकर गुरु नानकदेव अंतिम समय में एक पेड़ के नीचे जा बैठे और प्रभु के नाम-स्मरण में लीलीन हो गये। गुरु अंगद चरणों पर गिर पड़े। सब शिष्य और कुटुम्बी विलाप कर रहे थे। गुरु तो आनन्दमग्न थे। हुक्म किया सिक्ख-मंडली को कि 'सोहिला' गाओ। सोहिला समाप्त होने पर 'जपुजी' का जब अंतिम सलोक कहा गया, चादर ओढ़ली, और 'वाह गुरु' कहते-कहते चोला छोड़ दिया, ब्रह्मलीन हो गये।

बानी-परिचय

'महला १' शीर्षक के जितने भी अनेक रागों में पद 'गुरु ग्रन्थ साहब' में संगृहीत हैं वे सब गुरु नानकदेव के रचे हुए हैं। ग्रन्थ साहब के आदि में, जो 'जपुजी' है वह इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। सिक्खों का 'जपुजी' के प्रति वही श्रद्धा-भाव है जो हिन्दुओं का गीता के प्रति, अथवा बौद्धों का 'धम्मपद' के प्रति है। 'रहिरास' तथा 'सोहिला' नामक पद-संग्रहों में भी गुरु नानक के अनेक पद या पौड़ियाँ संकलित हैं। फुटकर तो सैकड़ों ही पद हैं। 'सोदरु' पद भी इनका बहुत प्रसिद्ध है, और इसी प्रकार 'गगन में थाल' यह आरती भी।

किंतु 'जपुजी' का स्थान इनकी रचनाओं में सबसे ऊँचा है। इसे हरेक सिक्ख और पंजाब और सिन्ध के अनेक हिन्दू भी कण्ठस्थ कर नित्य प्रातःकाल इसका भक्तिपूर्वक मंगल-पाठ करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में 'जपुजी' को हमने पूरा उद्धृत किया है। अर्थ अधिकतर प्रोफेसर तेजासिंहजी की टीका के आधार पर किया हैं। कहीं-कहीं पर मॅकालीफ़ महोदय के अँग्रेजी भाषान्तर से भी हमने सहायता ली है। जपुजी के

विषय में प्रोफेसर तेजासिहजी ने नीचे जो लिखा है वह सर्वथा सही है। वस्तुत: यह बहुत ऊँची रचना है—

"जपुजी में मनुष्य-जीवन का सबसे उच्चकोटि का ज्ञान निहित है। इसमें हमारे जीवन के वास्तविक मनोरथ और इन्हें प्राप्त करने के साधन बतलाये गये हैं। इसमें, मन को ऐसे साँचे में ढालने और उसके ऊपर ऐसी अवस्था लाने का ढंग बतलाया है कि जो भी धार्मिक उलझनें आ पड़ें उन्हें हम सुगमता से सुलझा सकें।"

जपुजी की रचना सूत्रात्मक-सी है। गुरु नानक ने इसमें बहुत ही थोड़े शब्दों में ऊँचे-से-ऊँचे भावों को व्यक्त किया है। प्रो० तेजासिंह के शब्दों में "बड़े विस्तारवाले विचारों को ऐसा कसकर लिखा है कि मानो कूजे में दरिया बंद कर दिया है। पंजाबी भाषा से इतना कठिन काम पहले कभी नहीं लिया गया था, और न अबतक ही किसीने लिया है।"

दूसरे अनेक शब्द भी बड़े ऊँचे और गहरे भावों से भरे हुए हैं। अध्यात्म के विविध अंगों का विशद निरूपण चोट करनेवाली भाषा व शैली में किया गया है। प्रेम और विरह का वर्णन कहीं-कहीं बड़ा ही अनूठा मिलता है। नम्रता तो गुरु नानक की प्रसिद्ध ही है। उत्तरी भारत के संत-साहित्य में 'गुरु-बानी' का और उसमें भी गुरु नानकदेव की बानी का एक विशिष्ट स्थान है। अनमोल निधि है हमारी यह। हमें यह पछताव है कि 'गुरुग्रन्थ साहब' में से गुरु नानक के जपुजी को छोड़कर, बहुत थोड़े पद और सलोक स्थान-संकीर्णता के कारण हम ले सके। हैरानी होती है कि इस गुरु-महोदधि में से किस रतन को उठालें और किसे छोड़दें।

आधार

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर
२. दि सिक्ख रिलिजन (भाग १) मॅकालीफ़—ऑक्सफोर्ड
३. श्री जपुजी साहिब (सटीक)—टीकाकार प्रो० तेजासिंह, स्थानिक कमेटी, श्री दरबार साहिब, अमृतसर

जपुजी

१ ॐकार सति नामु करता पुरखु निरभउ
निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥ †
आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥ ‡
सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार ॥
चुप्पै चुप्प न होवई जे लाइ रहा लिवतार ॥
भुखिआ भुख न उत्तरी जे बंना पुरीआ भार ॥
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चल्ले नालि ॥
किव सचिआरा होइऐ किव कूड़ै तुट्टै पालि ।
हुकमि रजाई चल्लणा नानक लिखिआ नालि ॥१॥

---

† उस गुरु की कृपा से, जो एक ही है, जिसका नाम सत्य है अर्थात् जो सदा एकरस रहता है, जो सब का सृष्टा है, जो समर्थ पुरुष है, जिसे किसीका भी भय नहीं, न किसीसे जिसका वैर है, जिसका अस्तित्व काल की पहुँच से परे है, जिसका जन्म नहीं है, जो स्वयंभू है ।

यह सिक्ख धर्म का मूल मंत्र है ।

‡ सब से पहले, जबकि और कुछ भी अस्तित्व में नहीं था, केवल सत्यरूप परमात्मा था । जबकि युगों का विभाग होने लगा, तब भी वह सत्य ही था । अबभी सत्य है । नानक आगे भी वह सत्य ही रहेगा ।

१. चिंतन करने से (सत्य) समझ में नहीं आ जाता, भले ही लाखों बार फिर-फिर उसका मैं चिन्तन करता रहूँ ।

चुप या मौन रहने से भी मन में एक-न-एक प्रश्न का उठना रुकता नहीं, चाहे मैं कितने ही एकाग्र चित्त से ध्यान करूँ ।

भूखा रहने से उसके मिलन की भूख शान्त होने की नहीं, भले ही मैं सारे संसार को अपने काबू में करलूँ ।

लाखों सयानपन हों, उस सत्यतक एक भी नहीं पहुँचता, तो फिर हम सत्यमय हों तो कैसे ? और हमारे उसके बीच में जो दीवार खड़ी है वह कैसे टूटे ? परदा कैसे हटे ? (एक ही उपाय है) उस आदेश देनेवाले परमेश्वर के आदेश पर चलना, उसकी आज्ञा के अनुसार आचरण करना । और वह आज्ञा हमारे साथ ही लिखी हुई है ।

हुकमी होवनि आकार, हुकमु न कहिआ जाई ॥
हुकमी होवनि जीअ, हुकमि मिलै वड़िआई ॥
हुकमी उत्तमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि ॥
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि ॥
हुकमै अन्दरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ ॥
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ ॥२॥

गावै को ताणु होवै किसै ताणु। गावै को दाति जाणै नीसाणु ॥
गावै को गुण वड़िआईआ चार। गावै को विदिआ विखमु वीचारु ॥
गावै को साजि करे तनु खेह। गावै को जीअ लै फिरि देह ॥
गावै को जापै दिसै दूरि। गावै को वेखै हादरा हदूरि ॥

---

२. उस आज्ञा से सृष्टि के सारे आकार बनते हैं। उस आज्ञा को कहा नहीं जा सकता—अनिर्वचनीय है वह।

उसी आज्ञा से जीवों का सृजन होता है, और उसीसे जीवों को मनुष्य की ऊँची श्रेणी प्राप्त होती है।

उसीसे मनुष्य उत्तम गति पाता है, और उसीसे नीच गति; वह आज्ञा जैसे कर्मों को लिख देती है वैसे ही दुःख और सुख सब पाते हैं।

उस आज्ञा से किसीको मुक्ति का दान मिल जाता है, तो कितने ही अनेक योनियों में चक्कर काटते रहते हैं।

सभी उसकी आज्ञा के अन्दर हैं; कोई भी उसकी आज्ञा के बाहर नहीं।

नानक कहते हैं—इस आज्ञा को यदि कोई अच्छी तरह समझले, तो फिर वह कभी यह नहीं कहेगा कि यह या वह मैंने किया है।

अर्थात्, 'अहंभाव' का उसमें लेश भी नहीं रहेगा।

३. कोई उसकी शक्ति को गाता है, उसका बखान करता है, जिसे कि उससे शक्ति मिली है;

कोई उसकी दी हुई वस्तुओं को गाता है उसके चिह्न समझकर;

कोई उसके गुणों और उसकी सुन्दर-सुन्दर महिमाओं को गाता है; और कोई कठिन-कठिन विद्याओं के द्वारा उसका गान करता है;

कोई यह समझकर उसका गान करते हैं कि वह देह को बनाकर फिर उसे मिट्टी कर देता है, और कोई-कोई यह समझकर कि वह जीव लेकर फिर दे देता है।

कथना कथी न आवै तोटि । कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि ॥
देदा दे लैदे थकि पाहि । जुगा जुगंतरि खाही खाहि ॥
हुकमी हुकमु चलाए राहु । नानक विगसै वेपरवाहु ॥३॥
साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु ॥
आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु ॥
फेरि कि अगै रखीए जितु दिसै दरबारु ॥
मुहौ कि बोलणु बोलीए जितु सणि धरे पिआरु ॥
अमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु ॥
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु ॥
नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु ॥४॥

कोई गाता है कि वह परमात्मा बहुत दूर, परे से परे, प्रतीत होता है; और कोई उसे अपने सामने, बिल्कुल निकट, देखकर गाता है।

करोड़ों ने कहा, कहा और फिर कहा, पर उसकी कथनी—उसकी गुण गाथा—कभी समाप्त नहीं हुई।

वह ऐसा दाता है कि दिये ही जाता है, पर लेनेवाला ही लेते-लेते थक जाता है। युगों-युगों से उसका दिया सब खाते ही आये हैं।

आज्ञा देनेवाले की आज्ञा वह सबकुछ चला रही है। नानक कहते हैं—वह लापरवाह हमेशा खुद आनन्दमग्न रहता है।

४. वह स्वामी 'सत्य' है; उसका नाम भी सत्य है। और उसका बखान करने के भाव या ढंग अनगिनती हैं।

लोग निवेदन करते हैं और माँगते हैं कि, 'स्वामी, तू हमें देदे।' और उन्हें वह दाता देता है।

फिर क्या उसके आगे रखें कि जिससे उसका (मेहर का) दरबार दीख पड़े? और इस मुख से हम क्या बोल बोलें कि जिन्हें सुनकर वह स्वामी हमसे प्रेम करे?

अमृत-वेला में—मंगलमय प्रभात-काल में, उसके सत्य नाम का, और उसकी महिमा का विचार करो, स्मरण करो।

कर्मों के अनुसार चोला तो बदल लिया जाता है; किन्तु मोक्ष का द्वार उसकी दया से ही खुलता है।

नानक कहते हैं—यों जानो तुम कि वह सत्यरूप प्रभु आपही सब कुछ है।

थापिआ न जाइ कीता न होइ । आपे आपि निरंजनु सोइ ॥
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु । नानक गाविऐ गुणी निधानु ॥
गाविऐ सुणिऐ मनि रखी भाउ । दुख परहरि सुखु घरि लै जाउ ॥
गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं । गुरमुखि रहिआ समाई ॥
गुरु ईसरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई ॥
जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई ॥
गुरा इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ॥५॥
तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी ॥
जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई ॥

---

५. न वह किसीके द्वारा स्थापित होता है, और न बनाया जाता है। वह तो स्वयं ही है, और निरंजन है—माया से परे है।

जिसने उसकी सेवा की है उसे मान-प्रतिष्ठा मिली है। सो हे नानक, उसी गुण-निधान का गुण-गान किया जाये।

उसके गुण गाने और सुनने चाहिएँ, और भावपूर्वक अपने मन में रखने चाहिएँ।

वह प्रभु हमें दुखों से छुड़ाकर अपने सुखधाम में ले जायगा।

गुरु की वाणी ही नाद अर्थात् आदि शब्द है, और वही वेद है, कारणकि गुरु के मुख में परमात्मा स्वयं वास करता है।

गुरु ही शिव हैं, गुरु ही विष्णु और गुरु ही गोरख (गो अर्थात् पृथिवी के रक्षक) हैं और गुरु ही ब्रह्मा है। पार्वती भी गुरु हैं, और माता लक्ष्मी भी वही हैं।

जो मैं उसे जानलूँ तो उसका बखान नहीं कर सकता, क्योंकि वह कथनी से परे है।

किन्तु गुरु ने एक बार मुझे समझा दिया है कि जीव को देनेवाला एक परमात्मा ही है, और मुझे वह कभी नहीं भूलना चाहिए।

६. यदि मैं उसे रिझा सकूँ तो तीर्थों में स्नान करूँ; यदि मैं उसे रिझा नहीं सकता तो तीर्थों में नहाने से मेरा क्या बनेगा !

देखता हूँ, जितनी भी सृष्टि सिरजी गई है, इसमें बिना कर्म या साधन किये क्या मिल सकता है, जिसे मैं लूँ ? (फिर परमात्मा का मिलना तो बिना जतन के अत्यंत कठिन है ।)

मति विसु रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी ॥
गुरा इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई ॥६॥
जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ ॥
नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ ॥
जे तिसु नदरि न आवई त बात न पुच्छै केइ ॥
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ ॥
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे ॥
नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे ॥
तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोई करे ॥७॥
सुणिऐ सिद्ध पीर सुरि नाथ। सुणिऐ धरति धवल आकास ॥
सुणिऐ दीप लोअ पाताल। सुणिऐ पोहि न सकै कालु ॥
नानक भगता सदा विगास। सुणिऐ दूख पाप का नास ॥८॥

यदि गुरु का उपदेश (ध्यान से) सुनोगे तो तुम्हारी बुद्धि में से ही हीरे-मोती आदि सारे रत्न अर्थात् ऊँचे-से-ऊँचे आध्यत्मिक गुण प्रकट हो पड़ेंगे। (तीर्थों में भटकने की जरूरत नहीं पड़ेगी।)

गुरु ने एक बार मुझे समझा दिया है कि जीव को देनेवाला एक परमात्मा ही है, और मुझे वह कभी नहीं भूलना चाहिए।

७. मनुष्य यदि चारों युग जीये, या इससे भी दसगुनी उसकी आयु हो जाये, और नवों खंडों में वह विख्यात हो जाये, सब लोग उसके साथ चलने लगें,

दुनियाभर के लोग उसे अच्छा कहें, और उसके यश का बखान करें, पर यदि परमात्मा ने उसपर अपनी (कृपा) दृष्टि नहीं की, तो कोई उसकी बात भी पूछनेवाला नहीं—उसकी कुछ भी कीमत नहीं।

वह तब कीट से भी तुच्छ कीट माना जायेगा। दोषी भी उसपर दोषारोप करेंगे।

नानक कहते हैं—वह निर्गुणी को भी गुणी कर देता है, और जो गुणी है उसे और भी अधिक गुण बख्श देता है।

पर ऐसा कोई भी दृष्टि में नहीं आता, जो परमात्मा को गुण दे सके।

८. गुरु का उपदेश सुनने से सिद्धों, पीरों और बड़े-बड़े नाथों की असलीयत का पता लग जाता है। (अथवा, असली सिद्धों, पीरों और बड़े-बड़े नाथों की अवस्था को वह प्राप्त कर लेता है।)

सुणिऐ ईसरू वरमा इंदु। सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु ॥
सुणिऐ जोग-जुगति तनि भेद। सुणिऐ सासत सिमृति वेद ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥६॥
सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु। सुणिऐ अठिसठि का इसनानु ॥
सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहजि धिआनु ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥१०॥

गुरु का उपदेश सुनने से पृथिवी का, उसे टिकाये रखनेवाले (कल्पित) बैल का, और आकाश का सही-सही ज्ञान हो जाता है।

[**विशेष**—'जपुजी' की १६वीं पौड़ी में इस 'धवल' अर्थात् बैल का स्पष्टीकरण किया गया है।]

गुरु की शिक्षा सुनने से द्वीपों, लोकों और पातालों का ठीक-ठीक पता लग जाता है।

और तब काल की दाल नहीं गल पाती।

नानक कहते हैं—(गुरु का उपदेश सुननेवाले) भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। (गुरु का उपदेश) सुनने से उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

६. गुरु का उपदेश सुनने से शिव, ब्रह्मा और इन्द्र की दशा का असली पता लग जाता है।

और मन्दबुद्धि की भी भारी प्रशंसा होने लगती है।

उसे सुनने से योग की युक्ति या मार्ग, और घट के रहस्य खुल जाते हैं।

गुरु का उपदेश सुनने से शास्त्रों, स्मृतियों और वेदों की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है।

नानक कहते हैं—ऐसे भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। (गुरु-उपदेश) सुनने से उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

१०. गुरु का उपदेश सुनने से सत्य, संतोष और दिव्यज्ञान प्राप्त होता है।

उसे सुनना अड़सठ तीर्थों में स्नान करने के समान है।

गुरु का उपदेश सुनने से ज्यों-ज्यों उसे मनुष्य पढ़ता है, त्यों-त्यों वह मान-प्रतिष्ठा पाता है।

उसे सुनने से चित्त का निरोध होकर उसका सहज ध्यान लग जाता है।

नानक कहते हैं—गुरु का उपदेश सुननेवाले भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

सुणिऐ सरा गुणा के गाह। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ।।
सुणिऐ अंधे पावहि राहु । सुणिऐ हाथ हाथ होवै असगाहु ।।
नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दूख पाप का नासु ।।११।।
मंने की गति कहि न जाइ । जे को कहै पिछै पछुताइ ।।
कागदि कलम न लिखणहारु । मंने का बहि करनि विचारु ।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जे को मंनि जाणै मंनि कोइ ।।१२।।
मंने सुरति होवै मनि बुधि । मंनि सगल भवण की सुधि ।।
मंने मुहि चोटा ना खाइ । मंने जम कै साथि न जाइ ।।
ऐसा नामु निरंजन होइ । जे को मंनि जाणै मनि कोई ।।१३।।

---

११ गुरु का उपदेश सुनने से मनुष्य गुणों के सागर की थाह पा लेता है—गहन-से-गहन गुणों को दृढ़तापूर्वक ग्रहण कर लेता है ।

उसे सुनने से मनुष्य शेख, पीर और बादशाह बन जाते हैं । अथवा, यह जान जाते हैं कि धार्मिक तथा सांसारिक दोनों क्षेत्रों का नेता एकसाथ कैसे बना जाता है ।

गुरु का उपदेश सुनने से अन्धे को भी रास्ता सूझ जाता है ;
उसे सुनने से वह अथाह की भी थाह पा जाता है ।

नानक कहते हैं—ऐसे भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं । उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं ।

१२. जो उसकी आज्ञा पर चलता है उसकी (पहुँची हुई) अवस्था का वर्णन नहीं हो सकता; यदि कोई वर्णन करने का यत्न करता है, तो उसे पीछे पछताना या लज्जित होना पड़ता है ।

लिखने के लिए न कागज़ है, न क़लम, और न लिखनेवाला ही उस अवस्था का, जिसे कि उसकी आज्ञा को माननेवाला प्राप्त कर लेता है ।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए है गुरु का नाम—
जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले ।

१३. उसकी आज्ञा पर चलने से ऊँची (आध्यात्मिक) वृत्ति जागृत हो उठती है, अथवा पराबुद्धि विकसित हो जाती है ।

उससे सारे लोकों का ज्ञान हो जाता है ।

उसे मानने से मनुष्य को दण्ड नहीं मिलता; और वह यम के मार्ग पर नहीं जाता—काल की पकड़ से छूट जाता है ।

मंने मारगि ठाक न पाइ। मंने पति सिउ परगटु जाइ॥
मंने मगु न चलै पंथु। मंने धरम सेती सनबंधु॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जो को मंनि जाणै मनि कोइ॥१४॥
मंने पावहि मोख दुआरु। मंनि परवारै साधारु॥
मंने तरै तारै गुरु सिख। मंनि नानक भवहि न भिख॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥१५॥
पंच परवाण पंच परधानु। पंचे पावहि दरगहि मानु॥
पंचे सोहहि दरि राजानु। पंचा का गुरु इकु धिआनु॥

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम,—
जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले।

१४. उसकी आज्ञा पर चलने से रास्ते में कोई रोक-टोक नहीं रहती; मनुष्य फिर मान-प्रतिष्ठा के साथ (सन्मार्ग पर) चलता है।

उसे जो मानता है वह मामूली रास्ते पर नहीं, बल्कि राजपथ पर चलता है।

[विशेष—'मगुन' भी एक पाठ है। तब यह अर्थ किया गया है कि वह भगवत्प्रेम में मग्न होकर आगे बढ़ जाता है।]

उसका धर्म के साथ (दृढ़) संबंध हो जाता है।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम,—
जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले।

१५. उसकी आज्ञा मान लेने से मनुष्य मोक्ष के द्वार पर पहुँच जाता है। वह अपने परिवार का भी उद्धार कर लेता है।

उसकी आज्ञा पर चलने से वह स्वयं तर जाता है, और जिसे वैसा उपदेश देता है वह भी तर जाता है।

जो उसकी आज्ञा को मानता है, वह भीख नहीं माँगता फिरता।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम—
जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले।

१६. (ऐसे गुरु-उपदेश पाये हुए) पंच ही प्रमाणरूप हैं; अथवा, परमात्मा की दृष्टि में 'स्वीकृत' हैं, और वे ही सबमें प्रधान हैं, प्रतिष्ठित हैं। वे ही उस प्रभु के दरबार में मान पाते हैं।

[विशेष—ग्रन्थ साहब की टीका में भाई चंदासिंह ने 'पंच' का अर्थ इस प्रकार किया है—(१) जो ईश्वर की मरज़ी पर चलते हैं, (२) जो उसे सत्यरूप मानते

जे को कहै करै वीचारु । करते कै करणै नाही सुमारु ॥
धौलु धरमु दइआ का पूत । संतोखु थापि रखिआ जिनि सूत ॥
जे को बुझै होवै सचिआरु । धवलै उपरि केता भारु ॥
धरती होरु परै होरु होरु । तिसते भारु तलै कवणु जोरु ॥
जीअ जाति रंगा के नाव । सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ । लेखा लिखिआ केता होइ ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु । केती दति जाणै कौणु कूतु ॥
कीता पसाउ एको कवाउ । तिसते होए लख दरीआउ ॥

हैं, (३) जो उसका गुन-गान करते हैं, (४) जो उसका नाम सुनते हैं, और (५) जो उसकी आज्ञा का पालन करते हैं ।]

पंचों से ही राजा-महाराजाओं के दरवार शोभायमान होते हैं ।

इनका गुरु केवल परमात्मा का ध्यान होता है ।

यदि कोई मनुष्य कोई बात कहे, तो वे उसपर तात्त्विक विचार करते हैं, उसे बिना विचार किये तुरंत मान नहीं लेते ।

सिरजनहार के कार्यों की कोई गिनती नहीं ।

(जो यह विश्वास किया जाता है कि) नन्दी (शिवजी का बैल) पृथिवी को उठाये हुए है वह नन्दी वस्तुतः धर्म है, प्रभु की कृपा का रचा हुआ 'नियम' है, जिसने सारे ब्रह्मांड को धैर्य के सहारे थाम रखा है ।

जिसने इसको समझ लिया, वह सत्य का साक्षात्कार कर सकता है ।

नन्दी पर कितना बड़ा भार लदा होगा !

इस पृथिवी से परे पृथिवी है—उससे भी परे और उससे भी परे पृथिवी है ।

यह सारा भार यदि उस नन्दी के ऊपर रखा हुआ है, तो वह नन्दी फिर किसके आधार पर स्थित है ?

जीवों की अनेक जातियों और अनेक रंगों के नामों को एक चलती हुई क़लम ने लिखा है—अर्थात् लेखे-हिसाव का प्रवाह अनन्त है ।

इनका कौन लेखा कर सकता है ? और वह कितना वड़ा लेखा बनेगा !

उसकी कितनी वड़ी शक्ति है, और कैसा सलोना रूप है ! उसकी वख्शीसों का कोई पार ! कौन कूत सकता है उन्हें ?

एक ही शब्द से, एक ही आज्ञा से सृष्टि को विस्तृत कर दिया; उसकी आज्ञा से सृष्टि की लाखों नदियाँ वह निकलीं ।

कुदरति कवण कहा वीचार। वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार ॥१६॥
असंख जप, असंख भाउ। असंख पूजा असंख तप ताउ ॥
असंख गरंथ मुखि वेदपाठ। असंख जोग मनि रहहि उदास ॥
असंख भगत गुण गिआन वीचार। असंख सती असंख दातार ॥
असंख सूर मुह भख सार। असंख मोनि लिव लाइ तार ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भलीकार। सदा सलामति निरंकार ॥१७॥
असंख मूरख अंधघोर। असंख चोर हरामखोर ॥
असंख अमर करि जाहि जोर। असंख गलवढ हत्तिआं कमाहि ॥
असंख पापी पाप करि जाहि। असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ॥
असंख मलेछ मलु भखि खाहि। असंख निंदक सिरि करहि भारु ॥

---

१७. असंख्य प्रकार के तेरे मंत्र-जप हैं, और असंख्य ही भक्ति-भाव के मार्ग। असंख्य प्रकार की तेरी पूजा है, और असंख्य तप और साधन।

मेरी क्या बिसात, जो मैं तेरा बखान कर सकूँ?

मैं तो तुझपर एक वार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

असंख्य लोग वेदों और अन्य पवित्र ग्रन्थों का मुख से पाठ करते हैं। और असंख्य योगी मन में जगत् की ओर से उदासीन रहते हैं।

असंख्य भक्तजन तेरे गुणों का और तत्त्व-दर्शन का चिंतन करते हैं।

ऐसे ही, सच्चे और दानी असंख्य लोग हैं। और असंख्य शूरवीर तलवार की चोटें सामने खाते हैं।

असंख्य साधक मौन व्रत धारणकर तुझसे लौ लगाते हैं।

मेरी क्या बिसात, जो मैं तेरा बखान कर सकूँ?

मैं तो तुझपर एक वार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

१८. असंख्य लोग। मूर्ख और घोर अन्धे हैं;
असंख्य चोर और पराया धन हरण करनेवाले हैं;
असंख्य लोग ऐसे हैं, जो बलात्कारपूर्वक राज्य स्थापित कर लेते हैं;
और गला काटनेवाले और हत्यारे भी असंख्य हैं;

नानकु नीचु कहै वीचारु । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥१८॥
असंख नाव असंख थाव ।
अगंम अगंम असंख लोअ । असंख कहहि सिरि भारु होइ ॥
अखरी नामु अखरी सालाह । अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥
अखरी लिखणु बोलणु वाणि । अखरा सिरि संजोगु वखाणि ॥
जिनि एहि लिखे तिस सिरि नाहि । जिव फुरमाए तिव तिव पाहि ॥
जेता कीता तेता नाउ । विणु नावै नाही को थाउ ॥
कुदरति कवण कहा वीचार । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥१९॥

असंख्य पापी हैं, जिन्हें पाप करते हुए गर्व होता है;

असंख्य असत्य बोलनेवाले असत्य में ही पड़े-पड़े चक्कर काटते हैं;

असंख्य गंदे लोग गंदी कमाई से ही अपने पेट भरते हैं;

और असंख्य निन्दक पराई निन्दा करते और सिर पर पापों की गठरी लादते हैं।

तुच्छ नानक कहता है, मैं तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार ! तू सदा सलामत रहता है।

१९. असंख्य तेरे नाम हैं, और असंख्य तेरे धाम;

तेरे अगम्य लोक भी असंख्य, असंख्य हैं;

असंख्य कहते हुए भी सिर पर जैसे भार पड़ता है।

[अथवा, अपनी सारी बुद्धि समेटकर तेरा नाम जपनेवाले असंख्य है।

अथवा, जो तेरा वर्णन करने का यत्न करते हैं, वे मानों सिर पर पाप ढोते हैं; यह उनका अहंकार ही है, जो वर्णनातीत के वर्णन करने का दम भरते हैं।]

अक्षरों के सहारे हम तेरा नाम लेते हैं, और अक्षरों के ही सहारे तेरी स्तुति करते हैं;

अक्षरों के द्वारा हम तत्त्व-विचार करते हैं, और अक्षरों के द्वारा ही तेरे गुण गाते हैं;

अक्षरों से हम वाणी को लिखते और बोलते हैं; अक्षरों केसहारे से ही तेरे साथ हमारा जो संबन्ध है उसका वर्णन करते हैं।

भाग्य पर जो अक्षर लिखा दिये गये हैं उन्हींसे भाग्य का हिसाब लगाया जाता है।

भरीऐ हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह ॥
मूत पलीती कपडु होइ। दे साबुणु लईऐ ओहु धोइ ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥
पुंनी पापी आखणु नाहिं। करि करि करणा लिखि लै जाहु ॥
आपे बीजि आपे ही खाहु। नानक हुकमी आवहु जाहु ॥२०॥
तीरथु तपु दाइआ दतु। जे को पावे तिल का मानु ॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ। अंतरगति तीरथि मनि नाउ ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ। विणु गुण कीते भगति न होइ ॥
सुअसति आथि बाणी बरमाउ। सति सुहाणु सदा मनिचाउ ॥

किन्तु जिसने उन अक्षरों को लिखा है, वह उनकी सीमा से परे है।
तू जैसी आज्ञा देता है वैसा हम पाते हैं।
जैसी तेरी सृष्टि की रचना, वैसे ही तेरा नाम भी महान्।
ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ कि तेरा नाम न हो।
मेरी क्या बिसात, जो मैं तेरा बखान कर सकूँ!
मैं तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

२०. जब हाथ, पैर और शरीर के दूसरे अंग धूल से सन जाते हैं, तो वे पानी से धोने से साफ़ हो जाते हैं।
मूत्र से जब कपड़े गंदे हो जाते हैं तो साबुन लगाकर उन्हें धो लेते हैं।
ऐसे ही यदि हमारा मन पापों से मलिन हो जाये, तो वह नाम के प्रेम-भाव से स्वच्छ हो सकता है।
केवल कह देने से मनुष्य न पुण्यात्मा बन जाते हैं, न पापी ;
किन्तु वे तुम्हारे कर्म हैं, जिन्हें तुम अपने साथ लिखते जाते हो ; तुम्हारे कर्म तुम्हारे साथ-साथ जाते हैं।
आपही तुम जैसा बोते हो वैसा खाते हो।
नानक कहते हैं—यह तुम्हारा आवागमन उसकी आज्ञा से ही हो रहा है।

२१. तीर्थाटन, तप, दया और पुण्य-दान जो करता है, उसे भले ही तिलभर मान मिल जाये,—
[अथवा, प्रभु के नाम का एक कण भी किसीको मिल जाये तो मानों उसने तीर्थाटन, तप, दया, और पुण्य-दान कर लिये।]

कवणु सु वेला वखतु कवणु, कवणु थिति कवणु वारु ।।
कवणि सि रुती माहु कवणु, जितु होआ आकारु ।।
वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु ।।
वखतु न पाओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु ।।
थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु न कोई ।।
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ।।
किवकरि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा ।।
नानक आखणि सभु को आखै इकदू इकु सिआणा ।।
वड्डा साहिबु वड्डी नाई कीता जाका होवै ।।
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहे ।।२१।।

किंतु जो प्रभु का नाम सुनता है, उसपर चलता है, और अंतःकरण से उसकी भक्ति करता है, उसने सारे तीर्थों का स्नान कर लिया, और अपने सब पापों को धो डाला।

जितने भी गुण हैं सब तेरे ही हैं ; मुझमें एक भी गुण नहीं।

आचरित गुण के बिना भक्ति हो नहीं सकती।

धन्य है उसे जो स्वतः माया है, वाणी है और ब्रह्म है !

वह सत्य है, सुन्दर है, और अंतर में सदा आनन्द के रूप में रहता है।

वह कौन-सा समय था, जब सृष्टि रची गई ? वह क्या तिथि थी, और कौन-सा दिन ? वह क्या ऋतु थी, और कौन-सा मास ?

पंडितों को उसका पता नहीं लगा ; यदि पता होता, तो वे उसका अवश्य पुराणों में उल्लेख करते।

काजियों को भी उस वक्त का इल्म नहीं था ; यदि उन्हें इल्म होता तो कुरान में उन्होंने उसे दर्ज किया होता।

और न किसी योगी को उस तिथि, उस वार और उस ऋतु और उस मास का ज्ञान है।

उस करतार को ही उस समय का पता है कि उसने सृष्टि की रचना कब की थी।

मैं उसे क्या कहकर पुकारूँ, और कैसे उसकी स्तुति करूँ ? उसका बखान कैसे करूँ, और कैसे उसे जानूँ ?

नानक ! एक से-एक बुद्धिमान उसके विषय में अपनी-अपनी समझ से कहते हैं कि वह 'कैसा है' और 'कैसा' नहीं।

पाताला पाताल लख आगासा आगास ।
ओडक ओड़क भालि थके वेद कहनि इक बात ।
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु ॥
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु ।
नानक वड्डा आखीऐ आपे जाणै आपु ॥२२॥
सालाही सालाहि एती सुरति न पाईआ ।
नदीआ अंतै वाह पवहि समंदरि न जाणीअहि ।
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु ॥
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि ॥२३॥
अंतु न सिफती कहणि न अंतु । अंतु न करणै देणि न अंतु ॥
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु । अंतु न जापै किआ मनि मंतु ॥

पर (समझ में तो इतना ही आया है कि) वह स्वामी महान् है, उसका नाम भी महान् है; उसीका किया-धरा सब कुछ होता है ; और कोई कुछ नहीं कर सकता ।

नानक ! जो यह अभिमान करता है कि मैंने यह किया है, वह स्वामी के लोक में मान नहीं पायेगा ।

२२. लाखों ही पाताल हैं, और उनके भी पाताल हैं उसकी रचना में;

इसी प्रकार लाखों आकाश हैं और उनके भी आगे आकाश हैं ।

उसका अंत खोजते-खोजते वेद थक गये—केवल एक ही बात वेदों ने कही (कि उसकी रचना का अंत नहीं ।)

मुसलमानों की किताबों ने कहा है कि अठारह हजार आलम हैं उसकी रचना में ।

पर असल में मतलब एक ही है दोनों का-(याने उसकी रचना का अंत नहीं ।)

गिनती हों तो उसे लिखा जाये; लिखनेवाले का ही अंत हो जाता है, पर लेखे का अंत नहीं मिलता ।

नानक कहते हैं—उसे महान् ही कहना चाहिए ; वह कितना महान् है इसे वह खुद ही जानता है ।

२३. स्तुति करनेवाले स्तुति करते हैं, पर इसकी महिमा का पता उन्हें भी नहीं ।

जैसे, नदियाँ और नाले समुद्र में जाकर गिरते हैं, पर उसकी पूरी गंभीरता और विशालता का ज्ञान उन्हें नहीं होता ।

जिन राजाओं और सम्राटों के पास संपत्ति के समुद्र और धन के पर्वत हों, वे उस कीड़ी के भी समान नहीं, जो अपने हृदय से परमात्मा को नहीं विसराती ।

अंतु न जापै कीता आकारु । अंतु न जापै पारावारु ॥
अंत कारणि केते बिललाहि । ताके अंत न पाए जाहि ॥
एहु अंतु न जाणै कोइ । बहुता कहीऐ बहुता होइ ॥
वड्डा साहिबु ऊचा थाउ । ऊचे उपरि ऊचा नाउ ॥
एवडु ऊचा होवै कोइ । तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ॥
जेवडु आपि जाणै आपि आपि । नानक नदरी करमी दाति ॥२४॥
बहुता करमु लिखिआ न जाइ ।
वडा दाता तिलु न तमाइ । केते मंगहि जोध अपार ॥

---

२४. अंत नहीं परमात्मा के गुणों का, या उसकी स्तुति का ; और न उसके गुणों के वर्णन का अंत है ।

उसकी करणी या रचना का भी अंत नहीं, और न उसके दान का कोई अंत है । उसकी रचना में जो कुछ देखने में और जो कुछ सुनने में आता है उस सबका भी कोई अंत नहीं ।

इसका भी अंत नहीं कि उसके मन में इस सारी रचना के रचने का क्या रहस्य है ।

न तो उसकी सृष्टि का अंत जाना जा सकता है, और न उसके इस पार का और न उस पार का अंत किसीको मिल सका है ।

उसका अंत पाने के लिए कितने ही बिलखते हैं, पर पा नहीं सकते ।

उसे कोई नहीं जानता; जितना कि उसके विषय में कहा जाता है उससे भी कहीं अधिक कहने को रह जाता है ।

वह स्वामी महान् है, उसका पद ऊँचा है, और उस प्रभु का नाम ऊँचे से भी ऊँचा है ।

[**विशेष**—'नाउ' का अर्थ 'प्रकाश' भी किया गया है ।]

हाँ, यदि कोई उसके जितना ऊँचा हो, तभी वह उस ऊँचे और महान् स्वामी को समझ सकता है ।

वह आपही अपने आपको जानता है कि वह कितना बड़ा है, उसे और कोई नहीं जानता ।

नानक, जो कुछ भी किसीको मिलता है, वह उसकी बख्शीस है और उसकी कृपा से वह मिलती है ।

२५. उसकी मेहर और बख्शीस का हिसाब लिखा नहीं जा सकता ।

केतिआ गणत नहीं वीचारु । केते खपि तुटहि वेकार ॥
केते लै लै मुकरु पाहि । केते मूरख खाही खाहि ॥
केतिआ दूख भूख सद मार । एहि भि दाति तेरी दातार ॥
बंदिखलासी भाणै होइ । होरु आखि न सकै कोइ ॥
जे को खाइकु आखणि पाइ । ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ ॥
आपे जाणै आपे देइ । आखहि सिभि केई केइ ॥
जिसनो बखसे सिफति सालाह । नानक पातिसाही पातिसाह ॥२५॥
अमुल गुण अमुल वापार । अमुल वापारीए अमुल भंडार ॥
अमुल आवहि अमुल लै जाहि । अमुल भाइ अमुला समाहि ॥

वह बहुत बड़ा दाता है; उसे तिलभर भी लोभ नहीं।

कितने ही, बल्कि अपार योद्धा, उस दाता से माँगते रहते हैं।

और भी कितने ही, जिनकी गिनती का अनुमान भी नहीं लगा सकते।

कितने ही विकारों से भरे मनुष्य विषयों को भोग-भोगकर शरीर को क्षीण कर देते हैं!

कितने ही (कृतघ्न) ले-लेकर भी इन्कार करते हैं (कि हमें परमेश्वर ने कुछ दिया ही नहीं!)

कितने ही मूढ़ मनुष्य ऐसे हैं, जो केवल पेट भरते रहते हैं!

और कितने ही दुःख और भूख की मार से मरा करते हैं;

दाता! यह भी तेरी वख्शीस है।

बंधनों से छुटकारा तेरी मरज़ी से ही मिलता है; उसमें कोई दख़ल नहीं दे सकता।

कोई मूर्ख यदि उसमें दख़ल देने का यत्न करे तो वही जानेगा, कि उसे क्या सज़ा भोगनी पड़ेगी।

वह खुद ही हमारी आवश्यकताओं को जानता है कि किसे क्या-क्या देना है और वही-वही वह देता है।

पर विरले ही (जो कृतज्ञ होते हैं) ऐसा मानते हैं।

नानक! वह वादशाहों का भी बादशाह है, जिसे कि उसने उसके गुण गाने और कृतज्ञता प्रकट करने की वख्शीस दी है।

२६. अनमोल हैं तेरे गुण और अनमोल है तेरा लेन-देन;

अनमोल हैं तेरे व्यवहार और अनमोल तेरे गुणों के भंडार।

अमुलु धरमु अमुलु दीवाणु । अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ॥
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु । अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ॥
अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ । आखि आखि रहे लिव लाइ ॥
आखहि वेद पाठ पुराण । आखहि पड़े करहि वखिआण ॥
आखहि बरमे आखहि इन्द । आखहि गोपी तै गोविन्द ॥
आखहि ईसर आखहि सिद्ध । आखहि केते कीते बुद्ध ॥
आखहि दानव आखहि देव । आखहि सुरि नर मुनि जन सेव ॥
केते आखहि आखणि पाहि । केते कहि कहि उठि उठि जाहि ॥
एते कीते होरि करेहि । ता आखि न सकहि केई केइ ॥

अनमोल हैं वे, जो उन्हें विसाहने आते और विसाहकर ले जाते हैं ।
अनमोल है तेरा प्रेम, और अनमोल हैं वे, जो उसमें डूब गये हैं ।
अनमोल है तेरा न्याय, और अनमोल है तेरा न्यायालय ।
अनमोल है तेरी तोल, और अनमोल तेरा पैमाना ।
अनमोल हैं तेरी वख्शीसें, और अनमोल है तेरी परवानगी का निशाना ।
अनमोल है तेरी कृपा, और अनमोल हैं तेरी आज्ञाएँ ।
अनमोल-ही-अनमोल है तू, कुछ वखान नहीं करते बनता ।
वखान कर-करके भी अंत में चुप हो जाना पड़ा ।
वेदों और पुराणों का पाठ करनेवाले तेरा वखान करते हैं,
और बड़े-बडे पंडित उनकी व्याख्या करके समझाते हैं ।
ब्रह्मा तेरा वखान करता है, और इन्द्र भी ;
गोपियाँ और कृष्ण, और शिव तेरा वर्णन करते हैं ;
इसी प्रकार गोरखनाथ और सिद्ध भी—
और जिन अनेक बुद्धों को तूने रचा वे भी तुझे वखानते हैं ।
दैत्य और देवता भी तथा सुर, नर, मुनि और भक्तजन तेरे विषय में कहते हैं ।
अनेक कह रहे हैं, और अनेक कहने का यत्न करते हैं—
और कितने ही कहते-कहते उठ जाते हैं ।
जितने तूने रचे हैं इतने ही यदि तू और रच डाले, तब भी कोई तेरा यथार्थ वर्णन नहीं कर सकेगा ।
जितना बड़ा तू चाहे, उतना ही बड़ा हो सकता है ।

जेवडु भावे तेवडु होइ । नानक जाणै साचा सोइ ।
जे को आखै बोलु विगाडु । ता लिखीऐ सिरि गावारा गावार ॥२६॥
सो दरु केहा सो घरु केहा । जितु बहि सरब समाले ॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ॥
केते राग परी सिउ कहिअनि केते गावणहारे ॥
गावहि तुहनो पउणु पाणी वैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे ॥
गावहि चित्तु गुपतु लिखिजाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ॥
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे ॥
गावहि इन्द इन्दासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ॥
गावहि सिद्ध समाधी अन्दरि गावनि साध विचारे ॥
गावहि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे ॥
गावहि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले ॥
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मच्छ पइआले ॥

नानक ! वह स्वयं सत्यरूप ही जानता है कि वह कितना बड़ा है ।

किंतु यदि कोई बकवादी कहने लगे कि तू इतना बड़ा है, तो उसे गँवार से भी गँवार लेखना चाहिए ।

२७. तेरा वह कैसा द्वार होगा, और कैसा वह घर होगा, जहाँ तू बैठा-बैठा सारी सृष्टि की सँभाल रखता है ?

वहाँ अगणित और अनेक प्रकार के वाजे बज रहे हैं ; और उन्हें बजानेवाले भी कितने होंगे वहाँ !

कितने ही राग-रागिनियों के गान कितने ही गायक वहाँ गाये जा रहे हैं ! तेरा गुण-गान पवन, जल और अग्नि करते हैं;

धर्मराज तेरे द्वार पर बैठा वहाँ गारहा है ।

और चित्रगुप्त—मनुष्यों के कर्मों का लेखा रखनेवाला—तेरा गान गाता है ।

शिव, ब्रह्मा और शक्ति, जिन्हें तूने सँवारा है, तेरा यश गाते हैं।

सिंहासन पर बैठा हुआ इन्द्र भी, देवगणों के साथ, तेरे गुण गा रहा है ।

सिद्धजन समाधि लगाये हुए, और साधुजन ध्यान में मग्न तेरा ही गुणानुवाद करते हैं ।

यति, सत्य-साधक और संतोषी तथा भारी-भारी शूरवीर तेरी कीर्ति का गान करते हैं ।

गावहि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ॥
गावहि खंड मडल वरभंडा करि करि रखे धारे ॥
सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ॥
होरि केते गावहि से मैं चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वाडआई ॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकुम न करणा जाई ॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥२७॥

वेदपाठी बड़े-बड़े पंडित और ऋषि युग-युग से तेरा गुण-गान करते आ रहे हैं।

मोहिनी सुन्दर स्त्रियाँ स्वर्गों की, मध्यलोकों की और पातालों की तेरे गुण गाती हैं।

तूने जो रत्न उत्पन्न किये हैं वे, और अड़सठ तीर्थ तेरा गायन करते हैं। बड़े-बड़े बलवान योद्धा तेरी महिमा गा रहे हैं;

और चारों ही प्रकार के जीव—अंडज, पिंडज, स्वेदज और उद्‌भिज। समस्त ब्रह्माण्ड, उसके खंड और लोक सभी गा रहे हैं, जिन्हें कि रच-कर तूने सहारा दे रखा है।

वे ही तेरा गुण-गान करते हैं, जो कि तुझे भाते हैं, और जो तेरे अनुराग-रस में डूबे हुए हैं।

और भी कितने ही तेरा गुण-गान करते हैं, जो मुझे याद नहीं आ रहे हैं। नानक उन्हें कैसे गिनाये ?

सच्चा, सच्चे नामवाला वह स्वामी सदा वैसे-का-वैसा एकरस रहता है। जिसने सारी सृष्टि को रचा है, वही अब है, और आगे भी वही रहेगा।

रंग-रंग की, तरह-तरह की यह रचना जिसने रची है, वह उसे रच-रचकर जैसा कि वह बड़ा है उसीके अनुसार उसकी सार-सँभाल कर रहा है।

वह वही करता है जो उसे भाता है; उसे यह नहीं कह सकते कि, 'ऐसा कर, और ऐसा न कर।'

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति ॥
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति ॥
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२८॥
भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ॥
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिद्धि सिद्धि अवरा साद ॥
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२९॥

वह स्वामी बादशाहों का भी बादशाह है ।

सब-कुछ उसीकी इच्छा पर निर्भर है ।

२८. मुद्राएँ तू संतोष और शील की बना, और (स्वमानयुक्त) उद्यम की झोली;
और (परमात्मा के) ध्यान की लगाले भस्म ।
काल का (सतत) स्मरण ही तेरी कंथा हो;
और देह को–अपनी रहनी को–कुमारी कन्या की तरह पवित्र रख, और श्रद्धा को अपना दंड बनाले ।

सबको तू अपनी ही जमात का समझ; मानो सारे मनुष्य तेरे 'आईपंथ' के ही हैं ।

[**विशेष**—योगियों के बारह पंथों में से एक पंथ 'आई पंथ' है ।]

और यह मान कि मन को जीत लिया तो जगत् को जीत लिया ।

'आदेश, अर्थात् प्रणाम उसीको कर, जो 'आदि ईश' है ।

[**विशेष**—नाथपंथी योगी आपस में एक दूसरे को 'आदेश' कहकर प्रणाम करते हैं ।]

जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अंत नहीं और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है ।

२९. आध्यात्मिक ज्ञान का तू भोजन कर और दया को बनाले अपना भंडारी ।
घट-घट में जो नाद बज रहा है वह तेरी सारंगी है ।
जिसने सारी सृष्टि को (अपनी डोरी से) नाथ रखा है, वही है नाथ तेरा ।
ऋद्धियों और सिद्धियों की (तुच्छ) करामात तेरे लिए नहीं, दूसरों के लिए है—

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाइ दीवाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३०॥
आसणु लोइ लोइ भंडार । जो कछु पाइआ सु एका वार ॥
करि करि वेखै सिरजणहारु । नानक सचे की साची कार ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३१॥

[वे प्रभु के रास्ते से दूर भटकाकर ले जाती हैं ।]
संयोग और वियोग ये दोनों नियम जगत् का नियंत्रण कर रहे हैं—
हमारे भाग्य से हमें अपना भाग मिलता है । 'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर, जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि हैं, जिसका अंत नहीं, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है ।

३०. एक माया को किसी युक्ति से प्रसव हुआ, और तीन चेले या पुत्र उससे जनमें—
एक तो संसार को रचनेवाला, दूसरा पालन-पोषण की सामग्री रखनेवाला भंडारी और तीसरा मृत्यु-दंड देनेवाला न्यायाधीश—अर्थात्, ब्रह्मा, विष्णु और शिव ।
परमात्मा जैसा चाहता है, वैसी आज्ञा उन्हें देता है, और वैसे ही सारी सृष्टि को चलाता है ।
वह तो उन्हें देखता है, पर वह उनको नहीं दीखता ।
यह बहुत अद्भुत है ।
'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर,
जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अंत नहीं, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है ।

३१. लोक-लोक में उसका आसन है; और लोक-लोक में उसका भंडार ।
उनमें जो कुछ रखना था वह एक बार ही रख दिया है ।
वह सिरजनहार सृष्टि को रच-रचकर उसे देखता और सँभालता है ।
नानक ! उस सच्चे (परमात्मा) का काम भी सच्चा है ।

इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस ॥
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ॥
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़िऐ होइ इकीस ॥
सुणि गल्ला आकास की कीटा आई रीस ॥
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ॥३२॥

आखणि जोरु चुपै नह जोरु। जोरु न मंगणि देणि न जोरु ॥
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु। जोरु न राजि मालि मनि सोरु ॥
जोरु न सुरती गिआनि विचारि। जोरु न जुगति छुटै संसारु ॥
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ। नानक उत्तमु नीचु न कोइ ॥३३॥

राती रुती थिती वार। पवन पाणी अगनी पाताल ॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल ॥

'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर,

जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अंत नहीं, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है।

३२. एक जीभ की जगह यदि मेरी लाख जीभें हो जायें, और लाख से वीस लाख, तोभी एक-एक जीभ से मैं लाख-लाख बार एक जगदीश्वर का ही नाम जपूँगा।

इस प्रकार मैं उस स्वामी के मार्ग की सीढ़ियों से चढ़कर उसमें लीन हो जाऊँगा।

वहाँ की, उस गगन-मंडल की बातें सुन-सुनकर अधम-से-अधम जीव को भी उस स्वामी से मिलने की ईर्ष्या होने लगती है।

नानक ! पर उससे मिलना तो उसकी कृपा-दृष्टि से ही होता है।

बाक़ी सब झूठी बकवास है झूठों की।

३३. न तो मेरी शक्ति कहने की है, और न चुप रहने की ही।

न माँगने की शक्ति है, और न देने की ही।

न जीने की शक्ति है, और न मरने की ही।

राज्य और सम्पत्ति को प्राप्त करने की भी मुझमें शक्ति नहीं है,

जिनके लिए चित्त इतना चंचल रहता है।

न मेरे पास वह शक्ति है, जिससे कि ध्यान और ज्ञान का चिंतन कर सकूँ।

और न उस युक्ति को खोज निकालने की ही शक्ति है, जिससे कि संसार के बन्धन से छूट जाऊँ।

जिस (प्रभु) के हाथ में शक्ति है, वही सब रचना रचता है, और वही उसे

तिसु विचि जीअ जुगति के रंग । तिनके नाम अनेक अनंत ॥
करमी करमी होइ वीचारु । सचा आपि सचा दरबारु ॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु । नदरी करमी पवै नीसाणु ॥
कच पकाई ओथै पाइ । नानक गइआ जापै जाइ ॥३४॥
धरमखंड का एहो धरमु ॥
गिआनखंड का आखहु करमु ॥
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान्ह महेस ॥
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूपरंग के वेस ॥
केतीआ करमभूमी मेर केते केते धू उपदेस ॥
केते इन्द चंद सूर केते केते मंडल देस ॥
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस ॥
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समसुंद ॥

सँभालता है ।

नानक ! (ईश्वर के आगे) अपनी शक्ति से न तो कोई ऊँच हो सकता है, और न कोई नीच ।

३४. रात्रियों, ऋतुओं, तिथियों और वारों तथा वायु, जल, अग्नि और पाताल के बीच में पृथिवी को मानों धर्म का मन्दिर बनाकर उसने रखा है ।

उस पृथिवी में उसने नाना स्वभावों और नाना प्रकारों के जीव रख दिये हैं; उनके अनेक और अनंत नाम हैं ।

उन सबको अपने-अपने कर्मों के अनुसार न्याय मिलता है ।

वह सच्चा है, और न्यायालय उसका सच्चा है ।

वहाँ, उसके दरबार में, उसके चुने हुए ही शोभा और प्रतिष्ठा पाते हैं ।

उन्हें ही उसकी दया-दृष्टि और कृपा से वहाँ परवानगी मिलती है ।

कच्चे और पक्के की परख भी वहींपर होती है ।

नानक ! वहाँ पहुँचकर ही इसका पता लगता है ।

३५. धर्मखंड का--कर्त्तव्य कर्म के पद का यह वर्णन है ;

अब ज्ञानखंड अर्थात् तत्त्व-विचार के पद की दशा का वर्णन करता हूँ ।

कितने पवन, कितने जल और कितने अग्नितत्त्व दीख रहे हैं !

कितने कृष्ण और कितने शिव और कितने ब्रह्मा दीखते हैं अनेक रूपों और रंगों की रचना रचते हुए !

केतीआ खाणी केतीआ वाणी केते पात नरिंद ॥
केतीआ सुरती सेवक, केते नानक अंतु न अंतु ॥३५॥

गिआनखंडमहि गिआनु परचंडु ॥ तिथै नाद-बिनोद कोड अनंदु ॥
सरमखंड की वाणी रूपु ॥ तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥
ताकीआ गला कथीआ न जाहि ॥ जेको कहै पिछै पछताइ ॥
तिथै घड़ीए सुरति-मति मनि-बुधि ॥ तिथै घड़ीऐ सूरा-सिधा की सुधि ॥३६॥

करमखंड की बाणी जोरु । तिथै होरु न कोई होरु ॥
तिथै जोध महाबल सूर । तिनि महि रामु रहिआ भरपूर ॥

कितनी ही कर्मभूमियाँ और कितने ही सुमेरु पर्वत दीख रहे हैं वहाँ !

कितने ही ध्रुव और कितने ही ज्ञानोपदेश लेनेवाले दीखते हैं !

वहाँ कितने ही इन्द्र, कितने ही चन्द्र, कितने ही सूर्य और कितने ही नक्षत्र-मंडल और लोक दीख रहे हैं ।

कितने ही सिद्ध, बुद्ध और नाथ !

कितनी ही देवियाँ और अनेक नानारूप दीखते हैं वहाँ !

कितने ही देवता, दानव और मुनि,

तथा कितने ही समुद्र और उनमें से निकले हुए रत्न वहाँ दीख रहे हैं !

जीवों की कितनी ही खानें और कितनी ही उनकी बोलियाँ वहाँ दीख रही हैं ! और राजाओं की कितनी ही वंशावलियाँ !

नानक ! वहाँ कितने ही ध्यानावस्थित और भक्तजन दीखेंगे, जिनका कोई अन्त नहीं !

३६. उस ज्ञानखंड में, आत्म-विचार की उस दशा में ज्ञान-ही-ज्ञान प्रज्वलित रहता है ।

वहाँ ऐसा नाद सुनाई देता है, जिससे आनन्द की करोड़ों वृत्तियाँ विकसित होती हैं ।

आनंद-खंड में पहुँचने से सुन्दर-सुन्दर वाणियाँ फूटती हैं ।

वहाँ की, उस खंड की रचना अनुपम है ।

वर्णनातीत है वह अवस्था । यदि कोई वर्णन करने का यत्न करेगा, तो उसे लज्जित होना पड़ेगा ।

वहाँ ज्ञान-विज्ञान और मन की विशुद्ध वृत्तियों का सृजन होता है,

और सिद्धों और महात्माओं के ऊँचे मनोभावों का भी ।

३७. कर्मखंड अर्थात् आचरित (अमली) अवस्था में पहुँचे हुए (साधक) के कार्य-कलाप सबल होते हैं ।

तिथै सीतो सीता महिमा माहि । ताके रूप न कथने जाहि ॥
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि । जिनकै रामु वसै मन माहि ॥
तिथै भगत वसहि के लोअ । करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥
सचखंडि वसै निरंकार । करि करि वेखै नदरि निहाल ॥
तिथै खंड मंडल वरभंड । जे को कथै त अंत न अंत ॥
तिथै लोअ लोअ आकार । जिव जिव हुकम तिवै तिवकार ॥
वेखैं विगसै करि वीचारु । नानक कथना करड़ा सारु ॥३७॥
जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु । अहरणि मति वेदु हथीआरु ॥
भउ खल्ला अगनि तपताउ ॥ भांडा भांड़ अमृत तितु ढालि ॥

उस अवस्था को और कोई नहीं पहुँचता; केवल महान् बली शूर-वीर ही वहाँ पहुँच पाते हैं ।

उनमें राम (का बल) कूट-कूटकर भरा हुआ होता है ।

(राम की) उस महिमा में सीता-ही-सीता रहती हैं, जिनके रूप का वर्णन नहीं हो सकता ।

[अर्थात, जहाँ सच्चे पुरुषार्थ की महिमा है, वहाँ सीता-जैसी पवित्रता निवास करती है ।]

वे न मारे जा सकते हैं, न उन्हें कोई ठग सकता है,
जिनके कि हृदय में राम वस रहा है ।
वहाँ (प्रभु के) भक्तों की मंडली निवास करती है ;
वे आनंदित रहते हैं, क्योंकि उनके हृदय में सत्यरूप परमात्मा वास करता है ।
सत्यखंड में स्वयं निराकार परमेश्वर का वास है ।
जो सृष्टि को रच-रचकर दया-दृष्टि से उसे निहाल करता है ।
वहाँ पहुँचकर (सत्य का साधक) देखता है अनेक खंड, अनेक लोक और अनेक ब्रह्माण्ड ।
कौन उनका वर्णन कर सकता है ? कहीं उनका अंत ही नहीं ।
वहाँ लोकों के ऊपर भी लोक हैं, और उनमें आकार-पर-आकार रचे हुए हैं ।
परमात्मा जैसी-जैसी आज्ञा देता है, वैसे-वैसे ही काम वहाँ संपन्न होते हैं ।
देख-देखकर और विचार-विचारकर वह प्रसन्न होता है ।
नानक ! उसका वर्णन करना असंभव है । [लोहे के जैसा कठिन है ।]

३८. संयम को तू भट्ठी वना, और धैर्य को अपना सुनार ;
बुद्धि को वना अहरण (निहाई) और आत्म-ज्ञान को हथौड़ा ।

घड़ीऐ सबदु सची टकसाल ॥ जिन कउ नदरि करमु तिनि कार ॥
नानक नदरी नदरि निहाल ॥३८॥

सलोक

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु ॥
दिवस राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु ॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरम हदूरि ॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥
जिनी नाम धिआइआ गए मसक्कति घालि ॥
नानक ते मख उज्जले केती छुट्टी नालि ॥१॥*

(**विशेष**–'वेदु' का अर्थ 'गुरु-वाणी' भी किया गया है।)
परमात्मा के भय की धोंकनी फूक, और तप की अग्नि जला।
प्रेम-भाव का साँचा बनाकर उसमें नाम का अमृत ढालले।
उसी सच्ची टकसाल में 'शब्द' अर्थात् ऊँचा आचरण घड़ा जा सकेगा।
ऐसा काम वही कर सकते हैं, जिनपर कि प्रभुने कृपा-दृष्टि करदी है,
नानक! मेरा प्रभु एक ही कृपा-दृष्टि से निहाल कर देता है।

१. पवन गुरु है, जल हमारा पिता है, और इतनी बड़ी पृथिवी है हमारी माता;
(**विशेष**–पवन को गुरु यहाँ इसलिए कहा है कि वह परमात्म-ज्ञान का मंत्र फूकता है; जल का गुण जीवन-दान देना है, इसीलिए उसका एक नाम 'जीवन' भी है, अतः वह पितृतुल्य हैं; पृथिवी पोषण करती है माता के समान; दिन कर्म में लगाता है; और रात विश्राम देती है।)

दिन और रात ये दोनों हमारी धायें हैं, जिनकी गोद में सारा जगत् खेलता है।

धर्म हमारा न्यायाधीश है, जो अच्छे और बुरे कर्मों को अपने आगे जाँचता है, हमारे कर्म हममें से किसीको तो परमात्मा के निकट ले जाते हैं, और किसीको उससे दूर फेक देते हैं।

जिन्होंने नाम का अभ्यास किया है, वे अपना श्रम सफल कर गये।

नानक! उनके मुख प्रकाशमान हैं, उनके सत्संग से कितने ही लोग (भव-बंधन से) मुक्त हो गये।

* यह सलोक 'माझ की वार' में गुरु अंगदकृत लिखा हुआ है; थोड़ा-साही पाठान्तर है।

राग धनासरी

गगनमै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ॥
धूपु मलआनलो पवणू चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ॥
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती । अनहता सबद वाजंत भेरी ॥
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही ॥
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही।
सभ महि जोति जोति है सोई । तिसदै चानणि सभ महि चानणु होइ ॥
गुर साखी जोती परगटु होइ ॥ जो तिसु भावै सु आरती होइ ॥
हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहिं आही पिआसा ॥
कृपाजलु देहिं नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरै नाइ वासा ॥१॥

---

१. आकाश-मंडल थाल है, और सूर्य और चंद्र उसमें दोनों दीपक; और उसमें जड़े हुए हैं ताराओं के मोती ।

मलयानिल तेरी धूप है, और पवन तुझे चँवर डुलाता है, और हे ज्योतिस्वरूप! सारे ही कानन तेरे फूल हैं ।

हे भव-खंडन (जन्म-मरण से छुड़ानेवाले) यह तेरी कैसी आरती है ! अनहद नाद की तुरुही वज रही है जहाँ ।

तेरी सहस्रों आँखें हैं, और तोभी तू विना आँख का है;
तेरे सहस्रों रूप हैं, और तोभी तू विना रूप का है;
तेरे सहस्रों निर्मल चरण हैं, और तोभी तू विना चरण का है;
तेरी सहस्रों नासिकाएँ हैं, और तोभी तू विना घ्राण का है ।
मैं तो मुग्ध हूँ तेरी इस लीला पर ।

सब तेरी ही ज्योति से ज्योति पा रहे हैं; तेरे ही प्रकाश से सब प्रकाशित हो रहे हैं ।

गुरु के उपदेश से वह ज्योति प्रकट होती है ।

जो तुझे प्रिय लगे वही तेरी आरती है ।

तेरे चरणारविन्दों के मकरंद में मेरा मन-(मधुकर) लुब्ध हो गया है—नित्य ही मुझे उस मकरंद की प्यास लगी रहती है ।

इस नानक-चातक को अपना कृपा-जल देदे, जिससे कि वह तेरे नाम में रम जाये ।

आसा

आखा जीवा विसरै मरि जाउ ॥ आखणि अउखा साचा नाउ ॥
साचे नाम की लागै भूख ॥ उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख ॥
सो किउ विसरै मेरी माइ ॥ साचा साहिबु साचै नाइ ॥
साचे नाम की तिलु वडिआई ॥ आखि थके कीमति नही पाई ॥
जे सभि मिलिकै आखण पाहि ॥ वडा न होवै घाटि न जाइ ॥
ना ओहु मरै न होवै सोगु ॥ देदा रहै न चूकै भोगु ॥
गुणु एहो होरु नाही कोइ ॥ ना को होआ ना को होइ ॥
जेवडु आपि तेवडु तेरी दाति ॥ जिनि दिनु करिकै कीती राति ॥
खसमु बिसारहि ते कमजाति ॥ नानक नावै बाझु सनाति ॥२॥*

---

२. यदि मैं नाम का जप करूँ, तो जीऊँ; यदि भूलजाऊँ, तो मरजाऊँ; उस सच्चे के नाम का जप बड़ा कठिन है।

यदि सच्चे नाम की भूख लग उठे, तो खाकर तृप्त हो जाने पर भूख की व्याकुलता चली जाती है।

तब हे मेरी माता ! उसे मैं कैसे भुला दूँ ?

स्वामी वह सच्चा है, उसका नाम सच्चा है।

उस सच्चे नाम की तिलमात्र भी महिमा वखान-बखानकर मनुष्य थक गये, फिरभी उसका मोल नहीं आँक सके।

यदि सारे ही मनुष्य एकसाथ मिलकर उसके वर्णन करने का यत्न करें, तोभी उसकी बड़ाई न तो उससे बढ़ेगी, और न घटेगी।

वह न मरता है, और न उसके लिए शोक होता है।

वह देता ही रहता है नित्य सबको आहार, कभी चूकता नहीं देने से।

उसकी यही महिमा है, कि उसके समान न कोई है, न था, न होगा।

तू जितना बड़ा है उतना ही बड़ा तेरा दान है।

तूने दिन बनाया है, और रात भी

वे मनुष्य अधम हैं, जो तुझ स्वामी को भुला बैठे हैं।

नानक, बिना तेरे नाम के वे बिल्कुल नगण्य हैं।

* यह 'रहिरास' में से लिया गया है।

सोहिला-रागु गउड़ी दीपकी

जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो ।
तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजणहारो ॥
तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ॥
हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ॥
नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु ॥
तेरे दानै कीमति ना पावै तिसु दाते कवणु सुमार ॥
संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु ॥
देहु सज्जण असीसड़ीआ जिउं होवै साहिब सिउ मेलु ॥
घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पावन्नि ॥
सदणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवन्नि ॥३॥

रागु मलार

करउ बिनउ गुर अपने प्रीतम हरि वरु आणि मिलावै ।
सुनि घनघोर सीतलु मनु मोरा, लाल-रती-गुण गावै ॥

---

३. जिस घर में परमात्मा का गुण-गान होता है और उसका ध्यान किया जाता है, उस घर में सोहिला गाओ, और सिरजनहार का स्मरण करो ।
तुम मेरे निर्भय प्रभु का सोहिला गाओ ।
मैं उस आनन्द-गान पर बलि जाता हूँ, जिससे कि 'नित्य सुख' प्राप्त होता है ।
नित्य-नित्य सब जीवों की सार-सँभाल रखी जाती है; वह दाता उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखता है ।
जब कि तेरे दान का हिसाब नहीं रखा जा सकता, तब फिर तुझ दानी का हिसाब कौन रख सकता है ?
विवाह का संवत्, और लग्न का समय आँक लिया जाता है; तब सब संबंधी मुझ दुलहिन पर तेल चढ़ाते हैं ।
मेरे साजनो, मुझे आसीस दो कि मेरे स्वामी से मेरा मिलन हो ।
यह संदेसा सदा घर-घर पहुँचाया जाता है; ऐसे न्योते हमेशा भेजे जाते हैं ।
जिसे बुला भेजा है उसे याद करलो; नानक, वह दिन आरहा है ।

४. करउ बिनउ=विनती करती हूँ । वरु=वर, प्रियतम । लालरती-गुण=प्रियतम की प्रीति का बखान । भीना=विभोर या सराबोर हो गया । वरि=वरण करके ।

बरसु घना मेरा मनु भीना।
अमृत बूँद सुहानी हियरै गुरि मोहि मनु हरि रसि लीना।
सहजि सुखी वर कामणि पिआरी जिसु गुरवचनी मनु मानिआ ॥
हरि वरि नारि भई सोहागणि, मनि तनि प्रेम सुखानिआ ॥
अवगण तिआगि भई बैरागनि असथिरु वरु सोहागु हरी।
सोगु विजोगु तिसु कदे न विआपै, हरि प्रभ अपणी किरपा करी ॥
आवण जाण नहीं मनु निहचलु पूरे गुर की ओट गही।
नानक रामनामु जपि गुरमुखि धनु सोहागणि साचु सही ॥४॥

राग वसंत

चंचल चीतु न पावै पारा। आवत जात न लागै बारा ॥
दूखु घणो मरीऐ करतारा। बिनु प्रीतम को करै न सारा ॥
सभ ऊतम किसु आखउ हीना। हरिभगती सचि नामि पतीना ॥
अउखध करि थाकी बहुतेरे। किउ दुख चूकै बिनु गुर मेरे ॥
बिनु हरिभगती दूख घणेरे। दुख सुख दाते ठाकुर मेरे ॥
रोगु बड़ो किउ बांधउ धीरा। रोगु बूझै सो काटै पीरा ॥
मैं अवगुण मन माहि सरीरा। ढूढत खोजत गुर मेले वीरा ॥
गुर का सबदु दारू हरिनाउ। जिउ तू राखहि तिवै रहाउ ॥
जगु रोगी कह देखि दिखाउ। हरि निरमाइलु निरमलु नाउ ॥
घर महिं घरु जो देखि दिखावैं। गुर महली सो महलिं बुलावैं ॥
मन महि मनुआ चित महि चीता। ऐसे हरि के लोग अतीता ॥
हरख सोग ते रहहि निरासा। अमृत चाखि हरिनामि निवासा ॥

मनि...सुखानिआ=मन और तन में प्रेम-रस का आनन्द भर गया। असथिरु=स्थिर, अविनाशी। सोगु विजोगु=शोक और वियोग। तिसु=उसे। कदे=कभी। आवण-जाण=जन्म-मरण से आशय है। ओट=शरण।

५. चीतु=चित्त। बारा=देर। सारा=सँभाल, रक्षा। ऊतम=उत्तम, श्रेष्ठ। किसु आखउ हीना=किसे नीच कहूँ। सचि नामि पतीना=सत्यनाम पर प्रतीति हो गई है। अउखध=औषधि, उपाय, साधन। चूकै=दूर हो। किउ=कैसे। मेले=मिल गये। दारू=दवा। तिवै=वैसे ही। निरमाइलु=निर्माण किया, रचा। घर......

आपु पछाणि रहै लिव लागा । जनमु जीति गुरमति दुख भागा ॥
गुर दीआ सचु अंमृत पीवउ । सहजि मरउ जीवत ही जीवउ ॥
अपणो करि राखउ गुर भावै । तुम्हरो होइ सु तुझहि समावै ॥
भोगी कउ दुखु रोग विआपै । घटि घटि रवि रहिआ प्रभु जापै ॥
सुख दुख ही ते गुर सबदि अतीता । नानक रामु रवै हित चीता ॥५॥

सलोक *

जूठि न रागी जूठि न वेदीं । जूठि न चंद सूरज की भेदी ॥
जूठि न अंनी जूठि न नाई । जूठि न मीहु वसिऐ सभ थाई ॥
जूठि न धरती जूठि न पाणी । जूठि न पउणै माहि समाणी ॥
नानक निगुरिआ गुण नाही कोइ । मुहि फेरिऐ मुहु जूठा होइ ॥१॥
नानक चुलीआ सुचीआ जे भरि जाणै कोइ ॥
सुरते चुली गिआन की जोगी का जतु होइ ॥

दिखावैं=घर में ही, अर्थात् इस पिंड के अंदर ही जो असली घर को अर्थात् ब्रह्मतत्त्व को स्वयं देखकर दूसरों को भी दिखा देता है । महलि=ब्रह्मधाम से तात्पर्य है। अतीता=विषयों से विरक्त । निरासा=अनासक्त । आपु पछाणि=अपने स्वरूप को पहचानकर। जनमु जीति=जीवन को सफल करके । सहजि...जीवउ=सहज ही मृत्यु-भय जीतकर जीवन को अमर करलूँ । तुझहि समावै=तुझमें ही लीन हो जाता है । रवि रहिआ=रमा हुआ, व्याप्त । भोगी=विषयासक्त । गुरसबदि अतीता=गुरु का उपदेश-रहस्य परे है ।

१. अपवित्रता न तो रागों में है, और न वेदों में ;
न चंद्र और सूर्य की भिन्न-भिन्न गतियों में अपवित्रता है ;
[यह मानना कि चंद्र अमुक नक्षत्रगत तथा सूर्य अमुक राशिगत होनेपर शुचि तथा अशुचि या शुभ तथा अशुभ होते हैं ।]
अपवित्रता न अन्न में है, और अरस-परस में है :
न अपवित्रता मेह में है, जो सभी जगह बरसता है ;
न धरती में अपवित्रता है, और न पानी में ;
अपवित्रता पवन में भी नहीं समाई हुई है ।
नानक, उस मनुष्य में, जो विना गुरु का है, कोई भी गुण नहीं ।
अपवित्र तो उस मनुष्य का मुख है, जो परमात्मा से विमुख है ।

* 'सारंग की वार' में से

ब्राह्मण चुली संतोख की गिरही का सतु दानु।
राजे चुली निश्राव की पड़िश्रा सचु धिश्रानु॥
पाणी चितु न धोपई मुखि पीतै तिख जाइ।
पाणी पिता जगत का फिरिं पाणी सभु खाइ॥२॥
कलि होइ कुते मुही खाजु होश्रा मुरदारु।
कूडु बोलिं-बोलिं भउकणा चूका धरमु वीचारु॥
जिन जीव दिश्रा पति नहीं मुइश्रा मंदी सोइ।
लिखिश्रा होवै नानका करना करे सु होइ॥३॥
भृगु तिन्हा का जीविंश्रा जिं लिखि-लिखि वेचहिं नाउ॥
खेती जिनकी उजड़ै खलवाड़े किश्रा थाउ॥
सचै सरमै बाहरे श्रगै लहहिं न दादि॥
श्रकलि एह न आखीऐ श्रकलि गवाईऐ वादि॥
श्रकली साहिबु सेवीऐ श्रकली पाईऐ मानु।

---

२. यदि कोई भरना जानता है तो चुल्लूभर भी पानी पवित्र है—
(कौन-कौन-सी चुल्लू ? यह-यह—)
(अध्यात्म) ज्ञान पंडित के लिए, संयम योगी के लिए,
संतोष ब्राह्मण के लिए, और गृहस्थ के लिए अपनी कमाई में से दान,
राजा के लिए न्याय और विद्वान् के लिए सत्यरूप परमात्मा का ध्यान,
पानी प्यास को तो बुझा देता है, पर उससे (मलिन) चित्त को नहीं धोया जा सकता।
पानी को जगत् का पिता कहा गया है, अंत में वही सबका विनाश कर देता है।

३. कलियुग में लोगों के मुँह हैं कुत्तों के जैसे, और मुर्दार खाते हैं।
वे झूठ बोल-बोलकर मानों भौंकते हैं, और सचाई का कुछ भी विचार नहीं रखते।
जीते-जी उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं, और मरने पर भी उनकी बदनामी होती है।
जो भाग्य में लिखा है वही होता है, नानक ; वह होकर रहता है, जो कर्त्तार करना चाहता है।

४. धिक्कार है उनके जीने को, जो प्रभु का नाम लिख-लिखकर बेचते हैं।
जिनकी खेती उजड़ चुकी उनका क्या काम खलिहान में ?
जिनके अंतर में सत्य और शील नहीं रहा, उनकी आगे सुनवाई नहीं होगी।

अकली पढ़िकै बूझिऐ अकली कीजै दानु ॥
नानक आखै राहु एहु होरि गलां सैतानु ॥४॥
गिआन विहूणा गावै गीत । भुखे मुलां घरे मसीत ॥
नखट्टू होइ कै कंन पड़ाए । फकरु करे होरु जाति गवाए ॥
गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ । ताकै भूलि न लगीऐ पाइ ॥
घालि खाइ किछु हथहु देइ । नानक राहु पछाणहिं सेइ ॥५॥

पउड़ी

इकन्हा गलीं जंजीर वंदि रवाणीऐ ।
बंधे छुटहि सचि सचु पछाणीऐ ॥
लिखिआ पलै पाइ सो सचु जाणीऐ ।
हुकमी होइ निबेड़ु गइआ जाणीऐ ॥

उसे अक्ल न कहो, जो कि वाद-विवाद में खर्च होती हो ।
अक्ल से तो प्रभु की सेवा की जाती है ; अक्ल से सम्मान मिलता है ।
अक्ल से ही पढ़कर समझा जाता है, और उसीके द्वारा सही रीति से दान दिया जाता है ।
नानक कहता है—यही अक्ल के रास्ते हैं, और सब रास्ते शैतान के हैं ।
५. गीत गाने लगते हैं लोग विना ऊँचे ज्ञान के ।
और भूखा मुल्ला मसजिद को ही अपना घर बना लेता हैं, दिन-रात मसजिद में ही पड़ा रहता है ।
निखट्टू अपने कान फड़वा लेते हैं—कनफटे जोगी बन जाते हैं ;
और कुछ भिखारी बन जाते हैं, और अपनी जात गवाँ देते हैं ।
भूलकर भी तुम उनके पैर न छूना, जो अपने आपको गुरु और पीर वतलाते हैं, फिरभी दर-दर भीख माँगते फिरते हैं ।
नानक, सही रास्ता उन्होंने ही पहचाना है, जो अपने पसीने की कमाई खाते हैं और दूसरों को भी कुछ देते हैं ।
६. कुछ लोगों के गले में जंजीरें पड़ी होती हैं, और उन्हें जेलखाने में ले जाते हैं; पर सच्चे से भी सच्चे प्रभु को पहचानकर वे बंधनों से मुक्त हो जायेंगे । बड़भागी ही उस सत्यरूप प्रभु को जानता है ।
परमात्मा की आज्ञा से मनुष्य के भाग्य का फैसला होता है; उसके सामने हाज़िर होनेपर ही मनुष्य इसे जानेगा ।

भउजल तारणहारु सबदि पछाणीऐ ।
चोर जार जूआर पीड़े वाणीऐ ॥
निंदक लाइतबार मिले हड़वाणीऐ ॥
गुरमुखि सचि समाइ सुदरगह जाणीऐ ॥६॥

धनु सु कागदु कलम धनु धनु भांडा धनु मसु ।
धनु लेखारी नानका जिनि नामु लिखाइआ सचु ॥७॥

रे मन डीगि न डोलिऐ सीधे मारगि धाउ ।
पाछै बाघु डरावणो आगै अगनि तलाउ ॥१॥
सहसै जीअरा परि रहिओ मोकउ अवरु न ढंगु ।
नानक गुरमुखि छूटिऐ हरि प्रीतम सिउ संगु ॥२॥
बाघु मरै मनु मारिऐ जिसु सतिगुर दीखिआ होइ ।
आपु पछाणै हरि मिलै बहुड़ि न मरणा होइ ॥३॥
सरवरु हंस न जाणिआ काग कुपंखी संगि ।
साकत सिउ ऐसी प्रीति है बूझहु गिआनी रंगि ॥४॥

पहचानले उस 'शब्द' को, जो कि भव-सागर से पार लगायेगा।

चोर, व्यभिचारी और जुआरी ये सब-के-सब सरसों की तरह पेर दिये जायेंगे।

निन्दकों और विश्वासघातियों को बाढ़ वहा लेजायेगी।

प्रभु के न्यायालय में उन्हीं पवित्रात्माओं को पहचाना जायेगा, जोकि सत्य में लौलीन होंगे।

७. धन्य वह कागज़, धन्य वह क़लम, धन्य वह दावात और धन्य वह स्याही,— और धन्य वह लिखनहार, नानक, जिसने कि उस सत्य-नाम को लिखा है।

१. डीगि न डोलिए=हिलना-डोलना नहीं, तनिक भी विचलित न होना। तलाउ= तालाब। बाघु=काम से आशय है। अगनि=संभवतः तृष्णा से आशय है।

२. सहसै......रहिओ=संशय में अर्थात् दुविधा में मन पड़ गया है। ढंगु=उपाय, सिउ=से।

३. आपु पछाणै=निजस्वरूप को पहचानले। बहुड़ि=फिर।

४. साकत=शाक्त; आशय है हरि-विमुख से।

जनमे का फलु किआ गणी जां हरिभगति न भाउ ।
पैधा खाधा वादि है जां मनि दूजा भाउ ॥५॥
सभनि घटी सहु बसै, सहबिनु घटु न कोइ ।
नानक ते सोहागणी, जिन्हा गुरमुखि परगटु होइ ॥६॥
जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ । सिरु धरि तली गली मेरी आउ ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै । सिरु दीजै काणि न कीजै ॥७॥

---

५. पैधा खाधा वादि है=पीना-खाना व्यर्थ है । जां...भाउ=जहाँ मन में ईश्वर-भक्ति को छोड़कर सांसारिक विषय-भोगों पर ध्यान है ।

६. सभनि...बसै=सभी घटों अर्थात् शरीरों में प्रभु बसा हुआ है । सह=स्वामी, ईश्वर । जिन्हा...होइ=जिसके हृदय में वह स्वामी सद्गुरु के उपदेश से प्रकट हो गया ।

७. जउ तउ=जो तुझे । सिरु धरि तली=सिर को याने अपनी अहंता को पैरों के नीचे कुचलकर । काणि न कीजै=संकोच न करना ।



गुरु अंगद

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१५६१ वि०, वैशाख ११
जन्म-स्थान—हरिके गाँव
पिता—फेरू
माता—दयाकौर
जाति—खत्री
गुरु—बाबा नानकदेव
भेष—गृहस्थ
मृत्यु-संवत्—१६०९ वि, चैत्र शु० १०

फीरोज़पुर ज़िले के अंतर्गत मुक्तसर से लगभग छह मील पर मत्ते दी सराय नाम के एक गाँव में फेरू नाम का एक व्यापारी रहता था ।

बाद में वह हरिके नामक एक दूसरे गाँव में जाकर बस गया। यहाँ उसका व्यापार बहुत अच्छा चला। फेरू ने यहाँ दयाकौंर के साथ अपना दूसरा विवाह कर लिया। इन्हीं दयाकौंर के गर्भ से गुरु अंगद का जन्म हुआ और इनका नाम लहिणा रखा गया।

लहिणा ने मत्ते दी सराय की एक स्त्री के साथ अपना व्याह किया, जिसका नाम खीवी था। कालान्तर में खीवी से एक पुत्री और दो पुत्र हुए। लड़की का नाम था अमरो और लड़कों के नाम थ दासू और दातू।

ये लोग हरिके गाँव से उठकर फिर मत्ते दी सराय में रहने लगे। मगर मुग़लों और बलूचियों के हमले से जब मत्ते दी सराय तबाह हो गया, तब ये लोग खडूर नामक गाँव में चले आये। यह गाँव अमृतसर ज़िले की तरनतारन तहसील में है।

लहिणा पहले दुर्गा के उपासक थे। जिस घटना से यह दुर्गा की उपासना छोड़कर बाबा नानक के अनन्य भक्त हो गये वह यह है। खड़र में जोधा नाम का एक सिक्ख रहता था। गुरु नानक का यह परमभक्त था। रात के पिछले पहर वह नित्यप्रति जपुजी का तथा आसा दी वार का पाठ किया करता था। एक सुन्दर रात्रि को लहिणा ने जोधा के मुख से ये मधुर कड़ियाँ बड़े ध्यान से सुनीं और वह उधर आकृष्ट होगये—

"जितु सेविऐ सुख पाईऐ सो साहिबु सदा समालीऐ।
जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरि किउ घालीऐ॥
मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरी निहालीऐ॥
जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवे हा पासा ढालीऐ॥
किछु लाहे उप्परि घालिऐ।"

अर्थात्—सदा याद रख तू उस मालिक को, जिसकी सेवा करने से ही तुझे सच्चा सुख मिलेगा.

ऐसे बुरे कर्म तूने किये ही क्यों, जिनके कारण तुझे ये सारे दुःख भोगने पड़े ?

तू बुरा काम बिल्कुल न कर, अपनी ओर तू अच्छी तरह नज़र डाल;

ऐसा पांसा फेक, जिससे कि तू मालिक के साथ बाज़ी न हारे, बल्कि तुझे कुछ लाभ हो।

सवेरा होते ही लहिणा ने जोधा से पूछा कि, 'वह किसका रचा भजन था, जो तुम बड़े प्रेम से रात को गा रहे थे ?'

'बाबा नानक का रचा' जोधा ने कहा, 'परमात्मा के वे बड़े ऊँचे भक्त हैं। रावी के किनारे वे करतारपुर में विराजते हैं।'

सुनते ही लहिणा का गुरु-विरहातुर मन व्याकुल हो उठा बाबा नानक के दर्शन को, और वह संयोग भी आ गया। अपने कुटुंबियों और कुछ मित्रों को लेकर वे ज्वालामुखी की यात्रा करने जा रहे थे। रास्ते में करतारपुर पड़ता था। वहाँ ठहर गये बाबा नानक का दर्शन करने के लिए। दर्शन किया और बाबा के उपदेश भी सुने। अंतर का चोला पलट गया। दृष्टि खुलगई। इरादा बदल दिया। आगे नहीं बढ़े, हालांकि साथ के यात्रियों ने बहुत समझाया। बाबा के चरणों को पकड़ लिया, वहीं जमकर बैठ गये। पर सद्गुरु ने कहा-'अभी तू घर लौटजा; बाल-बच्चों से मिलकर कुछ दिनों के बाद फिर मेरे पास आ जाना, तब तुझे मैं अंगीकार करूँगा।'

घर एक बार लौटकर चले तो गये, पर मन को वहीं छोड़कर। धरवालों को समझा-बुझाकर फिर करतारपुर चले आये। साँझ का समय था। बाबा नानक तब खेत पर थे। गाय-भसों के लिए घास लाने गये थे। वहीं पर लहिणा सीधे पहुँचे और घास के तीन बड़े-बड़े गट्ठरों को एक साथ ही सिर पर लादकर गुरु के घर ले आये। पानी और गीली मिट्टी से सारे कपड़े सन गये थे। घास के इन गठ्टों को एक-एक करके भी ले जाने के लिए बाबा के दोनों पुत्र भी तैयार नहीं हुए थे। गुरु-सेवा की यह लहिणा की पहली परीक्षा थी।

एक साल गुरु नानकदेव के घर की कच्ची दीवार अति वर्षा के कारण गिर पड़ी थी। गुरु की आज्ञा से उस दीवार को तीन बार गिरा-

गिराकर इन्होंने अकेले ही उठाया था। और भी कितने ही अवसरों पर गुरु नानक ने लहिणा की कठिन-से-कठिन परिक्षाएँ लीं, और यह उनमें उत्तीर्ण हुए। आज्ञा-पालन में यह हमेशा सब शिष्यों और दोनों पुत्रों से भी आगे रहते थे। 'टिक्के दी वार' में आया है—'जिनि कीती सो मंनणा को सालु जिवाहे साली।' अर्थात्, लहिणा ने गुरु नानक की हरेक आज्ञा का पालन किया, चाहे वह आज्ञा आवश्यक हो या अनावश्यक चाहे, भटकँटैया हो, चाहे धान। इस पंक्ति का यह भी एक अर्थ किया जाता है कि, गुरु नानक के दोनों पुत्र भटकँटैया थे और लहिणा था धान। गुरु नानकदेव ने अच्छी तरह परखकर देख लिया कि लहिणा ही उनका एक ऐसा शिष्य है, जो उनकी गद्दी का अधिकारी हो सकता है, और इन्हें ही उन्होंने अपनी जगह बिठलाकर भाई बुढ्डा के हाथ से तिलक करा दिया। गुरु की आज्ञा से यह खडूर में जाकर रहने लगे।

गुरु नानकदेव का शरीर छुट जाने पर गुरु अंगद को उनके वियोग का दुःख इतना अधिक असह्य हुआ कि वे एक बंद कोठरी के अंदर जाकर बैठ गये और वहाँ एकान्त में गुरु के ध्यान में निरन्तर लौलीन रहने लगे। गुरु नानक के एक प्रमुख शिष्य भाई बुढ्डा ने बड़ी मुश्किल से खोजते-खोजते इनका पता लगाया और उस बंद कोठरी से बाहर निकाला। गुरु अंगद ने भाई बुड्ढा को छाती से लगाकर उस समय यह सलोक कहे :—

"जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगे मरि चल्लिए।
ध्रिगु जीवण संसार ताकै पाछै जीवणा॥
जो सिरु साई ना निवै सो सिरु दीजै डारि।
नानक जिसु पिंजर महि विरहा नहीं, सो पिंजरु लै जारि॥"

गुरु अंगद का नित्य का कार्यक्रम तबसे बराबर यह रहने लगा—बड़े सवेरे उठकर ठंडे पानी से नहाना, कुछ समयतक आत्म-चिंतन व जपुजी का पाठ करना, गायकों से आसा दी वार का गान सुनना, और फिर दीन-दुखियों और रोगियों, खासकर कोढ़ियों को जाकर देखना और उनकी सेवा-शुश्रूषा करना, लोगों को गुरु नानक की शिक्षाओं का

उपदेश देना और लंगर में सबको, बिना किसी-भेद-भाव के, प्रेम के साथ भोजन कराना और किसी-किसी दिन छोटे-छोटे बच्चों के खेल देखना।

शेरशाह द्वारा परास्त हुमायूँ बंगाल से जब पश्चिम की तरफ़ विवश होकर भागा, तब उसे रास्ते में मालूम हुआ कि गुरु नानकदेव की गद्दी पर गुरु अंगद, जो एक पहुँचे हुए फकीर हैं, उपदेश दे रहे हैं। उसने खडूर जाकर गुरु साहब के दर्शन किये, और उनसे आशीर्वाद माँगा, जो उसे मिला। कुछ दिन मुसीबतें झेलने के बाद वह विजयी हुआ।

गुरु अंगद ने ही सबसे पहले गुरु नानकदेव के पदों, पौड़ियों और सलोकों का संग्रह कराकर 'गुरुमुखी' नाम की एक नई लिपि में लिखवाया। इस लिपि का आविष्कार गुरु अंगद ने स्वयं ही किया। इसमें केवल ३५ अक्षर हैं।

परम गुरुभक्त शिष्य अमरू को गुरु-गद्दी पर बिठलाकर और पाँच पैसे और एक नारियल उसके आगे भेंटस्वरूप रखकर गुरु अंगद ने उसे अपना उत्तराधिकारी बना दिया। अमरू उस दिन से गुरु अमरदास के नाम से प्रख्यात हो गये।

चैत सुदी ३, संवत् १६०९ को गुरु अंगद ने सिक्खों को बहुत बड़ा भंडार दिया, और सिक्ख धर्म के सिद्धांतों पर दृढ़ रहने के लिए उन्हें अच्छी तरह समझाया। दूसरे दिन चौथ को बड़े सवेरे स्नान करके जपुजी का पाठ किया, और 'वाह गुरु' कहते हुए चोला छोड़ दिया।

गुरु अमरदास को गोइंदवाल में जाकर रहने का आदेश दे गये।

बानी-परिचय

गुरु अंगद ने बहुत अधिक रचना नहीं की। गुरु नानकदेव की सेवा-बंदगी करते और उनकी बानी का अपूर्व रस लेते-लेते ही उनका सारा समय बीता। जो थोड़ी-सी बानी गुरु अंगद की ग्रन्थ साहब में महला २ के अंतर्गत संगृहीत मिलती है, वह भिन्न-भिन्न रागों की

'वारों' के रूप में है। 'आसा दी वार' में तो इनके अनेक सलोक हैं ही, रामकली, सारंग, मलार, सूही, सिरी, सोरठ और माँझ की भी वारों में इनके कई सलोक और पौड़ियाँ हैं।

गुरु अंगद ने सीधी-सादी मगर चुभती भाषा में प्रेम का और विरह और वैराग्य का बड़ा सुन्दर निरूपण किया है। गुरु-भक्ति की महिमा के कुछ सलोक तो इनके अनूठे हैं। पद-पद में आत्मानुभूति छलकती है। कुछ रचना तो इनकी ऐसी हैं, जो गुरु नानक की बानी से बिल्कुल मिल जाती है। माँझ और सारंग की वारें तो बहुत ही मधुर हैं। कहते हैं कि 'गुरुमुखी' लिपि का आविष्कार कर चुकने पर आनन्द-विह्वल होकर गुरु अंगद ने सारंग की वार की रचना की थी। हरि-नाम का आकंठ अमृत पीकर सारंग की वार में यह सलोक इन्होंने वस्तुतः परमतृप्ति की ऊँची अवस्था में कहा है—

"जिन वड़िआई तेरे नाम की यह रते मन माहि।
नानक अंमृतु एक है दूजा अंमृतु नाहि॥
नानक अंमृतु मनै माहि पाईए गुरपरसादि।
तिनी पीतारंग सिउ जिन कउ लिखिआ आदि॥

आधार

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, सर्वहिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२. दि सिक्ख रिलीजन (भाग २), मॅकालीफ़

आसा दी वार

सलोक

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार॥
एते चानण होंदिआँ गुर बिनु घोर अंधार॥१॥

१. यदि सौ चंद्र उदय हों, और हजार सूरज भी आकाश पर चढ़ जायें, तोभी इतने (प्रचंड) प्रकाश-(पुञ्ज) में भी बिना गुरु के घोर अंधकार ही छाया रहेगा।

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु ॥
इकन्हा हुकमि समाइ लए इकन्हा हुकमे करे विणासु ॥
इकन्हा भाणै कढ़ि लए इकन्हा माइआ विचि निवासु ॥
एव भि आखि न जापई जि किसै आणे रासि ॥
नानक गुरमुखि जाणीऐ जाकउ आपि करे परगासु ॥

पउड़ी

नानक जीअ उपाइकै लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥
ओथै सचो ही सचि निबड़ै चुणि वखिकढे जजमालिआ ॥
थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह काल्है दोजकि चालिआ ॥
तेरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालिआ ॥
लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥२॥

सलोक

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ॥
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ॥

---

२. जगत् यह सत्य की कोठरी है; इसके अंदर निवास सत्य का है।

किसीको तो वह अपनी आज्ञा से अपने आपमें लौलीन कर लेता है; और किसीको अपनी आज्ञा से नष्ट कर देता है।

किसीको अपनी मर्जी से वह माया में से खींच लेता है, और किसीको माया में ही रहने देता हैं।

यह कहा भी नहीं जा सकता कि वह किसे लाभ पहुँचाता है।

नानक, उसीको पवित्रात्मा जानना चाहिए, जिसके अंतर में वह अपना प्रकाश भरदे।

नानक, उसने जीवों को जन्म देकर उनके नाम लिखलिये, और (उनके कर्मों के अनुसार न्याय करने के लिए) धर्मराज को नियुक्त कर दिया।

उसके न्यायालय में सच्चों को ही न्याय मिलता है; जो जंजाल-ग्रस्त होते हैं, उन्हें वह चुन-चुनकर निकाल बाहर कर देता है,

वहाँ झूठे को जगह नहीं मिलती; वे मुँह को काला करके नरक जाते हैं।

जो तेरे नाम में अनुरक्त हो गये, उन्हींकी जीत होती है; जो ठग होते हैं वे बाजी हार जाते हैं।

परमात्मा ने नाम लिख लिये हैं, और धर्मराज को नियुक्त कर दिया है।

हउमै कित्थुहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ ॥
हउमै एहो हुकमु है पाइऐ किरति फिराहि ॥
हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि ॥
किरपा करे जि आपणी ता गुर का सबदु कमाहि ॥
नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि ॥

पउड़ी

सेव कीती संतोखई जिन्ही सचो सचु धिआइआ ॥
ओन्ही मंदै पैरु न रखिओ करि सुकृत धरमु कमाइआ ॥
ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अंनु पाणी थोड़ा खाइआ ॥
तूं बखसीसा अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ ॥
वडिआई वड़ा पाइआ ॥३॥

---

३. अहंकार स्वभावतः अहंकार के ही कर्म कराता है।

अहंकार वह (भव)-बन्धन है, जिससे बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

अहंकार वह उत्पन्न कहां से होता है, इसका मूल क्या है, और किस साधन से यह नष्ट हो सकता है ?

अहंकार वह आदेश हैं कि मनुष्य अपने कृत कर्मों के अनुसार (संसार-चक्र पर) घूमता ही रहे।

अहंकार जीर्ण रोग अवश्य है, पर उसकी एक औषधि भी है. और वह हमारे अंदर ही है।

यदि परमात्मा अपनी कृपा करदे, तो गुरु का उपदेश सुलभ हो सकता है।

नानक कहता है कि हे मनुष्यों ! इसी एक साधन से दुःख का निवारण हो सकेगा।

उन्होंने ही सच्ची सेवा-बंदगी की है, और उन्हें ही संतोष प्राप्त हुआ है, जिन्होंने कि परमसत्य के रूप में परमात्मा का ध्यान किया है।

उन्होंने बुरे मार्ग पर कभी पैर नहीं रखा, सदा सुकर्म ही किया है, और धर्म की ही कमाई की है।

उन्होंने संसार के बंधन तोड़कर फेंक दिये हैं, और थोड़े-से अन्न और जल पर उन्होंने अपना निर्वाह किया है।

तू बड़े-से-बड़ा दाता है, तू सदा ही देता है, जो सवाया हो जाता है।

उसे उन्होंने ही पाया, जिन्होंने कि उसे बड़े-से-बड़ा माना।

सलोक

सलामु जवाबु दोवै करे मुढहु घुथा जाइ ॥
नानक दोवै कूडीआ थाइ न काई पाइ ॥४॥
चाकरु लगै चाकरी नाले गरबु वादु ॥
मल्ला करे घणेरीआ खसम न पाए सादु ॥
आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ॥
नानक जिसनो लग्गा तिसु मिलै लग्गा सो परवानु ॥५॥
जो जीइ होइ सु उग्गवै मुह का कहिआ वाउ ॥
बीजे बिखु मंगै अंमृतु देखहु एहु निआउ ॥६॥
नालि इआणे दोसती कदे न आवै रासि ॥
जेहा जाणै तेहो वरते वेखहु को निरजासि ॥
वसतू अंदरि वसतु समावै दूजी होवै पासि ॥

---

४. जो मनुष्य मालिक की वन्दना करता है और साथ-ही-साथ उसे जवाब भी देता है, या उसके कामों में दोष निकालता है, उसने शुरू से ही गलती की हैं।

उसकी वंदना और उसकी आलोचना दोनों ही अर्थहीन हैं; उसे, नानक, मालिक के दरबार में जगह मिलने की नहीं।

५. नौकर नौकरी करते हुए जब गरूर करता है, और झगड़ा भी,

और बहुत बकझक भी करता है, तो इससे वह अपने मालिक को खुश नहीं करता।

अपने आपको खोकर यदि वह सेवा करे, तो उसे कुछ आदर मिलेगा।

नानक, मालिक को वही पा सकेगा, जिसके मनमें उससे मिलने की अभिलाषा होगी; और उसकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी।

६. जो मनमें होता है वही मुँह से निकलता है।

विष बोता है, और अमृत पाने की आशा करता है, देखो तो इस न्याय को!

७. मूर्ख के साथ मित्रता करने से कभी लाभ नहीं होगा।

वह अपनी समझ से काम करता है; देखे और परखे कोई उसका काम।

पहले (भांडे में से) दूसरी वस्तु निकाल देने पर कोई वस्तु उसमें रखी जा सकती है।

(अर्थात्, सांसारिक प्रेम से हृदय खाली करने के बाद ही परमात्मा का प्रेम उसमें प्रवेश पायेगा।)

साहिब सेती हुकमु न चलै कही बणै अरदासि ॥
कूड़ि कमाणै कूड़ो होवै नानक सिफति विगासि ॥७॥
होइ इआणा करे कंमु आणि न सकै रासि ॥
जे इक अध चंगी करे दूजी भी वेरासि ॥

पउड़ी

चाकरु लगै चाकरी जे चलै खसमै भाइ ॥
हुरमति तिसनो अगली ओहु वजहु भि दूणा खाइ ॥
खसमै करे बराबरी फिरि गैरति अंदरि पाइ ॥
वजहु गवाए अगला मुहे मुहि पाणा खाइ ॥
जिसदा दित्ता खावणा तिसु कहिऐ साबासि ॥
नानक हुकमु न चलई नालि खसम चलै अरदासि ॥८॥

सलोक

आपे साजे करे आपि जाई भि रखै आपि ॥
तिसु विचि जंत उपाइकै देखै थापि उथापि ॥
किसनो कहीऐ नानका सभु किछु आपे आपि ॥

मालिक के ऊपर हुक्म नहीं चल सकेगा ; वहाँ तो विनती से ही काम चलेगा ।
झूठ की कमाई से झूठ ही हाथ आयेगा ;
नानक ! प्रभु की स्तुति में ही सच्चा आनन्द है ।

८. यदि कोई आप अजान है और वह कोई काम करने बैठ जाये, तो उसे वह ठीक तरह से नहीं कर सकता ;

भलेही एक आध काम वह ठीक तरह से करले, पर बाकी का सारा काम तो वह बिगाड़ ही देगा ।

यदि नौकर अपने मालिक की मरजी के अनुसार काम करता है, तो उसका अधिक मान होता है, और उसे दूनी तलब मिलती है ।

यदि वह मालिक की बराबरी करता है, तो वह अपनी ईर्ष्या को बढ़ावा देता है, अपनी भारी तलब को गँवा बैठता है, और मुँह पर जूते खाता है ।

धन्य है वह, जिसका दिया हुआ तू खाता है ।

नानक, हुक्म तेरा नहीं चलेगा; मालिक के आगे तेरी एक विनती ही चलेगी ।

पउड़ी

वडे कीआ वडिआईआ किछु कहणा कहणु न जाइ ॥
सो करता कादर करीमु दे जीआ रिजकु संबाहि ॥
साई कार कमावणी धुरि छोड़ी तिनै पाइ ॥
नानक एकी बाहरी होर दूजी नाही जाइ ॥
सो करे जि तिसै रजाइ ॥९॥

दंदे थावहु दिता चंगा मनमुखि ऐसा जाणीऐ ।
सुरति मति चतुराई ताकी किआ करि आखि बखाणीऐ ॥
अंतरि बहिकै करम कमावै सो चहु कुंडी जाणीऐ ।
जो धरमु कमावै तिसु धरम नाउ होवै पापि कमाणै पापी जाणीऐ ॥
तूं आपे खेल करहि सभि करते किआ दूजा आखि वखाणीऐ ।
जिच्चर तेरी जोति तिंचर जोती विचि तू बोलहिं ॥

---

९. आपही वह सजाता है; आपही जहाँ जिस वस्तु को बनाकर रखना है वहाँ रख देता है,

इस संसार में जीव-जन्तुओं को पैदा कर वह स्वयं उनका जन्म और उनका मरण देखता रहता है ।

किससे कहें हम, नानक, जबकि वह आपही सब कुछ करता है ?
उस महान् की महामहिमा कुछ कहते नहीं बनती;
वही कर्त्ता है, वही सर्वशक्तिमान है, वही दाता है;
वही अपने पैदा किये जीवों को आहार पहुँचाता है ।

मनुष्य को सिरे से ही वह कर्म करना चाहिए, जिसका कि परमात्मा ने उसे निर्देश कर रखा है ।

नानक, एक वही ऐसा परमपद है जिसमें कि हम रम सकते हैं दूसरा ऐसा और कोई भी पद नहीं ।

जो उसे भाता है वह वही करता है ।

१०. मनमुखी लोग (दुष्टजन) सोचते हैं कि दाता की अपेक्षा दान अच्छा है । क्या कहा जाये उनकी बुद्धि को, उनकी समझ को, और उनकी होशियारी को !

जो छिपकर कर्म करता है वह चारों ओर उजागर होजाता है;

जो धर्म का साधन करता है वह धर्मात्मा कहा जाता है, और जो पाप करता है, वह पापी ।

विणु जोती कोई किछु करिहु दिखा सिआणीऐ ॥
नानक गुरमुखि नदरी आइआ हरि इक्को सुघड़ु सुजाणीऐ ॥१०॥
दिस्सै सुणीऐ जाणीऐ साउ न पाइआ जाइ ॥
रुहला टुंडा अंधुला किउ गलि लग्गै धाइ ॥
भै के चरण कर भाव के लोइण सुरति करेइ ॥
नानकु कहै सिआणीए इव कंत मिलावा होइ ॥११॥

सलोक

नानक अंधा होइकै रतण परखण जाइ ॥
रतना सार न जाणई आवै आपु लखाइ ॥१॥
जपु जपु सभु किछु मंनिऐ अवरि कारा सभि बादि ॥
नानक मंनिआ मंनीऐ बुझीऐ गुरपरसादि ॥२॥

हे कर्त्तार ! तू स्वयं ही सारी लीला रचता है।

जबतक इस घट के अंदर तेरी ज्योति जलती हैं, तबतक तू इसमें बोल रहा हैं—

तेरे बिना यदि किसीने कुछ किया हो तो मुझे वह दिखादे जिससे कि मैं उसे पहचानलूँ।

नानक, गुरु के उपदेश से ही वह हरि दृष्टि में आता है, और चतुर और बुद्धिमान वही एक है।

११. हम देखते हैं, और सुनते हैं, और जानते हैं कि परमात्मा सांसारिक विषय-भोगों के बीच प्राप्त नहीं किया जा सकता।

बिना पैर, बिना हाथ और बिना आंख के उसे गले लगाने के लिए कैसे दौड़ा जा सकता है ?

(भाव यह है कि जबतक मनुष्य सांसारिक भोगों में लिप्त है, तबतक वह बिना पैर का, बिना हाथ का और बिना आँख का ही है।)

(ईश्वर-) भीरुता के बना तू चरण, भाव के बना हाथ, और सुरति के बना तू नेत्र।

नानक, गुणवान (पारखी) ही ऐसे रत्नों को बिसाहेंगे; किन्तु जो लोग रत्नों का मोल नहीं जानते, वे दुनिया में अन्धों की तरह भटकते हैं।

१. सार=कीमत। आवै आपु लखाइ=अपना प्रदर्शन करके (अपना मजाक करा-कर) लौट जायेगा।

२. जप, तप, सबकुछ उसकी आज्ञा पर चलने से प्राप्त हो जाता है; और सब काम व्यर्थ हैं।

सिफति जिन्हा कउ बखसीऐ सेई पोतेदार ॥
कुंजी जिन कउ दितीआ तिन्हा मिले भंडार ॥३॥
जह भंडारी हू गुण निकलहि ते कीअहि परवाणु ॥
नदरि तिन्हा कउ नानका नामु जिन्हा नीसाणु ॥४॥
कीता किआ सालाहीऐ करे सोइ सालाहि ॥
नानक एकी बाहरा दूजा दाता नाहि ॥५॥
करता सो सालाहीऐ जिनि कीता आकारु ॥
दाता सो सालाहीऐ जि सभसै दे आधारु ॥६॥
नानक आपि सदीव है पूरा जिसु भंडारु ॥
वडा करि सालाहीऐ अंतु न पारावारु ॥७॥
गुरु कुंजी पाहु निवलु मनु कोठा तनु छति ॥
नानक गुर बिनु मन का ताकु न उघड़ै अवर न कुंजी हथि ॥८॥

उसी (मालिक) की आज्ञा तू मान, जिसकी आज्ञा मानने-योग्य है। अथवा उस संतपुरुष की आज्ञा मान, जिसने स्वयं उसकी आज्ञा को माना है); गुरु की कृपासे ही उसे हम जान सकते हैं।

३. जिनको उसका गुण-गान बख्शीश में मिला है वेही सच्चे हैं;
जिन्हें कुंजी दी गई है, उन्हें ही वे भंडार मिलते हैं।

४. वे ही भंडार मान्य या प्रमाणित हैं, जिनसे कि सुकर्म प्रकट होते हैं।
नानक, उन्हींपर परमात्मा की कृपा-दृष्टि होती है, जिन्होंने कि उसके नाम को अपना निशान बना लिया है।

५. सृष्टि की सराहना क्यों करता है तू ? तू तो सिरजनहार की सराहना कर।

६. नानक, सिवा उस मालिक के दूसरा कोई देनेवाला नहीं, जिसने सबको सहारा दे रखा है।

७. नानक, वह परमात्मा ही सदा रहनेवाला है, जिसने कि सारे भंडारों को भर रखा है !

उसी बड़े-से-बड़े की तू सराहना कर, जिसका न तो अंत है, न कोई पार।

८. ताले की कुंजी तो गुरु के ही पास है ; मन तेरा कोठा है और यह शरीर है उसकी छत।

कथा कहाणी बेदीं आणी पापु पुंनु बीचारु ॥
दे दे लेणा लै लै देणा नरकि सुरगि अवतार ॥
उतम मधिम जातीं जिनसी भरमि भवै संसार ॥९॥
अमृत वाणी ततु वखाणी गिआन धिआन विचिआई ॥
गुरमुखि आखी गुरमुखि जाती सुरतीं करमि धिआई ॥१०॥
हुकमु साजि हुकमै विचि रखै हुकमै अंदरि वेखै ॥
नानक अगहु हउमै तुटै तां को लिखए लेखै ॥११॥

मलार की वार

सलोक

नानक दुनिआ कीआं वडिआईआं अगी सेती जालि ॥
एन्ही जलीईं नामु विसारिआ इक न चलीआ नालि ॥१॥

नानक, विना गुरु के मन (हृदय) का द्वार खुल नहीं सकता, क्योंकि किसी दूसरे के पास उसकी कुंजी नहीं है।

९. वेद पढ़नेवाले (देवताओं की) कथा-कहानियां लेकर आये हैं और पापपुण्य की उन्होंने व्याख्या की है।

मनुष्य जो-जो देते हैं वही पाते हैं, और जो-जो वे पाते हैं वही देते हैं, और इसलिए अपने कर्मों के अनुसार वे स्वर्ग या नरक में जन्म लेते हैं।

दुनिया भ्रम में भूल रही है कि कौन तो उत्तम जातियां हैं और कौन मध्यम या नीची, और कितने प्रकार की है।

१०. किंतु (गुरु की) अमृतवाणी तत्व (सत्यवस्तु) का वर्णन करती है, ऊंचे-से-ऊंचे ज्ञान और ध्यानतक पहुंचा देती है।

पवित्रात्मा उसका उच्चारण करते हैं, पवित्रात्मा उसे जानते हैं;

जिन्हें वह ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वे उसमें लोलीन हो जातेहैं, और तदनुसार उनके सब कर्म भी होते हैं।

११. उसने अपनी आज्ञा से सबको रचा है, और उसी आज्ञा से वह सबको देखता रहता है।

नानक, यदि मनुष्य के अहंकार का अंत हो जाय, तो वह 'उसके' लेखे में आ सकता है।

१. नानक, दुनिया की बड़ाइयों में लगा दे आग;
इन्हीं आग-लगी बड़ाइयों ने तो उसका नाम बिसार दिया है; इनमें से एक भी

नाउ फकीरै पातिसाहु मूरख पंडित नाउ ॥
अंधे का नाउ पारखू एवै करे गुआउ ॥२॥
इलति का नाउ चउधरी कूड़ी पूरे थाउ ॥
नानक गुरुमुखि जाणीऐ कलि का एहु निआउ ॥३॥

सूही की वार

सलोक

जा सुखु ता सहु राविओ दुखि भी संम्हालिओइ ॥
नानकु कहै सिआणीए इउ कंत मिलावा होइ ॥१॥
किसही कोइ कोइ मंञु निमाणी इकु तू ॥
किउ न मरीजै रोइ जा लगु चिति न आवही ॥२॥
तुरदे कउ तुरदा मिलै उड़ते कउ उड़ता ॥
जीवते को जीवता मिलै, मुए कउ मूआ ॥
नानक सो सालाहीऐ जिनि कारणु कीआ ॥३॥

तो (अंत में) तेरे साथ चलने की नहीं ।

२ लो, भिखमंगे को तो कहा जाता है बादशाह, और मूर्ख को दे दिया नाम पंडित का,

अंधे को कहते हैं पारखी—ऐसी बातें चलती हैं ।

३. बदमाश को कहते हैं चौधरी, और झूठ बोलनेवाले को पूरा सिद्ध ।
नानक, कलिकाल का यही न्याय है !
(अच्छे और बुरे की) पहचान कैसे की जाय, यह तो गुरु के मुख (उपदेश) से ही जाना जा सकता है ।

१. जिसका नाम तू सुख में याद करता है, दुःख में भी उसे याद कर ।
नानक कहता है, हे सयानी, इसी तरह स्वामी से तेरा मिलन होगा ।

२. किसीका कोई मित्र है, तो किसीका कोई; पर मेरा तो—जिसे कोई मान नहीं देता—एक तू ही है ।
जबतक कि तू मेरे मन में नहीं समाता, तबतक मैं क्यों न रो-रोकर मरूँ ?

३. तुरदे⋯उड़ना=चलनेवालों का मेल चलनेवालों के साथ और उड़नेवालों का मेल उड़नेवालों के साथ होता है ।
सालाहिए=सराहना करनी चाहिए । कारणु कीआ=इस महान् नियम (क़ानून) को स्थापित किया ।

जिना भउ तिन नाहि भउ मुचु भउ निभविआह ॥
नानक एहु पटंतरा तितु दीबाणि गइआह ॥४॥
राति कारणि धनु संचीऐ भलके चलणु होइ ॥
नानक नालि न चालई फिरि पछुतावा होइ ॥५॥
जिन्ही चलणु जाणिआ से किउ करहि विथार ॥
चलण सार न जाणनी काज सवारणहार ॥६॥

माझ की वार

सलोक

अट्ठी पहरी अठ खंड नावा खंडु सरीरु ॥
तिसु विचि नउ निधि नामु इकु भालहि गुणी गहीरु ॥१॥
करमवंती सालाहिआ नानक करि गुरु पीरु ॥
चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ ॥२॥
तिना दरीआवा सिउ दोसती मनि मुखि सचा नाउ ॥
ओथै अंमृत वंडीऐ करमी होइ पसाउ ॥३॥

---

४. जो परमात्मा से डरते हैं, उन्हें दूसरों से कोई डर नहीं; जो उससे नहीं डरते उन्हें (पग-पग पर) बहुत डर है ।

नानक, परमात्मा के न्यायालय में दोनों को सामने खड़ा करना होगा ।

५. राति कारणि=रात के लिए । संचीए=जोड़ता है, जमा करता है । भलके= सवेरे । नालि=साथ में ।

६. जो यह जानते हैं कि एक-न-एक दिन यहाँ से जाना ही है, वे प्रपंच में क्यों पड़ेंगे ?

अरे ! वे अपने जाने की बात नहीं सोचते, बल्कि (अंततक) दुनिया के काम-काज सँभालने में ही लगे रहते हैं ।

१. आठ पहरों में मनुष्य दमन करके इन आठों को अपने वश में करले ; पाँचों भयंकर पापों अथवा पाँचों इन्द्रियों, और तीनों गुणों को और नवें अपने शरीर को ।

एक प्रभु के नाम में नौ निधियाँ भरी पड़ी हैं, जिनकी खोज में बड़े-बड़े धर्मात्मा रहते हैं ।

२. नानक, भाग्यवानों ने अपने गुरुओं और पीरों के दिखाये मार्ग से उस प्रभु की स्तुति की है ।

सवेरे चौथे पहर जो उसका स्मरण करते हैं उन्हे अत्यन्त आनन्द होता है ;

कंचन काइआ कस्सीऐ वन्नी चड़ै चड़ाउ ॥
जे होवै नदरी सराफ की बहुड़ि न पाई ताउ ॥४॥
सत्ती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि ॥
ओथै पापु पुंनु बीचारीऐ कूड़ै घटै रासि ॥५॥
ओथै खोटे सटीअहि खरे खीचहि साबासि ॥
बोलणु फादलु नानक दुख सुख खसमै पासि ॥६॥

सोरठ की वार

नकि नथ खसम हथ किरतु धक्के दे ॥
जहाँ दाणे तहाँ खाणे नानक सचुहे ॥१॥

---

३. उन नदी नालों से वे प्रेम करते हैं, (जिनमें कि वे नहाते हैं।) और सत्यनाम उनके हृदय में, और उनके मुख में होता है।

वहाँ अमृत बाँटा जाता है, और कर्मों के अनुसार उनकी कृपा भी।

४. कसी जाने पर काया कंचन-सी हो जाती है, उसपर खरा रंग चढ़ जाता है।

सराफ़ की नजर में चढ़ जाने पर उसे फिर से ताव पर चढ़ाने की जरूरत नहीं रहती।

५. बाकी के सातों पहरों में अच्छा होगा कि मनुष्य सदा सत्य बोले और ज्ञानी-जनों की संगति में बैठे।

वहाँ बुरे और भले कर्मों का विचार होता है, और असत्य की पूँजी घटती है।

६. वहाँ खोटों को रद कर दिया जाता है, और सच्चों को शाबासी दी जाती है।

नानक, अपना दुःख और सुख कहना व्यर्थ है स्वामी से, क्योंकि वह सब-कुछ जानता है।

१. नकेल मालिक के हाथ में है; मनुष्य अपने कर्मों के धक्के से चलता है।

नानक ! यह सच है कि जहाँ वह देता है वहाँ मनुष्य खाता है।

गुरु अमरदास

चोला-परिचय

जन्म संवत्—१५३६ वि०, वैशाख शु० १४

जन्म-स्थान—बसरका गाँव, (अमृतसर के पास)

पिता—तेजभान

माता—बखतकौर

जाति—खत्री (भल्ला)

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-संवत्—१६३१ वि०, भादों पूर्णिमा

तेजभान भल्ला के चार पुत्र थे; अमरदास उनमें सबसे बड़े थे।

अमरदास का विवाह, २४ वर्ष की उम्र में. मनसा देवी के साथ हुआ। इनको मोहरी और मोहन नाम के दो पुत्र हुए, और दानी और भानी नाम की दो पुत्रियाँ।

अमरदास पक्के वैष्णव धर्मानुयायी थे। हर एकादशी को व्रत रखते, और नित्यप्रति शालिग्राम की पूजा किया करते थे।

किन्तु इनका कोई गुरु नहीं था, और किसी ऐसे-वैसे को यह गुरु बनाना नहीं चाहते थे। बिना पूरे गुरु के हरि की बाट बताये तो कौन ? सो सद्गुरु की खोज में यह व्यकुल रहने लगे।

एक दिन बड़े सवेरे इसी सोच-विचार में पड़े थे कि अपने छोटे भाई के घर से गुरु नानकदेव के एक पद की कुछ कड़ियाँ एक मधुर कंठ से निकलती हुई इन्होंने सुनीं। गुरु अंगद की पुत्री बीबी अमरो, जिनका ब्याह कुछ ही दिन पहले अमरदास के एक भतीजे के साथ हुआ था, उस पद को मारू राग में गा रही थीं। कड़ियाँ वे इस पद की थीं—

"करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाहीं अंतु हरे॥
चित चेतसि की नहीं बावरिआ। हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ॥

इस शब्द-बाण से अमरदास बिध गये। अंतर के पट उनके खुल गये। बीबी अमरो से उन्होंने इस आकर्षक पद को बार-बार दोहराने के लिए अनुरोध किया, और सुनकर बहुत आनन्दित हुए। उन्हें अब गुरु के निकट पहुँचने की वह विकट बाट सहज ही हाथ लग गई। बीबी अमरो ने गुरु अंगद की शरण में उन्हें पहुंचा दिया। गुरु की सेवा-बंदगी में वे अब मौज से रहने लगे।

गुरु अंगद की आज्ञा से अमरदास गोइन्दवाल नगर में जाकर बैठ गये। गोविन्द नाम के एक मुकदमे में फँसे हुए व्यक्ति ने गुरु अंगद के

आगे यह संकल्प किया था कि यदि वह मुकदमे को जीत गया तो एक नगर बसायेगा। भाग्य से वह मुकदमा जीत गया, और उसने व्यास नदी के तट पर उक्त नगर को बसाया। अमरदास ने उस नये नगर का नाम गोइन्दवाल रखा। अमरदास रात को रोज़ गोइन्दवाल में रहा करते, और दिन में खडूर आ जाया करते थे। पीछे बसरका छोड़कर स्थायी रूप से गोइन्दवाल में जाकर बस गये।

गोइन्दवाल में अमरदास की दिन-चर्या यह रहा करती थी : काफ़ी वृद्ध थे, फिरभी खूब सवेरे उठते, और गुरु के स्नान के लिए व्यास नदी का जल लेकर नित्यप्रति खडूर जाया करते। गोइन्दवाल और खडूर के रास्ते में 'जपुजी' का पाठ करते जाते, जो प्राय: आधे मार्ग में ही समाप्त हो जाता था। खडूर में आकर 'आसा दी वार' सुनते, रसोई के बर्तन साफ करते, पानी भरते और जंगल से लकड़ी भी लाकर देते थे। फिर साँझ को 'सोदरु' सुनते, और गुरुके पैर दबाकर और उन्हें सुलाकर गोइन्दवाल जाकर सोते थे। ऐसी ज्वलन्त गुरु-भक्ति थी अमरदास की। यही कारण था कि गुरु अंगद ने इन्हें अपनी गद्दी का सच्चा अधिकारी माना।

गुरु अमरदास की अनूठी साधुता और ऊँची रहनी की अनेक सुन्दर कथाएँ प्रसिद्ध हैं। सत्संग को इन्होंने खूब चेताया, और सैकड़ों साधकों को परमात्मा के नाम और भक्ति का ऊँचा उपदेश दिया। इनके उपदेश प्राय: इस प्रकार के हुआ करते थे—

"तुम एक प्रभु का ही नाम सदा सुमरो, हमेशा नम्र रहो और अहंकार को त्यागदो; दान-पुण्य और सारे जप-तप को यह अहंकार अग्नि की तरह जलाकर भस्म करदेता है।

"यह संसार स्वप्न अथवा छाया की भाँति है। पुत्र, कलत्र और धन-संपदा सब अनित्य हैं। सपने में रंक हो जाता है राजा, और राजा हो जाता है रंक, पर जागने पर वह वस्तुत: जो होता है वही रहता है। फिर मनुष्य किसके लिए तो आनन्द मनाये, और किसका करे शोक ?

"हमेशा तुम दूसरों का भला करते रहो। यह तीन प्रकार से किया

जा सकता है: अच्छी सलाह देकर, सामने अच्छा उदाहरण, और हृदय में सदा लोक-कल्याण की कामना रखकर ।

"नम्रता और क्षमाशीलता का अभ्यास करो। किसीके भी प्रति अपने मन में द्वेष-भावना न आनेदो । यदि कोई तुम्हें कटु या अनादर-सूचक शब्द कह जाये, तो उसपर नाराज़ न होओ, बल्कि उसके साथ नम्रता का व्यवहार करो ।

"साधुजनों की सेवा करो; भूखे को भोजन और नंगे को वस्त्र दो। बड़े सवेरे उठकर जपुजी का पाठ करो। अपना कुछ समय जरूर परमात्मा की सेवा-बंदगी में खर्च करो। किसीका भी मन न दुखाओ। नम्र बनो, और अहंकार छोड़दो, और केवल उस सिरजनहार को ही अपना मालिक मानो।"

गुरु अमरदास की ऊँची साधुता और सहनशीलता इस एक घटना से प्रकट होती है । दातू ने अपने पिता गुरु अंगद के खडूरवाले स्थान को खाली पाकर उसपर अपना अधिकार जमा लिया। उसने कहा कि, बुड्ढा अमरू गुरु-गद्दी पर कैसे बैठ सकता है, वह तो हमारे घर का एक नौकर था। वह गोइन्दवाल भी पहुँचा, और गुरु अमरदास को गालियाँ देते हुए ठोकर मारकर नीचे गिरा दिया। पर उन्होंने उठकर दातू के पैर पकड़ लिये, और हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज, आपके चरणों में चोट तो नहीं लगी ? कृपाकर मुझे क्षमा कर दीजिए ।' गोइन्दवाल की यह घटना क्या भृगु और विष्णु की सुप्रसिद्ध कथा की पुनरावृत्ति नहीं थी ?

बादशाह अकबर भी गुरु अमरदास का दर्शन करने एक बार गोइन्दवाल गया था, और लंगर में सबके साथ बैठकर उसने भोजन भी किया था ।

गुरु अमरदास ने सिक्ख-धर्म के प्रचार के लिए २२ मंजे अर्थात् केन्द्र खोले थे ।

अपने दामाद शिष्य जेठा को, जो इनकी सेवा-बंदगी में आठों पहर रहा करते थे, वरदान के रूप में अपनी गद्दी देकर संवत् १६३१ के

भादों की पूर्णिमा के दिन वाह गुरु और सतनाम का उच्चारण करते हुए गुरु अमरदास ने शरीर छोड़ा। जेठा चतुर्थ गुरु रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। यहाँ से अब गुरु गोविन्दसिंहतक क्रमशः जो सात गुरु हुए उनकी परंपरा गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी और उनके पति जेठा के वंश से चली।

गुरु अमरदास की मृत्यु का वर्णन उनके पौत्र आनन्द के पुत्र सुन्दर-दास ने पाँचवें गुरु अर्जुनदेव के अनुरोध पर लिखा था। इस रचना का नाम 'सदु' है, और यह रामकली राग में गाई जाती है।

बानी-परिचय

गुरु ग्रन्थ साहिब में महला ३ के अंतर्गत जितनी भी रचनाएँ संगृहीत हैं वे सब गुरु अमरदास की रची हैं। 'आनन्दु' इनकी सबसे प्रख्यात और सुन्दर रचना है। 'आनन्दु' को इन्होंने अपने एक पौत्र के जन्म पर रचा था, और उस पौत्र का नाम भी 'आनन्दु' रखा था। 'आनन्दु' को आज भी सिक्ख संप्रदाय आनन्द-उत्सवों पर गाया करता है। यह है भी बड़ी आनन्द-प्रदायिनी रचना।

गुरु अमरदास के भक्ति-रसपूर्ण पद भी सैकड़ों हैं और वारें भी इनकी कई रागों में हैं। बानी इनकी सरस और ऊँचे घाट की है, भाषा तथा भाव दोनों ही दृष्टियों से।

आधार

१ गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन—(भाग ३) मॅकालीफ़

आनंदु

रागु रामकली

आनंदु भइआ मेरी माए सतिगुरु मैं पाइआ ॥
सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि बजीआ वधाईआ ॥

---

१. सहज सेती=सहज ही, आसानी से। मनि=मन में, हृदय में। राग रतन...

राग रतन परवार परीआ सबद गावण आईआ ॥
सबदो त गावहु हरी केरा मनि जिनी बसाईआ ॥
कहै नानकु अनंदु होआ सतिगुरु मैं पाइआ ॥१॥
ए मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले ॥
हरि नालि रहु तू मंन मेरे दूख सभि बिसारणा ॥
अंगीकारु ओहु करे तेरा कारज सभि सवारणा ॥
सभना गला समरथु सुआमी सो किउ मनहु बिसारे ॥
कहै नानकु मंन मेरे सदा रहु हरि नाले ॥२॥
साचे साहिब किआ नाही घरि तेरै ॥
घरी त तेरै सभु किछु है जिसु देहि सु पावए ॥
सदा सिफति सलाह तेरी नामु मनि वसावए ॥
नामु जिनकै मनि वसिआ वाजे सबद घनेरे ॥
कहैं नानकु सचे साहिब किआ नाही घरि तेरै ॥३॥
साचा नामु मेरा आधारो ॥
साचु नामु आधारु मेरा जिनि भुखा सभि गवाईआ ॥
करि सांति सुख मनि आई वसिआ जिनि इच्छा सभि पुजाईआ ॥
सदा कुरबाणु कीता गुरू बिटहु जिस दीआ एहि वडिआईआ ॥
कहै नानक सुनहु संतहु सबदि धरण पिआरो ॥
साचा नामु मेरा आधारो ॥४॥

आइआ=उत्तम राग और स्वर्ग की अप्सराएँ गुणगान करने के लिए आई हैं। सबदो=स्तुति, गुण। केरा=का (पूरबी हिंदी का प्रयोग। मनि जिनि वसाईआ=हृदय में जिसने परमात्मा को वसा लिया।

२. मेरिआ=मेरे। नाले=पास। सवारणा=सँवार लेगा, सुधार देगा। सभना गला समुरथु सुआमी=वह प्रभु सब वस्तुओं में व्यापक तथा शक्तिमान् हैं।

३. किआ…तेरै=तेरे घर में क्या नहीं हैं? घरि=घर में। जिसु=जिसे। सदा सिफति सलाह तेरी=वह सदा तेरे गुणों की सराहना करेगा। वाजे सबद घनेरे= खूब आनन्द-बधाई बजेगी।

४. आधारो=अवलंब। भुखा सभि गवाईआ=मेरी सारी भूख को तृप्त या शांत करता है। पुजाईआ=पूरा करता है। कीता=किया है।

बाजे पंच सबद तितु घरि सभागै ॥
घरि सभागै सबद बाजे कला जितु घरि धारीआ ॥
पंचदूत तुधु वसि कीते कालु कंटकु मारीआ ॥
धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ सि नामि हरिकै लागे ॥
कहै नानकु तह सुख होआ तितु घरि अनहद बाजे ॥५॥
साची लिवै बिनु देह निमाणी ॥
देह निमाणी लिवै बाझहु किआ करे वेचारिआ ॥
तुधु बाझु समरथ कोइ नाही क्रिपा करि बनिवारिआ ॥
ऐस नउ होरु थाउ नाही सबदि लागि सवारिआ ॥
कहै नानकु लिवै बाझहु किआ करे वेचारिआ ॥६॥
आनंदु आनंदु सभु को कहै आनंदु गुर ते जाणिआ ॥
जाणिआ आनंदु सदा गुर ते क्रिपा करे पिआरिआ ॥
करि किरपा किलबिख कटे गिआन अंजनु सारिआ ॥
अंदरहु जिनका मोह तुटा तिनका सबदु सचै सवारिया ॥
कहै नानकु एहु आनंदु है आनंदु गुर ते जाणिआ ॥७॥

---

५. तितु घरि सभागै=उस भाग्यवान या सुखी घर में; आशय, उस आनंदमय अंतःकरण में वह परमात्मा निवास करता है। कला=शक्ति, तेज। पंचदूत तुधु वसि कीते=पाँचों इन्द्रियों के विषयों को, अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को वश में कर लिया। धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ=जिनपर तूने आदि से ही कृपा की। अनहद=अनाहत शब्द, जिसे योगी निर्विकल्प समाधि की शून्यावस्था में सुना करता है।

६. साची···निमाणी=सच्चे प्रेम के बिना मनुष्य की देह का कोई आदर नहीं; कौड़ी मोल की भी नहीं। लिवै-बाझहु=बिना प्रेम के। बाझु=बिना, सिवाय। वेचारिआ=बेचारा, अभागा। बनिवारिआ=वनमाली; विष्णु का एक नाम। एस···सवारिआ=उस शब्द के सिवाय दूसरा कोई शरण का स्थान नहीं; उस शब्द में अनुरक्त होकर ही मनुष्य शोभा पाता है।

७. पिआरिआ=प्रिय; यह विशेषण गुरु तथा कृपा दोनों के साथ प्रयुक्त हो सकता है। किलविख=किल्विष, पाप। सारिआ=लगाया। तुटा=दूर हो गया। अंदरहु···सवारिआ=सत्यरूप परमात्मा ने उनको अपने शब्द से सजाकर शोभित किया

बाबा जिसु तू देहि सोई जनु पावै ॥
पावै त सो जनु देहि जिसनो होरि किआ करहि वेचारिआ ॥
इकि भरमि भूले फिरहि दहदिसि इकि नामि लागि सवारिआ ॥
गुरपरसादी मनु भइआ निरमलु जिना भाणा भावए ॥
कहै नानकु जिसु देहि पिआरे सोई जनु पावए ॥८॥

आवहु संत पिआरिहो अकथ की करह कहाणी ॥
करह कहाणी अकथ केरी कितु दुआरै पाईऐ ॥
तनु मनु धनु सभु सउपि गुर कउ हुकमि मंनिऐ पाईऐ ॥
हुकमु मंनिहु गुरू केरा गावहु सची बाणी ॥
कहै नानकु सुणहु संतहु कथिहु अकथ कहाणी ॥९॥

ए मन चंचला चतुराई किनै न पाइआ ॥
चतुराई न पाईआ किनै तू सुणि मंन मेरिआ ॥
एह माइआ मोहणी जिनि एतु भरमि भुलाईआ ॥
माइआ त मोहणी तिनै कीती जिनि ठगउली पाइआ ॥
कुरबाणु कीता तिसै विटहु जिनि मोह मीठा लाइआ ॥
कहै नानकु मन चंचल चतुराई किनै न पाइआ ॥१०॥

है, जिन्होंने हृदय से मोह को, अर्थात् संसार के प्रति आसक्ति को निकाल बाहर कर दिया है।

८. बाबा=हे पिता। होरि=और। इकि नामि लागि सवारिआ=(और) दूसरे तेरे नाम से प्रीति जोड़कर शोभा पा रहे हैं। गुरपरसादी=गुरु की कृपा से। जिना भाणा भावए=जिन्होंने अपनेको परमात्मा की इच्छा के अनुकूल अथवा कृपा के योग्य बना लिया है। जिसु देहि=जिसे तू (आनन्द) प्रदान करता है।

९. करह कहाणी=कथा हम करें अर्थात् कहें। कितु दुआरै पाईऐ=किसके द्वारा शब्द पायें अथवा किसके द्वारा उसे हम प्राप्त कर सकेंगे। सउपि=सौंपकर। हुकमि मंनिऐ पाईऐ=उसकी आज्ञा पर चलकर प्राप्त कर सको।

१०. चतुराई किनै न पाईआ=परमात्मा को किसीने चालाकी करके नहीं पाया। माइआ=माया। तिनै कीती=उसने अर्थात् परमात्मा ने रची। जिनि ठगउली पाईआ=जिसने यह इन्द्रजाल फैलाया। कुरबाणु...लाईआ=मैंने उस परमात्मा पर अपनेको निछावर कर दिया है, जिसने कि मरणशील प्राणियों के लिए सांसारिक मोह को इतना आकर्षक बना रखा है।

ए मन पिआरिआ तू सदा सचु समाले ॥
एहु कुटंबु तू जि देखदा चलै नाही तेरै नाले ॥
साथि तेरै चले नाही तिसु नालि किउ चितु लाईऐ ॥
ऐसा कंमु मूले न कीचै जितु अंति पछोताईऐ ॥
सतिगुरु का उपदेसु सुणि तू होवै तेरै नाले ॥
कहै नानकु मन पिआरे तू सदा सचु समाले ॥११॥

अगम अगोचर तेरा अंतु न पाइआ ॥
अंतो न पाइआ किनै तेरा आपणा आपु तू जाणहे ॥
जीअ जंतु सभि खेलु तेरा किआ को आखि बखाणए ॥
आखहि त वेखहि सभु तू है जिनि जगतु उपाइआ ॥
कहै नानकु तु सदा अगमु है तेरा अंतु न पाइआ ॥१२॥

सुरि नर मुनि जन अंमृतु खोजदे सु अंमृतु गुर ते पाइआ ॥
पाइआ अंमृतु गुरु कृपा कीनी सचा मनि बसाइआ ॥
जीअ जंत सभि तुधु उपाए इकि वेखि परसणि आइआ ॥
लबु लोभु अहंकार चूका सतिगुरु भला भाइआ ॥
कहै नानकु जिसनो आपि तुठा तिनि अंमृतु गुर ते पाइआ ॥१३॥

---

११. पिआरिआ=प्यारे। सचु समाले=याद रख सत्यरूप परमात्मा को। जि=जिसको। नाले=(अंतकाल में) साथ। तिसु लाईऐ=तो उस कुटुंब में क्यों अपना मन लगाता है? ऐसा......पछोताईऐ=कभी ऐसा न कर जिसे लेकर बाद को तुझे पछताना पड़े। होवै तेरै नाले=वही (अंत में) तेरे साथ जायेगा।

१२. आपणा आपु तू जाणहे=तू आपही अपने आपको जानता है। खेलु=लीला। को आखि बखाणए=कौन किन शब्दों से वर्णन कर सकता है? आखहि=कहता है। वेखहि=देखता है। उपाइआ=पैदा किया।

१३. खोजदे=खोजते हैं। सचा मनि बसाइआ=सत्य (-रूप परमात्मा) को हृदय में बसा देता है। तुधु उपाए=तूने उत्पन्न किये। इकि वेखि परसणि आइआ=तुझ एक परमात्मा को देखकर मैं तेरे चरणों को छूने आया हूँ। लबु=लालसा। लबु... भाइआ=सतगुरु जिनपर अच्छी तरह प्रसन्न हो गये, उनके मन में फिर लालसा, लोभ और अहंकार ये दुर्गुण नहीं रहते। आपि तुठा=परमात्मा स्वयं प्रसन्न हो गया।

भगता की चाल निराली ॥
चाल निराली भगताह केरी विखम मारगि चालणा ॥
लबु लोभु अहंकारु तजि तृसना बहुतु नाही बोलणा ॥
खंनिअहु तिखी वालहु निकी एतु मारगि जाणा ॥
गुरपरसादी जिन्ही आपु तजिआ हरि वासना समाणी ॥
कहे नानकु चाल भगता जुगहु जुगु निराली ॥१४॥
जिउ तू चलाइहि तिव चलह सुआमी होरु किआ जाणा गुण तेरे ॥
जिव तू चलाइहि तिवै चलह जिना मारगि पावहे ॥
करि किरपा जिनि नामि लाइहि सि हरि हरि सदा धिआवहे ॥
जिसनो कथा सुणाइहि आपणी सि गुरदुआरै सुखु पावहे ॥
कहै नानक सचे साहिब जिउ भावै तिवै चलावहे ॥१५॥
एहु सोहिला सबदु सुहावा ॥
सबदो सुहावा सदा सोहिला सतिगुरू सुणाइआ ॥
एहु तिनकै मंनि वसिआ जिन धुरहु लिखिआ आइआ ॥
इकि फिरहि घनेरे गला गलीं किनै न पाइआ ॥
कहै नानकु सबदु सोहिला सतिगुरु सुणाइआ ॥१६॥
हरि आपि अमुलकु मैं मुलि न पाइआ जाइ ॥
मुलि न पाइआ जाइ किसै विटहु रहे लोक विललाइ ॥

---

१४. विखम=विषम, कठिन, टेढ़ा । खंनिअहु······जाणा=वे ऐसे मार्ग पर चलते हैं, जो खांड़े (तलवार) से अधिक पैना और बाल से भी अधिक बारीक होता है । आपु तजिआ=अपने अहंकार का त्याग कर दिया है । हरि वासना समाणी=जिनकी इच्छाएँ परमात्मा में केन्द्रित हो गई हैं ।

१५. होरु...तेरे=और अधिक तेरे गुणों को हम क्या जान सकते हैं ? तिवै=त्यों, वैसे ही । मारगि=सही रास्ता । नामि लाइहि=नाम-(स्मरण) में लगा देता है । सि=वह । गुरदुआरै=गुरु के द्वारा । सुखु=ब्रह्मानन्द । जिउ भावै=जैसा चाहे ।

१६. सोहिला=आनंद का गीत । धुरहु लिखिआ आइआ=आदि से ही भाग्य में लिखकर जो आये हैं । गला गली किनै न पाइआ=बकवाद से किसीने भी उस शब्द को प्राप्त नहीं किया ।

१७. अमुलकु=अनमोल । मुलि···जाइ=मोल नहीं ठहराया जा सकता । किसै······

ऐसा सतिगुरु जे मिलै तिसनो सिरु सउपीऐ विचहु आपु जाइ ॥
जिसदा जीव तिसु मिलि रहै हरि वसै मनि आइ ॥
हरि आपि असुलकु है भाग तिना के नानका जिन हरि पलै पाइ ॥१७॥

हरि रासि मेरी मनु वणजारा ॥
हरि रासि मेरी मनु वणजारा सतिगुर ते रासि जाणी ॥
हरि हरि नित जपिहु जीअहु लाहा खटिहु दिहाड़ी ॥
एह धनु तिना मिलिआ जिन हरि आपे भाणा ॥
कहै नानकु हरि रासि मेरी मन होआ वणजारा ॥१८॥

ए रसना तू अनरसि राचि रही तेरी पिआस न जाइ ॥
पिआस न जाइ होर तु कितै जिचरु हरिरसु पलै न पाइ ॥
हरिरस पाइ पलै पीऐ हरिरसु बहुड़ि न तृसना लागै आइ ॥
एहु हरिरसु करमी पाइऐ सतिगुरु मिलै जिसु आइ ॥
कहै नानकु होरि अनरस सभि वीसरे जा हरि वसै मन आइ ॥१९॥

ए सरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी ता तू जग महि आइआ ॥
हरि जोति रखी तुधु विचि ता तू जग महि आइआ ॥

विललाइ=यद्यपि लोग कितना ही यत्न करें, सिर पटककर मर जायें। आपु जाइ=जिसकी कृपा से अहंकार नष्ट हो जाये। तिसनो सिरु सउपीऐ=उसे अपना सिर सौंपदे, अपने आपको उसके हवाले करदे। जिसदा...वसि आइ=जिस परमात्मा का यह जीव है उसीसे मिलने का जतन कर; और वह तेरे हृदय में आ वसेगा।

१८. रासि=पूँजी। मनु वणजारा=मन है व्यापारी। जीअहु=हे मेरे जीव। लाहा खटिहु दिहाड़ी=तुझे हररोज़ लाभ होगा।

१९. तू अनरसि राचि रही=तू दूसरे रसों (विषय-भोगों के स्वादों) में अनुरक्त या आसक्त हो रही है। पिआस न...पाइ=तेरी प्यास किसीभी प्रकार से जाने की नहीं, जबतक कि तुझे हरि-रसायन हाथ नहीं लगी। तृसना=तृषा, प्यास। करमी=पूर्व के सत्कर्मों से। होरि अनरस=और दूसरे (विषय-) रस।

२०. ए सरीरा···आइआ=हे मेरे शरीर, परमात्माने तुझमें अपनी ज्योति भरदी, और तभी तू इस संसार में आया। उपाइ=पैदा करके, बनाकर। गुरु······आइआ=गुरु-

हरि आपे माता आपे पिता जिनि जीउ उपाइ जगतु दिखाइआ ॥
गुरपरसादीं बुझिआ ता चलतु होआ चलतु नदरी आइआ ॥
कहै नानकु सृसटिका मूलु रचिआ जोति राखी ता तू जगमहि आइआ ॥२०

एहु साचा सोहिला साचै घरि गावहु ॥
गावहु त सोहिला घरि साचै जिथै सदा सचु धिआवहे ॥
सचो धिआवहि जा तुधु भावहि गुरमुखि जिना बुझावहे ॥
इहु सचु सभना का खसमु है जिसु बखसे सो जनु पावहे ॥
कहै नानकु सचु सोहिला सचै घरि गावहे ॥२१॥

अनंदु सुणहु वडभागी हो सगल मनोरथ पूरे ॥
पारब्रहमु प्रभु पाइआ उतरे सगल विसूरे ॥
दूख रोग संताप उतरे सुणी सची बाणी ॥
संत साजन भए सरसे पूरे गुर ते जाणी ॥
सुणते पुनीत कहते पवितु सतिगुरु रहिआ भरपूरे ॥
बिनवंति नानकु गुरचरण लागे वाजे अनहद तूरे ॥२२॥

रागु सिरी

पंखी बिरखि सुहावड़ा सचु चुगै गुर भाइ ॥
हरिरसु पीवै सहजि रहै उड़ै न आवै जाइ ॥

कृपा से जिस मनुष्य ने सच्चा आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया, उसके लिए यह संसार एक खेल है, या खेल के जैसा मालूम देता है। सृसटि=सृष्टि।

२१. सोहिला=आनन्द-बधाई का गीत। साचै घरि=संत-समाज में। जिथै···धिआवहे=जहाँ संतजन सदा सत्यरूप परमात्मा का ध्यान करते हैं। जा तुधु भावहि=जो तुझे प्रसन्न करते हैं। खसमु=स्वामी। जिसु···पावहे=जिस जन पर वह कृपा करता है वही उसे पाता है।

२२. अनंद=आनद गान। सगल=सकल, सब। उतरे सगल विसूरे=सारे दुःख दूर हो गये। सरसे=आनंदित, प्रफुल्लित। पूरे गुर ते जाणी=पूर्ण सद्गुरु के मुख से सुनकर। सुणते=सुननेवाले। कहते=पाठ करनेवाले। तूरे=बाजे।

१. सुन्दर है वृक्ष पर का वह पक्षी, जो गुरु की कृपा से सत्य को सदा चुगता रहता है।
(पक्षी है यहाँ संतपुरुष, और वृक्ष है उस साधु का शरीर।)

निजघरि वासा पाइआ हरि हरि नामि समाइ ॥
मन मेरे तू गुर की कार कमाइ ॥
गुर कै भाणै जे चलहि ता अनदिनु राचहि हरिनाइ ॥
पंखी बिरख सुहावड़े ऊड़हि चहु दिसि जाहि ॥
जेता ऊड़हि दुख घणे नित दाझहि तै बिललाहि ॥
बिनु गुर महलु न जापई ना अंमृत फल पाहि ॥
गुरमखि ब्रहमु हरीआवला साचै सहजि सभाइ ॥
साखा तीनि निवारिआ एक सबदि लिव लाइ ॥
अंमृत फलु हरि एकु है आपे देइ खवाइ ॥
मनमुख ऊभे सुकि गए ना फलु तिंन ना छाउ ॥
तिंना पासि न बैसीऐ ओना घरु न गिराउ ॥
कटीअहि तै नित जालीअहि ओन्हा सबदु न नाउ ॥

हरि-नाम का रस वह सतत पान करता है। सहजसुख के बीच बसेरा है उसका, और वह इधर-उधर नहीं उड़ता।

निज नीड़ में उस पक्षी ने वास पा लिया है, और हरि-नाम में वह लौलीन हो गया है।

हे मन ! तब तू गुरु की सेवा में रत होजा।

यदि गुरु के बताये मार्ग पर तू चले, तो फिर हरि-नाम में तू दिन-रात लौलीन रहेगा।

क्या वृक्ष पर के ऐसे पक्षी आदरयोग्य कहे जा सकते हैं, जो चारों दिशाओं में इधर-उधर उड़ते रहते हैं ?

जितना ही वे उड़ते हैं, उतना ही दुःख पाते हैं; वे नित्य ही जलते और चीखते रहते हैं।

बिना गुरु के न तो वे परमात्मा के दरबार को देख सकते हैं, और न उन्हें अमृत-फल ही मिल सकता है।

स्वभावतः सत्यनिष्ठ गुरमुखों अर्थात् पवित्रात्माओं के लिए ब्रह्म सदाही एक हरा-लहलहा वृक्ष है।

तीनों शाखाओं (त्रिगुण) को उन्होंने त्याग दिया है, और एक शब्द में ही लौ उनकी लगी हुई है।

एक हरि-नाम ही अमृतफल है; और वह उसे स्वयं ही खिलाता है।

हुकमे करम कमावणे पाइऐ किरति फिराउ ॥
हुकमे दरसनु देखणा जह भेजहि तह जाउ ॥
हुकमे हरि हरि मनि वसै हुकमे सचि समाउ ॥
हुकम न जाणहि बपुड़े भूले फिरहि गवारु ॥
मन हठि करम कमावदे नित नित होहि खुआरु ॥
अंतरि सांति न आवई ना सचि लगै पिआरु ॥
गुरमुखीआ मुह सोहणे गुर कै हेति पिआरि ॥
सच्ची भगती सचि रते दरि सच्चे सचिआर ॥
आए से परवाणु है सभ कुल का करहि उधारु ॥
सभ नदरी करम कमावदे नदरी बाहरि न कोइ ॥

मनमुखी दुष्टजन ठूंठ से सूखे खड़े रहते हैं; न उनमें फल होते हैं, न छाँह।

उनके निकट तू मत बैठ; न उनका घर है, न गाँव। सूखे काठ की तरह वे काट-कर जला दिये जाते हैं;

उनके पास न शब्द (गुरु-उपदेश) है, न (हरि का) नाम।

मनुष्य परमात्मा की आज्ञा के अनुसार कर्म करते हैं, और अपने पूर्व कर्मों के अनुसार अनेक योनियों में चक्कर लगाते रहते हैं।

वे उसका दर्शन पाते हैं तो उसकी आज्ञा से ही, और जहाँ वह भेजता है वहाँ वे चले जाते हैं।

अपनी इच्छा से ही परमात्मा उनके हृदय में निवास करता है; और उसीकी आज्ञा से वे सत्य में तल्लीन हो जाते हैं।

बेचारे मूर्ख जो उसकी आज्ञा को नहीं पहचानते, भ्रांति के कारण इधर-उधर भटकते रहते हैं।

उनके सब कर्मों में हठ होता है, वे दिन-दिन गिरते ही जाते हैं। उनके अंतर में शान्ति नहीं आती; न सत्य के प्रति उनमें प्रेम होता है।

सुन्दर हैं उन पवित्रात्माओं के मुख, जिनकी गुरु के प्रति प्रेम-भक्ति है।

भक्ति उन्हींकी सच्ची है; वे ही सत्य में अनुरक्त हैं। और सत्य के दरबार में उन्हींने सत्यरूप परमात्मा को पाया है।

संसार में उन्हींका आना सौभाग्य है; अपने सारेही कुल का उन्होंने उद्धार कर लिया।

सबके कर्म उसकी नज़र में हैं; कोई भी उसकी नज़र से बचा नहीं।

जैसी नदरि करि देखै सच्चा तैसा ही को होइ ॥
नानक नामि वडाईआ करमि परापति होइ ॥१॥

राग़ु भैरउ

जाति का गरब न करियहु कोइ ।
ब्रहम बंदे सो ब्रहमण होइ ॥
जाति का गरब न करि मूरख गवारा ।
इसु गरब ते चलहि बहुत विकारा ॥
चारे वरन आखै सब कोई ।
ब्रहमु-बिंदु ते सभ ओपति होई ॥
माटी एक सगल संसारा ।
बहु बिधि भांडे घड़ै कुम्हारा ॥
पंच ततु मिलि देही आकारा ।
घटि वधि को करै बीचारा ॥
कहतु नानक इह जीउ करमबंधु होई ।
बिनु सतिगुर भेटे मुकति न होई ॥२॥

रागु भैरउ

दुविधा मनमुख रोगि विआपे तृसना जलहि अधिकाई ।
मरि-मरि जंमहि ठउर न पावहि बिरथा जनम गवाई ॥
मेरे प्रीतम करि किरपा देहु बुझाई ।
हउमै रोगी जगतु उपाइआ बिनु सबदै रोगु न जाई ॥

वह जैसी नजर से देखता है, मनुष्य वैसाही हो जाता है ।
नानक ! नाम का महिमातक सुकर्मों से ही पहुँचा जा सकता है ।

२. चलहि=पैदा होते हैं । आखैं=कहते है । विंदु=वीर्य । ओपति=उत्पत्ति । सगल=सकल, सारा । भांडे=बर्तन । घटि वधि=छोटा-बड़ा । करम-बंधु होई=कर्मों से माया के बंधन में पड़ता है । भेटे-मिलकर ।

३. जंमहि=जन्म लेता है । ठउर=स्थिरता, शान्ति । हउमै-अहंकार । उपाइआ= उत्पन्न किया । बिनु सबदै=बिना गुरु के उपदेश के । सिमृति=मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र । सासतर=शास्त्र । सुरति=प्रभु की लौ या ध्यान । ममता सुरति गवाई=

सिम्रिति सासतर पड़हि मुनि केते बिनु सबदै सुरति न पाई।
त्रैगुण सभे रोगि विआपे ममता सुरति गवाई।।
इकि आपे काढ़ि लए प्रभि आपे गुर सेवा प्रभि लाए।
हरि का नामु निधानो पाइआ सुखु वसिआ मनि आए।।
चउथी पदवी गुरमुखि वरतहि तिन निज घरि वासा पाइआ।
पूरै सतिगुरि किरिपा कीन्ही विचहु आपु गवाइआ।।
एकसु की सिरिकार एक जिनि ब्रहमा बिसनु रुद्र उपाइआ।
नानक निहचलु साचा एको ना ओहु मरै न जाइआ।।३।।

रागु गउड़ी

गुरि मिलिऐ हरि मेला होइ। आपे मेलि मिलावै सोइ।।
मेरा प्रभु सभ बिधि आपे जाणै। हुकमे मेलै सबदि पछाणै।।
सतिगुरु कै भइ भ्रमु भउ जाइ। भै राचै सच रंगि समाइ।।
गुरि मिलिऐ हरि मनि वसै सुभाइ। मेरा प्रभु भारा कीमति नहि पाइ।।
सबदि सालाहै अंत न पारावारु। मेरा प्रभु बखसै बखसणहारु।।
गुरि मिलिऐ सभ मति बुधि होइ। मनि निरमल बसै सचु सोइ।।
सचि वसिऐ साची सभ कार। ऊतम करणी सबदि बीचार।।
गुर ते साची सेवा होइ। गुरमुखि नाम पछाणै कोइ।।
जीवै दाता देवणहारु। नानक हरिनामै लगै पिआरु।।४।।

अहंकार ने प्रभु के ध्यान को भुला दिया है। काढ़ि लए=अहंकार और माया से मुक्त कर दिया। निधानो=खज़ाना। मनि=मन में। चउथी पदवी=तुरीया अवस्था से तात्पर्य है, जहाँ केवल आत्म-स्थिति का अनुभव होता है। निज घरि=स्वरूप की सर्वोच्च स्थिति में। विचहु=आत्मा और परमात्मा के बीच का अंतर; द्वैतभाव। जाइआ=जन्म लेता है।

४. मेला=मिलन। हुकमे...पछाणै=अपनी आज्ञा का रहस्य प्रकटकर परमतत्त्व से वह परिचय करा देता है। भइ=भय। भउ=संशय-जनित भय। भै राचै...समाइ=ईश्वर-भीरुता; जो डरकर चलता है वह सत्यरूप परमात्मा के प्रेम में लौलीन हो जाता है। सुभाइ=अनायास ही। भारा=महान्-से-महान्। कीमति नहि पाइ=अनमोल। सालाहै=प्रशंसा पाता है। कार=रचना।

रागु आसा

मनमुखि झूठो झूठु कमावै। खसमै का महलु कदे न पावै॥
दूजै लागी भरमि भुलावै। ममता बाधा आवै जावै॥
दोहागणी कामनि देखु सींगारु। पुत्र कलति धनि माइआ चितु लाए,
झूठु मोहु पाखंड वीकारु॥
सदा सोहागणि जो प्रभ भावै। गुर सबदी सींगारु बणावै॥
सेज सुखाली अनदिनु हरि रावै। मिलि प्रीतम सदा सुखु पावै॥
सा सोहागणि साची जिसु साचि पिआरु। आपणा पिरु राखै
सदा उर धारि॥
नेड़ै वेखै सदा हदूरि। मेरा प्रभु सरब रहिआ भरपूरि॥
आगै जाति रूपु न जाइ। तेहा होवै जेहे करम कमाइ॥
सबदे ऊचो ऊचा होइ। नानक साचि समावै सोइ॥५॥

---

५. मनमुखी मनुष्य झूठ-ही-झूठ का लेन-देन करते रहते हैं;
स्वामी के महलतक वे कभी नहीं पहुँचते।
प्रपंच में लिप्त वे सदा भ्रम में ही भूले रहते हैं,
और ममता में बद्ध फिर जन्मते हैं, और फिर मरते हैं।
देखो तो इस दोहागिन नारी का यह सिंगार!
चित्त इसका लगा हुआ है पुत्र में, परिवार में, धन और माया में,
और झूठ में, और मोह में, पाखण्ड में और मनोविकारों में।
सदा सोहागिन तो वही नारी है, जो अपने स्वामी को भाती है।
उसका सिंगार सतगुरु का उपदेश होता है;
उसकी सेज सुखभरी होती है, और अपने स्वामी के साथ वह दिन-रात आनंद-मौज करती है।
अपने प्रीतम से मिलकर वह सदा सुख में मगन रहती है।
जो अपने सच्चे स्वामी को प्यार करती है, वहीं सच्ची सोहागिन है।
वह अपने प्रीतम को सदा छाती से लगाये रहती है।
वह अपने पास, अपने सामने उसे निरंतर देखती रहती हैं।
मेरा प्रभु सर्वत्र रम रहा है।
परलोक में तेरे साथ न यह ऊँची जाति जायेगी; न यह रूप जायेगा;
तेरी वहाँ की यात्रा तेरे कर्मों के अनुसार ही होगी।

सलोक

जिन्हा सतिगुरु इकमनि सेविआ तिन जन लागौ पाइ ।
गुर सबदी हरि मनि वसै माया की भुख जाइ ॥१॥
से जन निर्मल ऊजले जि गुरमुखि नामि समाइ ।
नानक होरि पतिसाहिआ कूड़िआ, नामिरते पातसाह ॥२॥
माया मोहि जगु भरमिआ, घरु मूसै खबरि न होइ ।
कामु क्रोधि मनु हरि लइआ मनमुखि अंधा लोइ ॥३॥
गिआन-खड़ग पंचदूत संघारे गुरमति जागै सोइ ।
नामु रतन परगासिआ मनु तनु निरमलु होइ ॥४॥
मैं जानिआ बडहंसु है ता मै कीआ संगु ।
जे जाणा बगु बापुड़ा त जनमि न देंदी अंगु ॥५॥
हंसा वेखि तरंदिआ बगां भि आइआ चाउ ।
डूबि मुए बग बापुड़े सिरु तलि ऊपरि पाउ ॥६॥
सतिगुर की सेवा चाकरी सुखी हूं सुख सारु ।
ऐथै मिलनि वड़िआईआ दरगह मोख दुआरु ॥७॥
सजण मिले सजणा जिन सतगुर नालि पिआरु ।
मिलि प्रीतम तिनी धिआइआ सचै प्रेमि पिआरु ॥८॥

शब्द (सतगुरु के उपदेश) से ही मनुष्य ऊँचे-से-ऊँचा जाता है,
और नानक, उसीसे वह सत्यरूप परमात्मा में लीन होता है ।

१. जिन्हा=जिन्होंने । इकमनि=अनन्य भाव से । लागौपाइ=उनके पैर पड़ता हूँ । गुरसबदी=गुरु के उपदेश से । भुख=तृष्णा, आसक्ति ।

२. से=वे । जि=जो । समाई=लौलीन हो गये हैं । होरि पतिसाहिआ कूड़िया=और बादशाही झूठी है । रते=रँगे हुए, अनुरक्त ।

३. मूसे=चोरी करते हैं (सद्गुणरूपी रत्नों को) । हरि लिया=हरण कर लिया ।

४. पंचदूत संघारे=पाँचों इंद्रियों के विषयों को मार दिया, वश में कर लिया ।

५. न देदी अंगु=कभी न अपनाता ।

६. वेखि तरंदिआ=तैरता हुआ देखकर । चाउ=जोश ।

७. ऐथे=इस लोक में । दरगह=परलोक, ईश्वर का दरबार । मोख=मोक्ष ।

८. सजण=संतजन । सजणा=साजन, स्वामी । नालि=साथ ।

मन ही ते मानिआ गुर कै सबदि अपारि ।
एहि सजण मिले न विछुड़हि जि आपि मेले करतारि ॥९॥
मनमुख सेती दोसती थोड़ड़िआ दिन चारि ।
इसु परीती तुटदी विलमु न होवई, इसु दोसती चलनि विकारि ॥१०॥
जिन अंदरि सचे का भउ नाही, नामि न करहि पिआरु ।
नानक तिन सिउ किआ कीजै दोसती, जि आपि भुलाए करतारु ॥११॥
गुरमुखि सेवि न कीनिआ, हरिनाम न लगो पिआरु ।
सबदै सादु न आइओ मरि जनमै बारोबार ॥१२॥
मनमुखि अंधु न चेतई कितु आइआ सैसारि ।
नानक जिन कउ नदरि करे से गुरमुखि लंघे पारि ॥१३॥

---

९. जि आपि मेले करतारि=परमात्मा जिन्हें खुद मिला देता है ।

१०. सेती=साथ की । परीति=प्रीति, मित्रता । तुटदी विलमु न होवई=टूटते देर नहीं लगती ।

११. भउ=भय । पिआरु-प्रेम । तिन सिउ=उनसे । जि आपि भुलाए करतारु=जो खुद ही परमात्मा को भुला बैठे हैं ।

१२. सेवि=सेवा । कीनिआ=की । सादु=स्वादु, रस, आनन्द ।

१३. सैसारि=संसार में । नदरि करे= कृपा-दृष्टि करता है । लंघे पारि=संसार से तर जाता है ।

गुरु रामदास

जन्म-संवत्—१५९१ वि०, कार्तिक कृ० २

जन्म-स्थान—लाहौर

पूर्व नाम—जेठा

पिता—हरिदास

माता—दयाकौर (पूर्व नाम अनूपदेवी)

जाति—लोधी खत्री

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-संवत्—१६३८ वि०, भादों शुक्ल ३

मृत्यु-स्थान—गोइन्दवाल

गुरु रामदास का विवाह, जब इनका नाम जेठा था, गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी के साथ हुआ था। गुरु अमरदास के यह अनन्य भक्त और पट्टशिष्य भी थे। आज्ञा-पालक यह वैसे ही थे, जैसे कि गुरु अमरदास और गुरु अंगद।

एक दिन गुरु अमरदास के कुछ शिष्यों ने पूछा कि, 'दामाद तो आपका रामा भी है (जिसके साथ बड़ी पुत्री बीबी दानी का व्याह हुआ था) और आपकी वह सेवा भी करता है, पर जेठा को ही आप इतना अधिक क्यों चाहते हैं ?' जेठा के अनेक गुणों का वर्णन करते हुए गुरु अमरदास ने कहा कि, 'उसमें नम्रता, भक्ति और श्रद्धा रामा से कहीं अधिक है, और इसीलिए वह मुझे अधिक प्रिय है। लो, तुम्हारे सामने ही मैं उन दोनों की परीक्षा लेता हूँ।'

गुरु अमरदास ने रामा को हुक्म दिया कि उनके बैठने के लिए बावली के पास वह एक सुन्दर चबूतरा बनादे। रामा ने बड़ी मेहनत से चबूतरा तैयार किया, पर गुरु को वह पसंद नहीं आया। गिराकर फिर से बनाने को कहा। रामा ने उसे फिर बनाया। फिरभी पसंद नहीं आया। रामा ने उसे फिर गिरा तो दिया, पर तीसरी बार बनाने को वह राज़ी नहीं हुआ। बोला, 'गुरु बहुत बुड्ढे हो गये हैं; इसीसे उनकी बुद्धि काम नहीं दे रही !'

अब जेठा की बारी थी। उसने चबूतरे को गुरु की आज्ञा से सात बार बनाया और सात ही बार गिराया, पर मुहँ से एक शब्द भी नहीं निकाला। अंत में गुरु के चरणों को पकड़कर बड़ी नम्रता से उसने कहा, 'मैं तो मूर्ख हूँ; सेवा मुझसे कहाँ बन सकती है। मुझसे भूलें ही होंगी। पर आप कृपाकर मेरी भूलों को उसी तरह क्षमा कर दिया करें, जैसे कि पिता अपने मूर्ख पुत्र की भूलों को क्षमा कर देता है।'

गुरु अमरदास बहुत प्रसन्न हुए, और जेठा को छाती से लगाकर बोले—'मेरी आज्ञा को मानकर तूने सात बार इस चबूतरे को गिरा-

गिराकर बनाया, इसलिए तेरी सात पीढ़ियाँ गुरु की गद्दी पर बैठेंगी।' श्रौर सब सिक्खों को बुलाकर कहा कि, 'मैंने श्रपने दोनों दामादों की परीक्षा लेली है। श्रब तो तुम्हारा संदेह दूर हो गया कि जेठा मुझे क्यों श्रधिक प्रिय है। मैं स्पष्ट देखता हूं कि यह जेठा श्रागे चलकर जगत का उद्धार करेगा।'

चतुर्थ गुरु रामदास जीवनभर गुरु श्रमरदास के सब सिद्धान्तों श्रौर पद-चिह्नों पर चले। गुरु नानक, गुरुश्रंगद श्रौर गुरुश्रमरदास के सारे गुण उनमें पाये जाते थे। 'टिक्के दी वार' की सातवीं पउड़ी में सत्तैने कहा है—

"नानक तू, लहिएा तू है, गुरु श्रमर तू वीचारिश्रा।
गुरु डीठा ताँ मनु साधारिश्रा।।"

श्रर्थात्, तू नानक है, तू लहिणा है, तू श्रमरदास है; मैंने तुझे ऐसा ही समझा है।

जब मैंने तुझ गुरु को देखा, तब मेरे मन को ऐसा ही श्राश्वासन मिला।

बाबा नानक के ज्येष्ठ पुत्र श्रीचंद, जो उदासी सम्प्रदाय के संस्थापक थे श्रौर बड़े-बड़े जटा बढ़ाये नग्न घूमते रहते थे, एक बार गुरु रामदास से मिलने श्राये। वे न तो गुरु श्रंगद से कभी मिले थे, श्रौर न गुरु श्रमरदास से ही। गुरु रामदास ने गोइन्दवाल से कुछ दूर जाकर महात्मा श्रीचंद का स्वागत किया, श्रौर भेंट के रूप में उनके सामने मिठाई श्रौर पाँच सौ रुपये रखे। गुरु से मिलकर बाबा श्रीचंद को बहुत श्रानन्द हुश्रा। उन्हें लगा कि रामदास मानों गुरु नानक की ही प्रतिमूर्ति हैं। उनकी दाढ़ी देखकर श्रीचंद ने कहा कि, 'दाढ़ी यह श्रापने बहुत लंबी बढ़ा रखी है!' 'श्रापके चरणों को पखारने के लिए मैंने यह लंबी दाढ़ी रखी है।' श्रौर किया भी उन्होंने यही। श्रीचंद ने श्रपने पैर हटा लिये, श्रौर कहा—'श्राप यह क्या कर रहे हैं! श्राप तो गुरु हैं, मेरे पिता की गद्दी पर श्रासीन हैं। निश्चय ही श्राप सिक्खों का उद्धार करेंगे।'

गुरु श्रमरदास की श्राज्ञा से गुरु रामदास ने जो एक भारा चिर-

स्थायी कार्य किया, वह था सिक्खों के महान् तीर्थ-स्थान अमृतसर का निर्माण। इस तालाब को उन्होंने बड़ी ही निष्ठा और परिश्रम से खुदवाया। तालाब के आसपास धीरे-धीरे रामदासपुर नाम का एक सुन्दर नगर भी बसने लगा। बाद में तालाब के नाम पर इसका भी नाम अमृतसर पड़ गया। अमृतसर का तालाब भाई बुड्ढा की देख-रेख में हज़ारों सिक्खों और दूसरे मज़दूरों ने तैयार किया। उन दिनों गुरु रामदास जिस कुटिया में रहा करते थे, वह आज भी 'गुरु का महल' के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरु रामदास ने धर्म-प्रचार के लिए अनेक सुयोग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया, जिन्हें वे 'मसन्द' कहते थे। मसन्दों ने सिक्खधर्म का अनेक स्थानों में जा-जाकर प्रचार किया।

गुरु रारदास के तीन पुत्र थे--पृथीचंद या प्रिथिया, महादेव और अर्जुन। प्रिथिया बड़ा अभिमानी और दुष्ट स्वभाव का था। महादेव भी अधिक आज्ञापालक नहीं था। सबसे छोटा पुत्र अर्जुन ही पिता का अनन्य आज्ञाकारी और परमभक्त था। यही कारण था कि अर्जुन पर उनका सबसे अधिक स्नेह था, और उसीको उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। ईर्ष्यालु प्रिथिया ने गुरु अर्जुन के जीवन-काल में ही और उनके स्वर्गवास के बाद भी अर्जुन को पद-च्युत करने के लिए अनेक षड़यंत्र रचे, पर वह सफल नहीं हुआ।

गुरु रामदास ने अपनी गद्दी पर अर्जुन को बिठाते हुए कहा, "गुरु अमरदास ने स्पष्ट कहा था कि गुरु का स्थान ऊँचे सद्गुणों से ही मिलता है। जो सच्चा, सदाचारी और विनीत है वही इस ऊँचे स्थान को प्राप्त कर सकता है। मैं तुझे यह स्थान देता हूँ।" पाँच पैसे और एक नारियल अर्जुन के सामने रखकर उन्होंने भाई बुड्ढा के हाथ से उन्हें तिलक करा दिया। अर्जुनदेव को गुरु रामदास ने पाँचवाँ गुरु बना दिया। दीपक ने जैसे अपनी लौ से दूसरे दीपक को जला दिया।

संवत् १६३८ की भादों सुदी ३ को गोइंदवाल में जाकर 'वाह गुरु' 'वाह गुरु' कहते हुए गुरु रामदास ने चोला छोड़ा।

कवि मथुरा के गुरु रामदास के देहावसान पर यह छप्पय रचा—

देवपुरी महि गयउ आपि परमेश्वर भाइउ ।
हरि सिंघासन दिइउ सिरी गुरु तह बैठाइउ ।।
रहसु किअउ सुरदेव तोहि जसु जय जय जंपहि ।
असुर गए ते भागि पाप तिन भीतर कंपहि ।।
काटे सु पाप तिन नरहु के गुरु रामदास जिन्ह पाइअउ ।
छत्रु सिघासनु पिरथमी गुरु अरजुनकउ दे आइअउ ।।"

बानी-परिचय

गुरु रामदास की बानी गुरु ग्रंथ साहिब में 'महला ४' के अंतर्गत संग्रहीत है। इनका आसा राग का 'सो पुरख' पद बहुत प्रसिद्ध है। इसे 'रहिरास' में भी लिया गया है। गुरु रामदास-रचित सूही राग की छंत के चार पदों का उपयोग सिक्ख लोग अपने विवाह-संस्कार में करते हैं। इन्हीं गुरु-मन्त्रों से फेरे कराये जाते हैं। प्रायः हरेक ही राग में इनके अनेक पद मिलते हैं। प्रेम व विरह के अंगों का निरूपण गुरु रामदास ने बड़ा विशद और सुन्दर किया है। बानी इनकी मधुर और बहुत कोमल है। गुरु के प्रति ऊँची श्रद्धा, गुरु अंगद तथा गुर अमरदास के ही सदृश, इन्होंने प्रकट की है। इसके अनेक सलोक भी वैसे ही हृदय-स्पर्शी हैं। भाषा में पंजाबी का पुट कुछ कम है, और वह सरल भी है।

आधार

१ गुरु ग्रंथ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन (भाग २)—मेकालीफ

रागु आसा

तूं करता सचिआरु मैडा सांई ।। जो तउ भावै सोई थीसी जो तू देहि सोई हउ पाई ।।

---

१. तू ही सच्चा कर्त्तार है, मेरे स्वामी !
जो तुझे भाता है वही होगा; जो तू देगा वही मैं पाऊँगा ।

सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ ॥ जिसनो कृपा करहि तिन नामरतनु पाइआ ॥
गुरमुखि लाधा मनमुखि गवाइआ ॥ तुधु आपि विछोड़िया आपि मिलाइआ ॥
तूं दरीआउ सभ तुझ ही माहि ॥ तुझ बिनु दूजा कोई नाहि ॥
जीअ जंत सभि तेरा खेलु ॥ विजोगि मिलि विछुड़िआ संजोगी मेलु ॥
जिसनो तू जाणाइहि सोइ जनु जाणै ॥ हरिगुण सदही आखि बखाणै ॥
जिनि हरि सेविआ तिनि सुखु पाइआ ॥ सहजे ही हरिनामि समाइआ ॥
तू आपे करता तेरा कीआ सभु होइ ॥ तुधु बिनु दूजा अवरु न कोइ ॥
तू करि करि वेखहि जाणहि सोइ ॥ जन नानक गुरमुखि परगटु होइ ॥१॥

सब कुछ तेरा ही है; सभी तेरा ध्यान करते हैं।

जिसपर तू कृपा करता है, वही तेरा नामरूपी रत्न पाता है।

गुरु के अनुयायी ने उसे पाया है, और मन के मत पर चलनेवाले ने उसे हाथ से गँवा दिया है।

मनमुखों से तू स्वयं बिछुड़ गया है, और गुरुमुखों से आप आ मिला है।

तू एक समुद्र है; सब-कुछ तुझमें समाया हुआ है।

तेरे सिवा दूसरा कोई है ही नहीं।

जीव-जंतु की सृष्टि सब तेरी लीला है।

जब तूने बिछुड़ना चाहा, तो वे तुझसे मिले हुए भी बिछुड़ गये; और जब तूने मिलना चाहा तो वे तुझसे आ मिले।

वही तेरा जन तुझे जानता है, जिसे तू अपने आपको जना देना चाहता है, और सदा वह तेरे गुणों का गान करता रहता है।

सुख उन्हींने पाया, जिन्होंने कि तेरी सेवा-बंदगी की, और सहज ही वे हरि-नाम में लौलीन हो गये।

तू आपही कर्त्तार है; सब-कुछ तेरा ही किया होता है।

तेरे सिवा कोई दूसरा है ही नहीं।

तू ही अपनी रचना को देखता है और उसे जानता है।

दास नानक कहता है—गुरु के उपदेश से तू प्रकट हो जाता है।

राग गउड़ी पूरबी

कामि करोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे ॥
पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ मनिहरि लिव मंडल मंडा हे ॥
करि साधू अंजुली पुनु वड्डा हे ॥ करि डंडउत पुनु वड्डा हे ॥
साकत हरिरस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे ॥
जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि जमकालु सहहि सिरि डंडा हे ॥
हरिजन हरि हरि नामि समाणे दुखु जनम मरण भव खंडा हे ॥
अबिनासी पुरखु पाइआ परमेसरु बहु सोभा खंडा ब्रहमंडा हे ॥
हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे हरि राखु राखु बड वड्डा हे ॥
जन नानक नामु अधारु टेक है हरिनामे ही सुखु मंडा हे ॥२॥

---

२. यह नगर अर्थात् यह शरीर काम और क्रोध से बहुत भरा हुआ है; पर संतजनों से मिलने से दोनों खंड-खंड हो जाते हैं।

प्रारब्ध में लिखा था, जो गुरु से भेंट हो गई, और भक्ति-भाव में यह जीव लौलीन हो गया।

हाथ जोड़कर तू संतों की वंदना कर—यह भारी पुण्यकर्म है।

उन्हें साष्टांग दंडवत् कर—यह भारी पुण्यकर्म है।

हरि-रस के स्वादु को नास्तिक या अभक्त नहीं जानता, क्योंकि वह अपने अंतर में अहंकार के काँटे को स्थान दिये हुए है।

जितना ही वह चलता है उतना ही वह उसे चुभता है और उतना ही क्लेश पाता है; और यम का डंडा अर्थात् काल का भय उसके सिर पर मँडराता रहता है।

हरिभक्त हरि के नाम-स्मरण में लीन रहते हैं, और उन्होंने जन्म-मरण का भय नष्ट कर दिया है।

अविनाशी पुरुष से उनकी भेंट होगई है—

और लोकों और सारे ब्रह्माण्ड में उनकी शोभा-प्रतिष्ठा बढ़ गई। हे प्रभो, हम गरीब अधम जन तेरे ही हैं; हे महान् से भी महान्, हमारी रक्षा कर, हमारी रक्षा कर।

दास नानक का आधार और अवलंब तेरा एक नाम ही है; तेरे नाम में डूबकर परमानंद को मैंने पाया है।

राग़ु गऊड़ी गुआरेरी

निरगुण कथा कथा है हरि की ॥
भजु मिलि साधू संगति जन की । तरु भउजलु अकथ कथा सुनि हरि की ॥
गोविंद सतसंगति मेलाइ । हरिरसु रसना राम गुन गाइ ॥
जो जन ध्यावहिं हरि हरिनामा । तिन दासनिदास करहु हम रामा ॥
जन की सेवा ऊतम कामा ॥
जो हरि की हरिकथा सुणावै । सो जनु हमरै मनि चिति भावै ॥
जन पग रेणु बड़भागी पावै ॥
संत जना सिउ प्रीति बनि आई । जिन कउ लिखतु लिखिआ धुरि पाई ॥
ते जन नानक नामि समाई ॥३॥

रागु गूजरी

हरि के जन, सतिगुर, सतपुरखा, बिनउ करउ गुर पासि ॥
हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई करि दइआ नामु परगासि ॥
मेरे मति गुरदेव मोकउ रामुनामु परगासि ॥
गुरमति नामु मेरा प्रानसखाई हरि कीरति हमरी रहरासि ॥
हरिजन के वड भाग वडेरे जिन हरि हरि सरधा हरि पिआसि ॥
हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि मिलि संगति गुण परगासि ॥
जिन हरि हरि हरिरसु नामु न पाइआ ते भागहीण जम पिआसि ॥
जो सतिगुर सरणि संगति नहीं आए ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि ॥
जिन हरिजन सतिगुर संगति पाई तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि ॥

---

३. भउजलु—संसार-सागर । ऊतम=उत्तम । जन-पग-रेणु—हरिभक्तों के चरणों की धूल । सिउ=से । धुरि=सबसे ऊपर, शीर्षस्थान ।

४. करउ=करता हूँ । गुरुपासि=परमात्मा के प्रति । कीरे=कीड़े । किरम=कृमि, बहुत ही छोटे जीव । नामु परगासि=तू अपने नाम का प्रकाश हमारे अंदर भरदे । कीरत=कीर्त्तन, गुणगान । रहरासि=धंधा । सरधा=श्रद्धा । पिआस=प्यास, मिलने की तड़प । त्रिपतासहि=तृप्त या संतुष्ट हो जाते हैं । संगति=सत्संग । गुणपरगासि= परमात्मा के गुण प्रकट हो जाते हैं । जमपासि=काल के फंदे में पड़ते हैं । ध्रिगु

धनु धन्नु सतसंगति जितु हरिरसु पाइआ मिलि जन नानक नामु परगासि ॥४॥

सिरी रागु-छंत

मुंध इआणी पेईअड़ै किउकरि हरि दरसनु पिखै ।
हरि हरि अपनी किरपा करे गुरमुखि साहुरड़ै कंम सिखै ॥
साहुरड़ै कंम सिखै गुरमुखि हरि हरि सदा धिआए ॥
सहीआ विचि फिरै सुहेली हरि दरगह बाह लुडाए ॥
लेखा धरमराइ की बाकी जपि हरि हरि नामु किरखै ॥
मुंध इआणी पेईअड़ै गुरमुखि हरि दरसनु दिखै ॥५॥
वीआहु होआ मेरे बाबुला गुरमुखे हरि पाइआ ।
अगिआनु अंधेरा कट्टिआ गुर गिआनु प्रचंडु बताइआ ॥
बलिआ गुरगिआनु अंधेरा बिनसिआ हरिरतन पदारथु लाधा ॥
हउमै रोग गइआ दुखु लाथा आपु आपै गुरमति खाधा ॥

जीवे=धिकार है जीने को । जीवासि=जीने की आशा । धुरि=आदि से ही । मसतकि=माथे पर ।

* यह 'रहिरास' में से लिया गया है ।

५. लड़की वह भोली और अनजान है, वह प्रीतम को भला कैसे देख पायेगी ?

प्रभु जब कृपा करता है, तब पवित्रात्मा परलोक के सुकर्मों को सीखते हैं, और सदा प्रभु का ही ध्यान करते हैं ।

वह सुहागिन तब अपनी सहेलियों के बीच प्रभु के दरबार में अपनी बाहँ को गर्व से डुलाती है ।

हरि का नाम जप लेने के बाद धर्मराज की रोकड़-बही में फिर क्या बाकी बचेगा ?

भोली और अनजान होते हुए भी वह लड़की सतगुरु के उपदेश से अपने प्रीतम प्रभु को यहां देख लेगी ।

६. मेरे बाबुल (पिता), व्याह हो गया है; गुरु के दिखाये मार्ग से मैंने अपने स्वामी को पा लिया है ।

मेरा अज्ञान का वह अँधेरा अब हट गया है, और सतगुरु ने ज्ञान का प्रचंड दीपक जला दिया है,

अकाल मूरति वरु पाइआ अबिनासी ना कदे मरे न जाइआ ॥
वीआहु होआ मेरे बाबुला गुरमुखे हरि पाइआ ॥६॥

हरि सति सते मेरे बाबुला हरिजन मिलि जंञ सोहन्दी ॥
पेवकड़ै हरि जपि सुहेली विचि साहरड़ै खरी सोहन्दी ॥
साहुरड़ै विचि खरी सोहंदी जिनि पवेकड़ै नामु समालिआ ॥
सभु सफलिओ जनमु तिना दा गुरमुखि जिना मनु जिणि ॥
पासा ढालिआ ॥
हरि संतजना मिलि कारजु सोहिआ वरु पाइआ पुरखु अनंदी ॥
हरि सति सति मेरे बाबोला हरिजन मिलि जंञ सोहंदी ॥७॥

हरि प्रभु मेरे बाबुला हरि देवहु दानु मै दाजो ॥

और हरि-नाम का अनमोल रतन मैंने अब खोज लिया है।

अहंकार को काबू में कर लिया है।

उस अमर अविनाशी को अपने स्वामी के रूप में मैंने पा लिया है, वह कभी न जनमता है, न मरता है,

मेरे बाबुल, ब्याह मेरा हो गया है ; गुर के दिखाये मार्ग से मैंने अपने स्वामी को पा लिया है।

७. मेरा प्रभु सच्चे से भी सच्चा है, मेरे बाबुल ! जब हरि के जन आ मिलते हैं, तब बारात की शोभा बहुत बढ़ जाती है।

जो (जीवात्मा) प्रभु का नाम जपती है; वह इसलोक में तो सुखी रहेगी ही, परलोक में भी वह सच्ची शोभा पायेगी।

प्रभु के नाम का पासा फेककर जिन्होंने गुरु के उपदेश से अपने मन को जीत लिया, उनका जीवन सारा सफल होगया।

हरि के संतजनों से मिलकर मेरा काज बन गया ; आनन्दमय पुरुष के रूप में मुझे मेरा वर मिल गया।

मेरा प्रभु सच्चे से भी सच्चा है, मेरे बाबुल ! जब हरि के जन आ मिलते हैं, तब बारात की शोभा बहुत बढ़ जाती है।

८. मेरे बाबुल, तुम मेरे प्रीतम हरि को ही मुझे दान और दहेज के रूप में दो।

हरि कपड़ो हरि सोभा देवहु जितु सवरै मेरा काजो ॥
हरि हरि भगती काजु सुहेला गुरि सतिगुरि दानु दिवाइआ ॥
खंडि वरभंडि हरि सोभा होई इहु दानु न रलै रलाइआ ॥
होरि मनमुख दाजु जि रखि दिखालहि सु कूड़ अहंकारु कचु पाजो ॥
हरि प्रभु मेरे बाबुला हरि देवहु दानु मै दाजो ॥८॥
हरि राम राम मेरे बाबोला पिर मिलि धन वेल वधंदी ।
हरि जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरू चलंदी ॥
जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुरु की जिनी गुरमुखि नाम धिआइआ ॥
हरि पुरखु न कबही बिनसै जावै नित देवै चड़ै सवाइआ ॥
नानक संत संत हरि एको जपि हरि हरि नामु सोहंदी ।
हरि राम राम मेरे बाबुला पिर मिलि धन वेल वधंदी ॥९॥

रागु जैतसरी

हीरा लालु अमोलकु है भारी बिनु गाहक मीका काखा ।
रतनु गाहकु गुरु साधू देखिओ तब रतनु बिकानो लाखा ॥

हरि की ही मुझे पोशाक दो, और हरि की ही शोभा, जिससे कि मेरा काज बन जाये ।

हरि की भक्ति से व्याह सहल हो जाता है ; सतगुरु दाता ने मुझे अपने नाम का दान दे दिया है ।

प्रभु, तेरी शोभा से सारे खंड और ब्रह्माण्ड शोभायमान हो जायेंगे ; तेरे नाम का यह दहेज दूसरे और दहेजों में नहीं मिलाया जा सकता ।

दुनियादार तो अपने दहेज के रूप में झूठे अहंकार और निकम्मे मुलम्मे का ही प्रदर्शन करेगा ।

मेरे बाबुल, तुम तो मेरे प्रीतम को ही मुझे दान और दहेज के रूप में दो ।

९. मेरे बाबुल, प्रियतम प्रभु से मिलकर वधू (पवित्र) बेल को बढ़ाती है ।
हरि ने युग-युग से, सदा ही, गुरु का वंश बढ़ाया है, जिसने उसके उपदेशसे हरि के नाम का ध्यान सदा किया है ।

मेरै मनि गुपत हीरु हरि राखा।
दीन दइआलि मिलाइओ गुरु साधु गुरि मिलिऐ हीरु पराखा॥
मनमुख कोठी अगिआनु अँधेरा तिन घरि रतनु न लाखा॥
ते ऊझड़ि भरमि मुए गावारी माइआ भुअंग बिखु चाखा॥
हरि हरि साध मेलहु जन नीके हरि साधू सरणि हम राखा॥
हरि अंगीकारु करहु प्रभ सुआमी हम परे भागि तुम पाखा॥
जिहवा किआ गुण आखि वखाणह तुम वड अगम वड पुरखा॥
जन नानक हरि किरपा धारी पाखाणु डुबत हरि राखा॥१०॥

राग सूही—छंत

हरि पहिलड़ी लावँ परविरती करम दड़ाइआ बलि रामजी।
बाणी ब्रहमा वेदु धरमु दड़हु पाप तजाइआ बलि रामजी॥

---

१०. हीरा या लाल चाहे कैसाही अनमोल हो, बिना गाहक के वह तिनके के समान तुच्छ है।

जब सतगुरुरूपी गाहक ने उस रतन को देखा, तो उसे उसने लाखों में खरीद लिया।

मेरे हृदय में हरि-हीरा छिपा पड़ा था।

दीनदयालु प्रभु ने सतगुरु से मेरी भेंट करादी, और मैंने अपना हीरा परख लिया।

मन की राह चलनेवालों की कोठरी में अँधेरा-ही-अँधेरा है अज्ञान का; वह रतन नज़र नहीं आता।

वे मूढ़ उजाड़ जंगल में भटक-भटककर मरते हैं माया-नागिनी का ज़हर चख-चखकर।

प्रभो, अपने साधुजनों से मुझे मिलादे; मुझे तू संतजनों की शरण में रखदे।

स्वामी, मुझे तू अब अपनाले; मैं तेरी ओर भाग आया हूँ।

मेरी जिह्वा तेरे गुणों का क्या बखान कर सकती है; तू महान् है, तू अगम्य है, तू पुरुषोत्तम है।

दास नानक विनती करता है—स्वामी, मुझपर दया कर; मुझ पाषाण (जड़-बुद्धि) को डूबने से बचाले।

'बलि राम जी'—इसका अर्थ 'हे प्यारे' यह भी किया गया है; पर 'हे राम' मैं तुमपर बलि जाता हूँ, यह अर्थ अधिक समीचीन जँचता है।

धरमु दृड़हु हरि नामु धिआवहु सिमृति नामु दृड़ाइआ।
सतिगुरु पूरा आराधहु सभि किलविख पाप गवाइआ ॥
सहज अनंदु होआ वडभागी मनि हरि हरि मीठा लाइआ ॥
जनु कहै नानक लावँ पहिली आरंभु काजु रचाइआ ॥११॥
हरि दूजड़ी लावँ सतिगुरु पुरखु मिलाइआ बलि रामजी।
निरभउ भै मनु होइ हउमैं मैलु गवाइआ बलि रामजी ॥
निरमलु भउ पाइआ हरि गुण गाइआ हरि वेखै रामु हदूरे।
हरि आतम रामु पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे ॥
अंतरि बाहरि हरि प्रभु एको मिलि हरिजन मंगल गाए ॥
जन नानक दूजी लावँ चलाई अनहद सबद बजाए ॥१२॥

---

११. [* गुरु रामदास ने अपने खुद के विवाह के अवसर पर इसे रचा था। जब वर और कन्या गाँठ बाँधकर गुरु ग्रन्थ साहब के चारों ओर फेरे करते हैं, तब इसका पाठ किया जाता है।]

परमात्मा ने इस पहले फेरे से प्रवृत्ति-कर्म को दृढ़ किया है।
(गुरु के) शब्द को ब्रह्मा मानो, और धर्म को मानलो वेद;
और परमात्मा तुम्हें पापों से मुक्त कर देगा।
धर्म पर दृढ़ रहो, हरि के नाम का ध्यान करो, और उसे अपनी स्मृति में जमालो।
पूर्ण सद्गुरु की आराधना करो,--तुम्हारे सब पाप दूर हो जायेंगे।
बहुत बड़ा भाग्य है उसका, जिसके हृदय में हरि बस गया--वह उस (ब्राह्मी) अवस्था में आनन्द-ही-आनन्द और माधुर्य का अनुभव करता है।
दास नानक ने पहला फेरा पूरा कर लिया, और विवाह का आरम्भ हो गया।

१२. दूसरे फेरे में हरिने सद्गुरु से मेरी भेंट करादी है।
मेरे मन से भय दूर हो गया है, और मन का मैल धुल गया है।
हरि के गुणों को गाकर, और हरि को अपने सामने देखकर मैंने निर्मल पद पा लिया है।
जगदात्मा हरि से सब-कुछ पसारा हुआ, और भरपूर है।
अंदर और बाहर हमारे एक ही हरि है;
हरि के जनों से मिलने पर मंगल-गीत गाये जाते हैं।
दास नानक ने दूसरा फेरा पूरा कर लिया, और उसने अनहद शब्द सुन-लिया है।

हरि तीजड़ी लावँ मनि चाउ भइआ बैरागीआ बलि रामजी ।
संतजना हरि मेलु हरि पाइआ वड़भागीआ बलि रामजी ॥
निरमलु हरि पाइआ हरिगुण गाइआ मुखि बोली हरि बाणी ।
संतजना वड़भागी पाइआ हरि कथीऐ अकथ कहाणी ॥
हिरदै हरि हरि हरि धुनि उपजी हरि जपीऐ मसतक भागु जी ।
जनु नानकु बोले तीजी लावै हरि उपजै मनि बैरागु जी ॥१३॥
हरि चउथड़ी लावँ मनि सहजु भइआ हरि पाइआ बलि रामजी ।
गुरुमुखि मिलिआ सुभाइ हरि मनि तनि मीठा लाइआ बलि रामजी॥
हरि मीठा लाइआ मेरे प्रभ भाइआ अनदिनु हरि लिव लाई ।
मन चिंदिआ फलु पाइआ सुआमी हरि नामि वजी वाधाई ॥

---

१३. परमात्मा ने तीसरे फेरे से मन में आनन्द-उत्साह और वैराग्य की भावना स्फुरित करदी है ।

संतजनों ने मुझे हरि से मिला दिया हैं, और मैंने उसे बड़े सद्भाग्य से पाया है ।

उसके गुण गा-गाकर और उसका नाम रट-रटकर मैंने उस निर्मल हरि को पाया है ।

बड़े भाग्य से संतजनों से मेरी भेंट हुई है—जो हरि कथन से परे है, वे मुझे उसकी कथा सुना रहे हैं ।

हृदय में हरि को ही ध्वनि उठ रही है, मैं वही एक नाम जप रहा हूँ—मेरे भाग्य में लिखा भी यही था ।

दास नानक ने तीसरा फेरा पूरा कर लिया और हरि का अनुराग और (जगत् के प्रति) वैराग्य उसके मन में स्फुरित हो गया है ।

१४. चौथे फेरे में परमात्मा ने सहज ज्ञान मेरे मन में प्रकाशित कर दिया है, और मैंने हरि को पा लिया है ।

गुरु के उपदेश से मुझे सद्वृत्ति प्राप्त हो गई है, और मुझे मेरे मन को और देह को परमात्मा प्रिय लग रहा है ।

वह मुझे प्रिय और मनोहर लग रहा है; मैं दिन-रात उसका ध्यान करता हूँ ।

उसके नाम के आनन्द-गीत-गा-गाकर मुझे मनचाहा फल मिल गया है ।

प्रभु ने काज पूरा कर दिया, और वधू का हृदय हरि-नाम ले-लेकर प्रफुल्लित हो गया है ।

हरि प्रभि ठाकुरि काजु रचाइआ धन हिरदै नामि बिगासी ।
जनु नानकु बोले चउथी लावैं हरि पाइआ प्रभु अविनासी ॥१४॥

राग बसंतु—अष्ठपदी

काइआ नगरि इकु बालकु वसिआ खिनु पलु थिरु न रहाई ।
अनिक उपाउ जतन करि थाके बारंबार भरमाई ॥
मेरे ठाकुर बालकु इकतु घरि आणु ।
सतिगुरु मिलै त पूरा पाईऐ भजु राम नामु नीसाणु ॥
इहु मिरतक मड़ा सरीरु है सभु जगु जितु राम नामु नहीं वसिआ ।
राम नामु गुरि उदकु चुआइआ फिरि हरिआ होआ रसिआ ॥
मै निरखत निरखत सरीरु सभु खोजिआ इकु गुरमुखि चलतु दिखाइआ ।
बाहरु खोजि मरे सभि साकत हरि गुर मति घरि पाइआ ॥
दीना दीन दयाल भए है जिउ क्रिसनु बिदर घरि आइआ ।
मिलिओ सुदामा भावनी धारि सभु किछु आगै दालदु भंजि समाइआ ॥
राम नाम की पैज वडेरी मेरे ठाकुरि आपि रखाई ।
जे सभि साकत करहि वखीली इक रती तिलु न घटाई ॥
जन की उसतति है राम नामा दह दिसि सोभा पाई ।
निंदकु साकत खवि न सकै तिलु आपणै घरि लूकी लाई ॥

दास नानक ने यह चौथा फेरा भी पूरा कर लिया, और अविनाशी प्रभु को पा लिया है ।

१५. बालकु=मन से आशय है । खिनु=क्षण । थिरु=स्थिर, अचंचल । भरमाई=इधर-उधर घूमता रहता है । इकतु घरि आणु=एक नियत घर में लाकर बिठादे । इहु··· वसिआ=इस संसार में उन सभीके शरीर मानों क़ब्र की मिट्टी हैं, जिनमें राम-नाम का वास नहीं है । रामनामु···रसिआ=गुरु रामनाम का जल जब ढाल देता है, तब सूखा भी हरा हो जाता है; और उसमें रस भर जाता है । मृतक भी हरिनाम की संजीवनी से प्रफुल्लित हो जाता है । चलतु दिखाइआ=दृष्टि देदी । साकत=नास्तिकों अर्थात् ईश्वर पर ईमान न लानेवालों से आशय है । गुरमति घरि पाइआ=गुरु के उपदेश से परमात्मा को घर बैठे ही पा लिया । दीना·दीन=दीनों से भी दीन । बिदर=विदुर । भावनी=भक्ति-भावना । दालदु भंजि=दरिद्रता दूर कर ।

जन कउ जनु मिलि सोभा पावै गुण महि गुण परगासा।
मेरे ठाकुर के जन प्रीतम पिआरे जो होवहि दासनिदासा॥
आपे जलु अपरंपारु करता आपे मेलि मिलावै।
नानक गुरमुखि सहजि मिलाए जिउ जलु जलहि समावै॥१५॥

सलोक

बड़भागिया सोहागणी जिन्हां गुरमुखि मिलिआ हरिराइ।
अंतर जोति परगासिया नानक नामि समाइ॥१॥

वाहु वाहु सतिगुरु सतिपुरख है, जिसनों सिम्रतु सभ कोई।
वाहु वाहु सतिगुरु निरवैरु है, जिसु निंदा उसतति तुलि होइ॥२॥

वाहु वाहु सतिगुरु सुजाणु है, जिसु अंतरि ब्रहमु विचारु।
वाहु वाहु सतिगुरु निरंकारु है, जिसु अंतु न पारावारु॥३॥

वड़भागी हरि पाइआ पूरन परमानन्दु।
जन नानक नामु सलाहिआ, बहुड़ि न मनि तनि भंगु॥४॥

गुरमुखि सची आसकी जितु प्रीतमु सचा पाईऐ।
अनदिनु रहहि अनंदि नानक सहजि समाईऐ॥५॥

सचा प्रेम पिआरु गुर पूरे ते पाइए।
कबहू न होवै भंगु नानक हरिगुण गाइए॥६॥

समाइआ=समृद्ध बना दिया। वखीली=कलंक या अप्रतिष्ठा। उसतति=स्तुति। खवि न सकै=रोक-या अटका नहीं सकते। आपणै घरि लूकी लाई=अपने घरों में आग लगादी। आपे जलु=सिरजनहार समुद्र के समान है। आपे मेलि मिलावै—अपने आपसे मिलन वही कराता है।

२. जिसनो=जिसको। सिम्रतु=स्मरण करते हैं। उसतति=स्तुति, प्रशंसा। तुलि=तुल्य, समान।

४. सलाहिआ=सराहना या स्तुति की। बहुड़ि=फिर। न मनि तनि भंगु=मन और तन से विलग नहीं होता।

५. आसकी=प्रीति। अनदिनु=नित्य, निरन्तर।

गुरु अर्जुनदेव

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६२० वि, वैशाख कृ० ७

जन्म-स्थान—गोइन्दवाल

पिता—गुरु रामदास

माता—बीबी भानी

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-संवत्—१६६३ वि, ज्येष्ठ शु० ४

मुत्यु-स्थान—लाहौर (रावी नदी में)

गुरु अर्जुनदेव बचपन से ही बड़े होनहार दीखते थे। इनके नाना गुरु अमरदास की यह भविष्यद्वाणी सर्वथा सत्य सिद्ध हुई कि 'यह मेरा दोहित पानी का बोहित होगा।" इन्होंने अपनी ऊँची रहनी और गहरी बानी के द्वारा हजारों-लाखों को पार लगाया।

विवाह इनका जालन्धर ज़िले के कृपाचन्द्र की पुत्री गंगा देवी के साथ हुआ। इन्हीं गंगा के गर्भ से महाप्रतापी छठे गुरु हरगोविन्द का जन्म हुआ।

सबसे पहले गुरु अर्जुनदेव ने सन्तोखसर और अमृतसर इन दोनों तालाबों के घाट बँधवाये, और रामदासपुर शहर को भी विस्तृत किया। रामदाससर (अमृतसर) की महिमा इन्होंने अपने इस पद में गाई है :—

"रामदास सरोवरि नाते। सभि उतरे पाप कमाते॥
निरमल होए करि इसनाना। गुरि पूरे कीने दाना॥
सभि कुसल खेम प्रभ धारे।
सही सलामति सभि लोक उबारे गुरु का सबदु वीचारे॥
साध संगि मलु लाथी। पारब्रहमु भइओ साथी॥
नानक नामु धिआइआ। आदिपुरख प्रभु पाइआ॥"

गुरु अर्जुनदेव ने अमृतसर में एक सुन्दर मन्दिर भी बनवाया, जिसे

हरि मन्दिर या दरबार साहिब भी कहते हैं। इस मन्दिर में गुरुगंथ साहिब की सेवा-पूजा की जाती है।

गुरु अर्जुनदेव नें तरनतारन का भी निर्माण किया, और वहाँ भी एक तालाब खुदवाया।

इसी प्रकार ब्यास और सतलज नदियों के बीच एक दूसरा शहर भी इन्होंने बसाया, जिसे कर्त्तारपुर कहते हैं।

इनका प्रायः सारा ही जीवन संघर्ष में बीता। इनके प्रति एक-न-एक कारण से ये तीन व्यक्ति द्वेष रखते थे—(१) बादशाह अकबर का मन्त्री राजा बीरबल, (२) इनका बड़ा भाई प्रिथिया, और (३) बादशाह का एक अर्थमन्त्री चन्दूशाह।

बीरबल का तो गुरु अर्जुनदेव के साथ केवल धार्मिक मत-भेद था। उसने इन्हें कई बार अपमानित करने का प्रयत्न किया, पर वह सफल नहीं हुआ।

प्रिथिया को गुरु की गद्दी नहीं मिली थी, इसीलिए वह इनका शत्रु बन बैठा। इनके विरुद्ध उसने अनेक षड़्यंत्र रचे। इनके पुत्र हरगोविन्द को विष दिलानेतक का प्रयत्न किया। बादशाह को भी इनके ख़िलाफ कई बार उसने उभाड़ा। जितनी भी दुष्टता और नीचतां हो सकती थी प्रिथिया नें उस सबका प्रयोग किया। उसकी स्त्री गुरु का सर्वनाश करने-कराने के प्रयत्नों में उससे भी हमेशा चार क़दम आगे रहती थी।

चन्दूशाह भी गुरु का जानी दुश्मन था। वह दिल्ली में रहता था। उसको अपनी एक लड़की के लिए सुयोग्य वर की आवश्यकता थी। उसके आगे गुरु अर्जुनदेव के लड़के हरगोविन्द का प्रस्ताव रक्खा गया। पहले तो उसे यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया और यह कहकर गुरु का घोर अपमान किया कि—'राजमहल की सुन्दर खपरैल को भला कोई नाली में फेंकेगा ?' किंतु अंत में अपनी स्त्री के आग्रह पर उसने उक्त बात को मान लिया। पर अब गुरु के सिक्ख राजी नहीं हुए। गुरु का अपमान उन्हें सहन नहीं हुआ। परिणामतः चन्दूशाह का प्रस्ताव ठुकरा

दिया गया। इस घटना ने उसे गुरु अर्जुनदेव का घोर शत्रु बना दिया। उसने उनको मिट्टी में मिला देने की प्रतिज्ञा की। चन्दूशाह ने कितने ही षड़यंत्र गुरु अर्जुनदेव के विरुद्ध रचे, और प्रिथिया ने भी उसका इन कुकृत्यों में साथ दिया।

गुरु अर्जुनदेव ने अपने सतत संघर्षमय जीवन में भी हमेशा शांति, गम्भीरता, क्षमाशीलता और तितिक्षा का परिचय दिया। वे अपने धर्म-पथपर से अंततक विचलित नहीं हुए। रचनात्मक कार्य उनका बराबर जारी रहा। अपने जीवन में उन्होंने जो सबसे महान् और चिरस्थायी कार्य किया वह था गुरु ग्रंथ साहिब का सुन्दर संकलन तथा सम्पादन। चारों पूर्व गुरुओं की यथार्थ बानी का रागबद्ध संग्रह करना कोई साधारण काम नहीं था। गुरु अमरदास अपनी रचना 'अनंदु' की २३वीं तथा २४वीं पउड़ी में कह गये थे कि सिक्खों को गुरु के सच्चे पदों का ही पाठ करना चाहिए। गुरु अर्जुनदेव की आज्ञा से भाई गुरदास ने इस भगीरथ-कार्य को हाथ में लिया। गुरु अमरदास के जेठे पुत्र मोहन को प्रसन्न करके गोइन्दवाल से गुरु अर्जुनदेव गुरुओं की सारी सच्ची बानी को ले आये। उस सब बानी का तथा अपनी भी बानी का उन्होंने संग्रह और सम्पादन कराया, और जयदेव, कबीर, रैदास, फरीद आदि भक्तों की भी कुछ चुनी हुई बानियों को ग्रंथ साहिब में आदरपूर्वक स्थान दिया। गुरु अर्जुनदेव ने बोल-बोलकर सब पदों और सलोकों को भाई गुरदास से गुरुमुखी में लिखवाया। गुरु अर्जुनदेव ने यह एक बहुत बड़ा काम किया, और इससे वे अमर हो गये। सत्तै ने बलबंड की लम्बी रचना में निम्नलिखित पउड़ी जोड़कर गुरु अर्जुनदेव की गुरु ग्रन्थ साहिब-संपादन-विषयक जो ऊँची प्रशंसा की वह सर्वथा योग्य है:—

चारे जागे चहु जुगी पंचाइणु आपे होआ॥
आपीनै आपु साजिओनु आपेहि थंम्हि खलोआ॥
आपे पटी कलम आपि आपि लिखणहारा होआ॥
सभ उमति आवण जावणी आपेही नवा निरोआ॥

तखति बैठा अरजन गुरु सतिगुर का खिवै चंदोआ ॥
उगवणहु तै आथवणहु चहु चकी कीअनु लोआ ॥
जिन्ही गुरु न सेविओ मनमुखा पइआ मोआ ॥
दूणी चउणी करामाति सचे का सजा ढोआ ॥
चारे जागे चहु जुगी पंचाइणु आपे होआ ॥

अर्थात्, चारों गुरुओं ने जगत के चारों युगों को जगमगा दिया; अर्जुन, तू उनके स्थान पर पाँचवाँ है।

तूने स्वयं ही यह सब रचा है; तू ही इस रचना का आधार-स्तम्भ है।

तू ही पट्टी है, तू ही कलम है, तू ही लिखनेवाला है।

मनुष्य आते हैं और चले जाते हैं; पर तू सदाही नवीन और पूर्ण है।

गुरु अर्जुन गुरु के तख्त पर बैठा है, सतगुर का छत्र उसके ऊपर दिप रहा है।

उदयाचल से अस्ताचलतक सारी दिशाएँ तूने प्रकाशित करदी हैं।

जिन्होंने सतगुरु की सेवा नहीं की, उन्हें बार-बार जन्म लेना होगा।

तेरे चमत्कार दूने चौगुने बढ़ेंगे; सच्चे गुरु का तू सच्चा उत्तराधिकारी है।

चारों गुरुओं ने जगत् के चारों युगों को जगमगा दिया; अर्जुन, ! तू उनके स्थान पर पाँचवाँ है।

अंत में, ४३ वर्ष की अल्पायु में, महान् संत गुरु अर्जुनदेव को धर्म की वेदी पर बलि होना पड़ा। प्रिथिया के पुत्र मिहरबान और चन्दू अपने महान् कुकृत्य में सफल हो गये। गुरु अर्जुनदेव की झूठी-झूठी शिकायतें जहाँगीर बादशाह के कानों में पहुँचाई गईं। उन्हें छल-बल से पकड़वाकर बादशाह के आगे पेश किया गया और इस्लाम का विरोधी ठहराया गया। फैसला यह सुनाया गया कि वे दो लाख रुपये बतौर जुर्माने के दें, और गुरु ग्रंथ साहिब में से आपत्तिजनक अंश को

निकालदें। उन्होंने दोनों ही बातें नामंजूर करदीं। उन्होंने कहा कि "ग्रंथ साहिब में ऐसी एक भी पंक्ति नहीं, जिसमें हिंदू अवतारों और मुस्लिम पैगंबरों की निन्दा की गई हो। हाँ, यह ज़रूर उसमें कहा गया है कि पैगम्बर, पीर और अवतार सब उसी अकाल परमात्मा के सिरजे हुए हैं, जिसका अन्त आजतक किसीको भी नहीं मिला। मेरा मुख्य उद्देश्य है सत्य का प्रचार और असत्य का निवारण, इसमें अगर मेरा यह नाशवान् शरीर भी चला जाये, तो उसे मैं अपना अहोभाग्य मानूँगा।" बादशाह इसपर बहुत बिगड़ा। गुरु अर्जुनदेव को जेलखाने में डाल दिया गया, और वहाँ उन्हें अनेक अमानुषिक यातनाएँ दी गईं। आग-सी गरम रेत उनके ऊपर डाली गई, और जलती हुई लाल कड़ाही में उन्हें बिठाया गया। पर उन्होंने सारी यातनाओं को शांति से सहन कर लिया। उन्होंने हँसते हुए आततायी चन्दू से दृढ़ता के स्वर में कहा कि, अरे मूर्ख !

'फूटो अंडा भरम का, मनहि भइउ परगासु।
काटीं बेड़ी पगह ते, गुरि कीता बंदि खलासु।।

जन्म-जन्म की बेड़ी कट चुकी थी, सतगुरु ने माया के बंदीगृह से मुक्त कर दिया था। भ्रम का पर्दा हट चुका था, और अब मन के अन्दर दिव्य प्रकाश जगमग-जगमग हो रहा था।

पाँच दिन कारागार में बीत गये। छठे दिन उन्होंने रावी नदी में स्नान कर आने की इजाज़त माँगी, और वह मिल गई। अपने साथ पाँच प्यारे सिक्खों को लेकर वे हथियारबन्द सिपाहियों की निगरानी में नहाने के लिए बन्दीगृह से निकले। सारे बदन पर फफोले पड़े हुए थे, और पैरों में कई घाव हो गये थे। लेकिन चेहरे पर प्रेम की वही मस्ती खेल रही थी, मानो बन्दी-गृह से छटकर अपने प्यारे प्रभु से मिलने जा रहे थे। ध्यान में मग्न थे, मुख से 'वाहगुरु वाहगुरु' निकल रहा था।

रावी में उतरकर स्नान किया, और फिर 'जपुजी' का मंगल पाठ, और वहीं पर शांतिपूर्वक अपना चोला छोड़ दिया। वह संवत् १६६३

की जेठ सुदी चौथ का दिन था—बहुत बड़े बलिदान का चिरस्मरणीय सुदिन !

बानी-परिचय

गुरु अर्जुनदेव की बानी बहुत बड़ी है, ६००० से भी अधिक इनके पद और सलोक हैं। 'महला ५' के अन्तर्गत जितने भी पद और सलोक मिलते हैं वे सब इन्हींके रचे हुए हैं। 'बावन अखरी', सवैये, छंत, फुनहें, अनेक रागों में वारें, तथा 'सहसकृति के सलोक' इनके प्रसिद्ध हैं। पर इनकी 'सुखमनी' नाम की आनन्ददायिनी सुन्दर सरस रचना सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमें २२ अष्टपदियाँ हैं। हमने प्रस्तुत संग्रह में सारी सुखमनी तो नहीं, पर उसकी कुछ अष्टपदियाँ संकलित की हैं। यह इनकी अति लोक-प्रिय रचना है। इसके पाठ से चित्त को बहुत शान्ति मिलती है। प्रातःकाल 'जपुजी' के पश्चात् 'सुखमनी का' पाठ किया जाता है भाषा सरस तथा साधु है। पंजाबी का पुट कम और हिंदी का रँग अधिक है। इनके कितने ही पद बहुत मधुर और प्रसाद गुण से युक्त हैं। भक्ति-भावना उनमें कूट-कूटकर भरो है। हमें इस बात का पछतावा है कि स्थल-संकीर्णता के कारण गुरु अर्जुनदेव के हजारों पदों में से हम बहुत ही थोड़े पद इस संक्षिप्त-संग्रह में ले सकें।

आधार

१. गुरु ग्रंथ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२. दि सिक्ख रिलीजन (भाग ३)—मेकॉलीफ

रागु सारंग

जा की रामनाम लिव लागी।
सजनु सुहृद सुहेला सहजे, सो कहिए बड़भागी
रहित-बिकार अलिप माइआते अहंबुद्धि-बिखु तिआगी ॥
दरस पिआस आस एकहि की, टेक हिये प्रिय पागी ॥

---

१. लिव=प्रीति, ध्यान। सजनु=सम्बन्धी, प्यारा। सुहेला=सुन्दर। अलिप=निर्लेप।

अचिंत सोइ जागनु उठि बैसनु अचिंत हसत बैरागी ॥
कहु नानक जिनि जगतु ठगाना, सु माइआ हरिजन ठागी ॥१॥
माई री मनु मेरो मतवारो ।
पेखि दइआल अनंद सुख पूरन हरि-रसि पिओ खुमारो ॥
निरमल भइउ उजल जसु गावत बहुरि न होवत कारो ॥
चरनकमल सिउ डोरी राची भेटिओ पुरखु अपारो ॥
करु गहि लीने सरबसु दीने, दीपक भइउ उजारो ॥
नानक नामि-रसिक बैरागी कुलह समूहा तारो ॥२॥

रागु प्रभाती

राम राम राम राम जाप ।
कलि-कलेस लोभ-मोह विनसि जाइ अहं-ताप ॥
आपु तिआगि, संतचरन लागि, मनु पवितु, जाहि पाप ॥
नानकु बारिकु कछू न जानै, राखन कउ प्रभु माई बाप ॥
चरनकमल-सरनि टेक ।
ऊच मूच बेअंतु ठाकुरु, सरब ऊपरि तुही एक ॥
प्रानअधार दुख बिदार, देनहार बुधि-बिवेक ॥
नमसकार रखनहार मनि अराधि प्रभू मेक ॥
संत-रेन करउ मंजनु नानकु पावे सुख अनेक ॥४॥

रागु रामकली

जपि गोबिन्दु गोपाल लालु ।
रामनाम सिमरि तू जीवहि फिरि न खाई महाकालु ॥

अहंबुधि विखु=अहंकाररूपी विष । अचिंत=निश्चिंत । बैसनु=बैठना । ठागी=हरि-भक्तों द्वारा ठगी गई ।

२. खुमारो=नशा । कारो=काला, मलिन । डोरी राची=प्रीति लगी । कुलह समूहा=अनेक कुलों को ।

३. अहंताप=अहंकार की आग, जो निरंतर जलाती रहती है । आपु=अहंकार । पवितु=पवित्र । बारिकु=बालक । कउ=को ।

४. ऊच मूच=ऊँचे से ऊँचा । बेअंतु=अनंत । मनि अराधि=मनमें आराधना करने योग्य । संत······मंजनु=संतों की चरण-रज से मन को माँजकर निर्मल करूँ ।

कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भ्रमि आइओ । बड़ै भागि साधु-संगु पाइओ ॥
बिनु गुर पूरे नाही उधारु । बाबा नानकु आखै एहु बीचारु ॥५॥

कोई बोले राम नाम कोई खुदाइ ।
कोई सेवै गुसइआ कोई अलाहि ॥
कारणेकरण करीम ।
किरपा धारि रहीम ॥
कोई नावै तीरथि कोई हज जाइ । कोई करै पूजा कोई सिरु निवाइ ॥
कोई पढ़ै बेद कोई कतेब । कोई ओढ़ै नील कोई सुपेद ॥
कोई कहै तुरकु कोई कहै हिन्दू । कोई बाछै भिसतु कोई सुरगिंदू ॥
कहु नानक जिनि हुकमु पछाना । प्रभ साहिब का तिनि भेदु जाना ॥६॥

राग भैरउ

तू मेरा पिता तू है मेरी माता । तू मेरे जीअ प्रान-सुखदाता ॥
तू मेरा ठाकुर हउ दासु तेरा । तुझ बिनु अवरु नही को मेरा ॥
करि किरपा करहु प्रभ दाति । तुमरी उसतति करउं दिनराति ॥
हम तेरे जंत तू बजावनहारा । हम तेरे भिखारी दानु देहि दातारा ॥
तउ परसादि रंगरस माणे । घट घट अंतरि तुमहि समाणे ॥
तुमरी कृपा ते जपीऐ नाउ । साध संगि तुमरे गुण गाउ ॥
तुमरी दइआ ते होइ दरद बिनासु । तुमरी मइआ ते कमल बिगासु ॥
हउ बलिहारि जाउं गुरदेव । सफल दरसनु जाकी निरमल सेव ॥
दइआ करहु ठाकुर प्रभ मेरे । गुण गावै नानकु नित तेरे ॥७॥

---

५. उधारु=उद्धार, मुक्ति । आखै=कहता है । वीचारु=सार-तत्त्व की बात ।

६. गुसइआ=गोसाईं, परमात्मा । अलाहि=अल्लाह । कारण-करण=कारण का भी कारण । करीम=कृपालु । रहीम=दयालु । नावै=स्नान करता है । सिरु निवाइ=नमाज़ पढ़ता है । कतेब=कुरान से आशय है । नील=नीला कपड़ा, जिसे मुसलमान फक़ीर ओढ़ते हैं । सुपेद=सफेद वस्त्र । बाछै=चाहता है । भिसतु=बहिश्त, स्वर्ग । सुरगिंदू=सुरलोक । भेदु=मर्म, असली रहस्य ।

७. ठाकुर=स्वामी । हउ=हौं, मैं । दाति=दान । उसतति=स्तुति । जंत=यंत्र, बाजा । तउ परसादि=तेरी कृपा से । रंगरस=परमानन्द । तुमरी मइआ······बिगासु=

श्रीधर मोहन सगल उपावन निरंकार सुखदाता।
ऐसा प्रभु छोड़ि करहि अनसेवा कवन बिखिआ रसमाता॥
रे मनु मेरे तू गोविंद भाजु।
अवर उपाव सगल मै देखे जो चितवीए तितु बिगरसि काजु॥
ठाकुर छोड़ि दासी कउ सिमरहि मनमुख अंध अगिआना।
हरि की भगति करहि तिन निंदहि निगुरे पसू समाना॥
जीउ पिंडु तनु धनु सभु प्रभु का, साकत कहते मेरा।
अहंबुधि दुरमति है मैली बिनु गुर भवजलि फेरा॥
होम जग्य जप तप सभि संजम तटि तीरथि नही पाइआ॥
मिटिआ आपु पए सरणाई गुरमुखि नानक जगतु तराइआ॥८॥

सुखमनी*

रागु गउड़ी

सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ। कलि कलेस तन माहि मिटावउ॥
सिमरउ जासु बिसुंभर एकै। नामु जपत अनगनत अनेकै॥
बेद पुरान सिंमृति सुधाख्यर। कीने रामनाम इक आख्यर॥

तुम्हारी स्नेहमयी कृपासे हृदयरूपी कमल प्रफुल्लित अर्थात् आनन्दित होता है। सेव=सेवा।

८. सगल उपावन=सारी सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला। अनसेवा=दूसरे की सेवा। विखिआ=विषय-भोग। भाजु=भज, स्मरण कर। चितवीऐ=चित्त लगाने पर। दासीं कउ=माया को। निगुरे=बिना गुरु की शरण लिये हुए। साकत=शाक्त; यही निरीश्वरवादी से तात्पर्य है। भवजलि फेरा=संसार-सागर में चक्कर लगाते रहना। मिटिआ आपु पए सरणाई=गुरु की शरण में जाने से अहंकार नष्ट हो गया।

* 'सुखमनी में कुल २४ अष्टपदियाँ हैं और प्रत्येक अष्टपदी में ८० पपंक्तियाँ। 'सुखमनी' का पाठ प्रातःकाल 'जपुजी' के पश्चात् किया जाता है। प्रस्तुत संग्रह में हमने संपूर्ण 'सुखमनी' को न लेकर कतिपय अष्टपदियों के ही अंशों को लिया है, अतः क्रम नहीं रह सका। इसके लिए हमें क्षमा किया जाये—सं०

१. तंन माहि=हृदय में से। वेद पुरान······इकआख्यर=वेदों, पुराणों और स्मृतियों में से साररूप 'राम' यह एक शब्द शोध निकाला है। किनका···बसावै=

किनका एक जिसु जीव बसावै। ता की महिमा गनी न आवै।
कांखी एकै दरस तुहारो। नानक उन संगि मोहि उधारो ॥१॥
सुखमनी सुख अंमृत प्रभ नामु। भगत जना कै मनि बिस्रामु ॥
प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै। प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै ॥
प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै। प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै ॥
प्रभ कै सिमरन कछु बिघनु न लागै। प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै ॥
प्रभ कै सिमरनि भउ ना बिआपै। प्रभ कै सिमरनि दुखु न संतापै ॥
प्रभ का सिमरनु साध के संगि। सरब-निधान नानक हरि-रंगि ॥२॥
प्रभ का सिमरनु सभ ते ऊचा। प्रभ कै सिमरनि उधरे मूचा ॥
प्रभ कै सिमरनि तृसना बुझै। प्रभ कै सिमरनि सभु किछु सुझै ॥
प्रभ कै सिमरनि नाही जमत्रासा। प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा ॥
प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ। अंमृत नामु रिद माहि समाइ ॥
प्रभजी बसहि साध की सरना। नानक जन का दासनि दसना ॥३॥

सलोक

दीन-दरद-दुखु-भंजना घटि घटि नाथ-अनाथ।
सरनि तुम्हारी आइओ नानक के प्रभ साथ ॥

अष्टपदी

सगल सृसटि को राजा दुखिआ। हरि का नामु जपत होइ सुखिआ ॥
लाख करोरी बंधनु परै। हरि का नामु जपत निसतरै ॥
अनिक माया रंग तिख न बुझावै। हरि का नामु जपत आघावै ॥

एक क्षण भी जिसने उस नाम को अपने हृदय में बसा लिया। कांखी=आकांक्षी, चाहनेवाले। उधारो=उद्धार करो।

२. सुखमनी=मन को आनन्द या शान्ति देनेवाली इस रचना में। गरभि न बसै=फिर जन्म नहीं लेता, मुक्त हो जाता है। अनदिनु=नित्य। जमु=यम, मृत्यु। भउ=भय। रंगि=प्रेम-भक्ति।

३. मूचा=अनेक, बहुत-से (पापी)। बुझै=शान्त हो जाती है। सुझै=दीख जाता है, अनुभव में आ जाता है। मलु=मलिन वासना से अभिप्राय है। रिद=हृदय। रसना=वाणी। जन=हरिभक्त। दासनिदसना=दासानुदास।

४. रंग=सुख, विषय-भोग। तिख=तृषा, प्यास। अघावै=शान्त हो जाती है।

जिह मारग इहु जात अकेला। तह हरिनामु संगि होत सुहेला॥
ऐसा नामु मन सदा धिआइए। नानक गुरमुखि परमगति पाइए॥४॥
सगल पुरख महि पुरखु प्रधानु। साध-संगि जा का मिटै अभिमानु॥
आपस कउ जो जाणै नीचा। सोऊ गनीए सभ ते ऊचा॥
जा का मनु होइ सगल की रीना। हरि हरि नामु तिनि घटि घटि चीना॥
मन अपुने ते बुरा मिटाना। पेखै सगल सृसटि साजना॥
सूख दूख जन सम द्रसटेता। नानकु पाप पुन्न नहीं लेपा॥५॥
निरधन कउ धनु तेरो नाउ। निथावे कउ नाउ तेरा थाउ॥
निमाने कउ प्रभ तेरो मान। सगल घटा कउ देवहु दान॥
करन करावनहार सुआमी। सगल घटा के अन्तरजामी॥
अपनी गति मिति जानहु आपे। आपन संगि आपि प्रभ राते॥
तुमरी उसतुति तुम ते होइ। नानक अवरु न जानसि कोइ॥६॥
आदि अंति जो राखनहारु। तिस सिउ प्रीति न करै गवारु॥
जाकी सेवा नवनिधि पावै। ता सिउ मूढा मन नही लावै॥
जो ठाकुर सद सदा हजूरे। ता कउ अंधा जानत दूरे॥
जाकी टहल पावे दरगह मानु। तिसहि बिसारै मुगधु अजानु॥
सदा सदा इहु भूलनहारु। नानक राखनहारु अपारु॥७॥

सुहेला=आनन्ददायक। गुरमुखि=जिसने गुरु से उपदेश लिया हो। परमगति=मोक्ष।

५. प्रधानु=सर्वश्रेष्ठ। आपस कउ=अपने आपको। सगल की रीना=सबके चरणों की धूल। बुरा=द्वेषभाव। साजना=मित्र। द्रसटेता=द्रष्टा, देखनेवाला। लेपा=लिप्त।

६. निथावे कउ=जिसका कोई ठौर नहीं उसे। थाउ=ठौर। निमाने कउ तेरो मान=जो किसीसे मान नहीं पाता, उसे तू मान देता है। सगल घटा कउ=सब घटों अर्थात् प्राणियों को। मिति=सीमा। आपन संगि······राते=प्रभो, तू स्वयं अपने आपपर अनुरक्त है। उसतुति=स्तुति, प्रशंसा।

७. गवारु=मूढ़। मन नहीं लावै=प्रेम नहीं करता। हजूरे=विद्यमान। टहल=सेवा, चाकरी। पावे दरगह मामु=परमात्मा के दरबार में आदर पाता है। मुगधु=मुग्ध, मूढ़। इहु=यह जीव। राखनुहारु=बचानेवाला।

रतनु तिआगि कउडी संगि रचै। साचु छोडि झूठ संगि सचै॥
जो छडना सु असथिरु करि मानै। जो होवनु सो दूरि परानै॥
छोडि जाइ तिसका स्रमु करै। संगि-सहाई तिसु परहरै॥
चंदन-लेपु उतारै धोइ। गरधब-प्रीति भसम संगि होइ॥
अंधकूप महिं पतित बिकराल। नानक काढि लेहु प्रभ दइआल॥८॥
संगि-सहाई सु आवै न चीति। जो बैराई ता सिउ प्रीति॥
बलुआ के गृह भीतरि बसै। अनंद-केल माइआ-रंगि रसै॥
दृडु करि मानै मनहि परतीति। कालु न आवै मूड़े चीति॥
बैर बिरोध काम क्रोध मोह। झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह॥
इआहू जुगति बिहाने कई जनम। नानक राखि लेहु आपन करि करम॥९॥

सलोक

काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाइ अहमेव।
नानक प्रभ सरनागती करि प्रसादु गुरदेव॥

अष्टपदी

जिह प्रसादि छत्तीह अंमृत खाहि। तिसु ठाकुर कउ रखु मन माहि॥
जिह प्रसादि सुगंध तनि लावहि। तिस कउ सिमरत परमगति पावहि॥
जिह प्रसादि बसहि सुमंदरि। तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि॥

---

८. रचै=प्रीति जोड़ता है। सचै=आसक्त हो जाता है।

असथिरु=स्थिर। जो होवनि······परानै=मृत्यु का ख्याल, जो अवश्यंभावी हैं, भुला देता है। तिसु=उसको। गरधब=गर्दभ, गदहा। भसम=राख, मिट्टी। विकराल=भयंकर; अंधकूप का विशेषण है।

९. आवै न चीति=ध्यान में नहीं आता। बलुआ के गृह=वालू के घर में: क्षणभंगुर शरीर में। माइआ रंगि=अनित्य विषय-भोगों में। रसै=सुख मानता है। दृडुकरि······परतीति=निश्चय करके मानता है कि सांसारिक सुख सदा रहनेवाले हैं। मूड़े=मूर्ख के। चीति=चित्त में। ध्रोह=द्रोह। इआ हू जुगति=इसी रीति से, इसी प्रकार। बिहाने=बीतगये। करम=कृपा।

१० अहमेव=अहंता, खुदी। प्रसादि=कृपा से। छत्तीह अंमृत=छत्तीस प्रकार के

जिह प्रसादि गृह संगि सुख बसना । आठ पहर सिमरौ तिसु रसना ॥
जिह प्रसादि रंग-रस-भोग । नानक सदा धिआईए धिआवनजोग ॥१०॥
आपि जपाए जपै सो नाउ । आपि गवाए सु हरिगुन गाउ ॥
प्रभ किरपा ते होइ प्रगासू । प्रभू दइआ ते कमल-बिगासू ॥
प्रभ सुप्रसन्न बसै मनि सोइ । प्रभ-दइआ ते मति ऊतम होइ ॥
सरबनिधान प्रभ तेरी मइआ । आपहु कछू न किनहू लइआ ॥
जितु जितु लावहु तितु लगहि हरि नाथ । नानक इनकै कछू न हाथ ॥११॥
साध कै संगि मुख ऊजल होत । साध संगि मलु सगली खोत ॥
साध कै संगि मिटै अभिमानु । साध कै संगि प्रगटै सुगिआनु ॥
साध कै संगि बुझै प्रभ नेरा । साध संगि सभु होत निबेरा ॥
साध कै संगि पाए नामरतनु । साध कै संगि एक ऊपरि जतनु ॥
साध की महिमा बरनै को प्रानी ।
नानक साध की सोभा प्रभ माहि समानी ॥१२॥
साध कै संगि नहीं कछु घाल । दरसनु भेटत होत निहाल ॥
साध कै संगि कलूखत हरै । साध कै संगि नरक परहरै ॥
साध कै संगि ईहा ऊहा सुहेला । साध संगि बिछुरत हरि मेला ॥
जो इच्छै सोई फलु पावै । साध कै संगि न बिरथा जावै ॥
परब्रहमु साध रिद बसै । नानक उधरै साध सुनि रसै ॥१३॥

अमृत-जैसे व्यंजन । तनि लावहि=शरीर में लगाता है । सुख=आराम से । मंदिर=घर में ।

११. आपि=स्वयं वह परमात्मा । कमल बिगासू=हृदय-कमल खिल जाता है । ऊतम=उत्तम । मइआ=कृपा । लइआ=प्राप्त किया । जितु…नाथ=जिस-जिस काम में तू लगा देता है उसमें हम लग जाते हैं । कछू न हाथ=अपनी कुछ भी सामर्थ्य नहीं ।

१२. मलु सगली खोत=सारी गंदगी अर्थात् मलिन वासना दूर हो जाती है । बुझै=बोध हो जाता है, दीख जाता है । नेरा=निकट । निबेरा=निर्णय । एक ऊपरि जतनु=एक परमात्मा को पाने का ही यत्न करें ।

१३. घाल=परिश्रम, कष्ट । कलूखत=कलंक, दोष । ईहा ऊहा=यह लोक और परलोक । सुहेला=आनन्दित । बिछुरत हरि मेला=परमात्मा से वे मिल जायेंगे, जो बिछुड़ चुके थे । रिद=हृदय । रसै=आनन्दित होता है ।

ब्रहमगिआनी कै एकै रंग। ब्रहमगिआनी कै बसै प्रभु संग ॥
ब्रहमगिआनी कै नामु अधारु। ब्रहमगिआनी कै नामु परिवारु ॥
ब्रहमगिआनी सदा सद जागत। ब्रहमगिआनी अहंबुधि तिआगत ॥
ब्रहमगिआनी कै मनि परमानंद। ब्रहमगिआनी कै घरि सदा अनंद ॥
ब्रहमगिआनी सुख सहज निवास। नानक ब्रहमगिआनी का नहीं बिनास ॥१४॥

मिथिआ नाहीं रसना परस। मन महिं प्रीति निरन्जन-दरस ॥
परत्रिय रुपु न पेखै नेत्र। साध की टहल संत संगि-हेत ॥
करन न सुनै काहू की निंदा। सब ते जानै आपस कउ मंदा ॥
गुरप्रसादि बिखिआ परहरै। मन की बासना मन ते टरै ॥
इन्द्रीजित पंच दोख ते रहत। नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस ॥१५॥

बैसनो सो जिसु ऊपर सु प्रसन्न। बिसन की माया ते होइ भिन्न ॥
करम करत होवै निहकरम। तिसु बैसनो का निरमल धरम ॥
काहू फल की इच्छा नहीं बाछै। केवल भगति कीरतन संगि राचै ॥
मन तन अंतरि सिमरन गोपाल। सभ ऊपरि होवत किरपाल ॥
आपि दृड़ै अवरहु नामि जपावै। नानक ओहु बैसनो परमगति पावै ॥१६॥

सलोक

गिआन-अंजनु गुरि दीआ, अगिआन-अंधेर बिनासु।
हरि-किरपा ते संत भेटिआ, नानक मनि परगासु ॥

---

१४. परवारु=कुटुंब। सदासद=निरन्तर।

१५. मिथिआ ...परस=जिनकी जिह्वा कभी असत्य का स्पर्श भी नहीं करती; जो स्वप्न में भी असत्य नहीं बोलते। निरंजन=अव्यय, अविनाशी। टहल=सेवा। हेत=प्रेम। आपस कउ=अपने आपको। मंदा=नीच, बुरा। बिखिआ=विषय। दोख=दोष (पंचविषयजनित) पाप। कोटि मधे को=करोड़ों में कोई विरला। अपरस=जो विषयों का स्पर्श नहीं करता; अनासक्त विरक्त; रूढ़ार्थ में जो छूतछात बहुत मानता है।

१६. बैसनो=वैष्णव। सु=वह, परमात्मा। बिसन की माया=व्यसनों का प्रभाव; विष्णु की दैवी माया। भिन्न=अलिप्त। बांछै=चाहता है। दृड़ै=दृढ़ रहता है।

अष्टपदी

संत-संगि अंतरि प्रभु डीठा । नामु प्रभू का लागा मीठा ॥
सगल समिग्री एकसु घट माहि । अनिक रंग नाना द्रसटाहि ॥
नउ निधि अंमृतु प्रभ का नामु । देही महिं इसका बिस्राम ॥
सुन्न समाधि अनहत तह नाद । कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥
तिनि देखिआ जिसु आपि दिखाए । नानक तिसु जन सोझी पाए ॥१७॥

सलोक

पूरा प्रभु आराधिआ, पूरा जाका नाउ ।
नानक पूरा पाइआ, पूरे के गुन गाउ ॥

अष्टपदी

पूरे गुर का सुनि उपदेसु । पारब्रहमु निकटि करि पेखु ॥
सासि सासि सिमरहु गोबिंद । मन अंतर की उतरै चिंद ॥
आस अनित तिआगहु तरंग । संतजना की धूरि मन मंग ॥
आपु छोड़ि बेनती करहु । साध संगि अगनि-सागरु तरहु ॥
हरि धन के भरि लेहु भण्डार । नानक गुर पूरे नमसकार ॥१८॥
खेम कुसल सहज आनन्द । साध संगि भजु परमानन्द ॥
नरक निवारि उधारहु जीउ । गुन गोबिन्द अंमृतरसु पीउ ॥
चिति चितवहु नारायण एक । एक रूप जाके रंग अनेक ॥
गोपाल दामोदर दीनदयाल । दुखभंजन पूरन किरपाल ॥
सिमरि सिमरि नामु बारंबार । नानक जीअ का इहै अधार ॥१९॥
प्रभ की उसतति करहु सन्त मीत । सावधान एकागर चीत ॥
सुखमनी सहज गोबिंद गुन नाम । जिसु मनि बसै सु होत निधान ॥

---

१७. मनि परगासु=मन में स्वरूप-दर्शन से प्रकाश हो गया । संत···डीठा=सत्संग के प्रभाव से प्रभु को अपनी अंतरात्मा में ही देख लिया । सगल समिग्री=नाना प्रकार की सृष्टि । द्रसटाहि=दीखते हैं । विसमाद=चमत्कार । सोझी=सुबुद्धि, विवेक ।

१८. पेखु=देख । चिंद=चिंता । मन मंग=हृदय से माँग । आपु=अहंकार । धन=यहाँ भगवद्भक्ति से आशय है ।

१९. निवारि=दूर कर, बचाकर । चितवहु=ध्यान कर । रंग=आकार, प्रकार ।

सरब इच्छा ताकी पूरन होइ । प्रधान पुरखु प्रगटु सभ लोइ ॥
सभ ते ऊच पाए असथानु । बहुरि न होवै आवन जानु ॥
हरि धनु खाटि चलै जनु सोइ । नानक जिसहि परापति होइ ॥२०॥
इहु निधानु जपै मनि कोइ । सभ जुगमहि ताकी गति होइ ॥
गुण गोबिंद नाम धुनि बाणी । सिम्रिति सासत बेद बखाणी ॥
सगल मतांत केवल हरिनाम । गोबिंद भगत कै मनि बिस्राम ॥
कोटि अपराध साध संगि मिटै । संतकृपा ते जम ते छुटै ॥
जाकै मसतकि करम प्रभि पाए । साध सरणि नानक ते आए ॥२१॥
जिसु मनि बसै लाइ सुनै प्रीति । तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥
जनम मरण ताका दूखु निवारै । दुलभ देह ततकाल उधारै ॥
निरमल सोभा अंमृत ताकी बानी । एकु नामु मन माहि समानी ॥
दूख रोग बिनसे भै भरम । साध नाम निरमल ताके करम ॥
सभ ते ऊच ताकी सोभा बनी । नानक इह गुणि नामु सुखमनी ॥२२॥

गाउड़ी माला

उबरत राजाराम की सरणी ।
सरब लोक माया के मंडल गिरि परते धरणी ॥
सासत सिमृति बेद बीचारे महापुरखन इउ कहिआ ॥
बिनु हरिभजन नाही निसतारा सुखु ना किनहू लहिआ ॥
तीनि भवन की लखमी जोरी बूझत नाही लहरे ॥
बिनु हरिभगति कहा थिति पावै, फिरतो पहरे पहरे ॥

---

२०. उसतति=स्तुति । एकागर=एकाग्र, एकही ओर स्थिर, अनन्य । निधान=परमात्मा की भक्ति का धनी । आवन-जान=जन्म और मृत्यु । खाटि=कमाकर ।

२१. निधान=अनमोल । गति=मोक्ष । सासत=शास्त्र । मतांत=सिद्धांत; धर्म-संप्रदाय । बिस्राम=परमशान्ति । मसतकि=भाग्य में ।

२२. चीति=चित्त में, ध्यान में । दुलभ=दुर्लभ (मनुष्य-देह, जिसे साधन-धाम कहा गया है ।) भरम=अविद्या । सोभा=कीर्त्ति ।

२३. सरणी=शरण में । सासत सिमृति=शास्त्र और स्मृति-ग्रन्थ । इउ=ऐसा । निस-तारा=उद्धार । लखमी=संपत्ति । लहरे=बावले । थिति=स्थिरता, शांति । मोहन=

अनिक बिलास करत मन मोहन पूरन होत न कामा ॥
जलतो जलतो कबहु न बूझत सगल बिरथे बिनु नामा ॥
हरि का नामु जपहु मेरे मीता, इहै सार सुख पूरा ॥
साध-संगति जनम-मरणु निवारै, नानकु जन की धूरा ॥२३॥

राग़ु गउड़ी अष्टपदी

जब इहु मन महि करत गुमाना ।
तब इहु बावरु फिरत बिगाना ॥
जब इहु हूआ सगल की रीना । ताते रमईआ घटि घटि चीना ॥
सहज सुहेला फलु मसकीनी । सतिगुर अपुनै मोहि दानु दीनी ॥
जब किसकउ इहु जानसि मंदा । तब सगले इसु मेलहि फन्दा ॥
मेर तेर जब इनहि चुकाई । ताते इसु संगि नही बैराई ॥
जब इनि अपुनी अपुनी धारी । तब इसकउ है मुसकलु भारी ॥
जब इनि करणैहारु पछाना । तब इसनो नाही किछु ताना ॥
जब इनि अपुनो बाधिओ मोहा । आवै जाइ सदा जमि जोहा ॥
जब इसने सभ बिनसे भरमा । भेदु नही है पारब्रहमा ॥
जब इनि किछु करि माने भेदा । तबते दूख डण्ड अरु खेदा ॥
जब इनि एको एकी बूझिआ । तबते इसनो सभु किछु सूझिआ ॥
जब इहु धावै माइआ अरथी । नह तृपतावै नह तिस लाथी ॥
जब इसने इहु होइआ जउला । पीछै लागि चली उठि कउला ॥

आकर्षक । कामा=वासना । नबूझत=नहीं बुझता, शान्त नहीं होता । जन की धूरा=भक्तों के चरणों की धूल ।

२४. इहु=यह मनुष्य । गुमाना=अभिमान, गर्व । बावरु=पागल । बिगाना=ईश्वर से विलग, बिछुड़ा हुआ । रीना=रेणु, पैरों की धूल । रमईआ=राम, परमात्मा । चीना=पहचाना, देखा । सहज······मसकीनी=ग़रीबी या नम्रता का फल स्वभावतः सुन्दर होता है । किसकउ=किसी दूसरे को । मंदा=बुरा । सगले······फन्दा=सब उसके विरुद्ध हो जाते हैं । चुकाई=समाप्त कर देता है । बैराई-शत्रुता । मेर तेर······बैराई='यह मेरा है, वह तेरा है' ऐसा भेद-भाव जब वह त्याग देता है तब उसके साथ किसीका द्वेषभाव नहीं रहता । अपुनी-अपुनी=स्वार्थ-भावना । करणैहारु पछाना=सिरजनहार परमात्मा को जान लिया । ताना=कष्ट । बाधिओ=बाँध लिया ।

करि किरपा जउ सतिगुरु मिलिओ। मंदिर महि तव दीपकु जलिओ ॥
जीत हार की सोझी करी। तउ इस घर की कीमत परी ॥
करन करावन सभु किछु एकै। आपे बुद्धि बिचारि बिबेकै ॥
दूरि न नेरै सभकै संगा। सचु सालाहण नानक हरि रंगा ॥२४॥

फुनहे

सखी काजल हार तंबोल सभै किछु साजिआ।
सोलह कीए सीगार कि अंजनु पाजिआ ॥
जे घरि आवै कंतु त सभु किछु पाईऐ।
हरि हां, कंतै बाझु सीगारु सभु बिरथा जाईऐ ॥१॥
जिसु घरि बसिआ कंतु सा वड़भागणे।
तिसु बणिआ सभु सीगारु साई सोहागणे ॥
हउ सूती होइ अचिंत मनि आस पुराईआ।
हरि हां, जा घरि आइआ कंतु त सभु किछु पाइआ ॥२॥
मेरे हाथि पदमु आंगनि सुख बासना।
सखी मोरै कंठि रतनु पेखि दुख नासना ॥
बासउ संगि गुपाल सगल सुखरासि हरि।
हरि हाँ, रिधि सिधि नव निधि बसहि जिसु सदा करि ॥३॥

आवै जाइ=बारबार जन्मता और मरता है। खेदा=क्लेश। एको एकी=एक अद्वितीय परमात्मा। नह तिस लाथी=न प्यास (तृष्णा) दूर होती है। जब इसने··· कउला=जब मनुष्य माया से भागता है तब वह उसका पीछा करने को दौड़ती है। सोझी=विचार। कीमति परी=मोल आँकता है। आपे=परमात्मा खुद ही। सालांहण=गुणगान कर। रंगा=प्रेम-भक्ति से।

१. सीगार=शृंगार। पजिआ=लगाया। जे=जो। त······पाइऐ=तो उसने सब कुछ पा किया; उसका सोलह शृंगार सजाना सफल हो गया। कंतै बाझु=बिना स्वामी के।

२. जा घरि=जिस स्त्री के घर में। सा=वह। सभु=सब। साई=वही। सोहागणे=सोहागिन। हउ सूती=मैं सो रही हूँ अब। पुराईआ=पूरी हो गई।

३. मेरे हाथि पदमु=मेरे हाथ में कमल की रेखा है, (जो सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार बड़ी शुभ है)। आंगनि सुख वासना=गृह-आँगन में आनन्द-ही आनंद

ऊपरि बनै अकासु तलै धर सोहती ।
दहदिसि चमकै बीजुलि मुख कउ जोहती ।।
खोजत फिरउ बिदेसि पीउ कत पाईए ।
हरि हाँ, जे मसतकि होवै भागु त दरसि समाईऐ ।।४।।
मित का चित्तु अनूपु मरंमु न जानीऐ ।
गाहक गुनी अपार सु तत्त पछानीए ।।
चित्तहि चित्तु समाइ त होवै रंगु घना ।
हरि हाँ, चंचल चोरहि मारि त पावहु सचु धना ।।५।।
सुपनै ऊभी भई गहिओ की न अंचला ।
सुन्दर पुरख बिराजित पेखि मनु बंचला ।।
खोजउ ताके चरण कहहु कत पाईऐ ।
हरि हाँ, सोई जतनु बताइ सखी पिरु पाईऐ ।।६।।
नैण न देखहि साध सि नैण बिहालिआ ।
करन न सुनही नादु करन मुंदि घालिआ ।।

का वास है । रतनु=(हरिनामरूपी) रत्न । पेखि=उस रत्न को देख-देखकर । वासउ=रहती हूँ । सगल=सकल । सुखरासि=आनन्दघन । करि=हाथ में ।

४. बनै=दीप्तिमान हो रहा है । धर=धरती । सोहती=शोभायमान है । बीजुलि=दिव्य प्रकाश से आशय है । मुख कउ जोहती=मैं उस स्वामी का सुन्दर मुख देखती हूँ । बिदेसि=देश-देश में, सर्वत्र । जे मसतकि होवै भागु=जो मेरा सद्-भाग्य होगा । त दरसि समाइऐ=तो दर्शन उसका हो जायेगा ।

५. मित=मित्र; परमातमा से आशय है । चित्त अनूपु=हृदय अनुपम है । मरंमु=रहस्य । ततु=आत्मतत्त्व, परमसत्य । चित्तहि···घना=जब हमारा चित्त प्रभु में लय हो जायेगा, तभी हमें प्रेम-जनित आत्यन्तिक आनंद होगा । चोरहि मारि=जो मन-रूपी चोर को वश में कर लेता है । धना–धन ।

६. सुपनै···अंचला=सपने में वह (मोहिनी) मूर्ति आकर खड़ी हो गई, पर हाय, मैं उसका अंचल न पकड़ सकी । पेखि मन बंचला=उसे देखकर मेरा मन ठग गया । खोजउ ताके चरण=उनके चरण-चिन्हों को खोजती फिरती हूँ । पिरु=प्रियतम ।

७. नैण···बिहालिया=जो नेत्र साधुपुरुष को नहीं देखते, वे बेकार हैं । करन=

रसना जपै न नाम तिलु तिलु करि कटीऐ ।।
हरि हाँ, जब बिसरै गोविंदराइ दिनो दिनु घटीऐ ।।७।।
धावउ दिसा अनेक प्रेम प्रभ कारणे ।
पंच सतावहि दूत कउन बिधि मारणे ।
तीखण बाण चलाइ नामु प्रभ धिआईऐ ।
हरि हाँ, महा बिखादी घात पूरन गुरु पाईऐ ।।८।।
जिथै जाए भगतु सु थानु सुहावणा ।
सगले होए सुख हरि नामु धिआवणा ।।
जीअ करनि जैकारु निंदक मुए पचि ।
साजन मनि आनंदु नानक नाम जपि ।।९।।
अउखधु नाम अपारु अमोलकु पीजई ।
मिलि मिलि खावहि संत सगल कउ दीजई ।
जिसै परापति होइ तिसै ही पावणे ।।
हरि हाँ, हउ बलिहारी तिन जि हरि रंगि रावणे ।।१०।।

सलोक

हरि हरि नाम जो जनु जपै सो आइआ परवाणु ।
तिसु जनकै बलिहारणै जिनि भजिआ प्रभु निरवाणु।।१।।
सतिगुरु पूरे सेविए दूखा का होइ नास ।
नानक नाम अराधिए कारजु आवै रासु ।।२।।

कान । नादु=गुरु के सदुपदेश से तात्पर्य है । मुंदि घालिआ=बंद कर दिया जाये । तिलु तिलु करि=छोटे-छोटे टुकड़े करके । घटीऐ=गिरता है ।

८. धावउ=दौड़ता हूँ । प्रेम प्रभ कारणे=प्रभु के प्रेम की खातिर । पंचदूत=इन्द्रियों के पाँच विषय, जो शत्रु हैं । बिखादी=विषय आदि । घात=घातक, नाशक ।

९. जिथै=जहाँ भी । भगतु=हरिभक्त, संतजन । थानु=स्थान । साजन=सज्जन ।

१०. अउखधु=औषधि । पीजई=पीले । सगल कउ=सब भव-रोगियों को । जि हरि-रंगि रावणे=जो भगवत्प्रेम में रम रहे हैं ।

१. सो आइआ परवाणु=उसीका संसार में आना सच्चा है । निरवाणु=मोक्ष-दायक ।

२. कारजु आवे रासु=हरि-नाम की पूँजी (अंत समय) काम आये ।

जिसु सिमरत संकट छुटहि अनंद मंगल विस्राम ।
नानक जपीए सदा हरि निमख न बिसरउ नाम ।।३।।
बिखै कउड़त्तणि सगल महि जगत रही लपटाइ ।
नानक जनि वीचारिआ मीठा हरि का नाउ ।।४।।
गुरु कै सबदि अराधिए नामि रंगि बैरागु ।
जीते पंच बैराइआ नानक सफल मारू रागु ।।५।।
पतित उधारण पारब्रहमु संम्रथ पुरखु अपारु ।
जिसहि उधारे नानका सो सिमरे सिरजणहारु ।।६।।
पंथा प्रेम न जाणई भूली फिरै गवारि ।
नानक हरि बिसराइकै पड़दे नरक अँधिआर ।।७।।
फूटो अंडा भरम का मनहि भइओ परगासु ।
काटी बेरी पगह ते गुरि कीनी बंदि खलासु ।।८।।
तू चउ सजण मैडिआ देई सीसु उतारि ।
नैण महिंजे तरसदे कदि पसी दीदारु ।।९।।
नीहु महिंजा तऊ नालि बिआ नेह कूड़ावै डेखु ।
कपड़ भोग डरावणे जिचरु पिरी न डेखु ।।१०।।

---

३. विस्राम=शांति । निमख=निमिष, पल ।

४. बिखै कउड़त्तणि=विषयरूपी कड़वी बेल ।

५. गुरु कै···बैरागु=गुरु के उपदेश की आराधना करनी चाहिए, जिससे हरि-नाम के प्रति प्रेम और विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो । पंच बैराइआ=विषयरूपी पाँचों शत्रुओं को । मारू राग=जो युद्ध में उत्साह बढ़ाने के लिए गाया जाता है ।

६. संम्रथ=समर्थ, सर्वशक्तिमान ।

८. मनहि भइओ परगासु=मन के अंदर दिव्य प्रकाश भर गया । बेरि=बेड़ी । पगह ते=पैरों में से । बंदि खलासु=बंधन-मुक्त ।

९. अय मेरे साजन, अगर तू कहे, तो मैं अपना सिर उतारकर तुझे देदूँ । मेरी आँखे तरसती हैं कि कब तुझे देखूँ ।

१०. मेरी प्रीति तेरे ही साथ है; मैंने देख लिया कि और सब प्रीति झूठी है । तुझे देखे बिना ये वस्त्र और ये भोग मुझे डरावने लगते हैं ।

उठी झालू कंतड़े हउ पसी तउ दीदारु ।
काजल हारु तमोल रसु बिनु पसे सभि रस छारु ॥११॥
पहिला मरण कबूलि करि जीवण की छड़ि आस ।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारे पास ॥१२॥
जिसु मनि बसै पारब्रहमु निकटि न आवै पीर ।
भुख तिख तिसु न विआपई जमु नहीं आवै नीर ॥१३॥
धणी विहूणा पाट पटंबर भाही सेती जाले ।
धूड़ी विचि लुडंदड़ी साहां नानक तै सह नाले ॥१४॥
सोरठि सो रसु पीजिए कबहू न फीका होइ ।
नानक राम नाम गुन गाइअहि दरगह निरमल सोइ ॥१५॥
जाको प्रेम सुआउ है चरन चितव मन माहि ।
नानक बिरही ब्रहम के आन न कतहू जाहि ॥१६॥
मगनु भइओ प्रिअ प्रेम सिउ सूध न सिमरत अंग ।
प्रगटि भइओ सभ लोअ महि नानक अधम पतंग ॥१७॥

---

११. मेरे प्यारे ! तेरे दर्शन के लिए मैं बड़ी भोर उठ जाती हूँ। काजल, हार और पान और सारे मधुर रस, बिना तेरे दर्शन के धूल की तरह लगते हैं।

१२. कबूलि करि=स्वीकार करले। छड़ि=छोड़कर। रेणुका=पैरों की धूल ; अत्यंत= तुच्छ ।

१३. पीर=दुःख। तिख=तृषा, प्यास। जमु=काल। नीर=निकट।

१४. मेरा प्रीतम मेरे पास नहीं, तो इन रेशमी वस्त्रों को लेकर क्या करूँगी, मैं तो इनमें आग लगा दूँगी ;

प्यारे, तेरे साथ धूल में लोटती हुई भी मैं सुन्दर दीखूँगी।

१५. सोरठि=एक राग का नाम। सो रसु=ब्रह्म-रस से आशय है। दरगह=परमात्मा का दरबार। निरमल=निष्पाप।

१६. सुआउ=स्वभाव। चरन चितव मन माहि=परमात्मा के चरणों का ध्यान हृदय में करते हैं। विरही=अत्यंत प्रेमातुर। आन=अन्य स्थान, सांसारिक भोगों से आशय है।

१७. सूध=सुध, ध्यान। लोअ=लोक।

गुरु तेगबहादुर

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६७६ वि०, वैशाख कृ० ५

जन्म-स्थान—अमृतसर

पिता—गुरु हरगोविंद

माता—नानकी

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-संवत्—१७३२ वि,० अगहन शु० ५

छठे गुरु हरगोविंद के पाँच पुत्र थे—गुरुदित्ता, सूरजभान, अनीराय, बाबा अटल और तेगबहादुर। सातवें गुरु थे गुरुदित्ता के छोटे पुत्र हरराय, और आठवें गुरु हुए गुरु हरराय के छोटे पुत्र हरकृष्ण राय। इनकी मृत्यु केवल ८ वर्ष की अवस्था में ही हो गई।

गुरु हरगोविंद की मृत्यु के पश्चात् तेगबहादुर अपनी माता तथा पत्नी गूजरी के साथ बाकला नाम के एक गाँव में रहने लगे थे। गुरु हरकृष्ण राय से जब लगभग बेहोशी की अवस्था में उतराधिकारी का नाम पूछा गया, तब उन्होंने बाबा बाकले बतलाकर अपना हाथ दो-तीन बार हिलाया। बाकला के २२ सोढ़ी खत्रियों ने गुरु-गद्दी पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। किंतु अंत में चैत्र शु० १४ सं० १७७२ को साधुता, संतोष और शांति की मूर्ति तेगबहादुर को गुरु हरगोविंद तथा गुरु हरराय के सभी अनुयायी सिक्खों ने गुरु-गद्दी पर आसीन करा दिया।

गुरु तेगबहादुर पाँच वर्ष की अवस्था से ही एकांत में प्रायः विचार-मग्न रहा करते थे, और किसीसे बोलते नहीं थे। इनके पिता हर-गोविंद ने इनकी साधुता एवं दृढ़ता देखकर भविष्यद्वाणी की थी कि 'तेगबहादुर' अवश्य किसी दिन गुरु बनेगा और धर्म की वेदी पर अपने प्राणों को चढ़ादेगा।'

इनके बड़े भाई गुरुदित्ता का पुत्र धीरमल इनसे अत्यंत द्वेष रखता

था। इन्हें मार डालने के लिए कुछ मसन्दों को उसने इनकी ताक में भेजा, पर वह सफल नहीं हुआ। साधुप्रकृति गुरु तेगबहादुर ने कीरतपुर को छोड़कर वहाँसे छह मील दूर आनंदपुर नामक एक नये शहर की नींव डाली, और वहींपर रहने का निश्चय किया। पर वहाँ भी वे धीरमल और रामराय के षड़यंत्रों के कारण चैन से नहीं बैठ सके। वह स्थान भी उन्होंने छोड़ दिया और सिक्खधर्म का प्रचार करने के लिए वे लम्बी-लम्बी यात्राओं पर निकल पड़े। गुरु तेगबहादुर पंजाब के कई स्थानों का भ्रमण करते हुए कड़ा मानिकपुर (जहाँ प्रसिद्ध संत बाबा मलूकदास रहते थे) प्रयाग, काशी और गया भी गये। काशी में जिस स्थान पर यह रहे थे, उसे 'शब्द का कोठा' कहते हैं, जो 'रेशम कटरा' मोहल्ले में है।

जयपुर के महाराजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के प्रस्ताव पर उसके साथ औरंगजेब बादशाह की ओर से शाही फौज के साथ गुरु तेगबहादुर बंगाल होते हुए कामरूप (आसाम) भी गये। राजा रामसिंह ने कामरूप के विरुद्ध चढ़ाई में इनकी मदद चाही थी। पर चढ़ाई करने का अवसर ही नहीं आया। गुरु के आत्मबल के आगे कामरूप के राजा की एक नहीं चली। उन्होंने बिना ही भयंकर रक्त-पात के कामरूप राज्य को शन्तिपूर्वक दो हिस्सों में बँटवा दिया, और कहा कि, 'बादशाह और कामरूप का राजा दोनों इन दोनों भागों में अपना-अपना राज्य करें और पुरानी शत्रुता भूल जायें।' कामरूप का राजा इनसे बहुत प्रभावित हुआ। धूबरी में आजभी गुरु तेगबहादुर के अनुयायी सिक्खों के कुछ वंशज पाये जाते हैं।

पटना में यह अपनी माता और पत्नी को छोड़ गये थे। आसाम में पटने से इन्हें यह शुभ समाचार मिला कि इनकी पत्नी गूजरी ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया है। राजा रामसिंह ने इस मंगल समाचार को सुनकर वहाँ भारी उत्सव मनाया। गुरु तेगबहादुर पटना लौट आये, और वहाँ अपने परिवार के साथ शांति से रहने लगे। मगर पंजाब की याद इन्हें रह-रहकर व्याकुल करने लगी। अतः परिवार को

पटने में ही छोड़कर यह पंजाब को चल पड़े। आनन्दपुर में पीछे कुछ दिनो बाद अपनी माता, पत्नी और पुत्र गोविंदराय को भी बुला लिया।

औरंगज़ेब का शासन-काल था यह। धर्मान्धिता उसकी भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है। धर्मान्तरित करने का आंदोलन उसका कई प्रांतों में चल रहा था। कश्मीर भी नहीं बचा। वहाँ के पंडितों ने छह महीने की मोहलत माँगी। कश्मीर के सूबेदार शेर अफ़गान खां ने औरंगज़ेब की आज्ञा से कश्मीरी पंडितों के आगे यह प्रस्ताव रखा था कि या तो वे सब-के-सब इस्लाम धर्म को ग्रहण करलें, या क़त्ल होने को तैयार हो जायें। यह सुनकर कि गुरु तेगबहादुर ही एक ऐसे महान् वीरपुरुष हैं, जो इनके शिखा-सूत्र और तिलक की रक्षा कर सकते हैं, उनके कुछ प्रतिनिधि आनन्दपुर पहुँचे। उनकी करुण-कहानी सुनकर गुरु साहब इस निश्चय पर पहुंचे कि धर्म की खातिर मुझे अपने प्राणों की बलि अब देनी ही होगी। उन्होंने उन पंडितों से कहा—'आप लोग दिल्ली जाकर बादशाह से कहें—"गुरु नानक के तख्त पर आसीन तेगबहादुर को पहले तुम मुसलमान बनालो; उसके बाद हम सब-के-सब अपने-आप इस्लाम धर्म स्वीकार करलेंगे।"

औरंगज़ेब यह सुनकर फूला नहीं समाया। गुरु साहब को दिल्ली ले आने के लिए उसने कुछ अधिकारियों को आनन्दपुर भेजा। गुरु तेगबहादुर ने उनसे कहा, कि बरसात के बाद मैं खुद दिल्ली आजाऊँगा। पर तबतक रुकना उन्होंने ठीक नही समझा। वे गर्मियों में ही कुछ अच्छे वफ़ादार सिक्खों को लेकर दिल्ली को रवाना हो गये। रास्ते में सैफ़ाबाद में अपने परममित्र सैफुद्दीन से मिले, जिसने गुरु साहब से प्रभावित होकर सिक्ख-धर्म स्वीकार कर लिया। तीन महीने वे उसके अनुरोध पर सैफ़ाबाद में ही रहे।

रास्ते में कई स्थानों पर ठहरते और धर्मोपदेश करते हुए वे दिल्ली पहुँचे, और उन्हें गिरफ़तार कर लिया गया, इस अपराध पर कि इतने दिनोंतक वे कहीं छिपे हुए थे। उनकी गिरफ़तारी से बादशाह को बेहद खुशी हुई।

उनके सामने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव रखा गया। गुरु तेगबहादुर ने बादशाह को यह जवाब दिया—"ईश्वर की मरज़ी से कोई बाहर नहीं जा सकता। अगर उसकी यही मरज़ी होती कि दुनिया में एक ही धर्म होना चाहिए, तो एक ही समय में साथ-साथ इस्लाम और हिन्दूधर्म को वह न रहने देता। उसकी मरज़ी के खिलाफ़ न मैं जा सकता हूँ, न तुम। मैं इस्लाम को कभी स्वीकार करनेवाला नहीं। दुनियां पर एक ही धर्म आरोपित करने का जो काम तुम्हारे मक्का के पैगंबर से भी नहीं हो सका, तब तुम्हारी तो बिसात ही क्या? ईश्वर के आगे हम सब समान हैं नाचीज़ हैं, उससे डरो, बहुत जुल्म न करो।"

यह सुनकर औरंगज़ेब आग-बबूला हो उठा। गुरु साहब को उसने जेलखाने में डाल दिया। बाद में कितने ही भय दिखाये गये, कितने ही प्रलोभन दिये गये, पर गुरु तेगबहादुर अपने सत्य पर वज्र की तरह अडिग रहे।

पीछे लोहे के पिंजड़े में उन्हें बंद कर दिया गया। संतरी हमेशा नंगी तलवार लिये पहरे पर खड़ा रहता था।

आनन्दपुर से जब एक हरकारा उनकी पत्नी और पुत्र का पत्र लेकर मिलने आया, तो जवाब में उसके हाथ गुरु साहब ने अपनी चिताग्रस्त पत्नी गूजरी को यह सलोक लिख भेजे—

"राम गइओ रावनु गइओ जाको बहु परवार।
कहु नानक थिरु कछु नहीं सुपने जिउ संसार॥
चिंता ताकी कीजिए जो अनहोनी होइ।
इहु मारगु संसार को नानक थिरु नहि कोइ॥"

और भी कितने ही वैराग्यपूर्ण सलोक बंदीगृह के दिनों में उन्होंने लिखे।

अंत में, औरंगज़ेब ने फिर एक बार उन्हें धर्मान्तरित करने का प्रयत्न किया। पर गुरु साहब तो वैसे ही अपने धर्म पर अटल थे। उनका वही जवाब था, "प्राण रहते मैं कभी अपने धर्म को नहीं छोड़

सकता। मौत के डर से मैं काँपनेवाला नहीं। मैं जानता हूँ कि एक-न-एक दिन तो इस देह को छूटना ही है। मौत को छाती से लगाने के लिए मैं तैयार हूँ।"

पिंजड़े से उन्हें निकाला गया। उन्होने स्नान किया, और फिर एक बरगद के नीचे बैठकर जपुजी का पाठ। वे शांत थे, ध्यान-मग्न थे। सैयद आदम शाह ने, जिसके पास क़त्ल का शाही हुक्म था, गुरु तेगबहादुर का सर धड़ से अलग कर दिया।

यह महान् बलिदान संवत् १७३२ की अगहन सुदी ५ के दिन हुआ। धर्मान्धता पर धर्म की विजय का महामंगल दिन था वह।

बानी-परिचय

गुरु ग्रंथ साहिब में 'महला ९' के अंतर्गत जितने पद और सलोक संग्रहीत हैं वे सब गुरु तेगबहादुर के रचे हुए हैं। हिंदी के अनेक पद-संग्रहों में जो पद लिये गये हैं, वे गुरु तेगबहादुर के ही हैं, आदिगुरु नानक के नहीं। इनके पदों व सलोकों की भाषा शुद्ध हिंदी है और वह बहुत प्रांजल और मधुर है। कुछ पद तो इनके सूरदास के पदों से मिलते हैं। भक्ति और वैराग्य का इन्होंने बड़ा सुंदर निरूपण किया है। बानी सरल, प्रसादगुणमयी और अतिमधुर है।

आधार

१ गुरु ग्रंथ साहिब—सर्व हिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन (भाग ३) मॅकालीफ़

राग सोरठि

भाई, मनु मेरो बसि नाहि ॥
निसबासुर बिखिअन कउ धावउ किहि बिधि रोकत ताहि ॥
बेद पुरान सिमृति के मति सुनि निमख न हीए बसावै ॥
परधन परदारा सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै ॥

---

१. बिखिअन कउ=विषयों को, इन्द्रियों के भोगों की ओर। मति=मत, सिद्धान्त।

मदि माइआ कै भाइओ बावरो सूझत नह कछु गिआना ॥
घट ही भीतरि बसत निरंजनु ताको मरमु न जाना ॥
जब ही सरनि साध की आइओ दुरमति सगल बिनासीं ॥
तब नानक चेतिओ चिंतामनि काटी जम की फांसी ॥१॥

प्रानी कउनु उपाउ करै ।
जाते भगति राम की पावै जम को त्रासु हरै ॥
कउनु करम बिदिआ कहु कैसी धरमु कउनु फुनि करई ॥
कउनु नामु गुर जाकै सिमरै भवसागर कउ तरई ॥
कल मै एकु नामु किरपानिधि जाहि जपै मति पावै ॥
अउर धरम ताकै समि नाहिन इह विधि बेदु बतावै ॥
सुखु दुखु रहत सदा निरलेपी जाको कहत गुसाई ॥
सो तुमही मही बसै निरंतरि नानक दरपनि निआई ॥२॥

मन की मन ही माहि रही ।
ना हरि भजे न तीरथ सेए चोटी कालि गही ॥
दारा मीत पूत रथ संपति धन पूरन सभु मही ।
अउर सगल मिथिआ ए जानउ भजनु राम को सही ॥
फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानसदेह लही ।
नानक कहत मिलन की बिरीआ सिमरत कहा नही ॥३॥

रे मन, राम सिउ करि प्रीति ॥
स्रवन गोबिंद गुनु सुनउ अरु गाउ रसना गीति ॥

सिउ=से । निरंजनु=निराकार परमात्मा । मरमु=भेद, रहस्य । चेतिओ=चिंतामनि=समस्त चिंताओं को दूर करनेवाला, परमात्मा ।

२. जम को त्रासु=मृत्यु का भय । विदिआ=विद्या । फुनि=पुनः, फिर । सिमरै=स्मरण करने से । मति पावै=बुद्धि स्थिरता को प्राप्त कर लेती है । दरपनि निआई=दर्पण में प्रतिबिम्ब की तरह ।

३. हारिओ=व्यर्थ बिता दिये । बिरीआ=बेर, समय । कहा=क्यों ।

४. सिउ=से । बिआलु=व्याल, सर्प । मुखु पसारे मीति=मौत मुँह खोले खड़ी है ।

करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीति ॥
कालु-बिग्रालु जिउ परिग्रो डोलै मुखु पसारे मीति ॥
ग्राजु कालि फुनि तोहि ग्रसिहै समझि राखउ चीति ॥
कहै नानकु रामु भजिलै जातु ग्रउसरु बीति ॥४॥
जो नरु दुख मै दुखु नहि मानै ॥
सुख सनेहु ग्ररु भैं नहीं जाकै कंचन माटी मानै ॥
नहि निंदिग्रा नहीं उसतति जाकै लोभु मोहु ग्रभिमाना ॥
हरख सोग ते रहै निग्रारउ नाहि मान ग्रपमाना ॥
ग्रासा मनसा सगल तिग्रागै जग ते रहै निरासा ॥
कामु क्रोधु जिह परसै नाहिन तिह घट ब्रहमुनिवासा ॥
गुर किरपा जिह नर कउ कीनी तिह इह जुगति पछानी ॥
नानक लीन भइग्रो गोबिंद सिउ जिउ पानी संगि पानी ॥५॥
मन रे, गहिग्रो न गुर उपदेसु ॥
कहा भइग्रो जउ मूड मुडाइग्रो भगवउ कीनो भेसु ॥
साच छाडिकै झूठहि लागिग्रो जनमु ग्रकारथु खोइग्रो ॥
करि परपंच उदर निज पोखिग्रो पसु की निग्राईं सोइग्रो ॥
रामभजन की मति नहि जानी माइग्रा हाथि बिकाना ॥
उरझि रहिग्रो बिखिग्रन संगि बउरा नामुरतनु बिसराना ॥
रहिग्रो ग्रचेतु न चेतिग्रो गोबिंद बिरथा ग्रउध सिरानी ॥
कहु नानक हरि बिरदु पछानउ भूले सदा परानी ॥६॥

फुनि=पुनः, फिर । चीति=चित्त में ।

५. सुख सनेहु=सुख के प्रति ग्रासक्ति या मोह । उसतति=स्तुति । सोग=शोक । निग्रारउ=ग्रलिप्त । निराशा=ग्रनासक्त । जिह नर कउ=जिस मनुष्य पर । जुगति=युक्ति, भेद, रहस्य । पछानी=पहचानली ।

६. जउ=जो । भगवउ कीनो भेसु=भगवा ग्रर्थात् गेरुवे वस्त्र पहन लिये, संन्यास ले लिया । ग्रकारथु=व्यर्थ । निग्राईं=नाईं, तरह । बउरा=पागल; मूर्ख । बिसराना=भुलादिया । ग्रउध=ग्रवधि, ग्रायु । सिरानी=बीत गई । बिरदु=पतितोद्धार का यश या बाना । परानी=प्राणी, जीव ।

राग़ु बिलावल

जामें भजनु राम को नाही ।
तिह नर जनम अकारथ खोइउ इह राखहु मन माहीं ॥
तीरथ करै बिरत पुनि राखै, नहि मनुवा बसि जाको ।
निहफल धरम ताहि तुम मानो सांचु कहत मैं याको ॥
जैसे पाहन जल महि राखिउ भेदै नहिं तिहि पानी ।
तैसे ही तुम ताहि पछानो भगतिहीन जो प्रानी ॥
कलि में मुकति नाम ते पावत गुर इह भेद बतावै ।
कहु नानक सोई नरु गरुआ जो प्रभ के गुन गावै ॥७॥

राग़ु टोड़ी

कहउँ कहा अपनी अधमाई ।
उरझिओ कनक कामिनी के रस नहि कीरति प्रभु गाई ॥
जग झूठे कउ साँचु जानिकै तासिउ रुचि उपजाई ।
दीनबंधु सिमरिओ नहि कबहूँ होत जु संगि सहाई ॥
मगन रहिओ माइआ में निसिदिन छुटी न मन की काई ।
कह नानक अब नाहि अनत गति बिनु हरि की सरनाई ॥८॥

राग़ु धनासरी

काहे रे बन खोजन जाई ।
सरबनिवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई ॥
पुहपमध्य जिउ बासु बसतु है, मुकुर माहि जैसे छाई ।
तैसे ही हरि बसे निरंतर, घट ही खोजहु भाई ॥
बाहरि भीतरि एकै जानहु, इह गुरु गिआनु बताई ।
जन नानक बिनु आपा चीन्हे, मिटै न भ्रम की काई ॥९॥

---

७. अकारथ=बेकार । बसि=वश में । पाहन=पत्थर । पछानो=पहचानो, जानो । भेद=रहस्य । गरुआ=बड़ा ।

८. रस=सुख, प्रेम । रुचि उपजाई=प्रीति जोड़ी । सिमरिओ=स्मरण किया । काई= मैल; बुरी वासना । अनत=अन्यत्र, और कहीं भी ।

९. समाई=व्याप्त । वासु=गंध । मुकुर=दर्पण । आपा=स्वरूप ।

राग़ु गउड़ी

साधो, मन का मान तिआगो ।
काम क्रोध संगति दुरजन की, ताते अहनिसि भागो ॥
सुखु दुखु दोनो सम करि जानै, औरु मानु अपमाना ।
हरख-सोग ते रहै अतीता तिनि जगि तत्तु पछाना ।
उसतुति निंदा दोऊ त्यागै, खोजै पदु निरबाना ।
जन नानक इहु खेलु कठन है, किनहू गुरमुखि जाना ॥१०॥

साधो, इहु मनु गहिओ न जाई ॥
चंचल तृसना संगि बसतु है इआते थिरु न रहाई ॥
कठिन करोध घट ही के भीतरि जिह सुधि सभ बिसराई ।
रतनु गिआनु सभको हिरि लीना, ता सिउ कछु न बसाई ॥
जोगी जतन करत सभ हारे, गुनी रहे गुन गाई ।
जन नानक हरि भए दइआला तउ सब विधि बनि आई ॥११॥

नर अचेत, पाप ते डरु रे ।
दीनदइआल सगल भैभंजन, सरनि ताहि तुम परु रे ॥
बेद पुरान जासु गुन गावत ताको नाम हिए में धरु रे ।
पावननाम जगति में हरिको, सिमरि-सिमरि कसमल सभ हरु रे ॥
मानुस-देह बहुरि नहि पावै, कछू उपाव मुकति को करु रे ।
नानक कहत गाइ करुनामय, भवसागर के पारि उतरु रे ॥१२॥

---

१०. मान=अभिमान; मत । अतीता=रहित । जगि=संसार में । तत्तु=परमवस्तु; स्वरूप । पछाना=पहचाना, जाना । निरबाना=मोक्ष । खेल=साधन । किनहू=किसी विरले ने ।

११. इआते=या ते, इससे । सुधि=स्मृति । हिरि लीना=हर लिया । गुनि=विद्वान् । हरिभये……आई=यदि परमात्मा कृपा-दृष्टि करदे, तो सब बिगड़ी बात भी बन जायेगी ।

१२. परु=पड़ रह, चलाजा । कसमल=पाप ।

राग रामकली

साधो, कउन जुगति अब कीजै ।
जाते दुरमति सकल बिनासै, रामभगति मनु भीजै ॥
मनु माइआ में उरझि रहिओ है, बूझै नहिं कछु गिआना ॥
कउन नाम जग जाके सिमरै पावै पदु निरबाना ॥
भए दइआल कृपाल संतजन तब इह बात बताई ॥
सरब धरम मानो तिह कीए जिह प्रभ-कीरति गाई ॥
रामनाम नर निसिबासुर में निमख एक उर धारै ।
जम को त्रासु मिटै नानक तिह, अपुनो जनम सवारै ॥१३॥

राग जैजावंती

राम सिमर राम सिमर इहै तेरो काजु है ।
माइआ को संगु तिआगि, प्रभजू की सरनि लागि,
जगत सुख मानु मिथिआ, झूठो सब साजु है ॥
सुपने जिउ धनु पिछानु, काहे पर करत मानु,
बारू की भीत जैसे बसुधा को राजु है ।
नानक जन कहत बात बिनसि जैहै तेरो गात,
छिन-छिन करि गइओ कालु तैसे जातु आजु है ॥१४॥
राम भजु राम भजु जनमु सिरातु है ।
कहों कहा बारबार, समझत नहिं किउ गवार,
बिनसत नाहि लगै बार ओरे समु गातु है ॥
सगल भरम डारि देहि, गोविंद को नाम लेहि,
अन्ति बार संग तेरे इहै एकु जातु है ।

---

१३. भीजै=भीगे, विभोर हो जाये । निरवाना=मोक्ष । सरब···गाई=मानो उसने सब धर्म-कर्म कर लिये जिसने प्रेम से परमात्मा का गुण-गान किया । निमख=निमिष, पल । सवारै= सुधार लेता है ।

१४. मानु=गर्व । बारू=बालू, रेत; जरा में ढहजानेवाली । भीत=दीवार । जातु=बीत रहा है ।

१५. सिरातु है=बीत जाता है । किउ=क्यों । गवार=गँवार, मूर्ख । ओरे सम=ओले

बिखिआ बिख जिउ बिसारि, प्रभ को जसु हिए धार,
नानक जन कहि पुकार अउसरु बिहातु है ॥१५॥

पापी हिये मैं काम बसाइ। मन चंचलु इआते गहिओ न जाइ ॥
जोगी जंगम अरु संनिआसि। सभ ही परि डारी इह फाँसि ॥
जिहि-जिहि हरि को नामु सम्हारि। ते भवसागर उतरे पारि ॥
जन नानक हरि की सरनाइ। दीजै नामु, रहै गुन गाइ ॥१६॥

रागु तिलंग

हरिजसु रे मना गाइलै जो संगी है तेरो।
अउसरु बीतिओ जात है कहिओ मानिलै मेरो ॥
संपति रथ धन राज सिउ अति नेहु लगाइओ ॥
काल-फास जब गलि परी सभ भइओ पराओ ॥
जानि बूझिकै बावरे तै काजु बिगारिओ ॥
पाप करत सकुचिओ नहीं नहिं गरबु निवारिओ ॥
जिह बिधि गुर उपदेसिओ सो सुन रे भाई।
नानक कहत पुकारिकै गहु प्रभु-सरनाई ॥१७॥

सलोक

गुन गोबिंद गाइओ नहीं, जनमु अकारथ कीन।
कहु नानक हरि भजु मना, जिहि बिधि जल कौ मीन ॥१॥
बिखिअन सिउ काहे रचिओ, निमिख न होहि उदास।
कहु नानक भजु हरि मना, परै न जम की फाँस ॥२॥
तरनापो योंही गइओ, लिइओ जरा तनु जीति।
कहु नानक भजु हरि मना, अउधि जाति है बीति ॥३॥

की तरह। गातु=शरीर। बिखिआ-बिखजिउ=विषयों को विष की तरह। बिहातु है=बीत रहा है।

१६. गहिओ न जाइ=काबू में नहीं आता है। सम्हारि=स्मरण किया।

१७. नहि गरबु निवारिओ=अभिमान दूर नहीं किया।

३. तरनापो=तरुणाई, जवानी। जरा=बुढ़ापा। अउधि=अवधि, आयु।

विरध भइओ सूझै नहीं, काल पहूंचिओ आन।
कहु नानक नर बावरे, किउ न भजै भगवान ॥४॥
पतित-उधारन भै-हरन, हरि अनाथ के नाथ।
कहु नानक तिह जानिहो सदा बसतु तुम साथ ॥५॥
तनु धनु जिह तोकउ दिओ, तासिउ नेहु न कीन।
कहु नानक नर बावरे, अब किउ डोलत दीन ॥६॥
सभ सुखदाता रामु है, दूसर नाहिन कोइ।
कहु नानक सुनि रे मना, तिह सिमरत गति होइ ॥७॥
जिह सिमरत गति पाइए, तिहि भजु रे तें मीत।
कहु नानक सुन रे मना, अउधि घटति है नीत ॥८॥
घटि घटि मै हरिजू बसै, संतन कहिओ पुकारि।
कहु नानक तिह भजु मना, भउनिधि उतरहि पारि ॥९॥
सुख दुख जिह परसै नही, लोभ मोह अभिमानु।
कहु नानक सुन रे मना, सो मूरत भगवान ॥१०॥
उसतति निंदा नाहिं जिहि, कंचन लोह समान।
कहु नानक सुन रे मना, मुकत ताहि तैं जानि ॥११॥
हरख सोग जाके नहीं, बैरी मीत समान।
कहु नानक सुन रे मना, मुकत ताहि तैं जानि ॥१२॥
भै काहूकउ देत नहिं, नहिं भै मानत आनि।
कहु नानक सुन रे मना, गिआनी ताहि बखानि ॥१३॥

---

४. विरध=वृद्ध।
७. गति=सद्‌गति, मुक्ति।
८. नीत=नित्य।
९. भउनिधि=संसार-समुद्र।
१०. परसै नहीं=छूता भी नहीं।
११. उसतति=स्तुति, प्रशंसा। मुकत=जीवन्मुक्त।
१३. आनि=दूसरों से।

जिहि माइआ ममता तजी, सभते भइओ उदास ।
कहु नानक सुन रे मना, तिह घटि ब्रहम-निवास ॥१४॥
भै-नासन दुरमति-हरन, कलि में हरि को नाम ।
निसदिन जो नानक भजै, सफल होहि तिह काम ॥१५॥
जिहवा गुन गोबिंद भजहु, करन सुनहु हरिनाम ।
कहु नानक सुन रे मना, परहि न जम कै धाम ॥१६॥
जो प्रानी ममता तजै, लोभ मोह अहँकार ।
कहु नानक आपन तरै, औरन लेत उधार ॥१७॥
जैसे जल ते बुदबुदा, उपजै बिनसै नीत ।
जगरचना तैसे रची, कहु नानक सुन मीत ॥१८॥
जो सुख को चाहे सदा, सरनि राम की लेह ।
कहु नानक सुन रे मना, दुरलभ मानुख-देह ॥१९॥
जो प्रानी निसिदिन भजै, रूप राम तिह जानु ।
हरिजन हरि अंतरु नहीं, नानक साची मानु ॥२०॥
मनु माइआ में फंधि रहिओ, बिसरिओ गोबिंद नाम ।
कहु नानक बिनु हरिभजन, जीवन कउने काम ॥२१॥
सुख में बहु संगी भए, दुख में संगि न कोइ ।
कहु नानक हरि भजु मना, अंति सहाई होइ ॥२२॥
जतन बहुत मैं करि रहिओ, मिटिओ न मन को मान ।
दुरमति सिउ नानक फँधिओ, राखि लेह भगवान ॥२३॥
मन माइआ में रमि रहिओ, निकसत नाहिन मीत ।
नानक मूरति चित्र जिउ, छाड़त नाहिन भीत ॥२४॥

---

१४. उदास=अनासक्त ।
१६. करन=कान से । परहि न जम कै धाम=मृत्युभय से छुटकारा पा जाता है ।
१८. बुद-बुदा=बुलबुला । नीत=नित्य, सदा ।
२०. रूप राम तिह जानु=उसे राम का ही रूप समझो ।
२१. फँधि रहिओ=फंदे में पड़ गया ।
२३. फँधिओ=फँस गया ।
२४. भीत=दीवार ।

जतन बहुत सुख के किए, दुख को किओ न कोइ ।
कहु नानक सुन रे मना, हरि भावै सो होइ ॥२५॥
झूठै मानु कहा करै, जगु सुपने जिउ जान ।
इनमें कछु तेरो नही, नानक कहिओ बखान ॥२६॥
जिह घटि सिमरनु राम को, सो नरु मुकता जानु ।
तिह नर हरि अंतरु नहीं, नानक साची मानु ॥२७॥
सिरु कंप्यो पगु डममगै, नैन जोति ते हीन ।
कहु नानक इह बिधि भई, तऊ न हरिरस लीन ॥२८॥
राम गइओ रावनु गइओ, जाको बहु परिवार ।
कहु नानक थिरु कछु नहीं, सुपने जिउ संसार ॥२९॥
चिंता ताकी कीजिए, जो अनहोनी होइ ।
इह मारगु संसार को, नानक थिरु नहिं कोइ ॥३०॥
जो उपजिओ सो बिनसिहै, परो आजु कै काल ।
नानक हरिगुन गाइले, छाड़ि सगल जंजाल ॥३१॥
संग सखा सभ तजि गए कोऊ न निबहिओ साथ ।
कहु नानक इह विपत में, टेक एक रघुनाथ ॥३२॥

---

२८. इह विधि भई=ऐसी दुर्दशा हो रही है। हरिरस=प्रभु के नाम-स्मरण का आनन्द ।

३१. परो=परसों । सगल=सकल, सारा ।

शेख फ़रीद

चोला-परिचय

जन्म-काल—अनिश्चित

पिता—ख्वाजा शेख मुहम्मद

निवास-स्थान—अजोधन (पाकपट्टन)

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-काल—९६० हिजरी, २१ रजब (सन् १५५२)

असल नाम इनका शेख बिरहम या इब्राहीम था। पाकपट्टन के आदि फ़रीद हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन मसऊद शकरगंज के यह वंशज थे, और फ़रीद इनकी उपाधि थी। इन्हें फ़रीद सानी अर्थात् फ़रीद द्वितीय भी कहते हैं। शेख बिरहम कलां, बलराजा, शेख बिरहम साहब और शाह बिरहम नामों से भी यह प्रसिद्ध हैं।

आदि फ़रीद याने हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन ईसा की तेरहवीं शती में विद्यमान थे। यह बहुत बड़े पहुंचे हुए सूफ़ी फ़कीर थे। दिल्ली के सुप्रसिद्ध हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया इनको अपना गुरु मानते थे। निज़ामुद्दीन ने इनकी प्रशंसा में एक बार कहा था :—

"मेरे पीर पवित्रात्मा मौलाना फ़रीद हैं;
उनके समान परमेश्वरने इस लोक में दूसरा नहीं सिरजा।"

यह द्वितीय फ़रीद या शेख बिरहम उनकी ११ वीं पीढ़ी में आते हैं। आदिगुरु बाबा नानक के साथ इन्हींका सत्संग हुआ था, और गुरु ग्रंथ साहिब में इन्हीं फ़रीद के २ पदों और १३० सलोकों का संग्रह मिलता है।

आदि फ़रीद की तरह यह भी ऊँची गति के महात्मा थे। इनके अनेक चमत्कारों की भी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। एक कथा है कि एक रात को एक चोर इनके घर में चोरी करने आया, और वह अंधा हो गया। सवेरा होते ही उसने शेख साहब से माफ़ी माँगी, और प्रतिज्ञा की कि आगे वह कभी ऐसा बुरा काम नहीं करेगा। शेख बिरहम ने उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना की, और उस चोर को फिर से दृष्टि मिल गई।

बाबा नानक दो बार अजोधन में जाकर इनसे मिले थे। इन दोनों महात्मओं का सत्संग प्रसिद्ध है। उस सत्संग में शेख फ़रीद ने कई आध्यात्मिक प्रश्न किये थे और बाबा नानक ने उन्हें उनके समुचित उत्तर दिये थे।

कहा जाता है कि शेख बिरहम के दो पुत्र भी थे—शेख ताजुद्दीन महमूद और शेख मुनव्वरशाह शहीद। शेख ताजुद्दीन भी एक ऊँचे

फ़कीर थे। शेख बिरहम के कई शागिर्द थे, जिनमें शेख सलीम चिश्ती फतेहपुरी बहुत प्रसिद्ध थे।

शेख बिरहम की मृत्यु २१ रजब, ९६० हिजरी सन् में हुई। ४२ बरसतक इन्होंने प्रेम व परमार्थ की अनमोल दौलत को दोनों हाथों से लुटाया, और खूब लुटाया।

बानी-परिचय

शेख फ़रीद की बानी बहुत रसभरी, खूब गहरी, और मरम पर सीधे चोट करनेवाली है। उनके कई सलोकों के अंदर गहरा रहस्य भरा हुआ है, और उन्हींमें उसके खोलने की कुंजी भी है। स्वरूप का साक्षात्कार करने के बाद ही इस आध्यात्मिक गहराई और ऊँचाईतक पहुँचा जा सकता है। वैराग्य की भी लहरें शेख फ़रीदने ऊँची-से-ऊँची उठाई हैं। इनका एक-एक शब्द अनूठा है। इनकी प्रेम-प्रीति की मीठी बानी में सूफी-रंग बहुत निखरा हुआ पाया जाता है।

भाषा पंजाबी-हिन्दी है, और बहुत मीठी और रसीली। कहने का ढंग ऐसा, मानों कूजे में समुन्दर भर दिया है। इनकी बानी जब पढ़ते हैं और सुनते हैं, तो तबीअत मस्ती में झूमने लगती है।

आधार

१ गुरुग्रंथ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन—मॅकालीफ

शेख फ़रीद

राग आसा

बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे।
इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे॥

---

१. शेख फरीद कहता है—मेरे प्यारे मित्रो! अल्लाह से जोड़लो अपनी प्रीति। यह शरीर तो खाक हो जायेगा, और इसका घर निगोड़ी कब्र में जा बनेगा। आज

आजु मिलावा सेख फरीद टाकिम ।
कूंजड़ीआ मनहु मचिंदड़ीआ ॥
जे जाणा मरि जाईऐ घुमि न आईए ।
झूठी दुनिया लगि न आपु वजाईए ॥
बोलीए सचु धरमु न झूठु बोलीए ।
जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीए ॥
छैल लंघदे पारि गोरी मनु धीरिआ ।
कंचन वंने पासे कलवति चीरिआ ॥
सेख हैयाती जगि न कोई थिरु रहिआ ।
जिसु आसणि हम बैठे केते बैसि गइआ ।
कतिक कूंजां चेति डउ सावणि बिजुलीआं ।
सीआले सोहंदीआं पिर गलि वाहड़ीआं ॥

उस प्रीतम से मिलन हो सकता है, शेख फ़रीद, यदि तू उन भावनाओं को काबू में करले, जो तेरे मन को बेचैन कर रही है ।

यदि यह पता होता कि मुझे मरना ही होगा, और फिर यहां लौटना न होगा,—

तो इस झूठी दुनिया से प्रीति जोड़कर मैं अपने आपको बर्बाद न कर बैठता ।

तू धरम से सच बोल; झूठ न बोल ।

जो रास्ता गुरु दिखादे, उसीपर चलना चाहिए शागिर्द को ।

प्रेमी के रास्ता पार कर लेने पर प्रियतमा को हिम्मत बँध जाती है ।

('छैल' या प्रेमी से मतलब यहाँ साधक से है, और 'गोरी' प्रियतमा से आशय है लक्ष्य-सिद्धि करनेवाले योगी से ।)

तू करौत से चीर दिया जायेगा, यदि कंचन को ओर लुभायेगा ।

अय शेख, इस दुनिया में कोई भी हमेशा रहनेवाला नहीं;

जिस पीढ़े पर हम बैठे हुए हैं, उसपर कितने बैठ चुके हैं !

जैसे कुलंग कातिक में आते हैं, चैत में दावानल देखने में आता है, और सावन में विजलियाँ कौंधती दिखाई देती हैं,—

और जाड़ों में जैसे कामिनी अपने प्रियतम के गले में बाहें डाल लेती है,

ऐसे ही सब (क्षणभर को) आते और फिर चल देते हैं, इस (सत्य) पर तू अपने मन में विचारकर ।

चले चलणहार विचारा लेइ मनो।
गंढ़ेदिआं छिअ माह तुड़ंदिआ हिकु खिनो ॥
जिमी पुछै असमान फरीदा खेवट किंनि गए।
जालण गोरा नालि उलामे जीअ सहे ॥१॥

राग सूही

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउ। बावलि होइ सो सहु लोरउं ॥
तैं सहि मन महि कीआ रोसु। मुझु अवगुन सह नाही दोसु ॥
तैं साहिब की मैं सार न जानी। जोबनु खोइ पाछै पछुतानी ॥
काली कोइल तू कित गुन काली। अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली ॥
पिरहि बिहून कतहि सुखु पाए। जा होइ कृपालु ता प्रभू मिलाए ॥
विधण खूही मुंध अकेली। ना कोइ साथी ना कोइ बेली ॥

मनुष्य के गढ़े जाने में तो लगते हैं छह मास, पर टूट जाता है वह एक क्षण में।

(अर्थात्, गर्भ में मनुष्य की आकृति छह महीने में बनती है।)

जमीन ने आसमान से पूछा—फरीद कहता है—कितने खेनेवाले, पार लगाने-वाले (धार्मिक मार्ग-दर्शक) चले गये!

कुछ तो जल-बलकर खाक हो गये, और कुछ कब्रों में पड़े हुए हैं, और उनकी रूहें झिड़कियाँ झेल रही हैं।

२. विरह-ज्वर से मेरा अंग-अंग जल रहा है, और मैं अपने हाथों को मरोड़ती हूँ,
प्रीतम से मिलने की लालसा ने मुझे बावली बना दिया है।
प्यारे, तू अपने मन में मुझसे रूठ गया था,
सो इसमें मेरा ही दोष था प्यारे, तेरा नहीं।
मेरे स्वामी, मैंने तेरे गुणों को पहचाना नहीं;
मैंने अपना जोवन गँवा दिया और पीछे बहुत पछताई—
री काली कोयल, तू किस कारण काली हुई?
'अपने प्रीतम के विरह में जल-भुनकर;'
अपने प्यारे से विलग होकर क्या किसीको कभी सुख मिला?
उस प्रभु से मिलना उसीकी कृपा से बन सकता है।
कुआँ यह बहुत दुखदाई है, और वह बेचारी अकेली उसमें जा पड़ी है;
(कुआँ अर्थात् संसार; अकेली स्त्री अर्थात् जीवात्मा।)

वाट हमारी खरी उडीणी। खंनिअह तिखी बहुतु पिईणी ॥
उसु ऊपरि है मारगु मेरा। सेख फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा ॥२॥

सलोक

जितु दिहाड़ै धनवरी साहे लए लिखाइ ।
मलकु जिकंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ ॥
जिंदु निमाणी कढीऐ हडा कूं कड़काइ ।
साहे लिखे न चलनी जिंदू कूं समझाइ ॥
जिंदु वहूटी मरणु वरु लैंजासी परणाइ ।
आपण हथी जोलिकै कै गलि लगै धाइ ॥
वालह निकी पुरसलात कंनी न सुणीआइ ।
फरीदा किडी पवंदई खड़ा न आपु मुहाइ ॥१॥

न उसकी वहाँ कोई सहेली है, न कोई वेली,
मेरी बड़ी ही विकट वाट है;
दोधारी तलवार से भी तेज़ और बहुत पैनी;
उसपर मुझे चलना है ;
शेख फरीद, तैयार होजा उस मार्ग पर चलने को—अभी समय है ।

१. वह दिन पहले ही लिख दिया गया था, जिस दिन कि धनवंती का ब्याह होना था ।

जिस दूलह के बारे में सुन रखा था वह अपना मुखड़ा दिखाने आ पहुँचा है । हाड़ों को कड़काकर वह उस बेचारी धनवंती को खींचकर अपने साथ ले जायेगा ।

अपनी जीवात्मा को तू समझादे, कि जो घड़ी नियत हो चुकी उसे बदला नहीं जा सकता ।

जीवात्मा दुलहिन है, और मृत्यु है दूलह; वह उसे ब्याहकर अपने साथ ले जायेगा ।

विदा होते समय, वह बेचारी किसके गले में अपनी बाहें डालेगी ?

क्या तुमने सुना नहीं कि वह दुलहिन बाल से भी कहीं अधिक महीन है ?

फरीद, जब तेरा बुलावा आये, उठकर खड़ा हो जाना और अपने आपको धोखा न देना ।

किछु न बुझै किछु न सुझै दुनीआ गुझी भाहि ।
साईं मेरैं चंगा कीता नाही त हंभी दझां आहि ।।२।।
फरीदा जे तू अकलि लतीफ काले लिखु न लेखु ।
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नीवां करि देखु ।।३।।
फरीदा जो तैं मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि ।
आपनड़े घरि जाईए पैर तिन्हादे चुंमि ।।४।।
फरीदा जां तउ खटण वेल तां तू रता दुनी सिउ ।
मरग सवाई नीहि जां भरिआ तां लदिआ ।।५।।
देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर ।
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूर ।।६।।
देखु फरीदा जु थीआ शकर होई विसु ।
साई बाझहु आपणे वेदणु कहीऐ किसु ।।७।।

---

२. मैं न कुछ जानता हूँ, न कुछ देखता हूँ—दुनिया यह गोया धधकती हुई आग है;

मेरे साईं ने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया, नहीं तो मैं भी इसमें जलबल गया होता ।

३. फ़रीद, अगर तू तेज़ अक्ल रखता है, (तो दूसरों के खिलाफ़) काले अंक मत लिख ।

अपना सिर झुकाकर तू तो अपने ही गरीवां को तरफ देख ।

(मतलब यह कि दूसरों के दोष मत देख ; तू तो अपने दिल को देख कि उसमें कितने क्या दोष भरे पड़े हैं ।)

४. फ़रीद, अगर लोग तुझे मुक्कों से मारें, तो बदले में तू उन्हें मत मार; तू तो उनके क़दमों को चूमकर अपने घर चलाजा ।

५. फ़रीद, जब तेरे कमाने के दिन थे, तब तो तू दुनिया के रंग में रँगा हुआ था ।

मौत की नींव मज़बूत है; खेप के भरते ही वह लादनहार लेकर चल देगा ।

(मतलब यह कि आखिरी सांस पूरी हुई कि मौत उसी पल जीव को खींचकर ले जायेगी ।

६. फरीद, देख तो ज़रा, यह क्या हुआ—तेरी दाढ़ी सफेद हो गई;

आगा तेरा नज़दीक है, और पीछा दूर छूट गया ।

७. फ़रीद देख तो ज़रा यह क्या हुआ—शकर भी विष हो गई ।

फरीदा कालीं जिन्ही न राविआ धउली रावै कोइ ।
करि साईं सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ ॥८॥
फरीदा जिन्ह लोइण जगु मोहिआ से लोइण मै डिठु ।
काजल रेख न सहदिआ से पंखी सूइ बहिठु ॥९॥
फरीदा खाकु न निंदीऐ खाकू जेडु न कोइ ।
जीवदिया पैरा तलै मुइआ ऊपरि होइ ॥१०॥
फरीदा जा लबु त नेहु किआ लबु त कूड़ा नेहु ।
किचरु झति लघाईऐ छपरि तुटै मेहु ॥११॥
फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि ।
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि ॥१२॥

अपने स्वामी को छोड़ अब मैं और किसे अपना दुखड़ा सुनाऊँ ?

८. क्या किसी नारीने, जब उसके केश काले थे, स्वामी के साथ रमण न कर, तब रमण किया, जब कि उसके केश पककर श्वेत हो गये ?

खैर, साईं से तू अब भी प्रीति जोड़ले, जिससे कि तेरे केशों का रँग फिर से नया हो जाये ।

('रंगन वेला' भी एक पाठ है—जिसका अर्थ यह हुआ कि यही स्वामी के साथ रंग खेलने का याने प्रेम करने का समय हैं ।)

९. फ़रीद, मैंने उन नयनों को देखा है, जिन्होंने दुनिया को मोह लिया था—

और जो काजल की रेख भी सहन नहीं करते थे; अब चिड़ियां उनमें अपने अंडे रख रही हैं ।

१०. फ़रीद, मत खाक की निंदा कर, खाक के बराबर कोई चीज नहीं;

जीते-जी वह हमारे पैरों के तले रहती है, और हमारे मरने पर हमारे ऊपर ।

११. फ़रीद, जहाँ लोभ है, वहाँ प्रेम कहाँ से होगा ? लोभ होगा तो प्रेम वहाँ झूठा होगा ।

टूटे छप्पर के नीचे मेह में तू आखिर कितने दिन गुज़ारेगा ?

१२. फरीद, शाखों और काँटों को तोड़ता हुआ एक जंगल से दूसरे जगल में तू क्यों भटकता फिरता है ?

रब तो तेरे हिये में ब सरहा है; फिर जंगल में उसे तू क्यों ढूंढ़ रहा है ।

फरीदा इनी निकी जंघीऐ थल डूगर भविओम्हि ।
अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहां थीओमि ॥१३॥
फरीदा राती वडीआं धुखि धुखि ऊठनि पास ।
धिगु तिन्हादा जीविआ जिन्हा बिडाणी आस ॥१४॥
फरीदा गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु ।
चला त भीजै कंबली रहां त तुटै नेहु ॥१५॥
भिजउ सिजउ कंबली अलह वरसउ मेहु ।
जाइ मिला तिन्हा सजणा तुटउ नाही नेहु ॥१६॥
फरीदा मैं भोलावा पगड़ी मत मैली होइ जाइ ।
गहिला रूहु न जाणई सिरु भी मिटी खाइ ॥१७॥
फरीद सकर खंडु निवात गुडु माखिउ मांझा दुधु ।
सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु ॥१८॥

---

१३. फरीद, इन पतली जाँघों व पिंडलियों से कितने ही मैदानों और पहाड़ों को मैंने तय किया ।

पर, आज फ़रीद के लिए अपना कूजा उठाना भी मानों सैंकड़ों कोसों की मंजिल तय करना हो गया ।

१४. फ़रीद, रातें लंबी हो गईं; पसलियों में हूक उठ रही है—दर्द से करवटें बदलनी पड़ रही है ।

१५. फ़रीद, गलियों में कीचड़-ही-कीचड़ हैं; और प्यारे का घर, जिससे कि मैंने प्रीति जोड़ी है, दूर है;

अगर मैं उसके पास जाऊँ तो मेरी कंबली भीग जायेगी, और मैं अपने घर रहूँ तो मेरी प्रीति टूट जायेगी ।

१६. अल्लाह, भलेही तू मेह बरसाये, और मेरी कम्बली को भिगो-भिगोकर तर करदे, फिरभी अपने प्यारे साजन से मेरा मिलना होकर ही रहेगा, ताकि हमारी प्रीति न टूटे ।

१७. फ़रीद, मैं डरता हूँ कि कहीं मेरी पगड़ी मिट्टी से मैली न हो जाये;

मेरा बावला जी यह नहीं जानता कि पगड़ी तो क्या मेरे इस सिर को भी यह मिट्टी सड़ा-गलाकर खा जायेगी ।

१८. फ़रीद ! शक्कर, खांड, कंद, गुड़ और शहद और भैंस का दूध—

ये सभी चीज़ें मीठी हैं, पर अय मेरे रब, उतनी मीठी नहीं, जितना कि तू मीठा है ।

फरीद रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख।
जिन्हा खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख ॥१६॥
आजु न सूती कंत सिउ अंगु मुड़े मुड़ि जाइ।
जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैणि बिहाइ ॥२०॥
जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ।
फरीदा किती जोबन प्रीति बिनु सूकि गए कुमलाइ ॥२१॥
फरीदा ए विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि।
इकि राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि ॥२२॥
फरीदा दरि दरवाजै जाइकै किउ डिठो घड़ीआलु।
एहु निदोसां मारीऐ हम दोसा दां किआ हालु ॥२३॥
घड़ीए घड़ीए मारीए पहरी लहै सजाइ।
सो हेड़ा घड़ीआल जिउ डुखी रैणि बिहाइ ॥२४॥

---

१६. मेरी काठ की जैसी तो रोटी है, और लावण (तरकारी या चटनी) है मेरी भूख।

जो घी-चुपड़ी खाते हैं, उन्हें बहुत दुख उठाना पड़ेगा।

गई रात को मैं अपने स्वामी के साथ नहीं सोई; मेरा अंग-अंग मरोड़ा ले रहा है। किसी दोहागिन (परित्यक्ता) से जाकर पूछ कि 'तू रात कैसे काटती है ?'

२१. यौवन जाने से मैं नहीं डरती, यदि उसके साथ प्रीतम की प्रीति न जाये;
फ़रीद ! कितनी बार बिना प्रीति के यौवन सूख गया, कुम्हला गया !

२२. फ़रीद, ये (संसारी) सुख खांड से चुपड़े विष के अँकुरे हैं;

कुछ तो उनको रोपते हुए ही चल बसे; और कुछ उजड़ गये उन्हें चुनते हुए।

२३. फरीद, न्यायालय के दरवाज़े पर जब तू गया, तब तूने क्या उस घड़ियाल को नहीं देखा ?

जब उस बेगुनाह को वहाँ इस तरह पीटा जाता है, तब हम गुनहगारों का क्या हाल होगा ?

२४. घड़ी-घड़ी उसपर मार पड़ती, और हर पहर उसे पूरी सज़ा मिलती है; ऐसेही घड़ियाल की तरह यह देह दरदभरी रैन काटती है।

बुढा होआ सेख फरीदु कंबरिण लगी देह।
जे सउ वहिंणा जीवणा भी तनु होसी खेह ॥२५॥
फरीदा बारि पराइऐ बैसणा साई मुझै न देहि।
जो तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि ॥२६॥
फरीदा इकना आटा अगला इकना नाही लोण।
अगै गए सिंञापसन्हि चोटां खासी कोणु ॥२७॥
पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड।
जाइ सुते जीराण महि थीए अतीमा गड ॥२८॥
फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ उसारेदे भी गए।
कूड़ा सउदा करि गए गोरी आइ पए ॥२९॥
फरीदा खिथड़ि मेखा अंगलीआ जिंदु न काई मेख।
वारी आपो आपणी चले मसाइक सेख ॥३०॥

---

२५. शेख फरीद अब बुड्ढा हो गया, और देह उसकी लड़खड़ाने लगी है। वह यदि सौ बरस भी जीये; तोभी उसकी देह को आखिर खाक में ही मिलना है।

२६. साईं, मुझे किसी दूसरे के दरवाजे पर न बिठाना, न मँगवाना;
अगर तू ऐसाही कराना चाहे, तो उससे पहले ही मेरे प्राणों को देह से निकाल लेना।

२७. फरीद, किसीके पास तो बहुत सारा आटा है, और किसीके पास नमक भी नहीं;
यह तो उन सबके यहां से जाने के बाद ही मालूम हो सकेगा कि सज़ा किसे मिलेगी।

२८ जिनके साथ नगाड़े और तुरही बजते थे, जिनके सिर पर राज-छत्र रहते थे, और जिनकी विरुदावली चारण गाते थे—
वे कब्रस्तान में सोने के लिए चले गये, और वहाँ गरीब यतीमों की तरह दफना दिये गये।

२९. फरीद, जिन्होंने मकान, हवेलियाँ और ऊँचे-ऊँचे महल बनवाये थे, वे भी चले गये;
वे झूठा सौदा करके गये, और क़ब्र में डाल दिये गये।

३० फरीद, अंगरखे में, टिकाऊ बनाने के लिए, बहुत सारे टाँके लगा दिये हैं, पर जिंदगी में ऐसा कोई टाँका नहीं लगा हुआ है।

फरीदा कंनि मुसला सूफ़ गलि दिलि काती गुड़ु वाति।
बाहरि दिसै चानणा दिलि अंधिआरी राति ॥३१॥
फरीदा रती रतु न निकलै जे तनु चीरै कोइ।
जो तन रते रब सिउ तिन तन रतु न होइ ॥३२

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए चितु
मिटी पई अतोलवी कोइ न होसी मितु ॥३३॥

फरीदा मंडप मालु न लाइ, मरग सताणी चित्ति धरि।
साईं जाइ सम्हालि, जिथै ही तउ वंञणा ॥३४॥

फरीदा काले मैडे कपड़े काला मैडा वेसु।
गुनही भरिआ मै फिरा लोकु कहै दरवेसु ॥३५॥

(मतलब यह कि ऐसी कोई चीज नहीं, जो शरीर के पिंजड़े में से प्राण-पंछियों को उड़जाने से रोक सके।)

शेख और उनके शागिर्द, जब जिसकी बारी आई, सभी चल दिये।

३१ फरीद, वे कंधे पर मुसल्ला रखते हैं, सूफ़ी की कफ़नी पहनते हैं, और मीठी-मीठी बात करते हैं, पर दिलों में वे छुरी रखते हैं;

बाहर तो वे चाँदनी फैलाते रहते हैं, मगर दिलों में उनके काली अँधेरी रात झुक रही है।

३२. फरीद कहता है—अगर कोई मेरे इस शरीर को चीरे, तो इसमें से रत्तीभर भी रक्त नहीं निकलेगा;

जो शरीर रब के रँग में रंग गया है, उसमें फिर रक्त नहीं रहता।

३३. फ़रीद, इन मकानों, हवेलियों और ऊँचे-ऊँचे महलों में मत लगा अपने मन को;

जब तेरे ऊपर बिनतोल मिट्टी पड़ेगी, तब वहाँ तेरा वहाँ कोई भी मीत नहीं होगा।

३४. फ़रीद, हवेलियों और दौलत में अपना दिल न लगा; तो क़ब्र का ध्यान कर—
याद कर उस जगह को, जहाँ तुझे जाना ही होगा।

३५. फ़रीद, काले मेरे कपड़े हैं, और काला ही मेरा भेष है,
मैं तो फिर रहा हूँ गुनाहों से भरा हुआ, और लोग कहते हैं मुझे दरवेश!

जां कुआरी तां चाउ वीवाही तां मामले ।
फरीदा एहो पछोताउ पति कुमारी ना थीएे ॥३६॥
चलि चलि गईआं पंखिआ जिनो वसाये तल ।
फरीदा सरु भरिआ भी चलसी थके कवल इकल ॥३७॥
फरीदा इंट सिराणे भुइ सवणु कीड़ा लड़िओ मासि ।
केतड़िआ जुग वापरे इकतु पइआ पासि ॥३८॥
उठु फरीदा उजू साजि सुबह निवाज गुजारि ॥
जो सिरु साईं ना निवै सो भिरु कपि उतारि ॥३९॥
जो सिरु साईं ना निवै सो सिरु कीजै कांइ ।
कुंने हेठि जलाईऐ बालण संदै थाइ ॥४०॥
फरीदा किथै तैडे मा पिआ जिन्ही तू जणिओहि ।
तै पासहु ओइ लदि गए तू अजै न पतीणोहि ॥४१॥

---

३६. जबतक वह कुवाँरी है, तभीतक उसमें उछाह है; ब्याह होते ही आफतों में पड़ जाती है ।

फ़रीद, उसे पछताव है कि वह फिर से कुवाँरी नहीं हो सकती ।

(विवाह-बन्धन से तात्पर्य है मायाकृत वन्धन से; 'कुमारी' से आशय शुद्ध आत्मा से है ।)

३७. वे सब पत्ती, जिनसे कि तालाव आवाद था, उड़ गये;

फ़रीद, यह भरा तालाव भी रहने का नहीं, अकेले कमल ही रहेंगे ।

(पत्ती=राजे-महाराजे और उच्च पदाधिकारी । तालाब=संसार । कमल=संतजन ।)

३८. फरीद, ईंटें तो होंगी तेरा तकिया, और तू सोयेगा जमीन के नीचे; कीड़े तेरे मांस को खायेंगे;

एक ही करवट पड़े-पड़े कितने जुग वीत जायेंगे तेरे !

३९. उठ सवेरे, फरीद, वजू कर और नमाज पढ़ ;

काटकर फेकदे उस सर को, जो मालिक के आगे नहीं झुकता ।

४०. उस सर को लेकर करेगा क्या, जो रब के आगे नहीं झुकता ? ईंधन की वजाय जलादे उसे घड़े के नीचे ।

४१. फरीद, कहाँ हैं तेरे माँ-बाप, जिन्होंने कि तुझे जनम दिया था ?

तेरे पास से वे चले गये; आजभी तुझे विश्वास नहीं होता कि दुनिया यह नापायदार है ?

फरीदा मै जानिश्रा दुखु मुझकू दुखु सबाइऐ जगि ।
ऊचे चड़िकै देखिश्रा तां घरि घरि एहा श्रगि ॥४२॥

कागा करंग ढढोलिश्रा सगल खाइश्रा मासु ।
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की श्रासु ॥४३॥

फरीदा गोर निमाणी सडुकरे निघरिश्रा घरि श्राउ ।
सरपर मैथै श्रावणा मरणहु ना डरिश्राहु ॥४४॥

इन्ही लोइणी देखिदिश्रा केती चलि गई ।
फरीदा लोकां श्रापो श्रापणी मै श्रापणी पई ॥४५॥

कंधी उतै रूखड़ा किचरकु बंन्है धीरु ।
फरीदा कचै भांडै रखीऐ किचरु ताई नीरु ॥४६॥

फरीदा दरीश्रावै कंनै बगुला बैठा केल करै ।
केल करेदे हंझ नो श्रचिंते बाज पए ॥

---

४२. फरीद, मैं समझता था कि दुख मुझे ही है, मगर दुख तो सारी ही दुनिया को है;

जब ऊँचे चढ़कर देखा, तब मैंने पाया कि यह श्राग तो हरघर में लग रही है ।

४३. कौवो ! तुमने मेरी ठठरी का खोज-खोजकर सारा मांस खा डाला; पर इन दो नयनों को चोंच न लगाना, क्योंकि मुझे श्रबभी श्रपने प्रीतम के देखने की श्रास है ।

४४. फरीद, निगोड़ी कब्र बुला रही है, 'श्रय बेघरवालों ! इस घर में श्रा बसो ।
मेरे यहाँ तो तुम्हें श्राना ही होगा; मत डरो मौत से ।'

४५. मेरी इन्हीं श्राँखों के श्रागे कितने यहाँ से चले गये !

फ़रीद, लोग श्रब श्रपनी-श्रपनी फिक्र में हैं, श्रौर मैं श्रपनी फिक्र में हूँ ।

४६. तट पर के वृक्ष कबतक श्रपना ठौर बनाये रहेंगे ?
फरीद, कच्चे घड़े में तू पानी रखेगा तो वह कबतक उसमें रह सकेगा ?

४७. फरीद, नदी के तीर बगुला बैठा हुश्रा कलोल कर रहा है;
उसके कलोल करते समय बाज श्रचानक उसपर श्रा झपटता है;

बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं ।
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं ॥४७॥
फरीदा हउ बलिहारी तिन्ह पंखिआ जंगलि जिंना वासु ।
कंकरु चुगति थलि वसनि रब न छोड़न्हि पासु ॥४८॥
फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ ।
ऐथै दुख घणेरिआ आगै ठउरु न ठाउ ॥४९॥
फरीदा पिछल राति न जागिओहि जीवदड़ो मुइओहि ॥
जेनै रबु विसारिआ त रबि न विसारिओहि ॥५०॥
ढूढेदीए सुहाग कू तउ तनि काई कोर ।
जिन्हा नाउ सुहागणी तिना झाक न होर ॥५१॥
तनु तपै तनूर जिउ बालणु हड बलंन्हि ।
पैरी थकां सिरि जुलां जे मूं पिरी मिलंन्हि ॥५२॥

रब का भेजा बाज जब उसपर झपटता है, वह अपना सारा केल-कलोल भूल जाता है ।

रब ऐसी-ऐसी चीज़ कर बैठता है, जिसका मन में खयाल भी नहीं आता ।

४८. फरीद, बलिहारी उन पक्षियों पर, जो जंगल में रहते हैं, फल खाते हैं, ज़मीन पर सोते हैं, और रब का आसरा नहीं छोड़ते ।

४९. फरीद, भयावने हैं उनके चेहरे, जिन्होंने उस मालिक का नाम भुला दिया; यहाँ तो उन्हें भारी दुख है ही, आगे भी उनके लिए कोई ठौर-ठिकाना नहीं ।

५०. फरीद, अगर तू रात के पिछले पहर नहीं जागता, तो तू जिंदा भी मरा हुआ है । तू रब को भुला भी दे, पर रब तुझे भूलने का नहीं ।

५१. तू अपने सुहाग को, अपने प्रीतम को खोज रही है, तो तेरे अन्दर ज़रूर कोई-न-कोई कमी है;

जिसे सुहागिन कहते हैं वह किसी और की तरफ़ झांकती भी नहीं ।

५२. शरीर मेरा तन्दूर की तरह तप रहा है, मेरी हड्डियाँ ईंधन की लकड़ी की तरह जल रही हैं;

मेरे पैर अगर थक जायें, तोभी मैं अपने प्रीतम से मिलने सिर के बल चलकर जाऊँगी ।

सरवर पंखी हेकड़ो फाहीवाल पचास ।
इहु तनु लहरी गडु थिआ सचे तेरी आस ॥५३॥
कवणु सु अखरु कवणु गुणु कवणु सु मणीआ मंतु ।
कवणु सु वेसो हउ करी जितु वसि आवै कंतु ॥५४॥
निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहवा मणीआ मंतु ।
एत्रै भैणे वैस करि ता वसि आवी कंतु ॥५५॥
मति होदी होइ इआणा, ताण होदे होइ निताणा ।
अणहोदे आपु वंडाए, कोई ऐसा भगतु सदाए ॥५६॥
इक फिका ना गालाइ सभना मै सचा धणी ।
हिआउ न कैही ठाहि माणिक सभ अमोलवे ॥५७॥
सभना मन माणिक ठाहणु मूलि म चांगवा ।
जे तउ पिरी आसिक हिआउ न ठाहे कहीदा ॥५८॥

---

५३. तालाब में पक्षी तो अकेला एक है, और फँसाने के जाल हैं पचास; यह शरीर लहरों में डूब रहा है; अय सच्चे मालिक ! मुझे अब एक तेरी ही आशा है ।
(पक्षी=जीवात्मा । जाल=सांसारिक प्रलोभन ।)

५४. वह कौन-सा शब्द है, वह कौन-सा गुण है, वह कौन-सा अनमोल मन्त्र है;
मैं कौन-सा भेष धारूँ, जिससे कि मैं अपने स्वामी को वस में करलूँ ?

५५. दीनता वह शब्द है; धीरज वह गुण है, शील वह अनमोल मन्त्र है;
तू इसी भेष को धारण कर, बहिन, तेरा स्वामी तेरे वस में हो जायेगा ।

५६. प्रभु के ऐसे विरले ही भक्त है,—
जो, बुद्धिमान होते हुए भी, सरल हैं,
जो, बलवान होते हुए भी, निर्बल हैं,
और, जो अकिंचन होते हुए भी, अपना सर्वत्र दे डालते हैं ।

५७. एक भी अप्रिय बात मुँह से न निकाल, क्योंकि सच्चा मालिक हर प्राणी के अंदर है ।
किसीके दिल को तू मत दुखा; हर दिल एक अनमोल रतन है,

५८. हर दिल एक रतन है; उसे दुखाना किसी भी तरह अच्छा नहीं
अगर तू प्रीतम का आशिक है, तो किसीके भी दिल को न सता ।

स्वामी दादू दयाल

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६०१ वि०

जन्म-स्थान—अहमदाबाद (गुजरात)

कुल—नागर ब्राह्मण; मतांतर से धुनिया मुसल्मान

साधन तथा उपदेश-स्थान—मध्यदेश, जयपुर राज्यांतर्गत साँभर, आंबेर तथा नराणा ग्राम

निर्वाण-संवत्—१६६० वि०

निर्वाण-स्थान—नराणा ग्राम (जयपुर से २० कोस दूर)

स्वामी दादू दयाल की जन्म-कथा ठीक वैसी ही लोक-प्रचलित है, जैसी कि कबीरदासजी की जन्म-कथा। कहते हैं कि लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी के तट पर एक नवजात बालक बहता हुआ मिला, और उसे उठाकर वह अपने घर ले आया। यही बालक पीछे दादू के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१२ वर्ष की अवस्था में ही दादूजी सत्संग के लिए घर से निकल पड़े। किंतु माता-पिता ने पीछा करके इन्हें पकड़ लिया, और इनका विवाह कर दिया। पर संसारी बंधन इन्हें बाँध नहीं सका। सात बरस बाद यह फिर घर से निकल गये। साँभर पहुँचे, और वहाँ धुनिये का काम करने लगे। इसपर से एक मत यह भी हुआ कि दादू दयाल धुनिये जाति के थे।

दादूजी ने १२ वर्षतक सतत सहजयोग की कठिन साधना की। निरन्तर भक्ति-रस में लौलीन रहने की अति ऊँची अवस्था को इन्होंने प्राप्त कर लिया, और यह अंतर्मुख हो गये।

दादूजी का दया का अंग तो पराकाष्ठा को पहुँच गया। दया-पारमिता को सहजयोग से प्राप्त कर लिया। लोग इन्हें 'दयाल' के प्यारभरे नाम से पुकारने लगे। दया-दर्शन का एक इनका बड़ा सुंदर प्रसंग है। एक दिन अपनी कोठरी में यह ध्यान-मग्न बैठे थे। कुछ

ईर्ष्यालु ब्राह्मणों ने ईटों से कोठरी का द्वार चिन दिया। ध्यान से जागने पर द्वार बंद पाया, और जब बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिला तो फिर उसी प्रकार ध्यान लगाकर बैठ गये। इस तरह कई दिनोंतक यह ध्यानस्थ कोठरी में बंद रहे। लोगों को जब मालूम हुआ तो द्वार खोला, और उन दुष्टों को दंड देना चाहा। दयाल ने दंड देने से मना किया। बोले—"इन लोगों ने तो कोठरी के द्वार को ईटों से चिनकर अच्छा ही किया था, इनकी कृपा से ही तो इतने दिनोंतक मैं भगवान् के ध्यान में लौलीन रहा। धन्य है इनकी कृपा-भावना को।"

संवत् १६४२ में अकबर बादशाह से दादू दयाल फतेहपुर सीकरी में मिले थे। अकबर के पूछने पर कि खुदा की ज़ात, अंग, वजद और रंग क्या है, इन्होंने जवाब दिया—

"इसक अलाह की जाति है, इसक अलाह का अंग।
इसक अलाह औजूद है, इसक अलाह का रंग॥"

दादू दयाल के यों तो सैकड़ों-सहस्रों शिष्य थे, पर १५२ उनके प्रमुख शिष्य थे, और उनमें भी ५२ और भी अंतरंग थे, यद्यपि किसीको वे गुरु-दीक्षा नहीं देते थे। उनके महान् त्याग, ऊँचे प्रेम और अथाह दया ने हज़ारों को खींच लिया था। गरीबदास, बखना, रज्जब, सुंदरदास ये दादू-सौर-मण्डल के अत्यंत प्रकाशमान नक्षत्र गिने जाते हैं।

दादू-पंथ में सैकड़ों संत कवि हुए हैं। बहुत बड़ा साहित्य है इस संप्रदाय का। माधोदास का 'संतगुणसागर,' जनगोपाल की 'जन्म-लीला,' राघौदास की 'भक्तमाल,' जग्गाजी की 'भक्तमाल' और जैमल की 'भक्तविरुदावली' दादू-पंथी परंपरा के प्रमुख प्रामाणिक ग्रंथ माने जाते हैं।

स्वामी दादूजी महाराज ने नराणे ग्राम में संवत् १६६० में देहत्याग किया। इसी स्थान में दादूपंथियों की मुख्य गद्दी है, जिसे दादूद्वारा कहते हैं। दादू-पंथी साधु हाथ में सुमरनी रखते हैं, और आपस में 'सत्तराम' कहकर अभिवादन करते हैं।

बानी-परिचय

दादू दयाल की बानी को कबीरदास की बानी के जोड़ की कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। सगुणपक्ष में भक्त कवियों में जैसे तुलसी और सूर, वैसे ही निर्गुणपक्ष के संत-कवियों में कबीर और दादू। इनकी प्रेमतत्त्व की व्यंजना तो बहुत ही ऊँची और गहरी है। कितने ही शब्दों व साखियों में प्रेम और विरह का निरूपण अत्यंत निर्मल और अनुपम हुआ है। इतने ऊँचे घाट की बानी अन्यत्र बहुत ही कम देखने में आती है। दादू के शब्दों में आप अन्तर को वेधनेवाली सूक्ष्म-से-सूक्ष्म दृष्टि और अमृत-रस से सींचा हुआ स्वानुभव पायेंगे।

अनेक शब्दों व साखियों में कबीर का रंग देखने में आता है, पर कहने का ढंग दादू का अपना है। कबीर को यह गुरुवत् मानते भी थे। इनकी इन दो साखियों को देखिए :—

"जो था कंत कबीर का सोई बर बरिहूँ।
मनसा वाचा कर्मना मैं और न करिहूँ।।
सांचा सबद कबीर का मीठा लागै मोहि।
दादू सुनतां परमसुख केता आनंद होहि।।"

किंतु कबीर की तरह इन्होंने सत्य की राह से भटकानेवाले पंडितों और मुल्लों पर प्रहार नहीं किये। खंडन-मंडन से इन्हें रुचि नहीं थी। संतमत का मंथनकर सद्य: प्रेम-नवनीत ही दया के समभाव से दादू दयाल ने दोनों हाथों से लुटाया है।

भाषा भी इनकी बड़ी जानदार है। अनेक जनपदों के शब्दों का मुक्त प्रयोग इन्होंने किया है। फारसी के भी सैकड़ों शब्द इनकी रस-वंती बानी में आये हैं। कुछ पद इनके पंजाबी और गुजराती के भी मिलते हैं।

जैसे एक दीये से सैकड़ों दीयों को जलाते हैं, उसी तरह दादू दयाल की बानी से अलौकिक प्रकाश ले-लेकर अनेक संत कवियों ने साखियों व शब्दों की अमृत प्रसादी लोक में वितरण की है।

आधार

१ श्री स्वामी दादू दयाल की वाणी (अंगबंधू सटीक)—चंद्रिका-प्रसाद त्रिपाठी, जोन्सगंज, अजमेर

२ साध-संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल—स्वामीबाग, आगरा

३ गरीबदासजी की बानी—स्वामी मंगलदास, श्री स्वामी लक्ष्मी-राम ट्रस्ट, जयपुर

स्वामी दादू दयाल

शबद

राग गौड़ी

अजहुँ न निकसैं प्राण कठोर।
दर्सन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर ॥
चारि पहर चार्यौं जुग बीते, रैनि गँवाई भोर।
अवधि गई अजहूँ नहिं आये, कतहूँ रहे चितचोर ॥
कबहूँ नैन निरखि नहिं देखे, मारग चितवत तोर।
दादू ऐसैं आतुर बिरहणि, जैसैं चंद चकोर ॥१॥
बिरहनि कौं सिंगार न भावै, है कोई ऐसा रांम मिलावै।
बिसरे अंजन मंजन चीरा, बिरह बिथा यहु व्यापै पीरा ॥
नवसत थाके सकल सिंगारा, है कोइ पीड़ मिटावणहारा।
देह ग्रेह नहीं सुधि सरीरा, निसिदिन चितवत चात्रिग नीरा ॥
दादू ताहि न भावै आंन, रांम बिना भई मृतक समांन ॥२॥
मन निर्मल तन निर्मल भाइ, आंन उपाइ बिकार न जाइ।
जो मन कोयला तौ तन कारा, कोटि करै नहि जाइ बिकारा ॥

१. चारि पहर...बीते=चार पहर चार युग की तरह कटे। भोर=सवेरा। रैनि गँवाई भोर=सारी रात तड़पते-तड़पते काटी तब कहीं सवेरा हुआ।

२. चीरा=वस्त्र। नवसत=सोलह (शृंगार)। थाके=व्यर्थ गये। चात्रिग=चातक, पपीहा। नीरा=जल; यहाँ दर्शन से आशय है। आन=दूसरी कोई चीज।

जो मन बिसहर तौ तन भुवंगा, करै उपाइ बिषै फुनि संगा ।
मन मैला तन उज्जल नांहीं, बहुत पचिहारे बिकार न जाहीं ॥
मन निर्मल तन निर्मल होई, दादू साच बिचारै कोई ॥३॥

ऐसा जनम अमोलिक भाई, जाथैं आइ मिलै रांम राई ।
जाथैं प्राण प्रेम रस पीवै, सदा सुहाग सेज सुख जीवै ॥
आतम आइ रांम सौं राती, अखिल अमर धन पावै थाती ।
परगट परसन दरसन पावै, परम पुरिख मिलि मांहिं समावै ॥
ऐसा जनम नहीं नर आवै, सो क्यूं दादू रतन गँवावै ॥४॥

रांम रस मीठा रे, कोई पीवै साध सुजाण ।
सदा रस पीवै प्रेम सौं, सो अविनाशी प्रांण ॥
इहि रसि मुनि लागे सबै, ब्रह्मा बिश्न महेस ।
सुर नर साधू सन्त जन, सो रस पीवै सेस ॥
सिध साधिक जोगी जती, सती सबै सुखदेव ।
पींवत अन्त न आवई, ऐसा अलख अभेव ॥
इहि रसि राते नांमदेव, पीपा अरु रैदास ।
पिवत कबीरा ना थक्या, अजहूँ प्रेम पियास ॥
यहु रस मीठा जिन पिया, सो रस मांहिं समाइ ।
मीठे मीठा मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ ॥५॥

भेष न रीझै मेरा निज भर्तार, ताथैं कीजै प्रीति बिचार ॥
दुराचारिनी रचि भेष बनावै, सील साच नहिं, पिव क्यों भावै ॥
कंत न भावै करै सिंगार, डिंभपणैं रीझै संसार ॥

---

३. बिसहर=विषधर, सर्प । फुनि=पुनः, फिर । पचिहारे=यत्न करते-करते थक गये ।

४. राई=राजा, स्वामी । राती=रँग गई, अनुरक्त हो गई । थाती=पूँजी । पुरिख=पुरुष, परमात्मा . मांहिं=अंतर में ।

५. प्राण=प्राणी, जीव । जती=यति, संन्यासी । सती=गृहस्थ । सुखदेव=शुकदेव मुनि । अभेद=जिसका भेद नहीं पाया । राते=अनुरक्त । पीपा=एक राजा, जो ऊँचे भक्त थे । रस ही मांहिं समाइ=रस में लीन हो गये, रसरूप हो गये ।

६. भेष=ऊपरी बनाव, शृंगार । डिंभपणें=दंभ-पाखंड से । धन=स्त्री ।

जोपै पतिब्रता ह्वै है नारी, सो धन भावै पियहिं पियारी ॥
पीव पहिचानैं आंन नहिं कोई, दादू सोइ सुहागिन होई ॥६॥
मुझ थीं कुछ न भया रे, यहु यूं हि गया रे, पछितावा रह्या रे ॥
मैं सीस न दीया रे, भरि प्रेम न पीया रे, मैं क्या कीया रे ॥
हौं रंग न राता रे, रस प्रेम न माता रे, नहिं गह्लित गाता रे ॥
मैं पीव न पाया रे, कीया मन का भाया रे, कुछ होइ न आया रे ॥
हूँ रहूँ उदासा रे, मुझ तेरी आसा रे, कहैं दादू दासा रे ॥७॥

राग केदारो

अरे मेरा अमर उपावणहार रे खालिक, आशिक तेरा ॥
तुम्ह सौं राता तुम्ह सौं माता, तुम्ह सौं लागा रंग, रे खालिक ॥
तुम्ह सौं खेला तुम्ह सौं मेला, तुम्ह सौं प्रेम सनेह, रे खालिक ॥
तुम्ह सौं लेणा, तुम्ह सौं देणा, तुम्ह ही सौं रत होइ रे खालिक ॥
खालिक मेरा, आशिक तेरा, दादू अनत न जाइ, रे खालिक ॥८॥
पीव घरि आवै रे, वेदन मारी जाणीं रे ।
बिरह संताप कोण पर कीजै, कहूँ छुं दूख नी कहाणी रे ॥
अन्तरजामी नाथ मारो, तुज बिण हूँ सीदाणी रे ।
मन्दिर मारे केम न आवै, रजनी जाइ बिहाणी रे ॥
तारी बाट हूँ जोइ थाकी, नेण निखूट्या पाणी रे ।
दादू तुज विन दीन दुखी रे, तू साथी रह्यो छे ताणी रे ॥९॥

---

७. यहु=यह जीवन । रंग=भक्ति-भाव । राता=रँगा, अनुरक्त हुआ । माता=मस्त हुआ । गाता नहिं गह्लित=शरीर को तप से गलाया या कसा नहीं । भाया=प्रिय । उदासा=खिन्न, निराशा ।

८. उपावणहार=उत्पन्न करनेवाला, सिरजनहार । मेला=मिलन । रत=अनुरक्त । अनत=और किसी जगह ।

९. वेदन=वेदना; पीड़ा (विरह की) । कहूँ छुं=कहती हूँ । नी=की । मारो=मेरा । तुज विण=विना तेरे । सीदाणी=दुख से मुरझा रही हूँ । केम=क्यों । बिहाणी जाइ=बीती जाती है । तारी=तेरी । हूँ=मैं । नेण=नयन । निखूट्या पाणी=पानी (आँसू) भी घट गया । ताणी रह्यो छे=तन या खिच रहा है ।
(इस पद में अनेक गुजराती शब्दों और विभक्तियों का प्रयोग हुआ है ।)

वाहला हूं जाणूं जे रंग भरि रमिये, मारो नाथ निमिष नहिं मेलूं रे।
अंतरजामी नाह न आवे, ते दिन आव्यो छेलो रे॥
वाहला सेज अमारी एकलड़ी रे, तहं तुजने केम न पामूं रे।
आ दत्त अमारो पूरबलो रे, तेतो आव्यो सामो रे॥
वाहला मारा हृदया भीतर केम न आवे, मने चरणबिलंब न दीजे रे।
दादू तो अपराधी तारो, नाथ उधारी लीजे रे॥१०

राग मारू

जागि रे रैंणि बिहाणीं, जाइ जन्म अंजुली कौ पाणीं।
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै, जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै॥
सूरिज चंद कहै समझाइ, दिन दिन आव घटती जाइ॥
सरवर पांणी तरवर छाया, निसिदिन काल गरासै काया॥
हंस बटाऊ प्रांण पयांना, दादू आतमरांम न जानां॥११॥

सांई कौ साच पियारा,
साचै साच सुहावै देखौ, साचा सिरजनहारा॥
ज्यूं घण घावां सार घड़ीजै, झूठ सबै झड़ि जाई।
घण के घांऊं सार रहेगा, झूठ न मांहिं समाई॥
कनक कसौटी अगनि मुखि दीजै, कंप सबै जलि जाई।
यौंतो कसणीं साच सहैगा, झूठ सहै नहिं भाई॥
ज्यूं घृत कूं ले ताता कीजै ताइ ताइ तत कीतां।
तत्तै तत्त रहैगा भाई, झूठ सबै जलि खीनां॥

---

१०. वाहला=प्यारे। जे रंग भरि रमिये=कि मैं रंगभर, मौजभर खेलूँ। निमिप नहि मेलूं=पल भी न गिराऊँ। नाह=नाथ, स्वामी। छेलो=अंतिम या निकृष्ट। एकलड़ी=अकेली। तुजने=तुझको। केम=क्यों, कैसे। पामूं=पाती हूँ। दत्त=फल (कर्मों का)। पूरबलो=पूर्वजन्म का। सामो=सामने। बिलंब=अवलंब, शरण। तारो=तेरा। (इस पद में भी बहुत-से गुजराती शब्द आये हैं।)

११. आव=आयु। गरासै=ग्रस रहा है। पयांना=प्रयाण, चल देना।

१२. सार घड़ीजै=पक्का लोहा बनाते हैं। घण घावां=घन की चोटें। कंप=खोट, मैल। कसणीं=कसौटी, परीक्षा। ताता=गरम। ताइ ताइ=तपा-तपाकर। तत=

यौं तौ कसणी साच सहैंगा, साचा कसि कसि लेवै ।
दादू दरसन साचा पावै, झूठे दरस न देवै ॥१२॥
चलु रे मन, जहाँ अमृत बनां, निर्मल नीके सन्तजनां ॥
निगु ण नांउं फल अगम अपार, संतन जीवनि प्राण अधार।
सीतल छाया सुखी सरीर, चरणसरोवर निर्मल नीर ॥
सुफल सदा फल बारह मास, नांनां बाणी धुनि परकास ।
तहाँ बास बसि अमर अनेक, तहं चलि दादू इहै बवेक ॥१३॥
बाबा, नांहीं दूजा कोई,
एक अनेक नांउ तुम्हारे, मोपै और न होई ॥
अलख इलाही एक तूं, तूंही रांम रहीम ।
तूंही मालिक मोहना, केसौ नांउं करीम ॥
सांई सिरजनहार तूं, तूं पावन तूं पाक।
तूं काइम करतार तूं, तूं हरी हाजरी आप ॥
रमिता राजिक एक तूं, तूं सारंग सुबहान।
कादिर करता एक तूं, तूं साहिब सुलतान ॥
अविगत अल्लः एक तूं, गनी गुसांई एक ।
अजब अनूपम आप है, दादू नांउं अनेक ॥१४॥

राग सारंग

तौ निबहै जन सेवग तेरा, ऐसैं दया करि साहिब मेरा ॥
ज्यूं हम तोरैं त्यूं तूं जोरे, हम तोरैं पै तूं नहि तोरैं ॥

निर्मल, खरा। खीनां=नष्ट हो गया ।

१३. वनां=वन। नाना वाणी=अनेक संतों की वाणियाँ। धुनि=अनहद नाद। परकास=आतम-ज्ञान का प्रकाश। बिवेक=विवेक, सार की बात।

१४. मोपै और न होई=मुझसे और भेदबुद्धि की बात नहीं सोचते बनती। काइम=नित्य। हाजरी-सर्वव्यापक। राजिक=प्रकाशमान, दीप्तिकारक। सुबहान=वाह ! धन्य हो ! अविगत=अव्यक्त, जो जाना न जा सके। गनी=धनी।

१५. सेवग=सेवक। तोरैं=तेरे साथ का नाता तोड़ते हैं। अंगि लगावै=अंगीकार

हम बिसरैं पै तूं न बिसारै, हम बिगरैं पै तूं न बिगारै ॥
हम भूलैं तूं आनि मिलावै, हम बिछुरैं तूं अंगि लगावै ॥
तुम्ह भावै सो हमपै नांही, दादू दरसन देहु गुसांई ॥१५॥

निर्पख रहणां रांम नांम कहणां, काम क्रोध में देह न दहणां ॥
जेणें मारगि संसार जाइला, तेणें प्राणी आप वहाइला ॥
जे जे करणी जगत करीला, सो करणी सन्त दूरि धरीला ॥
जेणें पंथें लोक राता, तेणें पंथैं साध न जाता ॥
रांम नांम दादू ऐसैं कहिये, रांम रमत रांमहि मिलि रहिये ॥१६॥

राग नटनारायण

गोबिंद कबहुँ मिलै करि पिव मेरा ।
चरणकवंल क्यूं ही करि देखौं, राखौं नैनहुँ नेरा ॥
निरखण का मोहि चाव घणेरा, कब मुख देखौं तेरा ।
प्रांण मिलन कौं भये उदासी, मिलि तूं मींत सवेरा ॥
व्याकुल तातैं भई तन देही, सिर पर जम का हेरा ।
दादू रे जन रांम-मिलन कूं तपई तन बहुतेरा ॥१७॥

करणी पोच सोच सुख करई, लोह की नाव कैसैं भौजल तिरई ॥
दिखन जात पछिम कैसैं आवै, नैन बिन भूलि बाट कत पावै ।
विष बन बेलि, अमृत फल चाहै, खाइ हलाहल, अमर उमाहै ॥
अगनिगृह पैसि, सुख क्यूं सोवै । जलणि जागी घणीं,सीत क्यूं होवै ॥

करता है; छाती से लगाता है । हमपै=हमारे पास ।

१६. निर्पख=पक्षपात छोड़कर । दहणां=जलाना । जेणें=जिस । तेणें=उसमें । करीला=की । दूरि धरी=दूर रखदी, त्यागदी । लोक राता=साधारण लोग रँगे हुए या मस्त हैं ।

१७. नेरा=निकट । उदासी=व्याकुल । सवेरा=जल्दी ही । हेरा=दाव । तपई=जल रहा है ।

१८. पोच=नीच, हीन । सोच सुख करई=विचार करता है सुख करने का । लोह की नाव=पाप-कर्मों से आशय है । दिखन=दक्षिण दिशा । अमर उमाहै=तू अमर होने का उत्साह या चाव करता है । पैसि=पैठकर । पुनि=पुण्य (का फल)।

पाप पाषंड कीयें, पुनि क्यूं पाइये। कूप खनि पड़िबा, गगन क्यूं जाइये॥
कहै दादू मोहिं अचिरज भारी, हिरदै कपट क्यूं मिलै मुरारी ॥१८॥

राग बिलावल

सोई साध-सिरोमणी, गोविन्द-गुण गावै।
राम भजै बिषिया तजै, आपा न जनावै॥
मिथ्या मुखि बोलै नहीं, परन्यंदा नांहीं।
औगुण छाड़ै गुण गहै, मन हरिपद मांहीं॥
निर्वैरी सब आतमा, पर आतम जानै॥
सुखताई समता गहै, आपा नहीं आनै॥
आपा पर अन्तर नहीं, निर्मल निज सारा॥
सतवादी साचा कहै, लैलीन बिचारा॥
निर्भै भजि न्यारा रहै, काहूँ लिपत न होई।
दादू सब सैंसार मैं ऐसा जन कोई॥१९॥

जब मैं रहते की रह जानीं।
काल काया के निकटि न आवै, पावत है सुख प्राणी॥
सोग संताप नैन नहिं देखौं, राग दोष नहिं आवै॥
जागत है जासौं रुचि मेरी, सुपिनै सोई दिखावै॥
भरम करम मोह नहिं ममिता, बाद बिबाद न जानौं।
मोहन सौं मेरी बनि आई, रसना सोई बखानौं॥
निसबासरि मोहन मनि मेरे, चरन कवँल मन मानै।
सोई निधि निरखिदेखि सचु पाऊँ, दादू और न जानैं॥२०॥

खनि=खोदकर। पड़िबा=गिरना (पापकर्म करके नीचे गिरना)। गगन=ऊँचा (ब्रह्म-) पद।

१९. आपा न जनावै=अपने आपको बड़ा नहीं जतलाता। न्यंदा=निंदा। पर आतम जानै=दूसरे की आत्मा को अपनी ही आत्मा समझता है, समदृष्टि रखता है। सुखताई=मुदिता, सदा प्रसन्नता। लैलीन विचारा=तत्त्वज्ञान में तन्मय। सैंसार=संसार। जन कोई=विरला भगवद्भक्त।

२०. रहते की रह=नित्यस्थिर (ब्रह्म) की राह। सोग=शोक। दोष=द्वेष। रुचि=प्रीति। मनि=मन में। सचु=सुख, शांति।

राम मिल्या यूं जानिये, जाकौं काल न व्यापै ।
जुरा मरण ताकौं नहीं, अरु मेटै आपै ॥
सुख दुख कबहूँ न ऊपजै, अरु सब जग सूझै ।
करम कों बांधै नहीं, सब आगम बूझै ॥
जागत ह्वै सो जन रहै, अरु जुगि-जुगि जागै ।
अन्तरजामी सौं रहै, कुछु काई न लागै ॥
कांम दहै सहजै रहै, अरु सुन्य बिचारै ।
दादू सो सबकी लहै, अरु कबहूँ न हारै ॥२१॥

रहु रे रहु मन मारौंगा, रती रही करि डारौंगा ॥
खंड खंड करि नाखौंगा, जहां रांम तहं राखौगा ॥
कह्या न मानैं मेरा, सिर भानौंगा तेरा ॥
घर में कदे न आवै, बाहरि कौं उठि धावैं ॥
आतम रांम न जानै, मेरा कह्या न मानै ॥
दादू गुरमुखि पूरा, मन सौं झूझै सूरा ॥२२

अलह कहौ भावै राम कहौ, डाल तजौ सब मूल गहौ ॥
अलह रांम कहि कर्म दहौ, झूठे मारगि कहा बहौ ॥
साधू संगति तौ निबहौ, आइ परै सो सीसि सहौ ॥
काया कवँल दिल लाइ रहौ, अलख अलह दीदार लहौ ॥
सतगुर की सुणि सीख अहौ, दादू पहुँचै पार पहौ ॥२३॥

---

२१. जुरा=जरा, बुढ़ापा। आपै=अहंभाव को। सूझै=यथार्थ ज्ञान पा लेता है। सब आगम बूझै=आगे की, अथवा लोकोत्तर जीवन की बात जानता है। काई= मैल, खोट। सुन्य विचारै= शून्य अर्थात् निर्विकल्प समाधिगत अवस्था का ध्यान करता है। सबकी लहै=सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

२२. करि नाखौंगा=कर डालूंगा। भानौंगा=तोड़ दूंगा। घर में=आत्मज्ञान की ओर। बाहरि कौं=विषयों की ओर। झूझै=जूझता है, लड़ता है।

२३. भावै=चाहे। बहौ=भटक रहे हो। कवँल दिल=हृदयरूपी कमल। दीदार लहौ= दर्शन लो। पार पहौ=पार होकर पाओ (ब्रह्मानंद-रस); 'परलापार' यह अर्थ भी हो सकता है।

हिन्दू तुरक न जाणौं दोइ ।
सांईं सबनि का सोई है रे, और न दूजा देखौं कोइ ॥
कीट पतंग सबैं जोनिन मैं, जल थल संगि समांनां सोइ ।
पीर पैगम्बर देवा दानव, मीर मलिक मुनिजन कौं मोहि ॥
कर्ता है रे सोई चीन्हौं, जिनिवै क्रोध करैं रे कोइ ।
जैसैं आरसी मंजन कीजै, रांम रहीम देही तन धोइ ॥
सांईं केरी सेवा कीजैं, पायो धन काहे कौं खोइ ।
दादू रे जन हरि जपि लीजैं, जनमि जनमि जे सुरिजन होइ ॥२४॥

कोई स्वामी कोई सेख कहै, इस दुनिया का मर्म न कोइ लहै ॥
कोई रांम कोई अलह सुनावै, पुनि अलह रांम का भेद न पावै ॥
कोई हिन्दू कोई तुरक करि मानैं, पुनि हिंदू तुरक की खबरि न जानैं ॥
यहु सब करणी दून्यूं वेद, समझि परी तब पाया भेद ॥
दादू देखै आतम एक, कहिबा सुनिबा अनन्त अनेक ॥२५॥

राग धनाश्री

कतहूं रहे हो बिदेस, हरि नहिं आये हो ।
जन्म सिरानौं जाइ, पीव नहिं पाये हो ॥
बिपति हमारी जाइ, हरि सौं को कहै हो ।
तुम्ह बिन नाथ अनाथ, बिरहनि क्यूं रहै हो ॥
पीव के विरह बिवोग, तन की सुधि नहीं हो ।
तलफि तलफि जिव जाइ, मृतक ह्वै रही हो ।
दुखित भई हम नारि, कब हरि आवै हो ।
तुम्ह बिन प्रांण अधार, जीव दुख पावै हो ।
प्रगटहु दीनदयाल, बिलम न कीजिये हो ।
दादू दुखी बेहाल, दरसन दीजिये हो ॥२६॥

---

२४. जोनिन मैं=योनियों में । जिनिवै=निश्चय ही नहीं । आरसी=दर्पण । मंजन कीजै=मांजते या साफ करते हैं । सुरिजन=सुलझन, मुक्ति ।

२५. खबरि=सही मतलब । दून्यूं वेद=दोनों मतों से आशय है ।

२६. सिरानौं जाइ=बीता जाता है । बिवोग=वियोग । बिलम=विलंब, देरी ।

डरिये रे डरिये, परमेसुर थैं डरिये रे।
लेखा लेवै भरि भरि देवै,ताथैं बुरा न करिये रे॥
साचा लीजी साचा दीजी, साचा सौदा कीजी रे।
साचा राखी झूठा नांखी, विष ना पीजी रे॥
निर्मल गहिये, निर्मल रहिये, निर्मल कहिये रे।
निर्मल लीजी निर्मल दीजी, अनत न बहिये रे।
साहिब ठाया बनिज न आया, जिनि डहकावै रे॥
झूठ न भावै फेरि पठावै, कीया पावै रे॥
पंथ दुहेला जाइ अकेला, भार न लीजी रे।
दादू मेला होइ सुहेला, सो कुछ कीजी रे॥२७॥
डरिये रे डरिये, देखि देखि पग धरिये रे।
तारे तरिये मारे मरिये, ताथैं गर्ब न करिये रे।
देवै लेवै संम्रथ दाता, सब कुछ छाजै रे।
तारै मारै गर्ब निबारै, बैठा गाजै रे॥
राखे रहिये बाहें बहिये, अनत न लहिये रे।
भानै घड़ै संवारै आपै, ऐसा कहिये रे।
निकटि बुलावै दूरि पठावै, सब बनि आवै रे।
पाके काचे काचे पाके, ज्यूं मन भावै रे॥
पावक पांणी पांणी पावक करि दिखलावै रे।
लोहा कंचन कंचन लोहा, कहि समझावै रे।

---

२७. लेखा लेवै=एक-एक कर्म का हिसाब लेता है। भरि-भरि देवै=अखूट दान देता है। नांखी=त्याग देना चाहिए। अनत न बहिये=इधर उधर नहीं भटकना चाहिए। बनिज=सत्य का व्यापार। दुहेला=कठिन। भार=पापों का बोझा। मेला=मिलन। सुहेला=सुन्दर। सो कुछ=ऐसा कोई साधन।

२८. ताथैं=उस परमात्मा से। संम्रथ=समर्थ। छाजै=शोभा देता है। गाजै=राज चलाता है। भांनै=भंग करता है, तोड़ देता है। घड़ै=बनाता है। सँवारै=सजाता है। पाके काचे,काचे पाके=यदि चाहे तो पक्के को कच्चा और कच्चे को पक्का कर देता है। ससिहर=चन्द्र। सूर=सूर्य। अंबर=आकाश। मेलै=मिला देता या एक कर देता है।

ससिहर सूर सूर थैं ससिहर परगट खेलै रे।
धरती अम्बर अम्बर धरती, दादू मेलै रे ॥२८॥

साखी

गुरदेव कौ अंग

दादू गैब मांहि गुरदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तकि मेरे कर धर्‌या, देख्या अगम अगाध ॥१॥
दादू सतगुर सूं सहजैं मिल्या, लीया कंठि लगाइ।
दाया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥२॥
सबद दूध घृत रांमरस, कोइ साध बिलोवणहार।
दादू अंमृत काढिले, गुरमुखि गहै बिचार ॥३॥
घीव दूध मैं रमि रह्या, व्यापक सबही ठौर ॥
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ैं ते औंर ॥४॥
दीवै दीवा कीजिये, गुरमुखि मारगि जाइ।
दादू अपणे पीव का, दरसन देखै आइ ॥५॥
मानसरोवर माहिं जल, प्यासा पीवै आइ।
दादू दोष न दीजिये, घर घर कहण न जाइ ॥६॥
देवै किरका दरद का, टूटा जोड़ै तार।
दादू सांधै सुरति कूं, सो गुर पीर हमार ॥७॥
ना घरि रह्या न बनि गया, ना कुछ किया क्लेस।
दादू मन हीं मन मिल्या, सतगुर के उपदेस ॥८॥

गुरदेव कौ अंग

१. गैब=रहस्य की रसात्मिका अवस्था। परसाद=कृपा से।
३. बिलोवणहार=मंथन अर्थात् तत्व-विचार करनेवाला।
५. दीवै दीवा कीजिये=आशय यह कि गुरुद्वारा उपदिष्ट आत्मज्ञान से अपना आत्मज्ञान बढ़ाना चाहिए।
६. माहिं=मध्य में, अन्दर उतर या डूबकर।
७. किरका=एक कण। दरद=परमात्मा के आत्यंतिक विरह की वेदना से आशय है।

दादू यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदिगी, बाहरि काहे जाइ ॥९॥
घरि घरि घट कोल्हू चलै, अमी महारस जाइ।
दादू गुर के ग्यान बिन, विखै हलाहल खाइ ॥१०॥
सोने सेती बैर क्या, मारै घण के घाइ।
दादू काढ़ि कलंक सब, राखै कंठि लगाइ ॥११॥
गुर पहली मन सौं कहै, पीछै नैन की सैंन।
दादू सिख समझै नहीं, कहि समझावै बैन ॥१२॥
कहैं लखै सो मानवी, सैंन लखै सो साध।
मन की लखै सु देवता, दादू अगम अगाध ॥१३॥
दादू आपा उरझैं उरझिया, दीसै सब संसार।
आपा सुरझें सुरझिया, यहु गुर ग्यान विचार ॥१४॥
दादू बिन पाइन का पंथ है, क्यौंकरि पहुँचै प्रांण।
विकट घाट औघट खरे, मांहिं सिखर असमांन ॥१५॥
सूरिज सनमुख आरसी, पावक किया प्रकास।
दादू सांईं साध बिचि, सहजैं निपजै दास ॥१६॥

---

९. मसीति=मसजिद। देहुरा=देवालय।

१०. घरि घरि=घड़ी घड़ी, निरन्तर। महारस=ब्रह्मानंद। जाइ=व्यर्थ जा रहा है।

११. सोने सेती=सुवर्ण के साथ; यहाँ शिष्य से तात्पर्य है। घण कै घाइ=घन की चोटें। कलंक=मैल, खोट।

१२. पहली=पहले तो। सैंन=संकेत।

१३. लखै=समझ ले। मानवी=मनुष्य।

१४. जो अपने आप जगत्-जाल में उलझ रहे हैं उनको सारा जगत् उलझा हुआ ही दीखता है, और जो स्वरूप-दर्शन द्वारा सुलझ गया है अर्थात् जाल से मुक्त हो गया है उसे सब-कुछ सुलझा-ही-सुलझा दीखता है। इस प्रकार का महाज्ञान अथवा महामनन ही 'गुरुज्ञान-विचार' है। दादू-पंथ में इस साखी की गणना दादू दयालजी के महावाक्यों में की गई है।

१५. बिन पाइन का=अपने अहंबल द्वारा अगम्य। प्राण=प्राणी। औघट खरे=अत्यन्त कठिन। असमांन=आसमान, मन के अत्यन्तिक लय की शून्यावस्था से आशय है।

सुमिरण कौ अंग

सासैं सास सँभालतां, इकदिन मिलिहै आइ ।
सुमिरण पैंडा सहज का, सतगुर दिया बताइ ॥१॥
सोई सांस सुजाण नर, सांई सेती लाइ ।
करि साटा सिरजनहार सूं, मंहगे मोलि बिकाइ ॥२॥
हरि भजि साफलि जीवना, परउपगार समाइ ।
दादू मरणा तहँ भला, जहँ पसु-पंखी खाइ ॥३॥
दादू सांईं सेवैं सब भले, बुरा न कहिये कोइ ।
सारौं मांहे सो बुरा, जिस घटि नांव न होइ ॥४॥
दादू का जाणौं कब होइगा, हरिसुमिरण इकतार ।
का जाणौं कब छोड़िहै, यहु मन विखै विकार ॥५॥
ज्यूं जल पैसै दूध में, ज्यूं पाणी मैं लूण ।
ऐसें आतमराम सौं, मन हठ साधै कूंण ॥६॥
अपणी जाणैं आप गति, और न जाणैं कोइ ।
सुमिर सुमिर रस पीजिये, दादू आनन्द होइ ॥७॥
दादू यहु तन पिंजरा, मांही मन सूवा ।
एकै नांव अलाह का, पढि हाफिज हूवा ॥८॥
नांव लिया तब जाणिये, जे तन मन रहै समाइ ।
आदि अंति मधि एकरस, कबहूँ भूलि न जाइ ॥९॥

---

१६. आरसी=आतशी शीशा । सांईं=परमेश्वर । निपजै=प्रकट होता है । दास=दास्य-भाव, अनन्य भक्ति-भाव ।

सुमिरण कौ अंग

१. सँभालतां=नामस्मरण करते हुए । पैंड़ा=मार्ग ।
२. साटा=सौदा ।
३. उपगार समाइ=उपकार में लगादे । साफिल=सफल ।
४. सारों मांहे=सबमें, सबसे अधिक ।
५. इकतार=निरन्तर एकाग्र चित से ।
६. पैसे=प्रवेश कर जाता है, मिल जाता है । लूण=नमक । कूंण=कौन ।
८. माहीं=अंदर । अलाह=अल्लाह । हाफिज=विद्वान् ।

कहि कहि केते थाके दादू, सुणि सुणि कहु क्या लेई ।
लूंण मिलै गलि पाणियां, तासमि चित यौं देई ॥१०॥

मिलै तो सब सुख पाइये, बिछुरे बहु दुख होइ ।
दादू सुख दुख रांम का, दूजा नाहीं कोइ ॥११॥

दादू सब जग नीधना, धनवंता नहिं कोइ ।
सो धनवंता जाणिये, जाकै रांमपदारथ होइ ॥१२॥

अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन ।
दादू छाना क्यौं रहैं, जिस घटिं रांम-रतन ॥१३॥

दादू सिरि करवत बहै, बिसरै आतम रांम ।
माहिं कलेजा काटिये, जीव नहीं विश्राम ॥१४॥

जेता पाप सब जग करै, तेता नांव बिसारैं होइ ।
दादू रांम संभालिये, तौ येता डारै धोइ ॥१५॥

बिरह कौ अंग

रतिवंती आरति करै, रांम सनेही आव ।
दादू औसर अब मिलै, यहु बिरहनि का भाव ॥१॥

सबद तुम्हारा ऊजला, चिरिया क्यौं कारी ।
तुंहीं तुंहीं निसदिन करौं, बिरहा की जारी ॥२॥

दादू इस संसार में, मुझसा दुखी न कोइ ।
पीव मिलन के कारणैं, मैं जग भरिया रोइ ॥३॥

---

१०. पाणियां=पानी में ।

१३. छाना=गुप्त, अप्रकट ।

१४. करवत बहै=करौत या आरा चलाये ।

१५. संभालिए=स्मरण करे ।

बिरह कौ अंग

१. रतिवंती=प्रेमपरा भक्ति में तन्मय जीवात्मा । आरति=आर्ति; वेदनापूर्वक याचना ।

२. ऊजला=उज्ज्वल, पवित्र ।

ना वहु मिलै न मैं सुखी, कहु क्यौं जीवन होइ ।
जिन मुझकौं घायल किया, मेरी दारू सोइ ॥४॥
श्रवना राते नाद सौं, नैनां राते रूप ।
जिभ्या राती स्वाद सौं, त्यौं दादू एक अनूप ॥५॥
मूए पीड़ पुकारतां, बैद न मिलिया आइ ।
दादू थोड़ी बात थी, जे टुक दरस दिखाइ ॥६॥
दादू इस हिवड़े ये साल, पिव बिन क्योंहि न जाइसी ।
जब देखौं मेरा लाल, तब रोम रोम सुख आइसी ॥७॥
गई दसा सब बाहुड़ै, जे तुम प्रगटहु आइ ।
दादू ऊजड़ सब बसै, दरसन देहु दिखाइ ॥८॥
हम कसियें क्या होइगा, विड़द तुम्हारा जाइ ।
पीछें ही पछताहुगे, ता थें प्रगटहु आइ ॥९॥
दादू इसक अल्लाह का, जे कबहूं प्रगटै आइ ।
तौ तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाइ ॥१०॥
ग्यान ध्यान सब छाड़िदे, जप तप साधन जोग ।
दादू बिरहा लै रहै, छाड़ि सकल रसभोग ॥११॥
दादू बिरह बिवोग न सहि सकौं, निसदिन सालै मोहि ।
कोइ कहौ मेरे पीवकों, कब मुख देखौं तोहि ॥१२॥
दादू चोट न लागी बिरह की, पीड़ न उपजी आइ ।
जागि न रोवै धाह दे, सोवत गई बिहाइ ॥१३॥

---

४. दारू=दवा ।

५. राते=अनुरक्त । त्यौं दादू एक अनेक=वैसे ही दादू उस एक अद्वितीय अनुपम परमात्मा के प्रेम में रंग गया है ।

७ हिवड़े=हृदय में । साल=पीड़ा, वेदना । क्योंहि न जाइसी=किसीभी तरह नहीं जायगी । आइसी=आयगी, मिलेगी ।

८. बाहुड़ै=लौट आयेगीं ।

९. कसियें=कसने से, कष्ट दे-देकर परीक्षा लेने से । विड़द=विरुद, यश, प्रतिष्ठा ।

१०. अरवाह=रूहें, जीवात्माएँ ।

१२. सालै=कसकता है ।

अंदरि पीड़ न ऊभरै, बाहरि करै पुकार।
दादू सो क्यौंकरि लहै, साहिब का दीदार ॥१४॥

मनहीं मांहै भूरणा, रोवै मनहीं मांहि।
मनहीं मांहै धाह दे, दादू बाहरि नांहि ॥१५॥

दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचै कोइ।
वेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होइ ॥१६॥

रोम रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार।
रांम घटा-दल उमंगिकरि, बरसहु सिरजनहार ॥१७॥

प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहि।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नांहिं ॥१८॥

राति दिवस का रोवणां, पहर पलक का नांहि।
रोवत रोवत मिलि गया, दादू साहिब मांहिं ॥१९॥

जब बिरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा रांम।
काया लागी काल ह्वै, कड़वे लागे कांम ॥२०॥

दादू प्रीतम के पग परसिये, मुख देखण का चाव।
तहाँ ले सीस नवाइये, जहां धरे थे पाव ॥२१॥

आग्या अपरंपार की, बसिअंबर भरतार।
हरे पटंबर पहिरि करि, धरती करै सिंगार ॥२२॥

बसुधा सब फूलै फलै, पिरथी अनन्त अपार।
गगन गरजि जल थल भरै, दादू जैजैकार ॥२३॥

---

१४. धाह दे=धाड़ देकर। सोवत गई विहाइ=तव समझलो कि गफलत में ही सारी जिन्दगी चली गई।

१५. भूरणा=जलना।

१९. मांहि=हृदय के अन्दर ही।

२०. काम= विषय-वासना।

२२. बसिअम्बर=विश्वंभर। हरे पटंबर=हरी कोमल दूब से आशय है, जो वर्षा-काल में उगती है।

परचा कौ अंग

साधू जन क्रीला करैं, सदा सुखी तिहि गाँउ।
चलु दादू उस ठौर की, मैं बलिहारी जाँउ ॥१॥
दादू मिहीं महल बारीक है, गाँउ न ठाँउ न नाँउ।
तासौं मन लागा रहै, मैं बलिहारी जाँउ ॥२॥
दादू खेल्या चाहै प्रेमरस, आलम अंगि लगाइ।
दूजे कौं ठाहर नही, पुहप न गंध समाइ ॥३॥
जहाँ रांम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं रांम।
दादू महल बारीक है, द्वै कौं नाहीं ठाम ॥४॥
दादू देखु दयाल कौं, रोकि रह्या सब ठौर।
घटि घटि मेरा सांईयां, तू जिनि जाणै और ॥५॥
दादू अविनासी अंग तेज का, ऐसा तत्त अनूप।
सो हम देख्या नैनभरि, सुन्दर सहज सरूप ॥६॥
तेजपुंज की सुन्दरी, तेजपुंज का कंत।
तेजपुंज की सेज परि, दादू बन्या बसन्त ॥७॥
पुहप प्रेम बरिखैं सदा, हरिजन खेलैं फाग।
ऐसा कौतिग देखिये, दादू मोटे भाग ॥८॥
कामधेन करतार है, अंमृत सरवै सोइ।
दादू बछरा दध कौं पीवै तौ सुख होइ ॥९॥

परचा कौ अंग

१. क्रीला=क्रीड़ा, केलि; ब्रह्मविहार से आशय है।
२. मिहीं=महीन, सूक्ष्म। महल=ब्रह्मधाम; आत्म-स्थिति।
३. खेल्या चाहै=चखना चाहता है। आलम अंगि लगाइ=संसार में लिप्त होकर। ठाहर=स्थान। पुहप न गंध समाइ=फूल में दूसरी गंध समा नहीं सकती।
५. रोकि रह्या=बस रहा है।
७. तेजपुंज···बसंत=आशय यह कि रमणी भी ब्रह्म है, रमण भी ब्रह्म है, दृश्य भी ब्रह्म है और समय भी ब्रह्म ही है। सब कुछ ब्रह्म-विहार ही है।
८. कौतिग=कौतुक, लीला। मोटे भाग=बड़े भाग्य से।
९. सरवै=स्रवै, चुवाती है।

दादू दया दयाल की, सो क्यों छानी होइ।
प्रेम-पुलक मुलकत रहै, सदा सुहागनि सोइ ॥१०॥

दादू जल पाषाण ज्यूं, सेवै सब संसार।
दादू पाणी लूण ज्यूं, कोइ बिरला पूजणहार ॥११॥

मिश्री मांहैं मेलिकरि, मोल बिकाना बंस।
यौं दादू महिंगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस ॥१२॥

दादू जिहि घटि दीपक रांम का, तिहिं घटि तिमिर न होइ।
उस उजियारे जोति के, जग सब देखै सोइ ॥१३॥

दादू देही मांहैं दोइ दिल, इक खाकी इक नूर।
खाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मंझि हजूर ॥१४॥

दादू प्याला नूर दा, आसिक अरसि पीवंति।
अठे पहर अल्लाह दा, मुँह दिट्ठे जीवंति ॥१५॥

दादू जे जन वेधे प्रीति सौं, सो जन सदा सजीव।
उलटि समाने आपमें, अन्तर नांहीं पीव ॥१६॥

दादू सेवग सांई बस किया, सौंप्या सब परिवार।
तब साहिब सेवा करै, सेवग के दरबार ॥१७॥

प्रेम-लहरि की पालकी, आतम बैसै आइ।
दादू खेलै पीव सौं, यह सुख कह्या न जाइ ॥१८॥

---

१०. छानी=छिपी हुई, गुप्त। मुलकत रहै=मुसकराती रहती है।

१२. बंस=बाँस की खपच्ची, जिसपर मिश्री को जमाते हैं। हंस=जीवात्मा।

१४. खाकी=मलिन। नूर=उज्ज्वल, शुद्ध। मंझि=बीच में। हजूर=परमात्मा।

१५. नूर दा=परम प्रकाशमय का (पंजाबी विभक्ति का प्रयोग)। मुँह दिट्ठे=मुख देखता हुआ।

१६. उलटि समाने आपमें=अन्तर्मुखी वृत्तियां करके अपने-आपमें लीन हो गये, प्रियतम में एकरस हो गये।

१८. बैसै=बैठती है।

फल पाका बेली तजी, छिटकाया मुख मांहि ।
सांई अपणा करि लिया, सो फिरि ऊगै नांहि ॥१६॥
दादू हरिरस पीवतां, कबहूँ अरुचि न होइ ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ ॥२०॥
ज्यौं घटि आतम एक है, ऐसे हूँहिं असंख ।
भरि भरि राखै रांमरस, दादू एकै अंक ॥२१॥
रोम रोम रस पीजिये, एती रसना होइ ।
दादू प्यासा प्रेम का, यौं बिन तृपित न होइ ॥२२॥
चिड़ी चंच भरि ले गई, नीर निघटि नहिं जाइ ।
ऐसा वासण नां किया, सब दरिया मांहि समाइ ॥२३॥

हैरान कौ अंग

केते पारिख जौहरी, पंडित ग्याता ध्यान ।
जाण्या जाइ न जाणिये, का कहि कथिये ग्यान ॥१॥
केते पारिख पचि मुए, कीमति कही न जाइ ।
दादू सब हैरान हैं, गूंगे का गुड़ खाइ ॥२॥
पाया पाया सब कहैं, केतक देहुँ दिखाइ ।
कीमति किनहूँ ना कही, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥३॥
पार न देवै आपणा, गोप गूझ मन मांहि ।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जांहि ॥४॥
दादू केते कहि गये, अन्त न आवै और ।
हमहूँ कहते जात हैं, केते कहसी होर ॥५॥

---

१६. छिटकाया=डाल लिया । सो फिरि ऊगै नांहिं=वह फिर नहीं उगता; अर्थात् जन्म नहीं लेता ।

हैरान कौ अंग

१. ध्यान=ध्यानी ।

४. गूझ=गुह्य, गुप्त ।

५. कहसी=कहेंगे । होर=और (पंजाबी प्रयोग) ।

ना कहिं दिठ्ठा ना सुण्या, ना कोइ आखणहार।
ना कोइ उत्तौं थी फिर्या, ना उर वार न पार ॥६॥

लै कौ अंग

किहि मारग ह्वै आइआ, किहिं ह्वै जाइ।
दादू कोई नां लहै, केते करै उपाइ ॥१॥
सून्यहि मारग आइया, सून्यहि मारग जाइ।
चेतन पैंडा सुरति का, दाद रहु ल्यौ लाइ ॥२॥
दादू गावै सुरति सौं, बाणी बाजै ताल।
यहु मन नाचै प्रेम सौं, आगैं दीनदयाल ॥३॥
दादू ज्यौं वै बरत गगन थैं टूटैं, कहाँ धरणि कहँ ठांम।
लागीं सुरति अंगथैं छूटै, सौ कत जीवै रांम ॥४॥
आदि अंति मधि एकरस, टूटै नहि धागा।
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा ॥५॥

निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

गोब्यंद गोसांई तुम्हें अम्हंचा गुरू, तुम्हें अम्हंचा ग्यान।
तुम्हे अम्हंचा देव, तुम्हें अम्हंचा ध्यान ॥१॥

---

६. आखणहार=कहनेवाला। उत्तौं थी=वहाँ से, परलोक से। उर=वहाँ का।

लै कौ अंग

१. ना लहै=भेद नहीं मिलता है।
२. पैंडा=मार्ग। सुरति=लय, तन्मयता। ल्यौ=एकाग्रता से ध्यान।
३. बाजै=बजाती है।
४. दादू ज्यौं······जीवै रांम=नट लय लगाकर रस्सी पर अधर नाचता है। पीछे उसकी लय टूट जाय तो उसे फिर उस धरती को छोड़ और कहाँ ठौर है, इसी प्रकार प्रभु से लगी लय यदि छूट जाय तो साधक कैसे जी सकता है?
५. धागा=लय से आशय है। जागा=आत्म-बोध हुआ।

निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

१. अम्हंचा अम्हंची=हमारा-हमारी (मराठी प्रयोग।)

तुम्हें अम्हंची पूजा, तुम्हे अम्हंचा पाती।
तुम्हें अम्हंचा तीर्थ, तुम्हे अम्हंचा जाती ॥२॥
तुम्हे अम्हंचा सील, तुम्हें अम्हंचा सन्तोख।
तुम्हे अम्हंची मुकति, तुम्हे अम्हंचा मोख ॥३॥
दादू मेरे हिरदै हरि बसै, दूजा नांही और।
कहौ कहाँधौं राखिये, नहीं आन कौं ठौर ॥४॥
पतिव्रता गृह आपणै, करै खसम की सेव।
ज्यौं राखै त्यौंही रहै, आग्याकारी टेव ॥५॥
दादू नीच ऊँच कुल सुन्दरी, सेवा सारी होइ।
सोई सुहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥६॥
पर पुरिखा सब परहरै, सुन्दरि देखै जागि।
आपण पीव पिछाणकरि, दादू रहिये लागि ॥७॥
आन पुरिख हूँ बहनड़ी, परम पुरिख भर्त्तार।
हूँ अबला समझौं नहीं, तूं जाणैं कर्त्तार ॥८॥
दादू सारौं सौं दिल तोरिकरि, सांई सौं जोरै।
सांई सेती जोड़िकरि, काहेकौं तोरै ॥९॥
कीया मन का भावतां, मेटी आग्याकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥१०॥
करामाति कलंक है, जाकै हिरदै एक।
अति आनन्द बिभचारिणी, जाकै खसम अनेक ॥११॥

---

५. टेव=स्वभाव।

६. सेवा सारी होइ=यदि सेवा अच्छी हो। रूप······धोइ=केवल सुन्दर रूप का आदर नहीं किया जाता।

७. परहरै=छोड़दे। रहिये लागि=प्रीति जोड़कर चिपट रहे।

८. वहनड़ी=वहन। भर्त्तार=स्वामी।

९. तवलगैं=तवतक। परसै=प्रीति करे।

११. करामाति=चमत्कार। आनंद=संसारी विषय-सुख।

साहिब का दर छाड़िकरि, सेवग कहीं न जाइ ।
दादू बैठा मूल गहि, डालों फिरै बलाइ ॥१२॥
सब आया उस एक में, डाल पांन फलफूल ।
दादू पीछैं क्या रह्या, जब निज पकड़्या मूल ॥१३॥
कोटि बरस क्या जीवणां, अमर भये क्या होइ ।
प्रेमभगति रस रांम बिन, का दादू जीवनि सोइ ॥१४॥
सुत बिन मांगैं बावरे, साहिब सी निधि मेलि ।
दादू वै निर्फल गये, जैसे नागरबेलि ॥१५॥
दादू सांई कौं संभालतां, कोटि विघन टलि जांहिं ।
राई मांन बसंदरा, केते काठ जलांहि ॥१६॥

चितावणी कौ अंग

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो सब परहरि प्रांण ।
मनसा बाचा कर्मना, जे तूं चतुर सुजांण ॥१॥
दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो जीव न कीजी रे ।
परहरि बिषै-बिकार सब, अंमृत-रस पीजी रे ॥२॥
दादू कर सांईं की चाकरी, ये हरिनांव न छोड़ ।
जाणा है उस देसकौं, प्रीति पिया सौं जोड़ ॥३॥

मन कौ अंग

कीया मन का भावता, मेटी आग्याकार ।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥१॥
दादू पंचौं का मुख मूल है, मुख का मनवां होइ ।
यहु मन रोकै जतनकरि, साध कहावै सोइ ॥२॥

---

१५. मेलि=फेंककर । नागरवेलि=एक लता जो न फूलती है न फलती है ।
१६. संभालतां=स्मरण करते हुए । राई मान=एक राईभर; जरा-सी । बसंदरा=आग ।

चितावणी कौ अंग
१. प्राण=हे प्राणी !

मन कौ अंग
२. मुख=वाणी ।

दादू पंचौं ये परमोधिले, इनहीं कौं उपदेस ।
यहु मन अपणा हाथि करि, तौ चेला सब देस ॥३॥
अगनि धोम ज्यौं नीकलै, देखत सबै बिलाइ ।
त्यौं मन बिछुट्या रांम सौं, दह दिसि बीखरि जाइ ॥४॥
तन में मन आवै नहीं, चंचल चहुँ दिसि जाइ ।
दादू मेरा जिव दुखी, रहै न रांम समाइ ॥५॥
कोटि जतन करि करि मुये, यहु मन दह दिसि जाइ ।
रांम नांम रोक्या रहै, नांहीं आन उपाइ ॥६॥
दादू जिसका दर्पण ऊजला, सो दर्सण देखै मांहिं ।
जिसकी मैली आरसी, सो मुख देखै नांहिं ॥७॥
वरतणि एकै भांति सब, दादू संत असंत ।
भिन्न भाव अन्तर घणा, मनसा तहँ गच्छंत ॥८॥

माया कौ अंग

दादू माया का सुख पंचदिन, गर्ब्यौ कहा गंवार ।
सुपिनैं पायौ राजधन, जात न लागै बार ॥१॥
मन की मूठि न मांडिये, माया के नीसाण ।
पीछैं ही पछताहुगे, दादू खोटे बाण ॥२॥
मांखण मन पाहण भया, मायारस पीया ।
पाहण मन मांखण भया, रांमरस लीया ॥३॥

---

३. पंचौं=पाँचों इन्द्रियों को । परमोधिले=प्रबोधले या ज्ञान देदे ।
४. धोम=धूआँ ।
५. तनमें मन आवै नहीं=मन अन्तर्मुखी नहीं हो रहा है ।
८. वरतणि=ऊपरी चेष्टा । मनसा तहँ गच्छंत=वहाँ मन कहाँ जा रहा है यह देखा जाता है ।

माया कौ अंग

२. मन की मूठि···वाण=मनरूपी तीर को कमानपर चढ़ाकर माया के निशान पर न छोड़े, अर्थात् मन को माया में न लगाये, नहीं तो इस खोटी तीरन्दाजी से बहुत पछताना पड़ेगा ।

अमर जड़ी पानैं पड़ी, सो सूँघी सत जाणि।
बषना विसहर सूँ लड़ै, न्योल जड़ी के पाणि ॥६॥
दा पहली था सो अब नहीं, अब सो पछैं न थाइ।
न हरि भजि बिलम न कीजिये, बषना बारौ जाइ ॥७॥
जे बोल्या तौ राम कहि, जे चुपका तौ राम।
दा मन मनसा हिरदा मही, बषना यहु विश्राम ॥८॥
दादू ब आया उस एक मैं, दही मही घृत सूध।
देखो ना वाकैं क्या रह्या, जब दुहि पीया दूध ॥९॥
सुर नर र अंगारे क्यूँ चुगे, चुगि देह जरावै।
सगल ब षना किहिं कारणैं, कोई मरम लखावै ॥१०॥
दादू साया भूति कबहूँ करै, लावै उस ठांई।
ठकुराणी स स्तक चन्द है, मिलि खाकै तांई ॥११॥
दादू जेहि घट इ तौ कदे न डोलै ज्ञान ध्यान गुर पूरा।
दादू जागै जो छै बासणि, छलकै सदा अधूरा ॥१२॥
माता नारी उतेबों कागदौ, लिख्या न आवै ज्ञानि।
दादू ग्यान बिच आकाश में, सब अपणैं उनमानि ॥१३॥
सूरिज फटिक पषा णवड़ौ, डरतौ सास न लेइ।
साचा सूरिज पसौ मिले, यौं लै चरणा देइ ॥१४॥
मूरति घड़ी पखाण म सूँ, बषना सारौ काम।
दादू साच सूझै न है, कब घरि जास्यूँ राम ॥१५॥
माया सांपणि सब ड ा गई। विसहर=विषधर, सर्प। न्योल=नेवला।
ब्रह्मा विश्न महेस

---

४. इक राजी=केवल एक राजा का रा
के राज्य।
५. काट=मोरचा, जंग। जाजरा=जर्जर। ाईं=उस (चन्द्र) के साथ।
८. मुनियर= मुनिवर। हेठ=नीचे दबी प ेन में, जिसमें कम पानी हो।
११. अवधूत=विशुद्धात्मा, मुक्तपुरुष।
१२. फटिक=स्फटिक, बिल्लौर। सास न लेह=मारे डर के सांस भी नहीं
१३. घड़ी=बनाई। कीया=रचा। न लें। कौड़ियों का खेल खेलता तो है,

मोटी देखि बहुत मन मान्यां, दूहतां दूध न आवै ।
बषना बहिल भैंसिनैं मूरखि, क्याहनैं पसर चरावै ॥१६॥
कण कड़वी भेला चरैं, आंधा बिषई प्राण ।
बषना पसु भरम्यां भखैं, सुनि भागौत पुराण ॥१७॥
देही का गुण बीसरैं, एक रंगि रहि जाइ ।
बषना सोई सन्तजन, कड़बि टालि कण खाइ ॥१८॥
मात पिता की गमि नहीं, तहां पिवायौ खीर ।
सो गुण थारा रामजी, बषनै लिख्या शरीर ॥१९॥
बषना इहि व्यौपार मैं टोटा मनहुँ न आणि ।
सिर साटैं जैं हरि मिलै, तबलग सुहगा जाणि ॥२०॥
बैसंदरि धोवै लूगड़ा, सूरजि करै रसोइ ।
बषना ताकी चिता मैं, अजहूँ धूँवाँ होइ ॥२१॥
इसा बड़ा गर्वैं गल्या, बल को करि अहंकार ।
थे बषना अब दीन ह्वै, सुमिरो सिरजनहार ॥२२॥
बषना सुमिरौ रामनैं, मन कौ गर्व गमाइ ।
जीवत जगि सोभा घणी, मूवा मुक्ति सिधाइ ॥२३॥
कोइल स्यांम, काग भी काला, भेष एक, पण लषण निराला ।
काग रंक परि करैं कुरांली, वा बोलै अम्बा की डाली ॥२४॥

पर ध्यान भय से उसका माता-पिता की ओर लगा हुआ है । लै=लय, तन्मयता ।

१५. अवार=देर । जास्यूँ=जाऊँगा, पहुँचूँगा ।

१६. बहिल=बांझ । क्याहनैं=क्यों, व्यर्थ । पसर=रात को हरी घास चराना ।

१७. कण=अन्न । कड़वी=भूसा । आंधा=मोहासक्त । भरम्यां भखैं=भ्रम में ही फँसे रहते हैं, सार वस्तु ग्रहण नहीं कर पाते ।

१८. एकरंगी=चित्तवृत्तियों का निरोध कर स्थिरबुद्धि हो जाना । टालि=दूर करके । कड़वी=विषय-भोगों से आशय है । कण=आत्मानन्द से आशय है ।

२०. मनहुँ न जाणि=मन में भी न ला । साटै=मोल । सुहगा=सस्ता ।

२१. बैसंदरि=अग्नि । लूगडा=कपड़ा ।

२४. पण=परन्तु । लषण=लक्षण । करंक=लाश । कुरांली=काँव-काँव ।

बषना हरि जल बरषिया, जल थल भरे अनेक ।
करम कठौंरा माणसां, रोम न भीगै एक ।।२४।।

पद

राग गौड़ी

रमईयो कहि नै कदि सो म्हारो जीवन प्राण आधार,
जिहिं की मूं नैं ओलू आवैं वारम्बार ।।
जोई नै रूडो जोइसी, रूडो लगन बिचारि ।
कहि गोविन्द कद आवसी, म्हारा आंगणडै पग धारि ।।
जिहि मिलियां आनन्द होइ रे, बीछड़ियाँ बैराग ।
तिहिं मिलबा कै कारणैं हूँ ऊभी उडाऊँली काग ।।
ऊभा बैठां निरखतां, म्हारा नैण रह्या रतवाय ।
हरि को मारग हेरतां, रैण गई दिन जाय ।
पंथी बूझौं पल गिणौं रे, ऊभी मारग जोइ।
कोई कहै हरि आवतो, म्हारो हियो उरेरो होय ।।
अणदीठो ओलूँ करै रे, मो मन बारंबार ।
ऊझल फूटा क्यार ज्यूँ, म्हारै नैंण न खंडै धार ।।
इहि बेला आयो नहीं, म्हारो रहीयो संदेशो ऊटि ।
हीयो पुराणी, बाड ज्यूँ, म्हारो गयो विचालथी टूटि ।।
सखी सहेली देहली रे, दाधा ऊपरि दाह ।
हौं न जाणों क्यूँही रह्यो, मो निगुणी रो नाह ।।
क्रिपा करि आवो हरि, जन अपणा सौभाइ ।
लेस्यूँ लांबैं आँचलि वारणां, बषनो बलिहारी जाइ ।।१।।

मूं नैं=मुझे । ओलूँ=याद । रूडो=सुन्दर । बैराग=दुःख से आशय है । ऊभी=खड़ी । नैंण रह्या रतवाय=रोते-रोते आंखें लाल हो गई हैं । मारग जोइ=बाट देखती हूँ । उरेरो=उमाह, आनन्द । अणदीठो=ऊझल=अधिक भर जाने पर । क्यार=क्यारी । खंडै=टूटती है । क्यूँ ही=कहा । निगुणी रो=अभागिनी का । नाह=नाथ, स्वामी । सौभाइ=शोभा या बड़ाई पावे । लांबै आँचलि=अंचल फैलाकर । वारणां=बलैयां । लेस्यूँ=लूँगी ।

आया था एक आया था, खबरि उहाँ की ल्याया था।
आदि अन्त की जाणै था, पूरणब्रह्म बखाणै था॥
बूझ्या थैं सब कहता था, धोखा कछू न रहता था।
हरि का सेवग आदू था, नाव उन्होंका दादू था॥
को ऐसा आयां सूझैगा, वषना ताकों बूझैगा॥२॥

राग गौड़ी

जोड़ौंगा रे जोड़ौंगा, हरि से प्रीत न तोड़ौंगा॥
जोति पतंगा जैसे जोड़ै, जीव जलै पै अंग न मोड़ैं।
मृगानाद सुणि ऐसे वाछै, प्यंड पड़ै परि अंग न खाँचै।
कतियारी ज्यूँ कात्या लोड़ै, ज्यूँ ज्यूँ तूटै त्यूँ त्यूँ जोड़ै॥
योंकरि वषना जोड़ा जोड़ी, हरि स्यूँ जोड़ि आन सूँ तोड़ी॥३॥

राग गौड़ी

पिरथी परमेसुर की सारी।
कोई राजा अपनै सिर पर, भार लेहु मत भारी॥
पिरथी कै कारणि कैरूँ पांडौ, करते जुद्ध दिनाई।
मेरी मेरी करि करि मूये, निहचै भई पराई॥
जाकै नौ ग्रह पाइडे बांधे, कूवै मीच उसारी॥
ता रावण की ठौर न ठाहर, गोविन्द गर्वप्रहारी॥
केते राजा राज बईठे, केते छत्र धरेंगे।
दिन द्वै चारि मुकाम भयो है, फिर भी कूंच करेंगे॥
अटल एक राजा अविनासी, जाकी अनंत लोक दुहाई।
वषना कहै, पिरथी है ताकी, नहीं तुम्हारी भाई॥४॥

---

२. उहाँ की=प्रियतम के घर को, ब्रह्मलोक की। बूझ्या थै=पूछने से, जिज्ञा करने पर। आदू=आदिगुरु।

३. अंग न मोड़ै=पीछे पैर नहीं रखता। वाछै=चाहे। प्यंड परै=शरीर भले ही गि जाये। खाँचै=खींचे, मोड़े। कतियारी=कातनेवाली। ज्यूँ-ज्यूँ तूटै=सूत ज्यों- कातने में टूटता है। स्यूँ=से।

४. पाइड़े बाँधे=खाट की पाटी से बँधे हुए थे। उसारी=लटका रखी थी।

राग गौड़ी

आसा रे अलूँधी रमइयौ कब मिलै, मिलियां हूँ जाण न देस।
अंचल गहि राखिस्यूँ रे, नैणा नीर भरेस ॥
राम रहूकौ म्हारे मनि वस्यो, बिसार्यो नहिं जाय।
जे कबहू दिन बिसरूँ रे, तो रैणि खटूकै आय ॥
जे सोऊँ तो दोय जणा रे, जे जागौं तो एक।
सेज टटोलूँ पीव ना लहूँ, म्हारै पड्यौ कलेजै छेक ॥
बार लगाई बालमा रे, बिरहनि करै बिलाप।
कोई इक आडो ह्वै रह्यो, म्हारो पूरब जनम कौ पाप ॥
बालपण थै बाटड़ी, बूढापा लग दीठ।
कहि बषना, आवो हरी, म्हारा बलता बुझै अँगींठ ॥५॥

राग रामकली

सोई जागै रे सोई जागै रे, रामनाम ल्यो लागै रे।
आप अलंबण नींद अयाणा, जागत सूता होय सयाणा ॥
तिंहि बरियाँ गुरु आया, जिनि सूता जीव जगाया ॥
थी तो रैणि घणेरी, नींद गई तब मेरी।
डरता पलक न लाऊँ हूँ जाग्यो और जगाऊँ ॥
सोवत सुपना मांहीं, जागूँ तो कछु नांहीं।
सुरति की सुरति विचारी, तब नेहा नींद निवारी ॥
एक सबद गुरु दीया, तिंहिं सोवत बैठा कीया।
वषना साध सभागा, जे अपने पहरे जागा ॥६॥

---

५. अलूँधी=अटकी हुई हूँ। रमइयो=प्यारा राम। मिलियाँ हूँ जाण न देस=मिलने पर फिर जाने नहीं दूँगी। खटूकै आय=खटकने लगता है। छेक=छेद। आड़ो=बाधक। बाटड़ी=राह। अँगीठ=हृदय की जलन।

६. अलंबण=अहंकार का आश्रय। अयाणा=अचेत, गाफिल, अपने अहंकार को आश्रय देने से नींद में गाफिल हो गया।
जागत सूता होय सयाणा=अपनी समझ में जाग रहा था, पर असल में अचेत था। बरियाँ=अवसर। रैणि घणेरी=लम्बी जिन्दगी से आशय है।

राग आसावरी

ऐसा रे मत ज्ञान विचारै, एकहिं को दूजा कर मारै ।।
जो तैं पाठ पढ्या रे भाई, सो पाठ सही ले बोड़ेगा।
दाँतण फाड्याँ लेखा लेगा, तो गल काट्याँ क्यूँ छोड़ेगा ।।
धोये हाथ पाँव भी धोये, मैल रह्या दिल मांहीं।
अलह टिसमला करि मारण लागा, साहब का डर नांहीं ।।
बेमिहरां को मिहर न आवे, स्वाद न छोड़ै कोई।
अलह राम वषना यों बोल्या, भिस्त कहाँ थै होई ।।७।।

राग आसावरी

फुरमाया रे फुरमाया रे भाई, खाण मतै ऐसी मन आई ।।
आपणि मार आपण ही खावै, पैंगम्बर नैं दोष लगावै ।।
रोजा धर्‍या निवाज गुजारी, सांझ पड्याँ थैं मुरगी मारी ।।
बेमेहर को मेहर न आवै. गले पराये छुरी चलावै ।।
वषना बहुत हिरस के घाले, भिस्त छाड़ दोजग को चाले ।।८।।

राग आसावरी

हूँ क्यों बिसरूँ रे तो गुण दीनदयाल ?
तूं म्हारो ओगुण छावणों करुणामै कृपाल ।।
जिहिं उदर मांहि अधार दीयो, नीर खीर संजोइ।
सो थारा कीया रामजी, म्हारै कहै न होइ ।।
जिहिं सिरज्या जल बूँद में, बँध्या इसा बँधाण।
सो हमनैं क्यूँ बीसरै, जिहिं का ये सहनाँण ।।

---

७. एकहिं···मारै=एक प्राणी को दूसरी आत्मा समझकर मारता है, असल में वह तेरी ही आत्मा है। सही ले बोड़ेगा=निश्चय ही ले डुबायेगा। भिस्त=वहिश्त स्वर्ग।

८. खाण मतै=खाने के विचार से। आपणि···लगावै=आपही ज़िबह करके खा जाता है और पैगम्बर मोहम्मद साहब का नाम लेता है कि उन्होंने जिबह क को कहा था! हिरस=वासना। घाले=मारे हुए, वशीभूत। दोजग=दोजख, नर

९. छावणों=छिपानेवाला। सँजोइ=जुटाकर। बँध्या इसा बंधाण=ऐसी अद

जिहिं सगेरा सहि सगा, मात पिता परिवार।
तिहिं तूटा सहि तूटसे, कोई राखै नहीं लगार॥
ओरे सबै विसारिस्यूँ, कहूँ नहिं म्हारे भाइ।
जिहि बिना म्हारे ना सरै, सो क्यूँ विसारयो जाइ॥
ये गुण थारा रामजी, ये दूजा का नांहिं।
सो बषना क्यूँ बीसरै, लिख्या जु हिरदे मांहिं॥९॥

राग सोरठ

हिरदो बडो रे कठोर।
कोटि कियां भीजै नहीं, ऐसो पाहण नाहीं और॥
गंगा ने गोदावरी न्हायो, कासी पुहकर मांहिं रे।
कर्म कापड़ै मैण को, तार्थें रोम भीगो नांहिं रे॥
वेद ने भागोत सुनिया, कथा सुणी अनेक रे।
कर्म पाखर सारिखा, तार्थें वाण न लागै एक रे॥
औंधा कलसा ऊपरै, जल बूठो अखंड धार रे।
तत वेला निहालियो, तो पाणी नहीं लगार रे॥
ब्रह्म अगनि पाषाण जाल्या, चूना कीया सलेस रे।
बषना भिजोया रामरस, म्हारा सतगुरन आदेस रे॥१०॥

राम मारू

विचालै अन्तरो रे, हरि, हम भागो नांहिं॥
को जाणै कद भाजसी, म्हारै पछतावो मन मांहिं।

शरीर-रचना की। जलबूँद सें=एक बूँद वीर्य और एक बूँद रज के संयोग से। सहनांण=निशानी। सगेरा सहि=सम्बन्ध के कारण। लगार=नाता, साथ। म्हारे ना सरै=मेरा काम नहीं चलता।

१०. कोटि कियां=करोड़ों उपाय करने पर भी। ने=और। पुहकर=पुष्कर-तीर्थ। मैण=मोम। पाखर=कवच। कलस=घड़ा। बूठो=बरसा। निहालियो=संभाला। ततवेला=सही समय पर। सलेस=पक्का। ब्रह्म······सलेस रे=पत्थर के जैसे हृदय को ब्रह्म की अग्नि में अर्थात् प्रचंड प्रीति में जलाकर पायेदार चूना तैयार कर लिया और अब उसे प्रियतम राम के प्रेम-रस में भिगोकर बुझा लिया है।

आडा डूँगर बन घणां, नदियाँ बहैं अनंत।
सो पंखडियाँ पंजर नहि, हौं मिल-मिल आऊँ नित॥
चरण पाबैं चालिबो रे, धरती पाबैं बाट।
परवत पाबैं लंवणा, विषमी ओघट बाट॥
जातौं जाताँ द्योहडा, म्हारै मन पछितावो होइ।
जीवत मेलो हे सखी, मूंवा न मिलसी कोइ॥
हरिदरसन कारणि हे सखी, म्हारै नैंन रह्या जल पूरि।
सो साजन अलगा हुवा, भ्वै भारी घर दूरि॥
पाती प्यारा पीव की, हूँ क्यूँ बाँचों कर लेइ।
विरह महाघन ऊमड्यो, म्हारो नैंन न बाँचण देइ॥
बटाऊ उहि बाट का, म्हारो संदेसो तिहिं हाथि।
आऊँली नाहीं रहूँ, काहू साधूजन कै साथि॥
ज्यूँ वन कै कारणि हस्ती झुरै, चकवी पैले पारि।
यों बषना झुरै राम कूँ, ज्यूँ उलगाँणा की नारि॥११॥

राग टोड़ी

नांव हरी का प्यारा रे, जासूँ लागा हेत हमारा रे॥
जैसे माखी को गुड़ मीठा, जिसा पतंगै दीपक दीठा।
जैसे चन्द कमोदनि प्यारा, तैसा हरि सूँ हेत हमारा।
ज्यूँ कीड़ी कण सांच्या भावै, सीप स्वांति जल ऊपरि आवै।
चन्दनि चील न होई न्यारा, तैसा हरि सूँ हेत हमारा॥१२॥

---

११. विचालै अंतरो=(हम दोनों के) बीच वह अंतर पड़ गया है। भागसी=भा जायेगा। आड़ा=बाधक। डूँगर=टीले, भींटे। पंजर=शरीर। नित=नित्य। पाबैं शब्द कुछ अस्पष्ट-सा है; किन्तु स्वामी मंगलदासने इसका अर्थ 'बिना' किया है जो ठीक बैठता है। विषमी=कठिन, भयानक। द्योहडा=दिन। मिलसी=मिलेगा भ्वै=भय। बटाऊ=राहगीर। हस्ती=हाथी। झुरै=रोता है (वन बीच में आ जाने हथिनी के वियोग से) पैले पारि=(जलाशय के) उस पार। उलगाँणा-परदे गया हुआ।

१२. हेत=प्रेम। चील='चील्ह' का अर्थ कुछ बैठता नहीं; संभवतः चकोर से आ हो।

राग टोडी

हेरिलै फेरिलै घेरिलै पाछो, रामभगति करि होय मन आछो ॥
जाणि तांणि अपूठो आणि, जे वाणैं तो हरि सों वाणि ॥
बावरो भयो कै लागी वाइ, रीती तलाइयां भूलण जाइ ।
साधसंगति में रहु रे भाई, बषना तूनैं रामदुहाई ॥१३॥

रागबिलावल

मेरे लालन हो, दरस द्यो क्यूँ नांहीं ।
जैसे जल बिन मीन तलपै, यूँ हूँ तेरे ताईं ॥
बिन देख्यूँ तन तालावेली, बिरहनि बारहमासी ।
दिल मेरी का दरद पियारे, तुम्ह मिलियां तैं जासी ॥
रैणि निरासी होइ छैमासी, तारा गिणत बिहासी ।
दिन बिरहनि क्यूँ बाट तुम्हारी, सदा उडीकत जासी ॥
जल थल देखूँ परवत देखूँ वन वन फिरों उदासी ।
बूझों कोई उहाँ थै आथा, ठावा मोहि बतासी ॥
फिरि फिरि सबै सयाने बूझे, हौं तो आसपियासी ।
बषना कहै, कहो क्यूँ नाहीं, कब साहिब घर आसी ॥१४॥

राग कन्हारो

भाव-भजन की भाठी आगे, राम-रसायन पीवन लागे ॥
देहरी कलाली, तूं जिनि नाटै, हरि-रस तो है तन कै साटै ।
एक पियाला हमकों दीया, साथी सह मतिवाला कीया ॥
सद मतिवाले साध हमारे, तन मन कापड़ गहणै मारे ।
सार सुधारस हिरदै धारे, हरि-रस पीवे पिचका डारे ॥

---

१३. हेरिलै=खोजले । फेरिलै=पलटले (विषयों की ओर से । घेरिलै=मोड़ले जाणि=समझकर । ताणि=खींच । अपूठो=सम्मुख, स्थिर । जे वाणि=यदि वाणिज्य करना है । रीती तलाइयाँ=विना पानी के तालावों में । भूलण जाइ=नहाने-तैरने जाता है । तूनैं=तुझे ।

१४. तेरे ताईं=तेरे लिए । विहासी=कटती है । ठावा=सही । सयानें=ओझा लोग । आसी=आयेगा।

१५. भाटी=मद्य वनाने की भट्टी । रसायन=गद्य जिनि नाटै=नाहीं न कर । साटै=

पीवे सदा खुमार न भागै, ल्याव ही ल्याव सदा ल्यो लागै।
नाचैं गावैं हरि-रस-राते, बषना दादूपंथी माते ॥१५॥

राग मलार

बीछड्या राम-सनेही रे, म्हारै मन पछ्तानो येही रे ॥*
बीछुड़िया वन दहिया रे, म्हारै हिवडै करवत बहिया रे ॥
बिलखी सखी सहेली रे, ज्यूँ जल बिन नागरवेली रे ॥
वा मुलकनि की छवि छाहीं रे, म्हारै रहि गई हिरदै माहीं रे ॥
को उहिं उणहारे नाहीं रे, हौं ढूँढ़ रही जग माहीं रे ॥
सब फीको म्हारै भाई रे, मंडली को मंडण नाहीं रे।
कोण सभा में सोहे रे, जाकी निर्मल वाणी मोहे रे ॥
भरि-भरि प्रेम पियावे रे, कोई दादू आणि मिलावे रे ॥
वषना बहुत बिसूरे रे, दरसन कै कारण झूरे रे ॥१६॥

बदले में, मोल में। तन ......मारे=तन, मन और वस्त्र रेहन रख दिये, सर्वस्व सौंप दिया। पिचका डारे=फोक फेंक दिया।

१६. वन दहिया=(जीवनरूपी) वन धायँ-धायँ जल रहा है। हिवडै करवत बहिया=हृदय पर करौत (आरा) चल रहा है। मुलकनि=प्रफुल्लता, विहँसन। उणहारे=उपमा का। मंडण=शृंगार। विसूरे=याद कर-कर रोता है। कारण=लिए। झूरे=तड़प रहा है।

*यह पद बषनाजीने सद्गुरु स्वामी दादू दयाल के महानिर्वाण के प्रसंग पर वियोग की दशा में कहा था।

वाजिदजी

चोला-परिचय

जाति—पठान
पूर्वधर्म—इसलाम
गुरु—स्वामी दादू दयाल

वाजिदजी के विषय में केवल इतना ही प्रसिद्ध है कि यह एक

पठान थे। शिकार खेलने एक दिन निकले, और जंगल में एक हिरणी पर तीर चलाने ही वाले थे कि इनके हृदय से करुणा का निर्झर फूट पड़ा। तीर-कमान तोड़कर फेंक दिये। जीवन जीव-प्रेम की ओर मुड़ गया। सद्गुरु पाने के लिए व्याकुल हो उठे। खोजते-खोजते स्वामी दादू दयाल की अकुतोभय शरण पाली, और उनके कृपापात्र शिष्य हो गये। दादू दयालजी के १५२ शिष्यों में वाजिदजी की भी गणना की जाती है।

स्वामी मंगलदासजी ने अपने 'पंचामृत' में वाजिदजी के विषय में राघोदासजी का यह कवित्त उद्धृत किया है—

छाड़िकै पठान-कुल रामनाम कीन्हों पाठ,
भजनप्रताप सूँ वाजिद बाजी जीत्यौ है॥
हिरणी हतत उर डर भयो भयकारि,
सीलभाव उपज्यो दुसीलभाव बीत्यौ है॥
तोरे हैं कवांणतीर चाणक दियो शरीर
दादूजी दयाल गुरु अंतर उदीत्यौ है॥
राघो रति रात दिन देह दिल मालिक सूँ
खालिक सूँ खेल्यो जैसे खेलण की रीत्यौ है।

बानी-परिचय

'अरिल' छंद में अनेक अंगों पर वाजिदजी ने प्रसादगुणयुक्त सरल सरस रचना की है। कहते हैं कि छोटे-छोटे १४ ग्रन्थों में इनकी पूरी बानी है, पर सब उपलब्ध नहीं है। इनकी कुछ साखियों को रज्जबजी ने भी अपने संग्रह में संकलित किया है। इन्होंने दोहे-चौपाई में भी रचना की है।

भाषा में ओज है, प्रवाह है। उर्दू-फारसी शब्दों का कदाचित् ही प्रयोग किया है। दया और उदारता तथा देह की अनित्यता पर इनके बड़े ही भावपूर्ण 'अरिल' हैं।

आधार

पंचामृत—स्वामी मंगलदास, श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर

वाजिदजी

अरध नाम पाषाण तिरे नर लोइ रे ।
तेरा नाम कह्यो कलि मांहिं न बूड़े कोइ रे ।
कर्म सुकृति इकवार बिलै हो जाहिंगे ।
हरि हां, वाजिद, हस्ती के असवार न कूकर खाहिंगे ॥१॥

रामनाम की लूट फबी है जीव कूँ ।
निसवासर वाजिंद सुमरता पीव कूँ ।
यही बात परसिद्ध कहत सब गांव रे ।
हरि हां, अधम अजामेल तिर्यो नारायण-नांव रे ॥२॥

कहियो जाय सलाम हमारी राम कूँ ।
नैण रहे झड़ लाय तुम्हारे नाम कूँ ॥
कमल गया कुमलाय कल्याँ भी जायसी ।
हरि हां,वाजिद, इस बाड़ी में बहुरि न भंवरा आयसी ॥३॥

चटक चांदणी रात बिछाया ढोलिया ।
भर भादव की रैण पपीहा बोलिया ॥
कोयल सबद सुणाय रामरस लेत है ।
हरि हां, वाजिद, दाज्यो ऊपर लूण पपीहा देत है ॥४॥

रैण सवाई वार पपीहा रटत है ।
ज्यूँ ज्यूँ सुणिये कान करेजा कटत है ॥
खान पान वाजिंद सुहात न जीव रे ।
हरि हां, फूल भये सम सूल बिना वा पीव रे ॥५॥

---

१. अरध नाम……रे—रामनाम के आधे भाग से अर्थात् 'रकार' मात्र से समुद्र पर नल आदि वानर लोगों ने पत्थर तैरा दिये । बिलै=क्षीण । खाहिंगे=काटेंगे

२. फबी=जँची । पीव=प्रियतम, परमात्मा ।

३. नैण=नयन । कल्याँ=कलियाँ, पंखड़ियाँ । जायसी=(मुरझा) जायेंगी । आयसी=आयेगा । भँवरा=भ्रमर, जीव से आशय है ।

४. ढोलिया=पलंग । रैण=रात । दाज्यो=जला हुआ । लूण=नमक ।

पंछी एक संदेस कहो उस पीव सूँ ।
बिरहनि है बेहाल जायेगी जीव सूँ ॥
सींचनहार सुदूर, सूक भई लाकरी ।
हरि हां, वाजिद, घर ही में बन कियो वियोगनि बापरी ॥६॥

बालम बस्यो विदेस भयावह भौन है ।
सोवै पाँव पसार जु ऐसी कौन है ॥
अति ही कठिन यह रैण बीतती जीव कूँ ।
हरि हां, वाजिद, कोई चतुर सुजान कहै जाय पीव कूँ ॥७॥

पीव बस्या परदेस कि जोगन मैं भई ।
उनमनि मुद्रा धार फकीरी मैं लई ॥
ढूँढ्या सब संसार क अलख जगाइया ।
हरि हां, वाजिद, वह सूरत वह पीव कहूँ नहिं पाइया ॥८॥

जब तें कीनो गौन भौन नहिं भावही ।
भई छमासी रैण नींद नहिं आवही ॥
मीत, तुम्हारी चीत रहत है जीव कूँ ।
हरि हां, वाजिद, वो दिन कैसो होइ मिलौं हरि पीव कूँ ॥९॥

कहिये सुणिये राम और नहिं चित्त रे ।
हरि-चरणन को ध्यान सु धरिये नित्त रे ॥
जीव बिलंब्या पीव दुहाई राम की ।
हरि हां, सुख संपति वाजिद कहो किस काम की ॥१०॥

तुमहि बिलोकत नैण भई हूँ बावरी ।
झोरी डंड भभूत पगन दोउ पाँवरी ॥

---

६. सूक भई लाकरी=सूखकर लकड़ी की तरह दुबली हो गई । बापरी=गरीब, दीन ।
७. पाँव पसार=बेफिकर होकर ।
९. चीत=ध्यान ।
१०. बिलंब्या=रम गया, लग गया ।
११. झोरी=झोलो । भभूत=भस्म । पाँवरी=खड़ाऊँ ।

कर जोगण को भेष, सकल जग डोलिहूँ ।
वाजिद, ऐसो मेरो नेम राम मुख बोलिहूँ ॥११॥

सूर कमल वाजिंद न सुपने मेल है ।
जरै द्यौस अरु रैण कड़ाई तेल है ॥
हमही में सब खोट दोष नहिं स्याम कूँ ।
हरि हां, वाजिद, ऊंच नीच सों बंधे कहो किहि काम कूँ ॥१२॥

भूखे भोजन देह उघारे कापरो ।
खाय धणी को लूण जाय कहाँ बापरो ।
भली बुरी वाजिंद सबै ही सहेंगे ।
हरि हां, दरगह को दरवेश यहां ही रहेंगे ॥१३॥

हरिजन बैठा होय तहाँ चल जाइये ।
हिरदै उपजै ग्यान रामगुण गाइये ॥
परिहरिये वह ठाम भगति नहिं राम की ।
हरि हां, वाजिद बीन विहूणी जान कहो किस काम की ॥१४॥

साधां सेती नेह लगे तो लाइये ।
जे घर होवे हांण तहुँ न छिटकाइये ॥
जे नर मूरख जान सो तो मन सें डरै ।
हरि हां, वाजिद, सब कारज सिध होय कृपा जे वह करै ॥१५॥

बेग करहु पुन दान बेर क्यूँ बनत है ।
दिवस घड़ी पल जाम जुरा सो गिनत है ॥

---

१२. सूर=सूर्य । द्यौस=दिवस, दिन । कड़ाई तेल=जैसे कढ़ाई में तेल जलता है । खोटा=दोष, कमी ।

१३. उघारे=नंगे को । कापरो=कपड़ा । धणी को लूण=मालिक का नमक । बापरो=बेचारा । दरगह=खुदा का घर । दरवेश=फ़कीर ।

१४. विहूणी=विना प्रियतम की ।

१५. साधां सेती=साधुजनों के साथ । लाइयो=लगाना चाहिए । हांण=हानि । न छिटकाइये=तोभी नहीं छोड़ना चाहिए । जे=यदि ।

मुख पर देहैं थाप सूँज सब लूटिहै।
हरि हां, जम जालिम सूँ वाजिंद जीव नहि छूटिहै ॥१६॥
कहै वाजिंद पुकार सीख एक सुन्न रे।
आड़ो बांकी वार आइहै पुन्न रे॥
अपनों पेट पसार बड़ौं क्यूँ कीजिये।
हरि हां, सारी में तै कौर और कूँ दीजिये ॥१७॥
धन तो सोई जाण, धणी के अरथ है।
बाकी माया वीर पाप को गरथ है॥
जो अब लागी लाय बुझावै भौन रे।
हरि हां वाजिद, बैठ पथर की नाव पार गयो कौन रे ॥१८॥
जो भी होय कुछ गांठि खोलिकै दीजिये।
सांई सबही मांहि, नांहि क्यूँ कीजिये॥
जाको ताकूँ सोंप क्यूँ न सुख सोवही।
हरि हां, अंत लुणें वाजिद खेत जो बोवही ॥१९॥
जोध मुये ते गये, रहे ते जाहिंगे।
धन साँचता दिनरैण कहो कुण खांहिंगे॥
तन धन है मिजमान दुहाई राम की।
हरि हां, दे ले खर्च खिलाय धरी किहि काम की ॥२०॥
गहरी राखी गोय कहो किस काम कूँ।
या माया वाजिंद समर्पो राम कूँ॥

---

१६. पुन=पुण्य। वेर=देर। जुरा=जरा, बुढ़ापा। थाप=थप्पड़, तमाचा। सूँज=सामान।

१७. आड़ो·····पुन्न रे=अरे, विपत्ति के समय एक पुण्य ही काम आयेगा। सारी में ते कौर=पूरी थाली में से एक कौर या ग्रास।

१८. अरथ=निमित्त। गरथ=राशि, पूँजी। लाय=आग।

१९. जाको ताकूँ सोंप=जिस मालिक का दिया धन है उसीके निमित्त उसे लगादे।

२०. जोध=योद्धा। मुये=मर गये। साँचता=जोड़ता, इकट्ठा करता। कुँण=कौन। मिजमान=मेहमान; क्षणस्थायी। धरी=संचित (संपत्ति)।

२१. गहरी राखी गोय=ज़मीन में गाड़कर रखी हुई। कान·····दास रे=अरे, यह

कान अंगुली मेलि पुकारे दास रे।
हरि हां, फूल धूल में धरै न फैलै बास रे ॥२१॥

टेढ़ी पगड़ी बाँध झरोखा झाँकते।
ताता तुरग पिलाण चहूँटे डाकते ॥
लारे चढ़ती फौज नगारा बाजते।
वाजिंद, ये नर गये विलाय सिंह ज्यूँ गाजते ॥२२॥

दो दो दीपक जोय सु मन्दिर पोढ़ते।
नारी सेतीं नेह पलक नहीं छोड़ते ॥
तेल फुलेल लगाय क काया चाम की।
हरि हां, वाजिद, मर्द गर्द मिल गये दुहाई राम की ॥२३॥

सिर पर लम्बा केस चले गज चालसी।
हाथ गह्यां समसेर ढलकती ढालसी ॥
एता यह अभिमान कहाँ ठहराहिंगे।
हरि हां, वाजिद, ज्यूँ तीतर कूँ बाज झपट ले जाहिंगे ॥२४॥

कारीगर कर्तार क हून्दर हद किया।
दस दरवाजा राख शहर पैदा किया ॥
नखसिख महल बनायक दीपक जोड़िया।
हरि हां, भीतर भरी भँगार क ऊपर रंग दिया ॥२५॥

काल फिरत है हाल रैणादिन लोइ रे।
हनै राव अरु रंक गिणै नहिं कोइ रे ॥

प्रभु का दास वाजिद खूब चिल्लाकर कह रहा है। फूल······वास रे=अरे, जैसे मिट्टी में दबा देने से फूल की सुगन्ध नहीं फैलती, वैसे ही धन गाड़ देने या छिपा-कर रखने में यश नहीं मिलता।

२२. टेढ़ी=बाँकी, झुकी हुई। ताता=तेज। पिलाण=जीन कसकर। चहूँटे डाकते=चारों तरफ़ कूदते थे। लारे=पीछे-पीछे। गये विलाय=लापता हो गये।

२३. जोय=जलाकर। मंदिर=महल। सेती=से, प्रति। मर्द=शूरवीर।

२५. हूंदर=हुनर, करीगरी। दीपक=जीवात्मा से अभिप्राय है। भँगार=कचरा।

यह दुनियां वाजिद बाट की दूब है।
हरि हां, पाणी पहिले पाल बँधे तो खूब है ॥२६॥
सुकरित लीनो, साथ पड़ी रहि मातरा।
लाम्बा पाँव पसार बिछाया साँथरा॥
लेय चल्या बनवास लगाई लाय रे।
हरि वाजिद, देखै सब परिवार अकेलो जाय रे ॥२७॥
भूखो दुर्बल देख नाहिं मुहँ मोड़िये।
जो हरि सारो देय तो आधी तोड़िये॥
दे आधी की आध अरध की कोर रे।
हरि हां, अन्न सरीखा पुन्य नाहिं कोइ और रे ॥२८॥
खैर सरीखी और न दूजी वसत है।
मेल्हे वासण मांहिं कहा मुहँ कसत है॥
तूं जिन जानें जाय रहेगो ठाम रे।
हरि हां, माया दे वाजिंद धणी के काम रे ॥२९॥
मंगण आवत देख रहे मुहुँ गोय रे।
जद्यपि है बहु दाम काम नहिं लोय रे॥
भूखे भोजन दियो न नागा कापरा।
हरि हां, बिन दीया वाजिंद पावे कहा बापरा ॥३०॥
जल में झीणा जीव थाह नहिं कोय रे।
बिन छाण्या जल पियां पाप बहु होय रे॥

---

२६. लोइ=लोगो। बाट की दूब=रास्ते पर का घास, जिसे सभी कुचलकर चलते हैं।

२७. मातरा=दौलत। साँथरा=सेज; यहाँ अरथी से आशय है। लाय=आग।

२८. तोड़िये=तोड़कर या हिस्सा करके देदे। कोर=टुकड़ा।

२९. खैर=खैरात। वसत=वस्तु। मेल्हे=रख देने पर। वासण=वर्तन। कसत है=बांधता है। माया=धन-संपत्ति। धणी=ईश्वर।

३०. गोय=छिपाकर। नांगा कापरा=नंगे को कपड़ा। बापा=बेचारा।

३१. झीणा=सूक्ष्म। काठै=मोटे। जुगत सों=सावधानी के साथ।

काठै कपडे छाण नीर कूँ पीजिये।
हरि हां वाजिद, जीवाणी जल मांहि जुगत सूँ कीजिये ॥३१॥

साहिब के दरबार पुकार्यां बाकरा।
काजी लीया जाय कमरसों पाकरा॥
मेरा लीया सीस उसीका लीजिये।
हरि हां, वाजिद, राव रंक का न्याव बराबर कीजिये ॥३२॥

पाहन पड़ गई रेख रातदिन धोवहीं।
छाले पड़ गये हाथ मूँड़ गहि रोवहीं॥
जाको जोइ सुभाव जाइहै जीव सूँ।
हरि हां, नीम न मीठी होइ सींच गुड़ घीव सूँ ॥३३॥

सतगुरु शरणें आयक तामस त्यागिये।
बुरी भली कह जाय ऊठ नहिं लागिये॥
उठ लाग्या में राड़, राड़ में मीच है।
हरि हां, जा घर प्रगटै क्रोध सोइ घर नीच है॥३४॥

कहि-कहि वचन कठोर खरूँट नहिं छोलिये।
सीतल सान्त स्वभाव सबन सूँ बोलिये॥
आपन सीतल होय और भी कीजिये।
हरि हां, बलती में सुण मीत न पूला दीजिये॥३५॥

बड़ा भया सो कहा बरस सौ साठ का।
वणां पढ्या तो कहा चतुर्विधि पाठ का॥

---

३२. पाकरा=पकड़ा। न्याव=न्याय, इन्साफ़।

३३. जाको········जीव सूँ=जान भले चली जाय, पर स्वभाव नहीं बदलता घीव=घी।

३४. ऊठ नहिं लागिये=उठकर जवाब नहीं देना चाहिए। राड़=लड़ाई-झगड़ा। मीच=मौत, सर्वनाश।

३५. पूला=घास की पूली; उत्तेजन से आशय है।

३६. न आया हाथ=वश में नहीं हुआ। पंसेरी आठ का=मन; यहाँ तोल के मन नहीं, वरन् मन अर्थात् चित्त से तात्पर्य है।

छापा तिलक बनाय कमंडल काठ का ।
हरि हां, वाजिद, एक न आया हाथ पंसेरी आठ का ॥३६॥

स्वामी सुन्दरदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६५३ वि०, चैत्र शु० ६
जन्म-स्थान—द्यौसा (जयपुर राज्यान्तर्गत)
पिता—चोखा; दूसरा नाम परमानन्द
माता—सती
जाति—बूसर (खण्डेलवाल वैश्य)
गुरु-स्वामी दादू दयाल
भेष—विरक्त
निर्वाण-संवत्—१७४६ वि०

६ या ७ वर्ष की बाल्यावस्था में ही सं० १३५९ में सुन्दरदासजी सद्गुरु महात्मा दादू दयाल के शरणापन्न हो गये थे—

दादूजी जब द्यौसा आये। बालपने महँ दरसन पाये ॥

[ग्रन्थ गुरु संप्रदाय

सुन्दरदासजी ने स्वयं अपनी एक साखी में कहा है—

"सुन्दर सतगुरु आपतें, किया अनुग्रह आइ ।
मोह-निसामें सोवते, हमकौं लिया जगाइ ॥

तथा—

"दादूजी जब द्यौसा आये। बालपने हम दर्सन पाये।
तिनके चरननि नायौ माथा। उनि दीयो मेरे सिर हाथा ॥"

[बावनी ग्रन्थ

उम्रमें सबसे छोटे होने के कारण दादूजी महाराज के सभी शिष्य इनके प्रति बड़ा स्नेह-भाव रखते थे। दादूजी ने इन्हें अपने प्रिय शिष्य जगजीवनजी को सौंप दिया था, और वे सदा इनकी बहुत सार-सँभाल रखा करते थे।

११ वर्ष की अवस्था में सुन्दरदासजी कुछ गुरुभाइयों के साथ विद्याध्ययन करने काशी चले गये। वहाँ इन्होंने संस्कृत-साहित्य का अठारह-उन्नीस वर्ष रहकर बड़ा गहरा अध्ययन किया। व्याकरण, काव्य, दर्शन आदि के साथ योग-विद्या का भी अच्छा अनुशीलन किया। भाषा-काव्य-रचना भी काशी में ही इन्होंने आरंभ की। कहते हैं कि काशी में यह गंगा के उसी असी घाट पर रहा करते थे, जहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी ने शरीर-त्याग किया था।

काशी से विद्याध्ययन करके सुन्दरदासजी सं० १६८२ में सीधे फतेहपुर शेखावाटी आये। यहाँ पर कितने ही वर्ष यह रहे। यहीं योगाभ्यास किया और १२ वर्षतक घोर तपश्चर्या भी। सत्संग भी इन्होंने यहीं चेताया, और कितने ही छोटे-बड़े ग्रंथों की रचना भी की। इनकी प्रसिद्धि की सुगंध यहाँ से धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगी। फतेहपुर इनका साधना-स्थान बना, और सिद्ध-स्थान भी।

देशाटन भी सुन्दरदासजी ने बहुत किया। सद्गुरु दादू दयालजी के सब पुण्यस्थानों को तो उन्होंने देखा ही, बिहार, बंगाल, उड़ीसातक पूर्व के देशों का, और लाहौरतक पश्चिम का, व गुजरात, मालवा और द्वारकातक भी भ्रमण किया था। अपने देशाटन के सवैयों में सुन्दरदासजी ने कितने ही स्थानों का उल्लेख और वर्णन किया है। मालवा और उत्तरप्रदेश इन्हें बहुत प्रिय था। इन प्रान्तों की प्रशंसा भी इन्होंने खूब की है।

सुन्दरदासजी स्वामी दादू दयाल के पट्ट शिष्य रज्जबजी के विशेष स्नेह-पात्र थे। रज्जबजी के साथ सत्संग करने यह प्रायः साँगानेर जाया करते थे। विद्वद्वर पुरोहित श्री हरनारायण शर्माने 'सुन्दर-ग्रंथावली' (प्रथम खंड-जीवन-चरित्र, पृष्ठ ५९) में लिखा कि है "सुन्दरदासजी ने रज्जबजी से बहुत ज्ञान-लाभ किया था, और उनकी उक्तियों और विचारों और कविताओं में रज्जबजी की झलक पड़ती है।"

दादू दयालजी के एक अन्य प्रधान शिष्य बषनाजी का भी सुन्दरदासजी से बहुत प्रेम-भाव रहता था। कहते हैं कि, "बषनाजी के साथ

सुन्दरदासजी प्रेममग्न होकर पद गाया करते थे, और अपने रचे पदों को भी सुनाते, जिनके रागों की यथार्थता में बषनाजी सम्मति देते थे।" (सुन्दर-ग्रंथावली-प्रथम खण्ड, जीवन-चरित्र-पृष्ठ ८७)।

इसी प्रकार दादू दयालजी के प्रधान शिष्य गरीबदासजी, बाजिदजी, जनगोपालजी, जगजीवनजी, राघोदासजी, प्रागदासजी, नारायणदासजी, मोहनदासजी आदिभी सुंदरदासजी के समकालीन और परमस्नेहियों में से थे।

महात्मा सुन्दरदास एक पहुँचे हुए परम वीतराग संत थे। निर्मल और ऊँची रचनी थी इनकी। अति दयालु और भगवत्प्रेम में निरन्तर विभोर रहनेवाले यह ऊँचे ज्ञानी तथा हरिभक्त थे।

सुन्दरदासजी का शरीरपात संवत् १७४६ में सांगानेर में हुआ था। अनन्य सत्संगी श्री रज्जबजी के ब्रह्मलीन हो जाने का असह्य समाचार सुनकर यह अत्यंत व्यथित हुए, और उसी दिन से इनका स्वास्थ्य गिरने लगा। कार्तिक शुक्ला अष्टमी को तीसरे पहर सुन्दरदासजी समाधि लेकर ब्रह्मलीन हो गये।

सांगानेर में प्राप्त एक शिला-लेख में लिखा है—

"संवत् सत्रासै छीयाला। कातीसुदी अष्टमी उजीयाला॥
तीजे पहर ब्रहसपतवार। सुन्दर मिलिया सुन्दरदास॥"

सुंदरदासजी की रची अंत समय की ४ साखियाँ हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"निरालंब निरवासना, इच्छाचारी येह।
संस्कार-पवनहि फिरै, शुष्कपर्ण ज्यौं देह॥
वैद्य हमारे रामजी, औषधहू हरिनाम।
सुन्दर यहे उपाय अब, सुमरण आठों जाम॥
सुन्दर संसय कौ नहीं, बड़ो महोच्छव येह।
आतम परमातम मिल्यौ, रहौ कि बिनसौ देह॥
सात बरस सौ में घटै, इतने दिन कौ देह।
सुन्दर आतम अमर है, देह खेह की खेह॥"

बानी-परिचय

स्वामी सुन्दरदास सच्चे अर्थ में एक महाकवि थे। केवल काव्य की स्वीकृत दृष्टि से देखा जाये तो शान्तरस के वे एकमात्र आचार्य माने जा सकते हैं। कवि के लौकिक अर्थ में निर्गुणपन्थी संतों में कवि केवल सुन्दरदास को ही कहा जा सकता है। भाषा, भाव, छन्द, अलंकार, ध्वनि आदि प्रायः सभी काव्याङ्गों को देखते हुए सुन्दरदासजी अपना एक विशेष स्थान रखते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

हमने बहुत पहले सुन्दरदासजी का 'सुन्दरविलास' नामक एक ग्रंथ देखा था। इसमें उनके अनूठे सवैयों का संग्रह था। उनके समस्त छोटे-बड़े ग्रंथों का अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण सुसंपादित संस्करण, 'सुन्दर-ग्रंथावली' नाम का, दो खण्डों में देखकर सुन्दरदासजी के सत्काव्य का जब हमने यत्किंचित् रसास्वादन किया, तब ऐसा लगा कि उनके रचे "ज्ञान-समुद्र' और "सवैया' में से प्रस्तुत संग्रह-ग्रंथ में किन रत्नों को स्थान दिया जाये और किन्हें छोड़ा जाये।

विद्वद्वर पुरोहित हरिनारायण शर्मा विद्याभूषण ने इस ग्रंथावली का ऐसा उत्तम संपादन किया है कि देखते ही बनता है। अनेक परिशिष्टों के साथ २०८ पृष्ठों की अत्यन्त शोधपूर्ण भूमिका, और १८६ पृष्ठों का ग्रंथकर्त्ता का मंथनपूर्ण विशद जीवन-चरित्र देखकर कौन संत-साहित्य रसिक मुग्ध नहीं हो जायेगा। टिप्पणियाँ, कठिन गूढ़ शब्दों के सरल अर्थ, और विपर्यय के अंगों की पाण्डित्यपूर्ण 'सुन्दरानन्दी' टीका लिखकर विद्वान् संपादक ने संत-साहित्य के रसिकों का अनुपम हित किया है।

सुन्दरदासजी के समस्त ग्रंथों का विभाजन 'सुन्दर-ग्रंथावली में 'नीचे-लिखे ६ विभागों में हुआ है :—

१ प्रथम विभाग—इसके अंतर्गत केवल 'ज्ञान-समुद्र' ग्रंथ रखा गया है, जिसमें ५ उल्लास है।

२ द्वितीय विभाग—इसके अन्तर्गत छोटे-छोटे ३७ ग्रंथ हैं।*

---

*(१) सर्वाङ्ग योग प्रदीपिका, (२) पंचेन्द्रिय-चरित्र, (३) सुख

३ तृतीय विभाग—"सवैया" इस अत्युत्तम ग्रंथ की छंद-संख्या ५६३, और अंग-संख्या ३४ है।

४ चतुर्थ विभाग—"साखी" ; इसकी अंग-संख्या ३१ हैं।

५ पंचम विभाग—"पद" ; इसमें २७ भिन्न-भिन्न रागों में २१३ पद हैं।

६ षष्ठ विभाग—फुटकर काव्य।

इन छोटे-बड़े ग्रंथों में 'ज्ञान-समुद्र' तथा 'सवैया' अथवा 'सुन्दर-विलास' ये दो ग्रंथ सर्वोत्कृष्ट हैं। 'ज्ञान-समुद्र' को स्वयं सुन्दरदासजी ने भी अपना सबसे उत्कृष्ट ग्रंथ कहा है। श्री पुरोहितजी के शब्दों में यह ग्रंथ "वर्तमान कालतक के भाषा-साहित्य में ज्ञान का भंडार छन्दोबद्ध सर्वगुणालंकृत ऐसा सुरम्य ग्रंथ और है ही नहीं, जिसमें थोड़े-से वर्णनों में इतने विशाल विषय इतनी सरलता और चातुर्य से एकत्रित हों। भाषा-काव्य में ज्ञानकाण्ड का यह रीति-ग्रंथ है। स्वामी सुन्दरदासजी इसके कारण इस प्रदेश की विद्या और विधान में आचार्य हैं।"

समाधि, (४) स्वप्नप्रबोध, (५) वेदविचार, (६) उक्त अनूप, (७) अद्भुत उपदेश, (८) पंच प्रभाव, (९) गुरु संप्रदाय, (१०) गुन उत्पत्ति निसानी, (११) सद्गुरु महिमा निसांनी, (१२) बावनी, (१३) गुरुदया षट्पटी, (१४) भ्रम विध्वंस-अष्टक, (१५) गुरुकृपा अष्टक, (१६) गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक (१७) गुरुदेव महिमा-स्तोत्र अष्टक, (१८) रामजी अष्टक, (१९) नाम अष्टक, (२०) आतम अचल-अष्टक, (२१) पंजाबी भाषा अष्टक, (२२) ब्रह्मस्तोत्र अष्टक, (२३) पीर मुरीद अष्टक, (२४) अजब ख्याल अष्टक, (२५) ज्ञान झूलना अष्टक, (२६) सहजानन्द ग्रंथ, (२७) गृह वैराग बोध ग्रंथ, (२८) हरिबोल चितावनी, (२९) तर्क चितावनी, (३०) विवेक चितावनी, (३१) पवंगम छन्द, (३२) अडिल्ला छन्द, (३३) मडिल्ला छन्द, (३४) बारह मासिया, (३५) आयुर्बल भेद आतमा विचार, (३६) त्रिविध अन्तःकरण भेद, और (३७) पूर्वीभाषा बरवै।

'सवैया' अथवा 'सुन्दरविलास, ग्रंथ भी इनका अनूठा और बड़ा लोकप्रिय है। इसके जोड़ के शान्तरस के सवैये अन्यत्र मिलने में संदेह ही है।

'विपर्यय' अंग इसका अत्यन्त गूढ़ और क्लिष्ट भी है। कबीर साहब की उलट बाँसियों से इस अंग के सवैये कम महत्त्व के नहीं हैं। बिना अच्छी टीका के इनका अर्थ स्पष्ट हो नहीं सकता। किंतु कबीर साहब की 'उलट बाँसियों' और सुन्दरदासजी के 'विपर्यय' को हमने प्रस्तुत संग्रह में स्थान न देने की धृष्टता की है। प्रसादगुणमयी सरल सुबोध रचनाओं को ही हमने इस संग्रह में लिया है।

'सवैया' और 'साखी' में भी ज्ञानकाण्ड के प्रायः सभी गूढ़ अंगों का विश्लेषण सुन्दरदासजी ने इतना सरस, सरल और इतना अनूठा किया है कि देखते ही बनता है। शान्तरस का ऐसा काव्यात्मक परिपाक अन्यत्र बहुत कम मिलेगा।

भाषा पर इस संत महाकवि का पूरा अधिकार था। अच्छी परिष्कृत साधुभाषा है। मुख्यतः ब्रजभाषा है, पर खड़ी हिन्दी और राजस्थानी का भी स्वभावतः उसमें मेल हुआ है। महाविरों और लोकोक्तियों का स्थान-स्थान पर बहुत उपयुक्त प्रयोग किया गया है। भारत की अनेक प्रांतीय भाषाओं के कितने ही शब्द इनके काव्यों में मिलते हैं। फारसी के भी अनेक शब्दों का मुक्त प्रयोग हुआ है।

गोसाईं तुलसीदास की तरह इन्होंने भी क्योंकि 'नाना पुराण निगमागम' तथा अन्य अनेक संस्कृत एवं भाषा-ग्रन्थों का अध्ययन किया था, और अनेक देशों का पर्यटन भी, इसलिए इनकी रचनाओं में कितने ही अनुभवात्मक भाव देखने में आते हैं, किंतु कहने का ढंग इनका अपना मौलिक है।

काव्य के सभी लक्षण इनकी रचनाओं में हम पाते हैं। ध्वनि और अलंकारों का सुन्दर प्रयोग कितने ही पद्यों में हुआ है। प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों ही गुण अच्छी मात्रा में मिलते हैं।

शांतरस के वर्णन में सुन्दरदासजी का वास्तव में अपना एक विशेष स्थान है। श्री पुरोहितजी ने यह सर्वथा सही लिखा है—"सुन्दरदासजी ने शृंगारादि रसों पर मानों विजय पाकर शांतरस का यह क़िला बनाकर उसपर विजय का झंडा फहरा दिया है। इस पक्ष में वे आचार्य माने जाने के योग्य हैं।"

लिखा भी सुन्दरदासजी ने बहुत अधिक है। सारी पद्य-संख्या इनकी ३७८८ है।

छन्द ५२ प्रकार के इन्होंने लिखे हैं। १४ छंद चित्रकाव्य के भी हैं और २७ रागों में पदों की भी सरस रचना इन्होंने की है।

स्वामी सुन्दरदासजी की बानी क्या भाव, क्या भाषा, क्या अध्यात्म सभी दृष्टियों से अति सरस और सरल तथापि गूढ़ है। संत-साहित्य में इस बानी का एक निराला ही स्थान है, इसमें संदेह नहीं।

आधार

सुन्दर-ग्रंथावली (प्रथम तथा द्वितीय खण्ड)—सं० पुरोहित श्रीहरि नारायण शर्मा, विद्या-भूषण—राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता

स्वामी सुन्दरदास

ज्ञान-समुद्र

छप्पय

प्रथम बन्दि परब्रह्म परम आनंदस्वरूपं।
दुतिय बन्दि गुरुदेव दियौ जिह ज्ञान अनूपं॥
त्रितिय बंदि सब संत जोरिकर तिनके आगय।
मन बच काय प्रणाम करत भय भ्रम सब भागय॥
इहिं भांति मंगलाचरण करि, सुन्दरग्रन्थ बखानिये।
तह विघ्न न कोऊ उप्पजय, यह निश्चयकरि मानिये॥१॥

१. आगय=आगे, सामने। उप्पजय=उत्पन्न होता है, सामने आता है।

सुत कलत्र निज देह आपुकौं बंधन जानत।
छूटौं कौन उपाय इहैं उर अन्तर आनत॥
जन्ममरन की शंक रहै निशदिन मन माहीं।
चतुराशी के दुःख नहीं कछु बरने जाहीं॥
इहिं भांति रहै सोचत सदा, संतनि कौं पूछत फिरै।
को है ऐसो सद्गुरु कहीं, जी मेरौ कारय करै॥२॥

रोड़ा

चित्त ब्रह्म लयलीन नित्य शीतल हि सुहृदय।
क्रोधरहित सब साधु साधु-पद नाहिंन निर्दय॥
अहंकार नहिं लेश महान सबनि सुख दिज्जय।
शिष्य परख्य विचारि जगत महिं सो गुरु किज्जय॥३॥

छप्पय

सदा प्रसन्न सुभाव प्रगट सर्वोपरि राजय।
तृप्त ज्ञान विज्ञान अचल कूटस्थ विराजय॥
सुखनिधान सर्वज्ञ मान अपमान न जानै।
सारासार बिवेक सकल मिथ्या भ्रम भानै॥
पुनि भिद्यन्ते हृदिग्रन्थि कौं, छिद्यन्ते सबसंशयं।
कहि सुन्दर सो सद्गुरु सही, चिदानंदघनचिन्मयं॥४॥

---

२. कलत्र=स्त्री। चतुराशी=चौरासी लाख योनियाँ। कारय=कार्य; माया के बन्धन से छुटकारा।

३. सुहृद=शुद्ध सात्त्विक मनवाला। साध=साधन। निर्दय=करुणारहित। दिज्जय=देता हो। किज्जय-किया जाये।

४. राजय=शोभित। कूटस्थ-नित्य, स्थिर। भानै=विनष्ट करता हो। भिद्यन्ते तोड़ता या खोलता हो। हृदि-ग्रंथि=आत्मा और परमात्मा के बीच की द्वैतबुद्धि छिद्यन्ते=नष्ट होते हों।

मिलाइए—तृप्त… विराजय=“ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रिय” गीता।

सोरठा

ऐसे गुरु पहिं आइ, प्रश्न करै कर जोरिकैं।
शिष्य मुकति ह्वै जाइ, संशय कोऊ नां रहै ॥५॥

चौपाई

खोजत खोजत सद्गुरु पाया। भूरिभाग्य जाग्यौं शिष आया।
देखत दृष्टि भयो आनन्दा। यह तौ कृपा करी गोविन्दा ॥६॥

सोरठा

शिष्य सुनाऊँ तोहि, प्रेम-लक्षणा भक्ति कौं।
सावधान अब होहि, जो तेरैं सिर भाग्य है ॥७॥

इंदव

प्रेम लग्यौ परमेश्वर सों तब भूलि गयौ सब ही घरबारा।
ज्यौं जनमत्त फिरैं जित ही तित, नैकु रही न शरीर-सँभारा ॥
स्वास उस्वास उठैं सब रोम, चलै दृग नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधा विधि, छाकि पर्‌यौ रस पी मतवारा ॥८॥

नराय

प्रेमाधीना छाक्या डोलै। क्यौं का क्यौं ही बानी बोलै।
जैसे गोपी भूली देहा। ताकौं चाहै जासौं नेहा ॥९॥

छप्पय

कबहूँ कै हँसि उठय नृत्यकरि रोवन लागय।
कबहूँ गदगद कंठ शब्द निकसै नहिं आगय।
कबहूँ हृदय उमंगि बहुत उच्चय स्वर गावै।
कबहूँ कै मुख मौंनि मगन ऐसैं रहि जावै।
तौ चित्तवृत्य हरि सौं लगी, सावधान कैसैं रहैं।
यह प्रेमलक्षणा भक्ति है शिष्य सुनहिं सद्गुरु कहै ॥१०॥

तथा-पुनि… संशयं="भिद्यते हृदयग्रंथिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।"

८. उठैं सब रोम=रोमांचित अर्थात् पुलकित हो जाये। नवधा=बंदन, अर्चन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन आदि नौ प्रकार की भक्ति।

९. क्यों का क्यों =कुछ का कुछ, अटपटी।

१० वृत्य=वृत्ति, लौ। सावधान=सचेत, होश में।

मनहर

नीर बिनु मीन दुखी, छीर बिनु शिशु जैसैं,
पीर जाकै औषद बिनु कैसैं रह्यो जात हैं।
चातक ज्यौं स्वांति-बूंद, चंद कौं चकोर जैसैं,
चन्दन की चाह करि सर्प अकुलात है।
निर्धन ज्यौं धन चाहै, कामिनी कौं कन्त चाहै,
ऐसी जाकै चाह ताकौं कछु न सुहात है।
प्रेम कौ प्रभाव ऐसौ, प्रेम तहाँ नेम कैसौ,
सुन्दर कहत यह प्रेम ही की बात है ॥११॥

दोहा

प्रेमभक्ति यह मैं कही, जानैं बिरला कोइ।
हृदय कलुषता क्यौं रहै, जा घट ऐसी होइ ॥१२॥

दोहा

मनकरिं दोष न कीजिये, बचन न लावै कर्म।
घात न करिये देह सौं, इहे अहिंसा धर्म ॥१३॥

सोरठा

सत्य सु दोइ प्रकार, एक सत्य जो बोलिये।
मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है ॥१४॥

मालती

छमा अब सुनहि शिष मोसौं, सहनता कहौं सब तोसौं।
दुष्ट दुख देहि जो भारी, दुसह मुख वचन पुरि गारी ॥
कदे नहि छोभ कौं पावै, उदधि महि अग्नि बुझि जावै।
बहुरि तन त्रास दे कोऊ, छमा करि सहै पुनि सोऊ ॥१५॥

---

११. पीर=पीड़ा। अकुलात है=बेचैन हो जाता है। चाह=तीव्र लालसा। नेम=विधि-निषेध के नियम।

१३. मनिकरि=मन से, मानसिक। दोष=द्वेष।

१५. कदे=कभी भी। छोभ=रोष, आपेसे बाहर हो जाने का भाव। उदधि···जावै=शांन्तिरूपी समुद्रमें क्रोधरूपी अग्नि अपने आप शांत हो जाती है।

चौपइया

यह कोमल हृदय रहै निशबासर बोलै कोमल बानी।
पुनि कोमल दृष्टि निहारैं सबकौं कोमलता सुखदानी।।
ज्यौं कोमल भूमि करै नीकी विधि बीज वृद्धि ह्वै आवै।।
त्यौं इहै आर्ज्जव-लक्षण सुनि शिष योगसिद्धि कौं पावै।।१६।।

सवइया

नाना सुख-संसार-जनित जे तिनहि देखि लोलुप नहिं होइ।
स्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागै सुख दोइ।।
पूजा मान बड़ाई आदर निंदा करै आइकैं कोइ।
या प्रकार मति निश्चल जाकी सुन्दर दृढ़मति कहिये सोइ।।१७।।

नहिं हर्ष शोक न सुखं दुखं नहीं मान अमानियो।
पुनि मनौं इन्द्रिय वृत्य नष्टं गतं ज्ञान अज्ञानयो।
नहि जाति कुल नहिं वर्ण आश्रम जीव ब्रह्म न जानिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बखानिये।।१८।।

सद्गुरु-महिमा निसांनी

दोहा

अद्भुत ख्याल रच्यौ प्रभू, बहुत भाँति विस्तार।
संत किये उपदेश कौं, पार-उतारनहार।।१।।

निसानी

पार उतारनहार जी गुरु दादू आया।।
जीवनि के उद्धार कौं हरि आपु पठाया।।२।।

---

१६. आर्ज्जव=कोमलता।

१७. संसार-जनित=संसारी माया-मोह से उत्पन्न। इहामुत्र=इह+अमुत्र, यह लोक और परलोक। दृढ़मति=स्थिरबुद्धि।

१८. अमानियो=अनादर भी। वृत्य=वृत्ति। जीव ब्रह्म न जानिये=जीव और ब्रह्म में भेद नहीं जाना जाता।

रामनाम उपदेश दे भ्रम दूरि उड़ाया।
ज्ञान भगति बैराग हू ये तीन दृढ़ाया ॥३॥
विमुख जीव सन्मुख किये हरिपंथ चलाया।
झूठ क्रिया सब छाड़िकै प्रभु सत्य बताया ॥४॥
माया मिथ्या सांपिनी जिनि सब जग खाया।
मुख तें मंत्र उचारिकैं उनि मृतक जिवाया ॥५॥
बूड़त काली धार में गहि नाव चढ़ाया।
पैली पार उतारिकैं निज पद पहुँचाया ॥६॥
परउपकारी हैं इसे मोटी निधि ल्याया।
जन्म जन्म की भूख थी सब जीव अघाया ॥७॥
दयावंत दुखमेटना सुखदायक भाया।
शीलवंत साचै मतै संतोष गहाया ॥८॥
रवि ज्यौं प्रगट प्रकाश में जिनि तिमिर मिटाया।
शशि ज्यौं शीतल है सदा रस अमृत पिवाया ॥९॥
अति गंभीर समुद्र ज्यौं तरवर ज्यौं छाया।
बानी बरिषै मेघ ज्यूँ आनन्द बढ़ाया ॥१०॥
चंदन ज्यौं लपटै बनी द्रुम नाम गमाया।
पारस जैसैं परस तैं कंचन ह्वै काया ॥११॥

---

२. पठाया=भेजा।
४. सन्मुख किये=भगवान् की शरण में लाये।
६. पैली पार=उस पार, माया से परे। निजपद=ब्रह्मानुभूति की अवस्था।
७. इसे=ऐसी। मोटी=बहुत बड़ी, अनमोल। अघाया=तृप्त कर दिया।
८. भाया=प्रिय।
११. चन्दन···गमाया···कहते है कि चन्दन जिस वृक्ष से लिपट जाता है उसे चंदन बना देता है, उसका फिर पहले का नाम नहीं रहता, वह तद्रूप हो जाता है।

चुम्बक ज्यौं लोहा लगैं भृति भ्रंगि लगाया।
हीरा ज्यौं अति जगमगै निरमोल निपाया ॥१२॥
कामधेनु चिंतामनी तरु कल्प कहाया।
सबकी पूरै कामनां जिनि जैसा ध्याया।१३॥
अडिग इसा है मेरु ज्यौं डोलै न डुलाया।
भूमि जिसा भारी खवां जिनि सहन सिखाया ॥१४॥
निर्मल जैसा नीर है मल दूर बहाया।
तेजवन्त पावक जिसा भय-शीत नसाया ॥१५॥
पवन जिसा सब सरिखा को रंक न राया।
व्यौम जिसा हृदये बड़ा कहुँ पार न पाया।१६॥
टेक जिसी प्रहलाद है ध्रुव ज्यौं मन लाया।
ज्ञान गह्यो शुकदेव ज्यौं परब्रह्म दिखाया ॥१७॥
योग युगति गोरक्ष ज्यौं धंधा सुरझाया।
हद छाड़ि वेहद मैं अनहद बजाया ॥१८॥
जैसैं नाम कबीरजी यौं साधु कहाया।
आदि अन्तलौं आइकैं रमि राम समाया ॥१९॥
सद्‌गुरु-महिमा कहन कौं मैं बहुत लुभाया।
मुख में जिह्वा एक ही तातें पछिताया ॥२०॥
नमस्कार गुरुदेव कौं जिनि बंदि छुड़ाया।
दादू दीन दयाल का सुन्दर जस गया ॥२१॥

---

१२. भृति=भरण-पोषण करके। निरमोल=अनमोल। निपाया=बना दिया।
१४. इसा=ऐसा। मेरु=सुमेरु पर्वत। जिसा=जैसा, समान। खवां=क्षमा। सहन=सहिष्णुता।
१६. सरिखा=सदृश। को=कोई। व्यौंम=आकाश। बड़ा=उदार।
१७. मनलाया=चित्त लगाया।
१८. गोरक्ष=गोरखनाथ। धन्धा=जगजाल, द्वैतबुद्धि।
१९. नाम=संत नामदेव। समाया=तल्लीन हो गया।

दोहा

सद्गुरु की महिमा कही, मति अपनी उनमान ।
सुन्दर अमित अनंत गुन, को करि सकै बखान ।।२२।।

भ्रमविध्वंस अष्टक

दोहा

सुन्दर देख्या सोधिकैं सब काहू का ज्ञान ।
कोई मन मानै नहीं, बिना निरंजन ध्यान ।।१।।
षट दरसन हम खोजिया, योगी जंगम शेख ।
संन्यासी अरु सेवड़ा, पण्डित भक्ता भेख ।।२।।

त्रिभंगी

तौ भक्त न भावैं, दूरि बतावैं, तीरथ जावैं फिरि आवैं ।
जी कृत्रिम गावैं, पूजा लावैं, झूठ दिढ़ावैं बहिकावैं ।।
अरु माला नांवैं, तिलक बनावैं, क्यौं पावैं गुरुबिन गैला ।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ।।३।।
तौ पंडित आये, बेद भुलाये, षटकरमाये तृपताये ।
जी संध्या गाये, पढ़ि उरझाये, रानाराये ठगि खाये ।।
अरु बड़े कहाये, गर्व न जाये, राम न पाये थाघेला ।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ।।४।।
तौ ए मत हेरे, सबहिन केरे, गहिगहि गेरे बहुतेरे ।
तब सतगुरु टेरे, कानन मेरे, जाते फेरे आ घेरे ।।

---

२२. मति उनमान=बुद्धि के अनुसार ।

१. कोई मन मानै नहीं=किसी पर भी मन जमता नहीं ।

२. षट दरसन=छह शास्त्र । सेवड़ा=जैन संन्यासी ।

३. कृत्रिम=मनुष्य-निर्मित मूर्तियाँ । दिढ़ावैं=विश्वास जमाते हैं । नावैं=डालते या पहनते हैं । गैला=ईश्वर से मिलने का रास्ता; गेहला अर्थात् मूर्ख । भरम-पछेला=भ्रम अर्थात् अविद्या को पछाड़ देनेवाला । न्यारा=अनासक्त ।

४. षट करमाये=ब्राह्मणों के षट् कर्मों में लग गये (वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना ये षट कर्म । तृपताये=तर्पण इत्यादि कर्म किये । थाघेला=पता लग गया ।

उन सूर सवेरे, उदै किये रे, सबै अँधेरे नाशेला।
दादू का चेला भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ॥५॥

रामाष्टक

मोहिनी

आदि तुम ही हुते अवर नहिं कोइ जी।
अकह अति अगह अति बर्न नहिं होइ जी॥
रूप नहिं रेख नहिं श्वेत नहिं श्याम जी।
तुम सदा एकरस रामजी, रामजी ॥१॥

प्रथम ही आप तैं मूल माया करी।
बहुरि वह कुब्बि करि त्रिगुन ह्वै बिस्तरी॥
पंच हू तत्त्व तैं रूप अरु नाम जी।
तुम सदा एकरस रामजी रामजी ॥२॥

भ्रमत संसार कतहूँ नहीं वोर जी।
तीनहू लोक मैं काल कौ सोर जी॥
मनुषतन यह बड़े भाग्य तैं पाम जी।
तुम सदा एकरस रामजी रामजी ॥३॥

पूरि दशहू दिशा सर्ब्ब मैं आप जी।
स्तुतिहि को करि सकै पुन्य नहिं पाप जी॥
दास सुन्दर कहै देहु विश्राम जी।
तुम सदा एकरस रामजी रामजी ॥४॥

---

५. गेरे=फेंक दिये। घेरे=मोड़ लिया (सांसारिक विषयों की ओर से) सूर=सूर्य। नाशेला=नष्ट कर दिया।

१. अकह=अकथनीय, अवर्णनीय। अगह=जो मन और इन्द्रियों से ग्रहण न किया जा सके। बर्न=वर्णन।

२. कुब्बि करि=अर्थ स्पष्ट नहीं होता है, तथापि सुन्दर-ग्रन्थावली के विद्वान् संपादक ने इसका अर्थ किया है 'विकृत या फैलना।'

३. वोर=अंत। सोर=शोर। पाम=पाते हैं।

सहजानन्द

चौपाई

चिन्ह बिना सब कोई आये । इहां भये दोइ पंथ चलाये ।
हिंदू तुरक उठ्यौं यह भर्मा । हम दोऊ का छाड्या धर्मा ॥
नां मैं कृत्तम कर्म बखानौं । नां रसूल का कलमा जानौं ।
नां मैं तीन ताग गलि नाऊँ । नां मैं सुन्नत करि बौराऊँ ।
माला जपौं न तसबी फेरौं । तीरथ जाऊँ न मक्का हेरौं ॥
न्हाइ धोइ नहिं करूँ अचारा । ऊजू तैं पुनि हूवा न्यारा ।
एकादशी न व्रतहि बिचारौं । रौजा धरौं न बंग पुकारौं ।
देव पितर नहिं पीर मनाऊँ । धरती गड़ौं न देह जलाऊँ ॥१॥

दोहा

हिंदू की हदि छाड़िकै, तजी तुरक की राह ।
सुन्दर सहजै चीन्हियां एकै राम अलाह ॥२॥

हरिबोल चितावनी

दोहा

मेरी मेरी करत हैं, देखहु नर की भोल ।
फिरि पीछे पछिताहुगे (सु) हरि बोलै हरि बोल ॥१॥

---

१. भर्मा=भ्रम, भेदभाव । कृत्तम=कृत्रिम, बनावटी, बाह्याडंबर । रसूल=पैगंबर मुहम्मद साहब । तीन ताग=जनेऊ । नाऊँ=डालता हूँ, पहनता हूँ । सुन्नत=मुसलमानी संस्कार, जिसमें मूत्रेन्द्रिय के अगले भाग का कुछ चमड़ा काट देते हैं। भीतरी अर्थ है आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन । बौराऊँ= बावला बनूँ । तसबी= तसबीह, माला जिसे मुसलमान फेरा करते है । हेरौं=ध्यान में नहीं लाता हूँ । ऊजू=वजू; नमाज पढ़ने से पहले हाथ-मुँह धोने की क्रिया । बंग=बांग, अज़ान; नमाज़ पढ़ने से पहले मुल्ला मसजिद से ज़ोर-ज़ोर से 'अल्लाहो अकबर' की जो आवाज़ लगाता है उसे 'बाँग देना' कहते हैं ।

२. चीन्हियां=पहचान लिया ।

१. भोल=भूल, भोलापन ।

किये रुपइया एकठे, चौकूँटे अरु गोल ।
रीते हाथिन वै गये, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥२॥

चहलपहल-सी देखिकैं, मान्यौ बहुत अंदोल ।
काल अचानक लै गयौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥३॥

सुकृत कोऊ ना कियौ, राच्यौ झँझट झोल ।
अंति चल्यौ सब छाड़िकैं (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥४॥

मूंछ मरोरत डोलई, ऐंठ्यौं फिरत ठठोल ।
ढेरी ह्वै है राख की, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥५॥

पैंडो ताक्यौ नरक कौ, सुनि-सुनि कथा कपोल ।
बूड़े काली धार मैं, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥६॥

माल मुलक हय गय घने, कामिनि करत कलोल ।
कतहूँ गये बिलाइकैं (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥७॥

मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल ।
मरद गरद में मिलि गये (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥८॥

ऐसी गति संसार की, अजहूँ राखत जोल ।
आपु मुये ही जानिहै, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥९॥

बांकि बुराई छाड़ि सब, गांठि हृदै की खोल ।
वेगि बिलँब क्यों बनत है, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१०॥

---

२. चौकूँटे=चार खूंट के याने चौकोर रुपये ।
३. अंदोल=आनन्द-कलोल, मौज ।
४. राच्यौ=रंग गया । झोल=टंटा ।
५. ठठोल=हँसी-मजाक ।
६. पैंडो=रास्ता । कपोल=झूठी ।
७. गय=गज ।
८. मोटे मीर=बड़े रईस । डफोल=डींग, आडम्बर । गरद=धूल ।
९. जोल=('सुंदर-ग्रंथावली' के अनुसार) जोर, शक्ति का घमंड ।
१०. बांकि=बाँकापन ।

हिरदै भीतर पैठिकरि, अंतःकरण बिरोल।
को तेरौ तू कौन कौ,(सु)हरि बोलौ हरि बोल ॥११॥
तेरौ तेरे पास है, अपनैं माँहि टटोल।
राई घटै न तिल बढ़ै,(सु)हरि बोलौ हरि बोल ॥१२॥
सुन्दरदास पुकारिकैं, कहत बजायें ढोल।
चेति सकै तौ चेतिले,(सु)हरि बोलौ हरि बोल ॥१३॥

तर्क चितावनी

चौपाई

पूरण ब्रह्म निरंजन राया। जिनि यहु नखसिख साज बनाया॥
ता कहुँ भूलि गये बिभचारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१॥
बालापन महिं भये अचेता। मात पिता सौं बाँध्यों हेता।
प्रथमहिं चूके सुधि न सँभारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२॥
भयौ किशोर काम जब जाग्यौ। परदारा को निरखन लाग्यौ।
ब्याह करन की मनमहिं धारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥३॥
मात पिता जोरचौ सनबंधा। कै कछु आपुहि कीयो धंधा।
लैकरि पांस गरे महिं डारी। अइया, मनषहुँ बूझि तुम्हारी ॥४॥
ता पीछे जोबन मदमाता। अति गति ह्वै विषया सन राता।
अपनी गनै न पर की नारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥५॥
गर्ब करै पुनि ऐंठ्यौ डोलै। मुख तें जो भावै सो बोलैं।
लाज कानि सब पटकि पछारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥६॥

---

११. बिरोल=मंथनकर।

१. राया=राजा, स्वामी। बिभचारी=विषयानुरक्त; नास्तिक। अइया=अय, हे भाई मनुषहुँ=मनुष्यत्व पाकर भी। बूझि तुम्हारी=तुम्हारी ऐसी समझ है (मूर्खता पूर्ण)!

२. हेता=प्रेम, नाता।

४. सनबंधा=विवाह-संबन्ध। पांस=पाश, फंदा।

५. अतिगति=अत्यन्त। सन=से।

६. कानि=मर्यादा, शील।

आठहुँ पहर बिषैरस-भीनां । तन मन धन जुवती कों दीनां ।
ऐसी बिषया लागी प्यारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥७॥
कामिनि संग रह्यौ लपटाई । मानहुँ इहै मोक्ष हम पाई ।
कबहूँ नेक होइ जिनि न्यारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥८॥
जौ त्रिय कहै सु अति प्रिय लागै । निशिदिन कपि ज्यौं नाचत आगैं ।
मारउ सहै सहै पुनि गारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥९॥
औरउ कर्म करै बहुतेरा । जन जन कै आगै हुइ चेरा ।
चोरी करै करै बटपारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१०॥
ज्यौं त्यौंकरि कछु घर मैं आनैं । बनिता आगै दीन बखानैं ।
हौं तेरौ नित आज्ञाकारी । अइया, मनषहुँ बूझि तुम्हारी ॥११॥
पुत्र पौत्र बंध्यौ परिवारा । मेरे मेरे कहै गँवारा ।
करत बड़ाई सभा मझारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१२॥
उद्दिम करि-करि जोरी माया । कै कछु भाग्य लिख्यौ सो पाया ।
अजहूँ तृष्णा अधिक पसारी । अइया, मनषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१३॥
ऐसैं करत बुढापा आया । तब काठी करि पकरी माया ।
कोड़ी खरचत कसकै भारी । अइया, मनुषहूँ बूझि तुम्हारी ॥१४॥
मेरे बेटे पोते खैहैं । मेरी संची कोई न लैहैं ।
ईश्वर की गति कछु न विचारी । अइया, मनषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१५॥
निपट वृद्ध जब भयौ शरीरा । नैंननि आवन लाग्यौ नीरा ।
पौरी परचौ करै रखवारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१६॥

---

७. विषया=कामवासना ।
८. जिनि=नहीं ।
९. मारउ=मार भी ।
१०. चेरा=दास । बटपारी=राहचलते डकैती ।
११. दीन बखानै=दीनता से बोलता है ।
१४. काठी=लाठी ।
१५. संचो=जोड़ी हुई दौलत ।
१६. पौरी=दरवाजे के पास की कोठरी । रखवारी=घर की चौकीदारी ।

कानहुँ सुनै न आँखहुँ सूझै। कहैं और की औरै बूझै।
अब तौ भई बहुत बिधि ख्वारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१७॥
बेटा बहू नजीक न आवै। तूँ तौ मति चल कहि समुझावै।
टूक देहि ज्यौं स्वान बिलारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१८॥
बकतौ रहै जीभ नहिं मोरै। मरिहुँ न जाइ खाटली तोरै।
तैं खखारि सब ठौर बिगारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१९॥
खिजिकरि उठै सुनै जब ऐसी। गारि देहि मुख भावै तैसी।
भौंडी रांड करकसा दारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२०॥
उठि न सकै कंपै कर चरना। या जीवन तैं नीकौ मरना।
तौहूँ मन मैं अति अहंकारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२१॥
अब तौ निकट मौति चलि आई। रोक्यौ कण्ठ पित्त कफ बाई।
जमदूतनि पासी बिस्तारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२२॥
निकसत प्रान सैंन समुझावै। नारायन कौ नाम न आवै।
देखि सबन कौं आँसू ढारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२३॥
हंस बटाऊ किया पयाना। मृतक देखिकरि सबै डराना।
घर महि तैं लै जाहु निकारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२४॥
लोग कुटुम्ब सबै मिलि आये। आपुन रोये और रुलाये।
लैकर चाले धाह उचारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२५॥
लै मसान मैं आये जबही। कीये काठ एकठे सबही।
अग्नि लगाइ दियौं तन जारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२६॥

---

१७. ख्वारी=बर्बादी, खराबी।

१८. टूक=रोटी का टुकड़ा। विलारी=बिल्ली।

१९. जीभ नहीं मोरै=चुप भी नहीं होता। खाटली तोरै=चारपाई पड़े-पड़े तोड़ता है। खखारि=थूक-थूककर।

२०. भौड़ी=फूहड़। दारी=स्त्री के लिए एक गाली।

२२. बाई=बात। पासी विस्तारी=फाँसी डालदी।

२३. सैन=आँख का इशारा।

२४. हंसबटाऊ=जीवात्मारूपी पथिक। पयाना=प्रयाण, कूच।

२५. धाह उचारी=धाड़ मारकर।

संचि संचिकरि राखी माया । औरहि दिया न आपु न पाया ।
हाथ झारि ज्यौं चल्यौ जुवारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२७॥
सुकृत न किऔ न राम संभारचौ । ऐसौ जन्म अमोलिक हारचौ ।
क्यौं न मुक्ति की पौरि उघारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२८॥
सकलसिरोमनि है नरदेहा । नारायन कौ निज घर येहा ।
जामहिं पइये देव मुरारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२९॥
चेति सकै सो चेतहु भाई । जिनि डहकाओ रामदुहाई ।
सुंदरदास कहे जु पुकारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥३०॥

पवंगम *

पिय के बिरह बियोग भई हूँ बावरी ।
शीतल मंद सुगन्ध सुहात न बाव री ॥
अब मुहि दोष न कोइ परौंगी बावरी ।
(परि हां) सुन्दर चहुँ दिश बिरह सु घेरी बावरी ॥१॥
पिय नैंननि की वोर सैंन मुहि दे हरी ।
फेरि न आये द्वार न मेरी देहरी ॥
बिरह सु अन्दर पैठि जरावत देह री ।
(परि हां) सुंदर बिरहिन दुखित सीख का देह री ॥२॥

---

२७. संचि संचि=जोड़-जोड़कर । पाया=भोगा ।

२८. संभार्यौं=स्मरण किया । क्यौं न······उघारी–मोक्ष का द्वार क्यों नहीं खोला ? संसार से छूटने का उपाय क्यों नहीं किया ?

* इन पवंगम छन्दों में 'यमक अलंकार' का चमत्कार दिखाया गया है । अर्थ करने में कहीं-कहीं पर 'सुन्दर-ग्रंथावली' का आधार लिया गया है ।

१. बावरी=इसके क्रमशः ४ अर्थ किये जाते हैं —(१) बावली याने पगली (२) वायु+अरी, (३) बावड़ी (अब मुझे कोई दोष न देना, मैं बावड़ी में गिरकर प्राण दे दूँगी), (४) भौंरी (अर्थात् विरह की भौंर में फँस गई हूँ) ।

२. वोर=ओर । देहरी=इसके क्रमशः ४ अर्थ किये जाते हैं–
(१) दे हरो, अर्थात् आँखों से इशारा देकर मेरा मन हर लिया, (२) देहली, (३) देह (शरीर) को री सखी, (४) देती है+अरी ।

दूभर रैनि बिहाय अकेली सेजरी।
जिनकै संगि न पीव बिरहनी से जरी ॥
बिरहै संकल वाहि बिचारीं से जरी।
(हरि हां) सुन्दर दुःख अपार न पाऊँ से जरी ॥३॥

अड़िला *

सुन्दर बिरहिनि बिरहै वारी। प्रीति करत किनहू नहिं वारी।
पिय कौं फिरी बाग अरु वारी। अब तौ आइ पहूँची वारी ॥१॥
मैं तौ प्रीति करत नहिं जानां। पीव सु लै आये नहिं जानां।
निशदिन बिरह जरावत जानां। सुन्दर अब पिय ही पै जानां ॥२॥
अब सखि अपना मन बसि करना। वह तौ पिय किस ही कै कर ना।
अपनी खुसी करैं सो करना। तौ सुन्दर किस ही का कर ना ॥३॥
घर मैं बहुत भई जब माया। तब तौ फूल्यौ अंग न माया।
बहुरि त्रिया सौं बाँधी माया। सुंदर छाड़ि जगत की माया ॥४॥
खैंचि कमरि सौं बाँधा पटका। अधपति हुवा बैठि करि पटका।
काल अचानक मारया पटका। सुंदर पकरि जिमीं सौं पटका ॥५॥

---

३. दूभर=कठिन। सेजरी=इसके क्रमशः ४ अर्थ किये जाते हैं–
(१) शय्या+री, अरी, (२)से (वे)+जरी,अर्थात् जल गईं, (३) वे बिरहिणी स्त्रि
बिरह की सांकल से जड़ी याने जकड़ दी गईं, (४) से (वह) जरी याने जड़ी-बूटी

* इन अड़िला छन्दों में यमक अलंकार का चमत्कार दिखाया गया है। अ
लगाने में 'सुन्दर-ग्रंथावली' का आधार लिया गया है।

१. वारी=क्रमशः ४ अर्थ—(१) जलादी, (२) रोकी, (३) वाड़ी, वाटिका,(४) स
घड़ी।

२. जानां=क्रमशः ४ अर्थ-(१) जाना, समझा (२) यान, सवारी, (३) जान, प्रा
(४) चले जाना है।

३. करना=क्रमशः ४ अर्थ—(१) करना है, (२) हाथ में+नहीं (३) करनेयो
कर्त्तव्य, (४) महसूल या दण्ड+नहीं।

४. माया=क्रमशः ४ अर्थ—(१) संपत्ति, (२) समाया, (३) प्रीति, (४) झगड़
मोह।

५. पटका=क्रमशः ४ अर्थ—(१) कमरबन्द, (२) पाट, राजसिंहासन, (३) चौ
थप्पड़ (४) गिराया।

जामैं हुतौ सबनि कौ भागा। भांडा सोई भ्रम का भागा।
अब तौ मस्तक जाग्यौ भागा। सुंदर छाड़ि जगत कौं भागा ॥६॥
जौ तौ तू प्रभुजी कौ चरना। तौ तूं भयौं बिमुख हरिचरना।
अब तू पहिरि कमरि मैं चरना। सुंदर इत उत फिरि कछु चर ना ॥७॥

मड़िला*

बंधन भयौ प्रीति करि रामा। मुक्त होइ जौ सुमिरै रामा।
निशदिन याही करै बिचारा। सुंदर छूटै जीव बिचारा ॥१॥
औरहिं दई न आपुन खाई। माया धरी खोदिकर खाई।
मेल्ही रही सूम की थाती। सुंदर दी आगै कौं थाती ॥२॥
जो तूं देहिं धणीं कौं लेखा। तौ तूं जो जानै सो लेखा।
जो तोपै नहिं आवै जाबा। तौ सुंदर टूटेगी जाबा ॥३॥
अधो सीस ऊरध कौं पाया। राज पाट कछु चाहै पाया।
भीतरि भर्या कुबुधि सौं भांडा। सुंदर राम बिनां है भांडा ॥४॥
जो सब तें हूवा बैरागी। सो क्यौं होइ देह बैरागी।
निशदिन रहै ब्रह्म सौं राता। सुंदर सेत पीत नहिं राता ॥५॥

---

६. भागा=क्रमशः ४ अर्थ —(१) हिस्सा, (२) फूट गया. (३) भाग्य, (४) भाग गया, विरक्त हो गया।

७. चरना=क्रमशः ४ अर्थ—(१) दास, (२) चरणों से, (३) कमरबंद (तैयार हो जा) (४) चल याने भटक+नहीं।

* इन मड़िला छन्दों में भी यमक अलंकार का चमत्कार दिखाया गया है। अर्थ लगाने में 'सुन्दर-ग्रंथावली' से सहायता ली गई है।

१. रामा=(१) स्त्री, (२) राम। विचारा=(१) बिचार, चिंतन, (२) बेचारा असहाय।

२. खाई=(१) भोगी, (२) गड्ढा। थाती=(१) धरोहर, जमा पूंजी।

३. धणी=मालिक, ईश्वर। लेखा=(१) हिसाब. (२) ले+खा=लेकर खाले; कर्मों का नाश करदे। जावा=(१) जवाब, (२) जबाड़ी (दण्ड मिलेगा)।

४. अधो=नीचे को। ऊरध=ऊर्ध्व, ऊपर को। पाया=(१) पैर, (२) प्राप्त करना चाहे। भांडा=(१) बर्तन, (२) कलंकित।

५. वैरागी=(१) विरक्त, (२) विशेषरूप से रागी, अर्थात् अनुरागी। राता(१) अनुरक्त, (२) लाल।

कथा कहै बहु भांति पुराणी। नीकी लागैं बात पुराणी।
दोष जाइ जब छूटै रागा। सुंदर हरि रीझै सो रागा ॥६॥

सवैया

गुरदेव कौ अंग

इन्दव

धीरजवंत अडिग्ग जितेन्द्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ़ आदू।
शील संतोष क्षमा जिनकै घट लागि रह्यौ सु अनाहद नादू ॥
भेष न पक्ष निरंतर लक्ष जु और नहीं कछु वाद-विवादू।
ये सब लक्षन हैं जिन मांहि सु सुन्दर कै उर है गुरु दादू ॥१॥
कोउक गोरख कौं गुरु थापत कोउक दत्त दिगम्बर आदू।
कोउक कंथर कोउ भरथ्थर कोउ कबीर कोउ राखत नादू ॥
कोउ कहै हरदास हमारै जु यौं करि ठानत वादविवादू।
और तौ संत सबै सिरि ऊपर सुन्दर कै उर है गुरु दादू ॥२॥

गोविंद के किये जीव जात हैं रसातल कौं
गुरु-उपदेशे सु तौ छूटैं जमफंद तें।
गोबिंद के किये जीव बस परे कर्मनि कैं,
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वच्छंद तें ॥

---

६. पुराणी=(१) पुराणों की, (२) प्राचीन। राग=(१) राग, विषयासक्ति, (२) राग, गायन; प्रेम।

गुरुदेव कौ अंग

१. अडिग्ग=निश्चल संकल्पवाले। आदू=आदि से ही, सनातन से। घट=अंतर में। अनाहद नादू=अनाहत शब्द, जिसे योगी समाधि की अवस्था में सुनता है। भेष=संप्रदाय विशेष का वेश।

२. दत्त=दत्तात्रेय। आदू=आदिनाथ। कंथर=कंथर नामक एक महायोगी। भरथ्थर=भर्तृहरि। हरदास=निरंजन पंथ के आचार्य हरिदास। सिरिऊपर=प्रणम्य, वंदनीय।

३. किये=रचे हुए। रसातल=नरक से आशय हैं। निवाजे=कृपा किये हुए, उद्धार

गोंविद के किये जीव बूड़त भौसागर मैं,
सुन्दर कहत गुरु काढ़े दुखद्वंद तें।
औरऊ कहांलौं कछु मुख तें कहैं बताइ,
गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविन्द तें ॥३॥

उपदेश-चितावनी कौ अंग

हंसाल

तौ सही चतुर तू जान परबीन अति परै जिनि पंजरै मोह-कूवा।
पाइ उत्तम जनम लाइलै चपल मन गाइ गोविंद गुन जीति जूवा।
आपुही आपु अज्ञान-नलनी बँध्यौ बिना प्रभु बिमुख कै बार मूवा।
दास सुन्दर कहै, परमपद तौ लहै "राम हरि राम हरि बोलि सूवा" ॥१॥
अवल उस्ताद के कदम की खाक हो हिरस बुगुजार सब छोड़ि फैंना।
यार दिलदार दिल माहिं तूं याद कर, है तुझी पास तूं देखि नैंना ॥
जान का जान है जिंद का जिंद है, सखुन का सखुन कछु समुझि सैंना।
दास सुन्दर कहै, सकल घट मैं रहै, "एक तूं एक तूं बोलि मैंना" ॥२॥

श्रवनूं लै जाइ करि नाद की लै डारै पासि,
नैंनवां लैजाइ करि रूप बसि करयौ है।
नथुवा लैजाइ करि बहुत सुँघावै फूल,
रसनूं लैजाइ करि स्वाद मन हर्यौ है॥
चरनूं लैजाइ करि नारी सौं सपर्श करै,
सुन्दर कोउक साध ठगनि तैं डर्यौ है।

किये हुए। स्वच्छन्द=निश्चिन्त; आत्मस्थित। बूड़त=डूबते हैं।

उपदेश-चितावनी कौ अंग

१. पंजरै=देहरूपी पिंजड़े में। मोह-कूवा=अविद्यारूपी कुवाँ। लाइलै=लगाले। नलनी बंध्यो=नली को पकड़े हुए है। मूवा=मरा। सूवा=जीव से आशय है।

२. अवल उस्ताद=सद्गुरु। खाक=धूल की तरह तुच्छ। हिरस=वासना। बुगुजार=त्यागदे। फैना=छलछन्द। जिंद=जिंदगी। सखुन=ज्ञानोपदेश से आशय है। सैना=सैन, संकेत (गुरु का)। मैना=जीवात्मा से आशय है।

३. नाद=मोहक प्रिय शब्द। पासि=फाँसी, मोहिनो। नथुवा=नाक। रसनूं=रसना,

काम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग,
ठगनि की नगरी में जीव आइ पर्यौ है ॥३॥

इंदव

कौन कुबुद्धि भई घट अंतर तूं अपनौ प्रभु सौं मन चोरै ।
भूलि गयौ बिषयासुख में सठ लालच लागि रह्यौ अति थोरै ॥
ज्यों कोउ कंचन छार मिलावत लै करि पाथर सौं नग फोरै ।
सुन्दर या नरदेह अमोलिक "तीर लगी नवका कत बोरै" ॥४॥

देहात्म-बिछोह कौ अंग

इन्दव

वै श्रवना रसना मुख वैसेहि नासिका वैसेहि वैसेहि अंखी ।
वै कर वै पग वै सब द्वार सु वै नख-सीस हि रोम असंखी ॥
वैसें हि देह परी पुनि दीसत एक बिना सब लागत खंखी ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "बोलत हो सु कहाँ गयौ पंखी" ॥१॥

मनहर

देह तौ प्रगट महिं ज्यौं कौ त्यौंहीं जानियत,
नैंन के झरौखे मांहि झाँकत न देखिये ।
नाक के झरौखे मांहि नैकु न सुबास लेत,
कान के झरौखे मांहिं सुनत न लेखिये ॥

जिह्वा । सपर्श=स्पर्श । कोउक=कोई विरला ।

४. मन चोरै=मन को चुराता है । छार=राख, धूल । नग=रत्न । तीर…… बोरैं=किनारे पर लगीं नाव को क्यों डुबा रहा है ? तात्पर्य यह कि नर-देह पाकर मोक्ष तेरे लक्ष्य में होते हुए भी विषयों में फँसकर तू क्यों अपने जीवन को विफल कर रहा है ?

देहात्म-बिछोह कौ अंग

१. अंखी=आँखें । दीसत=दिखती हैं । खंखीं=खोखली, सारहीन । पंखी=पक्षी ; जीव से आशय है ।

२. प्रगट=प्रत्यक्ष । झरौखे=द्वार ; इन्द्रिय । सुबास=सुगंध । काहू=किसीभी । जातौहू न पेखिये=निकलते हुए भी देखने में नहीं आता है ।

मुख के झरोखे में बचन न उचार होत,
जीभ हू कौ षटरस स्वाद न बिशेखिये।
सुन्दर कहत कोउ कौंन बिधि जानै ताहि,
कारौ पीरौ काहू द्वार जातौहू न पेखिये ॥२॥

तृष्णा कौ अंग

इन्दव

जौ दस बीस पचास भये सत होहिं हजारनि लाख मँगैगी ॥
कोटि अरब्ब खरब्ब असंखि पृथ्वीपति हौन की पाह जगैगी ॥
स्वर्ग पताल कौ राज करौं तृसना अधिकी अति आगि लगैगी ॥
सुन्दर एक संतोष बिना सठ "तेरी तौ भूख न क्यौंहु भगैगी" ॥१॥
क्यौं जग मांहि फिरै झख मारत स्वारथ कौंन परी जिहिं जोलै।
ज्यौं हरिहाइ गऊ नहिं मानत दूध दुह्यौ कछु सो पुनि ढोलै ॥
तूं अति चञ्चल हाथ न आवत नीकसि जाइ नहीं मुख बोलै।
सुन्दर तोहि कह्यौ बर केतक "हे तृष्णा अब तूं मति डोलै" ॥२॥

देह-मलीनता गर्व-प्रहार कौ अंग

मनहर

जा शरीर माहिं तूँ अनेक सुख मानि रह्यौ,
ताही तूं विचारि यामैं कौंन बात भली है।
मेद मज्जा मांस रग-रगनि मांहिं रकत,
पेट हू पिटारी सी में ठौर ठौर मली है ॥

तृष्णा कौ अंग

१. मँगैगी=(तृष्णा) माँगैगी, चाहेगी। पाह=तीव्र चाह। लगैगी=लगायगी। क्यौंहु=किसीभी तरह।

जोलै=अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। हरिहाइ=हरा खेत चरनेवाली स्वच्छंद गाय। ढोलै=लुढ़का या ढुलका देती है। बर केतक=कितनी ही बार।

देह-मलीनता गर्व-प्रहार कौ अंग

१ रग रगनि माहिं=एक-एक नस में। मली=मैला ही। जिनि=नहीं। भंगार=

हाड़नि सौं मुख भर्यौ हाड़िही कै नैंन नाक,
हाथ पांव सोऊ सब हाड़ ही की नली है।
सुन्दर कहत, याहि देखि जिनि भूलै कोइ,
"भीतरि भंगार भरी ऊपर तैं कली है" ॥१॥

थूक रु लार भर्यौ मुख दीसत आँखि मैं गींज रु नाक मैं सेढ़ौ।
औरउ द्वार मलीन रहैं नित हाड़ के मांस के भीतरि बेढ़ौ ॥
ऐसैं शरीर मैं बास कियौ तब एक से दीसत बांभन ढेढ़ौ।
सुन्दर गर्व कहा इतने पर "काहे कौं तूं नर चालत टेढ़ौ" ॥२॥

श्रृंगार-निंदा कौ अंग

कुण्डलिया

'रसिकप्रिया' 'रस-मंजरी' और 'सिंगार' हि जानि।
चतुराई करि बहुत बिधि बिषैं बनाई आनि ॥
बिषै बनाई आनि लगत बिषियन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड सराहैं नखसिख नारी।
ज्यौं रोगी मिष्ठान्न खाइ रोगहि बिस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जु तौ 'रसिकप्रिया' धारै ॥१॥

कचरा, तुच्छ चीज। कली=कलई।

२. गींज=कीचड़। सेढ़ो=नाक का मैल। बेढ़ौ=जाल, उलझन। ढेढ़ौ=अछूत। टेढ़ौ=ऐंठता हुआ।

श्रृंगार-निंदा कौ अंग

१. 'रसिकप्रिया'=महाकवि केशवदास का रचा नायिकाभेद का प्रसिद्ध रीति-ग्रन्थ। 'रस-मंजरी'=श्रृंगाररस-प्रधान एक संस्कृत ग्रन्थ। 'सिंगार'='रस-मंजरी' का भाषान्तर, जिसका पूरा नाम 'सुन्दर-श्रृंगार' है। इसे आगरे के सुन्दर कवि ने रचा था (देखो सुन्दर-ग्रन्थावली--खंड २, पृष्ठ-४३९)। बिषै=श्रृंगारविषय, जो वास्तव में विषरूप है। विस्तारै=बढ़ाता है।

स्वामी सुन्दरदासजी ने इन श्रृंगाररसात्मक रीति-ग्रन्थों का खण्डन कर शान्तरस की श्रेष्ठता बड़े ओजस्वी शब्दों में प्रतिपादित की है।

वचन-विवेक कौ अंग

मनहर

बोलिये तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ,
न तौ मुख मौन करि चुप होइ रहिये।
जोरियेऊ तब जब जोरिबौऊ जानि परै,
तुक छंद अरथ अनूप जामैं लहिये॥
गाइयेऊ तब जब गाइबे कौ कंठ होइ,
श्रवण कै सुनत ही मन जाइ गहिये।
तुकभंग छन्दभंग अरथ मिलै न कछु,
सुन्दर कहत, ऐसी बानी नहिं कहिये॥१॥
एकनि के बचन सुनत अति सुख होइ,
फूल से झरत हैं अधिक मनभावने।
एकनि के बचन अशम मानौ बरषत,
श्रवण कै सुनत लगत अलखावने॥
एकनि के वचन कंटक कटु विषरूप,
करत मरम छेद दुखउपजावने।
सुन्दर कहत, घट घट में बचन-भेद,
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावने॥२॥

पतिव्रता कौ अंग

इन्दव

होइ अनन्य भजै भगवंतहिं और कछू उर में नहिं राखै।
देविय देव जहाँलग हैं डरिकै तिनसौं कहुँ दीन न भाखै॥

बचन-विवेक कौ अंग

१. जोरियेऊ तब=कविता भी तभी रचनी चाहिए। मन जाइ गहिये=मन मुग्ध हो जाये। बानी=वाणी; रचना।

२. भावने=प्यारे। अशम=पत्थर। अलखावने=अप्रिय। मरम=मर्मस्थान; अन्तर। छेद=घाव। घट-घट=प्राणी-प्राणी में।

योगहु यज्ञ ब्रतादि क्रिया तिनकौं नहिं तौ सुपनैं अभिलाखै।
सुन्दर अंमृत पान कियौ तब तौ कहि कौन हलाहल चाखै ॥१॥

मनहर

जल कौ सनेही मीन बिछुरत तजै प्राण,
मणि बिन अहि जैसैं जीवत न लहिये।
स्वांतिबूँद के सनेही प्रगट जगत मांहिं,
एक सीप दूसरौ सु चातकऊ कहिये ॥
रवि कौ सनेही पुनि कँवल सरोबर मैं,
ससि कौ सनेहीऊ चकोर जैसैं रहिये।
तैसैं ही सुन्दर एक प्रभु सौं सनेह जोरि,
और कछु देखि काहू वोर नहिं बहिये ॥२॥

शब्दसार कौ अंग

इन्दव

कार उहै अबिकार रहै नित, सार रहै जु असारहि नाखै।
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर, नीति उहै जु अनीति न भाखै ॥
तन्त उहै लगि अंत न टूटत, संत उहै अपनों सत राखै।
नाद उहै सुनि बाद तजै सब स्वाद उहै रस सुन्दर चाखै ॥१॥
सोवत सोवत सोइ गयौ सठ रोवत रोवत कै बर रोयौ।
गोवत गोवत गोइ धर्‌यौ धन खोवत खोवत तैं सब खोयौ ॥
जोवत जोवत बीति गये दिन बोवत बोवत लै बिष बोयौ।
सुन्दर सुन्दर राम भज्यौ नहिं, ढोवत ढोवत बोझहि ढोयौ ॥२॥

पतिव्रता कौ अंग

२. काहू वोर नहिं बहिये=किसी दूसरे की ओर मन नहीं जाने देना चाहिए।

शब्दसार कौ अंग

१. कार=कार्य। उहै=वही। नाखै=फेंकदे। लगि अंत=अन्ततक, जीवनभर। रस=ब्रह्मरस से आशय है।

२. बर=बार। गोवत=छिपाते हुए। बोझ=सांसारिक कर्मों का भार।

सूरातन कौ अंग

मनहर

सुनत नगारै चोट विगसै कँवलमुख,
अधिक उछाह फूल्यौ माइहू न तन मैं।
फिरै जब सांगि तब कोऊ नहिं धीर धरै,
काइर कंपाइमान होत देखि मन मैं॥
टूटिकैं पतंग जैसैं परत पावक मांहिं,
ऐसैं टूटि परै बहु सावंत के गन मैं।
मारि घमसांण करि सुन्दर जुहारै स्याम,
सोई सूरबीर रुपि रहै जाइ रन मैं॥१॥

सूरबीर रिपु कौ निमूनौ देखि चोट करै,
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौं।
साधु आठौ जाम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै,
जाकै मुहँ माथौ नहिं देखिये शरीर सौं॥
सूरबीर भूमि परै दौर करै दूरिलगैं,
साधु शून्य कौं पकरि राखै धरि धीर सौं।
सुन्दर कहत, तहाँ काहू के न पाव टिकैं,
"साधु कौ संग्राम है अधिक सूरबीर सौं॥२॥"

काम सौ प्रबल महा जीते जिनि तीनौ लोक,
सु तौ एक साधु कै बिचार आगै हारयौ है।

सूरातन कौ अंग

१. नगारैं=नगाड़े पर। बिगसै=प्रफुल्लित हो जाये। माइ=समाये। फिरै=चले। सांगि=बड़ा भाला। सावँत=सामंत। जुहारै स्याम=युद्ध जीतकर शाम को जो अपने स्वामी को प्रणाम करता है। रुपि रहै=पैर जमाकर दृढ़ रहता है।

२. निमूनौ=नमूना; सामने, साक्षात्। जाकै मुहँ......शरीर सौं=जिस मन का न मुहँ, न सिर है, न शरीर है; निराकार। दूरिलगैं=दूरतक। शून्य कौ पकरि राखै=शरीररहित सूक्ष्म मन को पकड़कर काबू में रखता है।

क्रोध सौं कराल जाकें देखत न धीर धरै,
सोउ साधु छमा कै हथ्यार सौं बिदार्यौ है।
लोभ सौ सुभट साधु तोष सौं गिराइ दियौ
मोह सौ नृपति साधु ज्ञान सौं प्रहार्यौ है।
सुन्दर कहत, ऐसौ साधु कोउ सूरवीर,
ताकि ताकि सबहि पिशुनदल मार्यौ है ।।३।।

साधु कौ अंग

इन्दव

जो कोउ आवत है उनकैं ढिंग, ताहिं सुनावत शब्द-सँदेसौ।
ताहिकै तैसिहि ओषद लावत, जाहिकै रोगहि जानत जैसौ ।।
कर्म-कलंकहि काटत हैं सब, सुद्ध करैं पुनि कंचन तैसौ।
सुन्दर वस्तु बिचारत हैं नित, संतनि कौ जु प्रभाव है ऐसौ ।।१।।

मनहर

धूलि जैसो धन जाकैं सूलि से संसार-सुख,
भूलि जैसो भाग देखै अंत की सी यारी है।
पाप जैसी प्रभुताई साँप जैसो सनमान,
बड़ाई हू बीछनी सी नागनी सी नारी है ।।
अग्नि जैसौ इन्द्रलोक विघ्न जैसौ बिधिलोक,
कीरति कलंक जैसी, सिद्धि सींटि डारी है।
बासना न कोऊ बाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुन्दर कहत, ताहि बन्दना हमारी है ।।२।।

---

३. जिनि=जिस काम ने। विचार=विवेक ; संयम। जाकें=जिसे। विदार्यो=चीर डाला। तोष=संतोष। पिशुन-दल= दुष्ट मनोविकारों से आशय है।

साधु कौ अंग

१. वस्तु विचारत है=आत्मतत्त्व का निरूपण तथा मनन करते हैं।

२. भूलि जैसो भाग देखै=भाग्य को जो गलत समझता है। अंत की सी यारी= संसारी मित्रता को जो मृत्यु के समान मानता है। नारी=कामवासना से तात्पर्य है। सींटि डारी है=तुच्छ मानकर त्याग दिया है। ताहि=उस साधु पुरुष को।

साँचौ उपदेश देत, भली भली सीख देत,
समता सुबुद्धि देत, कुमति हरत हैं।
मारग दिखाइ देत, भावहू भगति देत,
प्रेम की प्रतीति देत, अभरा भरत हैं॥
ज्ञान देत, ध्यान देत, आतम-विचार देत,
ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म में चरत हैं।
सुन्दर कहत जग संत कछु देत नांहिं,
"संतजन निशदिन देवौई करत हैं" ॥३॥

आत्मानुभव कौ अंग

इन्दव

है दिल में दिलदार सही अँखियाँ उलटि करि ताहि चितइये।
आब में खाक में बाद में आतस जान में सुन्दर जानि जनइये।
नूर में नूर है तेज में तेज है ज्योति में ज्योति मिलें मिलि जइये।
क्या कहिये कहते न बनै, कछु जो कहिये कहते ही लजइये॥१॥

जासौं कहूँ 'सब में वह एक' तौ सो कहै, कैसो है, आँखि दिखइये।
जौ कहूँ 'रूप न रेख तिसै कछु' तौ सब झूठ कैं मानें कहइये॥
जौ कहूँ सुन्दर 'नैननि माँझि' तौ नैनहूँ बैंन गये पुनि हइये।
क्या कहिये कहते न बनै कछु जो कहिये कहते ही लजइये॥२॥

---

३. मारग=मोक्ष का रास्ता। अभरा=अपूर्ण। चरत हैं=विचरण करते हैं; लीन रहते हैं। कहत जग......करत हैं=दुनिया का यह कहना कि संतजन अकिंचिन होने के कारण किसीको कुछ भी नहीं देते, सही नहीं है। वे बहुत बड़े धनी हैं, कितनी ही चीजें वे सबको देते ही रहते हैं।

आत्मानुभव कौ अंग

१. उलटि करि=अंतर्मुखी करके; विषयों की ओर से उलटकर आत्मस्वरूप पर स्थिर करके। ताहि=परमात्मतत्त्व को। खाक=मिट्टी, पृथिवी तत्त्व। वाद=हवा। आतस=अग्नि, तेज। नूर=प्रकाश।

२. तिसै=उसको। झूठकैं मानें=झूठी मान्यता। हइये=हैही।

ज्ञानी कौ अंग

इन्दव

ज्ञान प्रकाश भयौ जिनके उर वे घट क्यूँ हि छिपे न रहैंगे।
भोडल माँहिं दुरै नहि दीपक यद्यपि वे मुख मौन रहैंगे।
ज्यूँ घनसारहि गोप्य छिपावत तौहि सुगन्धि सु तज्ञ लहैंगे।
सुन्दर और कहा कोउ जानत बूठे की बात बटाऊ कहैंगे ॥१॥

मनहर

विधि न निषेध कछु भेद न अभेद पुनि,
क्रिया सौ करत दीसै यौंही नितप्रति है।
काहू कौं निकट राखै काहू कौं तौ दूरि भाषै,
काहू सौं नीरै न दूर ऐसी जाकि मति है॥
राग ही न दोष कोऊ शोक न उछाह दोऊ,
ऐसी विधि रहै कहूँ रति न बिरति है।
बाहिर ब्यौहार ठानै मन मैं स्वपन जानै,
सुन्दर ज्ञानी की कछु अदभुत गति है ।२॥
ज्ञानी लोकसंग्रह कौं करत ब्यौहार-विधि,
अंतहकरण मैं सुपन की सी दौर है।
देत उपदेश नाना भांति के बचन कहि,
सब कोउ जानत सकल-सिरमौर है॥
हलन चलन पुनि देह सौं करावत है,
ज्ञान मैं गरक नित लिये निज ठौर है।

ज्ञानी कौ अंग

१. भोडल=अबरक। घनसार=कपूर। तज्ञ=जानकार, पारखी। बूठे की=रास्ते पर चले जानेवाले की। बटाऊ=राहगीर।

२. क्रिया सौ करत दीसै=बाहर से ऐसा दीखता है मानों कर्म कर रहा हो। नीरै=समीप। दोष=द्वेष। उछाह=उत्साह, आनन्द। रति=प्रीति। स्वपन=स्वप्न की तरह मिथ्या।

३. लोक-संग्रह=लोकोपकार। व्योहार=लौकिक कर्म। दौर=क्रिया। गरक=मग्न।

सुन्दर कहत, जैसैं दंत गजराज मुख,
"खाइवे कैं ओरई दिखाइवे कै और है" ॥३॥

प्रेमपराज्ञान ज्ञानी कौ अंग

प्रीति की रीति नहीं कछु राखत जाति न पांति नहीं कुल-गारौ।
प्रेम कै नेम कहूँ नहि दीसत लाज न कानि लग्यौ सब खारौ॥
लीन भयौ हरि सौं अभिअंतर आठहुँ जाम रहे मतवारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गाँव कौं पैंडो ही न्यारौ"॥१॥
द्वंद्व बिना बिचरै बसुधापरि जा घट आतमज्ञान अपारौ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न दोष न म्हारौ न थारौ।
योग न भोग न त्याग न संग्रह देहदशा न ढक्यौ न उघारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गाँव कौ पैंडो ही न्यारौ" ॥२॥

साखी

सुमरण कौ अंग

सुन्दर सद्गुरु यौं कह्या सकल-सिरोमनि नाम।
ताकौं निसदिन सुमरिये, सुखसागर सुखधाम॥१॥
राम नाम बिन लैन कौं और बस्तु कहि कौन।
सुन्दर जप तप दान व्रत, लागे खारे लौन॥२॥
राम-नाम-पीयूष तजि, बिष पीवै मतिहीन।
सुन्दर डोलै भटकते, जन जन आगे दीन॥३॥

निज ठौर=स्वरूप में स्थिति।

प्रेमपराज्ञान ज्ञानी कौ अंग

१. गारौ=गाली, अपवाद, निंदा। कानि=मर्यादा। अभिअंतर=अन्तःकरण। पैंडो=रास्ता। न्यारौ=निराला।

२. द्वन्द्व=द्वैतभाव; राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि। दोष=द्वेष। म्हारौ थारौ=मेरा-तेरा, यह भेद-भाव। उघारौ=नंगा।

सुमरण कौ अंग

३. पीयूष=अमृत। विष=विषयरूपी विष।

सुन्दर सुरति समेटिकैं सुमिरन सौं लैलीन ।
मन बच क्रम करि होत हैं, हरि ताके आधीन ॥४॥

सुमिरन ही मैं शील है, सुमिरन मैं संतोष ।
सुमिरन ही तें पाइये सुन्दर जीवन-मोष ॥५॥

बिरह कौ अंग

मारग जोवै बिरहनी, चितवै पिय की वोर ।
सुन्दर जियरै जक नहीं, कल न परत निसभोर ॥१॥

सुन्दर बिरहनि मरि रही, कहूँ न पइये जीव ;
अंमृत पान कराइकै फेरि जिवावै पीव ॥२॥

बिरह-बघूरा लै गयौ चित्तहि कहूँ उड़ाइ ।
सुन्दर आवै ठौर तब, पींय मिलैं जब आइ ॥३॥

बिरहा दुखदाई लग्यौ, मारै ऐंठि मरोरि ।
सुन्दर बिरहनि क्यौं जिवै, सब तन लियौ निचोरि ॥४॥

सुन्दर बिरहनि अधजरी, दुक्ख कहै मुख रोइ ।
जरिबरिकैं भस्मी भई, धुवाँ न निकसै कोइ ॥५॥

सब कोई रलियाँ करैं, आयौ सरस बसंत ।
सुन्दर बिरहनि अनमनी, जाकौ घर नहिं कंत ॥६॥

साई तूँ ही तूँ करौं, क्यौंही दरस दिखाव ।
सुन्दर बिरहनि यौं कहै, ज्यौंही त्यौंही आव ॥७॥

---

४. सुरति=लौ, ध्यान । समेटिकै=एकाग्र करके । क्रम=कर्म से ।
५. मोष=मोक्ष ।

बिरह कौ अंग

१. वोर=ओर । जक=शांति । भोर=सवेरा; यहाँ दिन से आशय है ।
३. बघूरा=बवंडर । ठौर=अपना स्थान; शान्ति-पद ।
६. रलियाँ=रंगरेलियाँ, मौज । अनमनी=उदास ।
७. क्यौंही=किसीभी तरह । ज्यौं ही त्यौं ही=कैसे भी हो ।

जिस विधि पीव रिझाइये, सो विधि जानी नांहि।
जोवन जाइ उतावला, सुन्दर यहु दुख मांहिं ॥८॥

लालन मेरा लाड़िला, रूप बहुत तुझ मांहिं।
सुन्दर राखै नैन मैं, पलक उघारै नांहिं ॥९॥

सुंदर बिगसै बिरहनी, मन मैं भया उछाह।
फूल बिछाऊँ सेजरी, आज पधारैं नाह ॥१०॥

बंदगी कौ अंग

दोहा

सुन्दर अंदर पैसिकरि, दिल मौं गोता मारि।
तौ दिल ही मौं पाइये, सांईं सिरजनहार ॥१॥

जिस बंदे का पाकदिल, सो बंदा माकूल।
सुन्दर उसकी बंदगी, सांईं करै कबूल ॥२॥

हर दम हर दम हक्क तूँ, लेइ धनीं का नांव।
सुन्दर ऐसी बंदगी, पहुँचावै उस ठांव ॥३॥

मुखसेती बंदा कहै, दिल मैं अति गुमराह।
सुन्दर सो पावै नहीं, सांईं की दरगाह ॥४॥

मैं ही अति गाफिल हुई, रही सेज पर सोइ।
सुन्दर पिय जागै सदा, क्यौंकरि मेला होइ ॥५॥

---

८. जाइ उतावला=बड़ी जल्दी-जल्दी भाग रहा है। माहिं=मन में।

९. पलक उघारै नाहिं=पलक इसलिए नहीं खोलता, कि कहीं आखों के अन्दर से निकलकर भाग न जाये।

१०. बिगसै=प्रफुल्लित होती हैं। नाह=स्वामी।

बंदगी कौ अंग

१. पैसिकरि=पैठकर। मौं=में, अन्दर।

२. माकूल=योग्य। बंदगी=सेवा।

४. सेती=से, द्वारा

५. मेला=मिलन

जौ जागै तौ पिय लहै, सोये लहिये नाहिं।
सुन्दर करिये बंदगी, तौ जाग्या दिल मांहिं ॥६॥

उपदेश-चिंतावनी कौ अंग

सुन्दर मनुषा देह यह, पायौ रतन अमोल।
कौड़ी सटै न खोइये, मानि हमारौ बोल ॥१॥
सुन्दर सांची कहतु है, मति आनै कछु रोस।
जौ तैं खोयो रतन यह, तौ तोहीकौं दोस ॥२॥
बार बार नहिं पाइये, सुन्दर मनुषा देह।
रामभजन सेवा सुकृत, यह सोदो करि लेह ॥३॥
सुन्दर सांची कहतु है, जौ मानै तौ मानि।
यहै देह अति निंद्य है, यहै रतन की खानि ॥४॥
सुन्दर नदी-प्रवाह मैं, मिल्यौ काठ-संजोग।
आपु आपुकौं ह्वै गये, त्यौं कुटंब सब लोग ॥५॥
सुन्दर बैठे नाव मैं, कहूँ कहूँ तें आइ।
पार भये कतहूँ गये, त्यौं कुटंब सब जाइ ॥६॥
सुन्दर पच्छी वृच्छ पर, लियौ बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये, त्यौं कुटंब सब जानि ॥७॥
सुन्दर यह औसर भलौ, भजिलै सिरजनहार।
जैसे ताते लोह कौं लेत मिलाइ लुहार ॥८॥
सुन्दर याही देह मैं, हारि जीति कौ खेल।
जीतैं सो जगपति मिलै हारै माया मेल ॥९॥
सुन्दर सौदा कीजिये, भली बस्तु कछु खाटि।
नाना बिधि का टांगरा, उस बनिया की हाटि ॥१०॥

उपदेश-चितावनी कौ अंग
१. सटै=मोल पर।
२. रोस=रोष, क्रोध, नाराज़ी।
८. लेत मिलाइ=जोड़ लेता है।
१०. खाटि=परखकर बिसाहले। टांगरा=सामान। बनिया=परमात्मा से आशय है।

दीया की बतियाँ कहै, दीया किया न जाइ।
दीया करै सनेह करि, दीयें ज्योति दिखाइ ॥११॥
दीये तें सब देखिये, दीये करौ सनेह।
दीयें दसा प्रकासिये, दीया करि किन लेह ॥१२॥
दीया राखै जतन सौं, दीये होइ प्रकाश।
दीये पवन लगै अहं, दीये होइ विनाश ॥१३॥
साईं दीया है सही, इसका दीया नांहिं।
यह अपना दीया कहै, दीया लखै न मांहिं ॥१४॥
साईं आप दिया किया, दीया मांहिं सनेह।
दीयें दीये होत है, सुन्दर जीया देह ॥१५॥

देहमलिनता गर्व-प्रहार कौ अंग

दोहा

सुंदर देह मलीन है, राख्यौ रूप सँवारि।
ऊपर तें कलई करी, भीतरि भरी भँगारि ॥१॥
सुंदर देह मलीन अति, बुरी बस्तु कौ भौन।
हाड़ मांस कौ कौथरा, भली बस्तु कहिं कौन ॥
सुंदर देह मलीन अति, नखसिख भरे विकार।
रक्त पीप मल मूत्र पुनि, सदा बहै नवद्वार ॥२॥

---

११. दीया=(१) दीपक (२) दान। बतियाँ=(१) बत्तियां (२) बातें। सनेह=(१) तेल (२) प्रेम। इसमें श्लेष अलंकार है।

१३. अहं=अहंकार। दीये······विनाश=दान को अहंकाररूपी पवन बुझा देता है। अहंकार से दान का महत्व नष्ट हो जाता है। इसमें भी श्लेष अलंकार है;

१४. इसका दीया=मनुष्य का दिया हुआ। माहिं=अन्तर में।

१५. दीये दीये होत है=दीपक से दूसरा दीपक जलता है। गुरु अपने शिष्य को, और फिर वह शिष्य अपने शिष्य को ज्ञान प्रकाश देता है।

देहमलिनता गर्व-प्रहार कौ अंग

१. भँगारि=कचरा।

२. पीप=पीव, मैल।

सुंदर पंजर हाड़ कौ, चाम लपेट्यौ ताहि।
तामैं बैठ्यौ फूलिकै, मो समान को आहि ॥३॥
सुंदर अपरस धोवती, चौकै बैठौ आइ।
देह मलीन सदा रहै, ताही कै संगि खाइ ॥४॥
सुंदर देखै आरसी, टेढ़ी नाखै पाग।
बैठौ आइ करंक पर, अतिगति फूल्यौ काग ॥५॥
स्वास चलै खाँसी चलै, चलै पसुलिया बाव।
सुंदर ऐसी देह मैं दुखी रंक अरु राव ॥६॥

मन कौ अंग

दोहा

मन कौं राखत हटकिकरि, सटकि चहूँ दिसि जाइ।
सुंदर लटकि रु लालची गटकि बिषैफल खाइ ॥१॥
सुंदर क्यौंकरि धीजिये मन कौ बुरौ सुभाव।
आइ बनै गुदरै नहीं, खेलै अपनौं दाव ॥२॥
सुंदर यहु मन भाँड़ है, सदा भँडायौ देत।
रूप धरै बहु भाँति कै, राते पीरे सेत ॥३॥
सुंदर आसन मारिकै, साधि रहे मुख मौन।
तन कौं राखै पकरिकै, मन पकरै कहि कौन ॥४॥
तन कौ साधन होत है, मन कौ साधन नाहिं।
सुंदर बाहर सब करै, मन साधन मन मांहिं ॥५॥

---

४. अपरस धोवती=रेशम की धोती, जिसे वैष्णव पहनकर भोजन करते हैं, और अपनेको पवित्र मानते हैं।

५. नाखै=अर्थ होता है 'डालता है,' पर यहाँ अर्थ है 'बाँधता है'। करंक=लाश। अतिगति=अत्यंत। फूल्यौ=आनंदित है।

मन कौ अंग

१. सटकि जाइ=हाथ से छूट जाता है।

२. धीजिये=विश्वास करे। गुदरै नहीं=किसी तरह मानता नहीं है।

३. राते पीरे=लाल और पीले।

मन ही बड़ौ कपूत है, मन ही महा सपूत।
सुंदर जौ मन थिर रहै, तौ मन ही अवधूत ॥३॥
जब मन देखै जगत कौं, जगतरूप ह्वै जाइ।
सुंदर देखै ब्रह्म कौं, तब मन ब्रह्म समाइ ॥७॥
सुंदर परम सुगन्ध सौं, लपटि रह्यौ निश-भोर।
पुण्डरीक परमातमा, चंचरीक मन मोर ॥८॥

चाणक कौ अंग

दोहा

छूट्यौ चाहत जगत सौं, महा अज्ञ मतिमंद।
जोई करै उपाइ कछु, सुंदर सोई फंद ॥१॥
बैठौ आसन मारि करि, पकरि रह्यो मुख मौन।
सुंदर सैन बतावतें, सिद्ध भयौ कहि कौन ॥२॥
कोउ करैं पयपान कौं, कौन सिद्धि कहि बीर।
सुंदर बालक बाछरा, ये नित पीवहिं खीर ॥३॥
कोऊ होत अलौंनिया, खाय अलौंनौ नाज।
सुंदर करहिं प्रपंच बहु, मान बढ़ावन काज ॥४॥
कोउक दूध रु पूत दे, कर पर मेल्हि विभूति।
सुंदर ये पाखण्ड किय, क्यौंही परै न सूति ॥५॥

---

६. अवधूत=पहुँचा हुआ ब्रह्मज्ञानी।
८. भोर=दिन। पुण्डरीक=कमल।

चाणक कौ अंग

१. चाणक=इस शब्द का अर्थ पुरोहित श्री हरनारायणजी ने 'कोड़े की तरह कड़ा उपदेश' यह किया है।
२. पकरि रह्यौ=ले बैठा है, साध रखा है।
३. बीर=हे भाई। खीर=क्षीर, दूध।
४. अलौनिया=नमक न खानेवाला। प्रपंच=ऊपरी दिखाव, पाखंड।
५. मेल्हि=रखकर। विभूति=धूनी की भस्म। सूति=सूत।

[यह सुन्दरदासजी की जन्म-कथा से सम्बन्ध रखनेवाली बात है। जग्गाजी ने आंबेर में भिक्षा के समय कहा था—'दे माई सूत, ले माई पूत।' यहाँ अभिप्राय

केस लुचाइ न ह्वै जती, कान फराइ न जोग ।
सुन्दर सिद्धि कहा भई, बादि हँसाये लोग ॥६॥

वचन-विवेक कौ अंग

दोहा

सुन्दर मौन गहे रहै तबलग भारी तोल ।
सुख बोलैं तें होत है सब काहू कौ मोल ॥१॥
सुन्दर सुवचन-तक्र तें राखै दूध जमाइ ।
कुवचन कांजी परत ही तुरत फाटिकरि जाइ ॥२॥
सूरज के आगैं कहा, करैं जीगणा जोति ।
सुन्दर हीरा लाल घर, ताहि दिखावैं पोति ॥३॥
रचना करी अनेकविधि, भलौ बनायौ धाम ।
सुन्दर मूरति बाहरी, देवल कौने काम ॥४॥

साधु कौ अंग

दोहा

संत समागम कीजिये तजिये और उपाइ ।
सुंदर बहुते उद्धरे, सतसंगति मैं आइ ॥१॥
संत मुक्ति के पौरिया, तिनसौं करिये प्यार ।
कूंजी उनकै हाथ है, सुंदर खोलहिं द्वार ॥२॥

है कि हरएक साधु में ऐसी शक्ति नहीं हो सकती, इसलिए साधारण साधु पाखंड ही करते हैं ।—सुन्दर-ग्रन्थावली—खंड २—पृष्ठ ७३४ पादटिप्पणी ।]

६. जती=जैन श्रमण, जो केश-लुंचन कराते हैं । बादि=व्यर्थ ।

वचन-विवेक कौ अंग

२. तक्र=मट्ठा, छाछ । कांजी=नमकीन खट्टा पानी ।
३. जीगणा=जुगनू । पोति=कांच का रंग-विरंगा गुरिया या मनका ।
४. देवल=देवालय, मन्दिर ।

साधु कौ अंग

२ पौरिया=द्वारपाल, पहरेदार ।

मात पिता सबही मिलैं, भइया बंधु प्रसंग।
सुंदर सुत दारा मिलैं, दुर्लभ है सतसंग॥३॥
मद मत्सर अहंकार की दीन्हीं ठौर उठाइ।
सुंदर ऐसे संतजन, ग्रंथनि कहे सुनाइ॥४॥
आयें हर्ष न ऊपजै, गयें शोक नहिं होइ।
सुंदर ऐसे संतजन, कोटिनु मध्ये कोइ॥५॥
सुखदाई सीतल हृदय, देखत सीतल नैन।
सुंदर ऐसे संतजन, बोलत अंमृत बैंन॥६॥
क्षमावंत धीरज लिये, सत्य दया संतोष।
सुंदर ऐसे संतजन, निर्भय निर्गतरोष॥७॥
घर बन दोऊ सारिखे, सबतें रहत उदास।
सुंदर संतनि कै नहीं, जिवन मरन की आस॥८॥
धोवत है संसार सब, गंगा मांहें पाप।
सुंदर संतनि के चरण, गंगा बंछै आप॥९॥
संतनि की सेवा किये, सुंदर रीझै आप।
जाकौ पुत्र लड़ाइये, अति सुख पावै बाप॥१०॥

समर्थाई आश्चर्य कौ अंग

दोहा

करै हरै पालै सदा, सुन्दर समरथ राम।
सबही तैं न्यारौ रहै, सबमैं जिन कौ धाम॥१॥
अंजन यह माया करी, आपु निरंजन राइ।
सुंदर उपजत देखिये, बहुरचौ जाइ बिलाइ॥२॥

---

५. आयें=प्राप्त होने पर।
७. निर्गत=विगत, रहित।
८. उदास=उदासीन, तटस्थ।
९. बंछै=चाहती है।
१०. आप=स्वयं परमात्मा। लड़ाइये=प्यार करे।

समर्थाई आश्चर्य कौ अंग
२. अंजन=अनित्य, नाशवान्। निरंजन=नित्य, अविनाशी। बहुर्यौ=फिर, तुरन्त।

सूरति तेरी खूब है, को करि सकै बखान।
बानी सुनि सुनि मोहिया, सुंदर सकल जिहान ।।३।।
प्रीतम मेरा एक तूँ, सुंदर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै, काहि न परगट होइ ।।४।।
ऐसी तेरी साहिबी, जानि न सक्कै कोइ।
सुंदर सब देखै सुनै, काहू लिप्त न होइ ।।५।।
वचन तहाँ पहुँचैं नहीं, तहाँ न ज्ञान न ध्यान।
कहत कहत यौंही कह्यौ, सुन्दर है हैरान ।।६।।
लौन-पूतरी उदधि मैं, थाह लेन कौं जाइ।
सुंदर थाह न पाइये, बिचिही गई बिलाइ ।।७।।

स्वरूप-विस्मरण कौ अंग

जा घट की उनहारि है, तैसौ दीसत आहि।
सुन्दर भूलौ आपुही, सो अब कहिये काहि ।।१।।
सुन्दर पावक दार कै भीतरि रह्यौ समाइ।
दीरघ मैं दीरघ लगै, चौरे मैं चौराइ ।।२।।
सुन्दर चेतनि आपु यह, चालत जड़ की चाल।
ज्यौं लकरी के अश्व चढ़ि, कूदत डोलै बाल ।।३।।
काहू सौं बांभन कहै, काहू सौं चंडाल।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौं, योंही मारै गाल ।।४।।
देह पुष्ट ह्वै दूबरी, लगै देह कौं घाव।
चेतनि मानै आपुकौं, सुन्दर कौन सुभाव ।।५।।
सान्यौ घर मांहे कहै हूँ अपने घर जाउं।
सुन्दर भ्रम ऐसौ भयौं, भूलौ अपनौ ठाउं ।।६।।

स्वरूप-विस्मरण कौ अंग

१. उनहारि=रूप। दीसत=दिखाई देता है। दार=दारु, लकड़ी। चौराई=चौड़ा ही।

४. मारै गाल=गप लगाता है ; मिथ्या बोलता है।

६. सान्यौ=सयाना, चतुर।

आतमानुभव कौ अंग

दोहा

कह्या कछू नाहिं जात है, अनुभव आतम सुक्ख।
सुन्दर आवै कंठलौं, निकसित नाहिन मुक्ख ॥१॥
सुन्दर जाकै वित्त है, सो वह राखै गोइ।
कौड़ी फिरै उछालतौ, जो टटपूँज्यौ होइ ॥२॥

ज्ञानी कौ अंग

दोहा

अंत्यज ब्राह्मण आदि दै, दार मथै जो कोइ।
सुन्दर भेद कछू नहीं, प्रगट हुतासन होइ ॥१॥
दीपग जोयौ बिप्र घर, पुनि जोयौ चण्डाल।
सुन्दर दोऊ सदन कौ तिमिर गयौं ततकाल ॥२॥
अंत्यज कै जलकुंभ मैं, ब्राह्मन-कलस मँझार।
सुन्दर सूर प्रकाशिया, दुहुँवनि मैं इकसार ॥३॥

पद

राग गौड़ी

हरि भजि बौरी हरि भजु, त्यजु नैहर कर मोहु।
जिव लिनहार पठाइहि, इक दिन होइहि बिछोहु ॥
आपुहि आपु जतन करु, जौंलगि बारि वयेस।
आन पुरुष जिनि भेंटहु केहूके उपदेश ॥
जबलग होहु सयानिय, तबलग रहब सँभारि।
केहूँ तन जिनि चितवहु, ऊंचिय दृष्टि पसारि ॥

ज्ञानी कौ अंग

१. दार=दारु, लकड़ी। मथै=अग्नि उत्पन्न करने के लिए घर्षण करे। हुतासन=अग्नि।

२. दीपग=दीपक। जोयौ=जलाया। कलस मँझार=घड़े में। सूर=सूर्य।

पद

१. बारि वयेस=छोटी उम्र। रहब सँभारि=विषयों से बहुत बचकर दूर रहना। केहूँ

यह जोबन पियकारन नीकै राखि जुगाइ।
अपनो घर जिनि छोड़हु परघर आगि लगाइं ॥
यह बिधि तन मन मारैं, दुइ कुल तारै सोइ।
सुन्दर अति सुख बिलसइ कंत-पियारी होइ ॥१॥

ताल रूपक

सतसंग नितप्रति कीजिये, मति होइ निर्मल सार रे।
रति प्रानपति सौं ऊपजै, अति लहै सुक्ख अपार रे॥
मुख नाम हरि हरि उच्चरैं, श्रुति सुनै गुन गोविन्द रे।
रटि ररंकार अखंड धुनि तहँ प्रगट पूरन चन्द रे॥
सतगुरु बिना नहिं पाइये यह अगम उलटा खेल रे।
कहि दास सुन्दर देखते होइ जीव-ब्रह्महि मेल रे ॥२॥

राग विहागड़ौ

माइ हो, हरिदरसन की आस।
कब देखौं मेरा प्रान-सनेही, नैन मरत दोऊ प्यास॥
पल छिन आध घरी नहिं बिसरौं, सुमिरत सास उसास।
घर बाहरि मोहि कल न परत है, निसदिन रहत उदास॥
यहै सोच सोचत मोहि सजनी, सूके रगत रु माँस॥
सुन्दर बिरहिन कैसे जीवै, बिरहबिथा तन त्रास ॥३॥

हमारैं गुरु दीनी एक जरी।
कहा कहौं कछु कहत न आवै, अंमृतरसहि भरी।
ताकौ मरम संतजन जानत, बस्तु अमोल परी।
यातें मोहि पियारी लागति, लैकरि सीस धरी॥

तन–किसीकी ओर। जुगाइ–सँभालकर। दुइकुल–लोक और परलोक से आशय है।

२. रति=प्रीति। प्रानपति–परमात्मा से आशय है। श्रुति=श्रवण। पूरनचंद=अखंड आत्मस्वरूप। उलटा खेल=चित्त को अन्तर्मुख करने की आनन्दमयी स्थिति।

३. सूको=सूख गया।

४. हमारैं=हमको। जरी=जड़ी, बूटी। परी=पड़ी हुई। पंच नागनी=पाँच इन्द्रियाँ,

मन-भुजंग अरु पंच नागनी सूंघत तुरत मरी।
डायनि एक खात सब जग कौं, सो भी देख डरी॥
त्रिविधि बिकार ताप तनि भागी, दुरमति सकल हरी।
ताकौ गुन सुनि मोच पलाई, और कवन बपुरी॥
निसबासर नहिं ताहि बिसारत, पल छिन आध घरी।
सुन्दरदास भयो घट निरविष, सबही ब्याधि टरी॥४॥

सोई जन राम कों भावै हो।
कनक कामिनी परहरै, नहिं आप बँधावै हो॥
सबही सौं निरबैरता, काहू न दुखावै हो।
सीतल बानी बोलिकै, रस अंमृत प्यावै हो॥
कैतो मौन गहे रहै, कै हरिगुन गावैं हो।
भरम-कथा संसार की सब दूरि उड़ावैं हो॥
पंचौं इन्द्री बसि करै, मन मनहिं मिलावै हो।
काम क्रोध अरु लोभ कौं खनि खोदि बहाव हो॥
चौथा पद कों चीन्हकैं ता मांहि समावै हो।
सुन्दर ऐसे साधु की ढिग काल न आवै हो॥५॥

राग ललित

द्वार प्रभु कै जाचन जइये।
विविधि प्रकार सरस गुन गइये॥
जाचिक होइ सु नींद निबारै, बड़े प्रात दाताहिं सँभारैं।
नितप्रति ताके कान जगावै, वह पुनि जानैं जाचिक आवै॥
दाता के मन चिन्ता होई, दान करन की उपजैं कोई।
सुन्दरदास पहाऊ गावैं, माँगत इहै जु दरसन पावै॥६॥

जो सर्पिणी के समान हैं। डायनि=तृष्णा अथवा अविद्या। पलाई=भाग गई। बपुरी=वेचारी। निरविष=विषरहित; अमृतमय।

५. दुखावै=कष्ट देता है। मन मनहिं मिलावै=मन को नियंत्रित करके शून्यवत् कर देता है। चौथा पद=तुरीय पद, समाधि की अवस्था। ढिंग=पास।

६. सँभारै=स्मरण करता है। जानै जाचिक आवै=जान जाय कि याचक आ गया है। उपजै कोई=कुछ मन में आ जाय। पहाऊ=प्रभाती।

आजु मेरे गृह सतगुरु आये ।
भरम-करम की निसा बितीती, भोर भयौ रवि प्रगट दिखाये ॥
अति आनन्दकन्द सुखसागर, दरसन देखत नैंन सिराये ।
प्रफुलित कमल अंग सब पुलकित, प्रेमसहित मन मंगल गाये ॥
बचन सुनत सबही दुख भागे, जागे भाग चरन सिर लाये ।
सुन्दर सुफल भयौ सबही तनु, जन्म-जन्म के पाप नसाये ॥७॥

राग बिलावल

जौं पिय कौं ब्रत ले रहे, सो पियहि पियारी ।
काहेकौं पचि-पचि मरति है, मूरख बिभचारी ॥
अंजन मंजन क्या करैं, क्या रूप सिंगारा ।
ऊपर निर्मल देखिये, दिल मांहिं बिकारा ।
इन बातनि क्यौं पाइये, अवे प्रीतम पिय प्यारा ॥
पतिब्रत कबहुँ न देखिये मन चहुँ दिश धावै ।
और सखिन मैं वैसिकैं पतिब्रता कहावै ।
हौंस करै पियमिलन की, अवे तोहि लाज न आवै ॥
कोटि जतन कीयें कहा, पिय एक न मानै ।
नाना बिधि की चातुरी बहुतेरी ठानै ।
तन कौं बहुत बनावई, अवे मन सौंपि न जानै ॥
अपना बल जौ छाड़िकैं सब सुधि बिसरावै ॥
लोकबड़ाई नैंकहू कछु याद न आवै ।
सुन्दर तब पिय रीझिकैं, अवे तोहि कंठ लगावै ॥८॥
जाकैं हिरदैं ज्ञान है, ताहि कर्म न लागै ।
सब परि बैठे मक्षिका, पावक तैं भागै ॥
जहाँ पाहरू जागहीं, तहाँ चोर न जाहीं ।
आँखिन देखत सिंह कौं, पशु दूरि पलाहीं ॥

---

७. वितीती=बीत गई । भोर=सवेरा । सिराये=ठंडे हो गये, प्रसन्न हो गये ।
८. और सखिन मैं वैसिकैं=दुनियादारों के साथ बैठकर । तनकौं बहुत बनावई=शरीर को अनेक भाँति से सजाता है । वल=अहंकार । सब सुधि=अपनेपन का सारा भान ।

जा घर मांहिं मंजारि ह्वै तहाँ मूषक नासै।
शब्द सुनत ही मोर का अहि रहै न पासै॥
ज्यौं रवि निकट न देखिये कबहूँ अँधियारा।
सुन्दर सदा प्रकाशमय, सबहीं तैं न्यारा॥९॥

आया था इक आया था, जिनि दरसन प्रगट दिखाया था।
श्रवणनि शब्द सुनाया था, तिन सत्य स्वरूप बताया था॥
ब्रह्मज्ञान समुझाया था, तिन संसा दूरि बहाया था।
अलख खजीना ल्याया था, तिन बाँटि सबनि सौं खाया था॥
ऐसा दादूराया था, सो सुंदर कै मनि भाया था॥१०॥

राग सोरठ

सब कोऊ भूलि रहे इहिं बाजी।
आप आपुने अहंकार में, पातिसाहि कहा पाजी॥
पातिसाहि कै विभौ बहुत बिधि, खात मिठाई ताजी।
पेट पयादौ भरत आपनौ जीमत रोटी-भाजी॥
पण्डित भूले वेदपाठ करि, पढ़ि कुरान कौं काजी।
वै पूरब दिशि करैं डण्डवत, वै पच्छिमहि निवाजी॥
तीरथिया तीरथ कौं दौड़ैं, हज कौ दौड़ै हाजी।
अन्तरगति कों खोजैं नाहीं, भ्रमणै ही सौं राजी॥
अपने अपने मद के माते, लखैं न फूटी साजी।
सुन्दर तिनहिं कहा अब कहिये, जिनकै भई दुराजी॥११॥

---

९. मक्षिका=मक्खी। पलाहीं=भागते हैं। मंजारि=बिल्ला। मूषक=चूहा।

१०. संसा=संशय; द्वैतबुद्धि। बहाया=नष्ट कर दिया। अलख खजीना=ब्रह्म-निधि से आशय है। राया=राजा।

११. पातिसाहि=बादशाह। पाजी=पयादा; छोटा आदमी। जीमत=खाता है। निवाजी=नमाज पढ़ते हैं। फूटी साजी=आधी और साबित; नुकसान व नफा। दुराजी=द्वैतबुद्धि।

राग रामगरी

सन्त चले दिस ब्रह्म की, तजि जगव्यवहारा।
सीधै मारग चालतैं, निंदै संसारा॥
सन्त कहैं सांची कथा, मिथ्या नहिं बोलैं।
जगत डिगावै आइकैं, तौ कबहूँ ना डोलैं॥
जे-जे कृत संसार के, ते सन्तनि छांड़े।
ताकौ जगत कहा करै, पग आगै मांड़े॥
जे मरजादा वेद की, ते सन्तनि भेंटी।
जैसे गोपी कृष्ण कौं सब तजिकरि भेंटी॥
एक भरोसे राम कै, कछु शंक न आनैं।
जन सुन्दर सांचै मतै, जग की नहिं मानैं॥१२॥

मुझि वेगि मिलहु किन आइ मेरा लाल रे।
मैं तेरै बिरह बिवोग फिरौं बेहाल रे॥
हौं निसदिन रहौं उदास तेरै कारनैं।
मुझे बिरह-कसाई आइ लागा मारनैं॥
इस पंजर मांहैं पैठि बिरह मरोरई।
जैसैं बस्तर धोबी ऐंठि नीर निचोरई॥
मैं कासनि करौं पुकार तुम बिन पीव रे।
यहु बिरहा मेरी लार दुखी अति जीव रे॥
अब काहे न करहु सहाइ सुन्दरदास की।
बाल्हा, तुमसौं मेरी आइ लगी है आसकी॥१३॥

या मैं कोऊ नहीं काहू कौ रे।
रामभजन करि लेहु बावरे, औसर काहे चूकौ रे॥

---

१२. कृत=कर्म, व्यवहार। मरजादा वेद की=वैदिक क्रिया-कर्म, यज्ञादिक।

१३. इस पंजर⋯⋯निचोरई=इस शरीर के अन्दर पैठकर यह विरह रग-रग को ऐसे मरोड़ रहा है, जैसे धोबी कपड़े को मरोड़कर निचोड़ता है। क्या ही सजीव अनूठी उत्प्रेक्षा है! कासनि=किससे। लार=साथ; पीछे। आसकी=आशिकी, प्रीति।

जिनसौं प्रीति करत है गाढ़ी, सो मुख लावै लूकौ रे।
जारि बारि तन खेह करैंगे, देदे मूंड ठरूकौ रे॥
जोरि जोरि धन करत एकठौ, देत न काहू टूकौ रे।
एक दिना सब यौंही जैहै, जैसैं सरवर सूकौ रे।
अजहूँ वेगि समुझि किन देखौं, यह संसार बिभूकौ रे।
माया मोह छाड़िकरि बौरे, सरन गहौ हरिजू कौ रे॥
प्रान पिंड सिरजे जिनि साहिब, ताकौं काहे न कूकौ रे।
सुन्दरदास कहै समुझावै, चेला है दादू कौ रे॥१४॥

बलिहारी हूँ उन संत की।
जिनकै और झौर कछु नाहीं, कहैं कथा भगवंत की॥
शीतल हृदय सदा सुखदाई, दया करैं सब जंत की।
देखि देखि वै मुदित होत हैं, लीला आप अनंत की॥
जिनतें गोपि कहूँ कछु नाहीं, जानत आदि रु अंत की।
सुन्दरदास कहै जन तेई, राखत बात सिद्धन्त की॥१५॥

राग मलार

देखौ माई, आज भलौ दिन लागत।
बरिषा रितु कौ आगम आयौ, बैठि मलारहिं रागत॥
रामनाम के बादल उनये, घोरि घोरि रस पागत।
तन मन मांहिं भई शीतलता, गये बिकार जु दागत॥
जा कारनि हम फिरत बियोगी, निशिदिन उठि उठि जागत।
सुन्दरदास दयाल भये प्रभु सोइ दियौ जोइ माँगत॥१६॥

---

१४. लूकौ=जलती हुई लकड़ी, जिससे मुरदे को जलाते हैं। खेह=भस्म। ठरूको=ठरका; लकड़ी से ठोकर देने की कपाल-क्रिया। सूकौ=सूखा। कूको=पुकारो।

१५. झौर=झंझट। जन्त=जन्तु, जीव। गोपि=गोप्य, छिपा हुआ।

१६. मलारहिं रागत=मलार राग गाते हैं। उनये=घिर आये। दागत=जलाते है।

राग धनाश्री

आरती कैसैं करौं गुसाईं। तुमही ब्यापि रहे सब ठाईं॥
तुमही कुंभ नीर तुम देवा, तुमही कहियत अलख अभेवा।
तुमहीं दीपक धूप अनूपं, तुमही घंटा नाद स्वरूपं॥
तुमही पाती पुहुप प्रकासा, तुमही ठाकुर तुमहीं दासा।
तुमही जल थल पावक पौना, सुन्दर पकरि रहे मुख मौना॥१७॥

---

१७. ठाईं=ठौर। पाती पुहुप=पत्ती और फूल। पौना=पवन। ठाकुर=स्वामी। पकरि रहे मुख मौना=सर्वव्यापकता और अद्वैतावस्था का चिंतन करते हुए कुछ कहते नहीं बनता।

बाबा मलूकदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६३१ वि०
जन्म-स्थान—कड़ा (ज़िला इलाहाबाद)
जाति— कक्कड़ खत्री
पिता—सुन्दरदास
चोला-त्याग-संवत्—१७३९ वि०

बाबा मलूकदास बालपन से ही ऊँचे संस्कारी थे। रास्ते में कहीं कुछ काँटा, कूड़ा-कचरा पड़ा देखते, तो उसे उठाकर एक तरफ़ फेंकदेते थे। एक दिन घर के सामने की गली से एक महात्मा आ निकले। बालक मलूकदास को खेलते हुए देखकर उन्होंने पूछा—'यह किसका बालक है?' पिता सुन्दरदास को बुलाया और उनसे पूछा—'तुम्हारा यह बालक आगे चलकर बड़ा नाम पैदा करेगा। देखो न, यह आजानुबाहु है। सो या तो यह भारी प्रतापी राजा होगा. या फिर कोई ऊँचा महातमा।'

बचपन से ही मलूकदास साधु-सेवा बड़े प्रेम से किया करते थे। घर में जो कुछ पाते साधुओं के सेवा-सत्कार में लगा देते, मां की राज़ी से और चोरी से भी।

इनके पिता, जब यह दस-ग्यारह बरस के हुए, इन्हें कंबल बेचने हर आठवें दिन देहात की एक पैठ में भेजने लगे। जाड़ें से ठिठुरते किसी ग़रीब आदमी को या साधु-संत को यह रास्ते में देखते तो उसे योंही मुफ़्त में कंबल दे दिया करते थे।

हरि के प्रेम-रस का चसका बालपन से ही मलूकदास को लग गया था। हरि-रस में सदा मस्त रहते थे। बड़े त्यागी और बड़े ही निस्पृह। बाबाजी का औलियापना उनकी बानी में पूरा झलकता है।

बाबाजी जगन्नाथ स्वामी के बड़े भक्त थे। पुरी में आजभी 'मलूकदास का रोट' नित्य राजभोग में चढ़ाया जाता है।

बाबाजी के सम्बन्ध में अनेक अद्भुत चमत्कार प्रसिद्ध हैं, जैसे, एक अहीरिन के इकलोते बेटे को जिला देना, मलवे के नीचे दबे हुए मज़दूरों को ज़िंदा निकाल लेना, बादशाह आलमगीर के सामने अधर लकटते हुए भजन करना आदि।

बाबा मलूकदासजी ने संवत् १७३८ में अपना चोला छोड़ा १०८ वर्ष की अवस्था में।

बानी-परिचय

साखी, शब्द (पद) और कुछ कवित्त भी मलूकदासजी ने कहे हैं। अन्य कई संतों की तरह इन्होंने निर्गुण के साथ-साथ सगुण का भी गुण-गान किया है। प्रेम की लहलही लहर और पल-पल में रंग पलटनेवाली दुनिया के तईं मस्तीभरी लापर्वाही इनकी साध-बानी की खास ख़ूबी है। "अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कहि गया, सब का दाता राम"—इनकी इस अखूट विश्वासमयी साखी का, यह तो प्रसिद्ध ही है कि, कितना ग़लत अर्थ लगाया जाता है।

भाषा मिली-जुली साधु-भाषा है। फ़ारसी के अनेक शब्दों और मुहाविरों का भी प्रयोग इनकी बानी में हुआ है। जानदार भाषा है।

आधार

१ **बाबा मलूकदासजी की बानी**—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ **साध-संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल**—स्वामी बाग़, आगरा

बाबा मलूकदास

शब्द

नाम तुम्हारा निरमला, निरमोलक हीरा ॥
तू साहेब समरत्थ, हम मल-मुत्र कै कीरा ॥
पाप न राखे देह में, जब सुमिरन करिये ।
एक अच्छर के कहतहीं, भौसागर तरिये ॥
अधम-उधारन सब कहैं, प्रभु बिरद तुम्हारा ।
सुनि सरनागत आइया, तब पार उतारा ॥
तुझ-सा गरुवा औ धनी, जामें बड़ई समाई ।
जरत उबारे पांडवा, ताती बाव न लाई ॥
कोटिक औगुन जन करै, प्रभु मनहिं न आनै ।
कहत मलूकदास को अपना करि जानै ॥१॥

सदा सोहगिन नारि सो जाके राम भतारा ।
मुख माँगे सुख देत हैं, जगजीवन प्यारा ॥
कबहुं न चढ़ै रंडपुरा, जानै सब कोई ।
अजर अमर अबिनासिया, ताको नास न होई ॥
नरदेही दिन दोय की, सुन सुरजन मेरी ।
क्या ऐसों का नेहरा, मुए बिपति घनेरी ॥
ना उपजै ना बीनसै, संतन सुखदाई ।
कहै मलूक यह जानिके मैं प्रीत लगाई ॥२॥

साँचा तू गोपाल, साँच तेरा नाम है ।
जहँवाँ सुमिरन होय, धन्य सो ठाम है ॥

---

१. कीरा=कीड़ा । बिरद=प्रसिद्धि, बड़ा नाम । गरुवा=महान् । बड़ई समाई=बड़ी ही सामर्थ्य । जरत उबारे पाण्डवा=लाक्षागृह में से, जिसे दुर्योधन ने पाण्डवों को जला देने की इच्छा से बनवाया था, श्रीकृष्ण ने पहले ही सूचना देकर पाण्डवों को उसमें से बाहर निकाल लिया । ताती बाव=गर्म हवा ।

२. भतारा=भर्त्ता, पति । रँडपुरा=रँड़ापा । सुरजन=निश्चित मत । नेहरा=स्नेह ।

साँचा तेरा भक्त, जो तुझको जानता।
तीन लोक को राज, मनै नहिं आनता॥
झूठा नाता छोड़ि, तुझे लव लाइया।
सुमिरि तिहारो नाम, परमपद पाइया॥
जिन यह लाहा पायो, यह जग आइकै।
उतरि गयो भव पार, तेरो गुन गाइकै॥
तुही मातु तुही पिता, तुही हितु बंधु है।
कहत मलूकदास, बिना तुझ धुंध है॥३॥

कौन मिलावै जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यो न जाइ॥टेक॥
मैं जो प्यासी पीव की, रटत फिरौं पिव पीव।
जो जोगिया नहिं मिलिहै हो, तो तुरत निकासूँ जीव॥
गुरूजी अहेरी मैं हिरनी, गुरु मारैं प्रेम का बान।
जेहि लागै सोई जानई हो, और दरद नहिं जान॥
कहैं मलूक सुनु जोगिनी रे, तनहिं में मनहि समाय।
तेरे प्रेम के कारने जोगी सहज मिला मोहिं आय॥४॥

दर्द-दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन-धीरा॥
प्रेम-पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते, मैगल माता हाथी॥
उनकी नजर न आवते, कोई राजा रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक॥
साहेब मिल साहेब भये, कछु रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई॥५॥

---

३. लाहा=लाभ। धुंध=द्वंद्व, झगडा।

४. जोगिया=प्यारा सतगुरु। अहेरी=शिकारी। जोगिनी=प्रेम की साधिका, जीवात्मा।

५. अलमस्त=मतवाला, निर्द्वन्द्व। अकीदा=विश्वास। मैगल=मतवाला। निहसंक=निर्भय। तमाई=वासना।

सोई सहर सुबस बसे, जहँ हरि के दासा।
दरस किये सुख पाइये, पूजै मन आसा॥
साकट के घर साधजन, सुपनै नहि जाहीं।
तेइ-तेइ नगर उजाड़ हैं, जहँ साधू नाहीं॥
मूरत पूजैं बहुत मति, नित नाम पुकारैं।
कोटि कसाई तुल्य हैं, जो आतम मारैं॥
परदुख-दुखिया भक्त है, सो रामहिं प्यारा।
एक पलक प्रभु आपतें, नहिं राखैं न्यारा॥
दीनबंधु करुनामयी, ऐसे रघुराजा।
कहैं मलूक जन आपने कों कौन निवाजा॥६॥

हमसे जनि लागे तू माया।
थोरे से फिर बहुत होयगी, सुनि पैहैं रघुराया॥
अपने में है साहेय हमरा, अजहूँ चेतु दिवानी।
काहू जन के बस परि जैहौ, भरत मरहुगी पानी॥
तरह्वै चितय लाज करु जन की, डारु हाथ की फाँसी।
जन तें तेरो जोर न चलिहै, रच्छपाल अबिनासी॥७॥

राग-मिलन क्यों पइये, मोहि राखा ठगवन घेरि, हो।
क्रोध तो काला नाग है, काम तो परघट काल॥
आप आपको खैंचते, मोहि कर डाला बेहाल, हो॥
एक कनक और कामिनी, यह दोनों बटपार।
मिसरी की छुरी गर लायके, इन मारा सब संसार, हो॥
इन में कोई ना भला, सब का एक विचार।
पैंडा मारैं भजन का, कोइ कैसेके उतरै पार, हो॥

---

६. साकट=शाक्त, वाममार्गी। आतम मारैं=आत्माको कष्ट देते हैं। निवाजा=कृपा की, उद्धार किया।

७. बहुत होयगी=झगड़ा बहुत बढ़ जायगा। काहू जन के=किसी हरिभक्त के। तरह्वै चितय=नीचे की ओर देख।

८. ठगवन=ठगोंने। परघट=प्रकट,प्रत्यक्ष। बटपार—राह में लूट लेनेवाले।

उपजत बिनसत थकि पड़ा, जियरा गया उकताय।
कहै मलूक बहु भरमिया मो पै अब नहिं भरमो जाय, हो ।।८।।

आपा मेटि न हरि भजे, तेइ नर डूबे।
हरि का मर्म न पाइया, कारन कर ऊबे ।।
करें भरोसा पुन्न का, साहेब बिसराया।
बूड़ गये तरबोर को, कहुँ खोज न पाया ।।
साध-मंडली बैठिके, मूढ़ जाति बखानी।
हम बड़ हम बड़ करि मुए, बूड़े बिन पानी ।।
तबके बाँधे तेई नर, अजहूँ नहिं छूटे।
पकरि-पकरि भलि भांति से, जमदूतन लूटे ।।
काम को सब त्यागिके, जो रामै गावै।
दास मलूका यों कहैं, तेहिं अलख लखावै ।।९।।

ना वह रीझै जप तप कीन्हें, ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टाँगे, ना काया के पखारे ।।
दाया करै, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना-सा दुख सबका जानै, ताहिं मिलैं अविनासी ।।
सहै कुसब्द, बादहू त्यागै, छाँड़ै गर्व गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दिवाना ।।१०।।

मन तें इतने भरम गँवावो।
चलत बिदेस विप्र जनि पूछो, दिनका दोष न लावो ।।
संझा होय करो तुम भोजन, बिनु दीपक के बारे।
जौन कहैं असुरन की बेरिया, मूढ़ दई के मारे ।।

मिसरी की छुरी=मोहिनी। पैंड़ा मारैं=रास्ते से भटका देते हैं। गया उकताय=ऊब गया।

९. तरबोर=विना थाह। जाति बखानी=ऊँचे कुल का बखान किया।

१० धोती टाँगै=छू जाने के भय से धोती ऊपर को उठाकर चलना। उदासी=अनासक्त। बाद हू=वाद-विवाद भी।

११. भरम=मिथ्या विश्वास। बारे=जलाये। जौन…मारैं=जो यह कहैं कि सन्ध्या

आप भले तो सबहि भलो है, बुरा न काहू कहिये।
जाके मन कछु बसै बुराई, तासों भागे रहिये॥
लोक बेद का पैंडा औरहि, इनकी कौन चलावै।
आतम मारि पषानैं पूजैं, हिरदै दया न आवै॥
रहो भरोसे एक राम के, सूरे का मत लीजै।
संकट पड़े हरज नहिं मानो, जिय का लोभ न कीजै॥
किरिया करम अचार भरम है, यही जगत का फंदा।
माया-जाल में बाँधि अँडाया, क्या जानै नरअन्धा॥
यह संसार बड़ा भौसागर, ताको देखि सकाना।
सरन गये तोहि अब क्या डर है, कहत मलूक दिवाना॥११॥

राम कहो राम कहो, राम कहो बावरे।
अवसर न चूक भोंदू, पायो भला दाँव रे॥
जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हो,
जनम सिरानो जात तेरो लोहे कैसो ताव रे॥
रामजी को गाव गाव, रामजी को तू रिझाव,
रामजी के चरनकमल चित्त माहि लाव रे॥
कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस,
आनँद-मगन होइके, तैं हरिगुन गाव रे॥१२॥

दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिये॥
भाई नाहिं बंधु नाहि, कुटुम परिवार नाहि,
ऐसा कोई मित्र नाहिं, जाके ढिग जाइये॥
सोने की सलैया नाहिं, रूपे को रुपैया नाहिं,
कौड़ी पैसा गाँठ नाहिं जासे कछु लीजिये॥

तो राक्षसों का समय है, समझलो कि उन मूर्खों की बुद्धि मारी गई है। भागे=दूर। पैंड़ा=रास्ता। सूरे का मत लीजै=अंधे से उसके अपनी लकड़ी पर के भरोसे से पाठ सीखले। अँडाया=अटका दिया। सकाना=सकपकाया, डर गया।
१२. भोंदू=मूर्ख। ताव=ताप, उतनी गर्मी जितनी किसी चीज को तपाने या पकाने के लिए पहुँचाई जाय।

खेती नाहिं बारी नाहिं, बनिज व्यौपार नाहिं,
ऐसा कोई साहु नाहिं जासों कछु माँगिये ॥
कहत मालूकदास, छोड़दे पराई आस,
रामधनी पायके अब काकी सरन जाइये ॥१३॥

कवित्त

भील कद करी थी भलाई जिया आप जान,
फील कद हुआ था मुरीद कहु किसका ॥
गीध कद ज्ञान की किताब का किनारा छुआ,
व्याध और बधिक तारा, क्या निसाफ तिसका ॥
नाग कद माला लैके बंदगी करी थी बैठ,
मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका ॥
एते बदराहों की तुम बदी करी थी माफ़,
मलूक अजाती पर एती करी रिस का ॥१४॥

साखी

मलुका सोई पीर है, जो जानै पर-पीर।
जो पर-पीर न जानही, सो काफिर बेपीर ॥१॥
जहाँ-जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ-तहाँ फिरै गाय।
कह मलूक जहँ संतजन, तहाँ रमैया जाय ॥२॥
भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।
दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिनके साथ ॥३॥

---

१३. तन=ओर। सलैया=सलाई, पाँसा। रूपे को=चाँदी का।

१४. भील=शवरी से अभिप्रायाय है। कद=कब। फील=गजेन्द्र से तात्पर्य है, जिसे भगवान् ने ग्राह के फंद से बचाया था। मुरीद=चेला। गीध=जटायु से आशय है। निसाफ=इन्साफ, न्याय। नाग=गजेन्द्र। हिसका=स्पर्धा। रिस=नाराजगी। का=क्या।

साखी

१. पीर=सिद्धि, धर्मगुरु।

२. रमैया=राम।

राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस ।
पानी तहाँ न पीजिये, परिहरिये सो देस ॥४॥
गांठी सत्त कुपीन में, सदा फिरै निःसंक ।
नाम अमल माता रहै, गिनै इन्द्र कों रंक ॥५॥
धर्महिं का सौदा भला, दाया जग ब्योहार ।
रामनाम की हाट ले, बैठा खोल किवार ॥६॥
औरहिं चिन्ता करन दे, तू मत मारे आह ।
जाके मोदी राम-से, ताहि कहा परवाह ॥७॥
रामराय असरन-सरन, मोहिं आपन करि लेहु ।
संतन सँग सेवा करौं, भक्ति-मजूरी देहु ॥८॥
प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैन ।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन ॥९॥
सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार ।
मंदिर ढूंढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार ॥१०॥
करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार ।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिसका मता अपार ॥११॥
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव ।
अंतर्जामी जानिहै, अंतरगत का भाव ॥१२॥
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम ।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम ॥१३॥
जेती देखै आतमा, तेते सालिगराम ।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम ॥१४॥

५. कुपीन=कौपीन, लंगोटी ।
७. मोदी=साहूकार ।
९. मैन=मदन, काम-वासना । तार=सितार या वीणा ।
१३. बिसराम=विश्राम, छुट्टी ।
१४. आतमा=प्राणी ।

देवल पुजे कि देवता, की पूजे पाहाड़।
पूजन को जाँता भला, जो पीस खाय संसार ॥१५॥
मक्का मदिना द्वारका, बद्री अरु केदार।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक बिचार ॥१६॥
हरी डारि ना तोड़िये, लागै छूरा बान।
दास मलूका यों कहै, अपना-सा जिव जान ॥१७॥
जे दुखिया संसार में, खोवो तिनका दुक्ख।
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख ॥१८॥
कुंजर चींटीं पशू नर, तामें साहेब एक।
काटै गला खोदाय का, करै सूरमा लेख ॥१९॥
सब कोउ साहेब बन्दते, हिन्दू मूसलमान ॥
साहेब तिसको बन्दता, जिसका ठौर इमान ॥२०॥
दया-धर्म हिरदे बसै, बोलै अमिरत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥२१॥
तैं मत जानै मन मुवा, तन करि डारा खेह।
ताका क्या इतबार है, जिन मारे सकल बिदेह ॥२२॥
सुन्दर देही देखिके, उपजत है अनुराग।
मढ़ी न होती चाम की, तो जीवत खाते काग ॥२३॥
जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोर।
कन थोरे काँकर घने, देखा फटक पछोर ॥२४॥
मलूक कोटा झाँझरा, भीत परी भहराय।
ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आय ॥२५॥

---

१५. जाँता=चक्की।
१८. दलिद्दर=दरिद्रता, दुःख।
२१. जिनके नीचे नैन=जो नम्र और शीलवान हैं।
२२. खेह=मिट्टी। विदेह=महान् ज्ञानी, जिसे देह का भी भान न हो।
२४. कन=अन्न के दाने। कांकर=कंकड़। पछोर=सूप में रखकर अनाज साफ करना।
२५. झांझरा=जर्जरित, बहुत पुराना। परी भहराय=ढह पड़ी; देहपात से अभिप्राय है।

आदर मान महत्व सत, बालापन को नेह।
यह चारों तबहीं गये, जबहि कहा 'कछु देह' ॥२६॥
प्रभुताही कों सब मरैं, प्रभु कों मरै न कोय।
जो कोई प्रभु कों मरै, तो प्रभुता दासी होय ॥२७॥

जगजीवन साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७२७ वि०
जन्म-स्थान—सरहदा गाँव (ज़िला बाराबंकी)
जाति—चंदेल क्षत्रिय
गुरु—बुल्ला साहब
भेष—गृहस्थ
मृत्यु-संवत्—१८१८ वि०
मृत्यु-स्थान—कोटवा (ज़िला बाराबंकी)

जगजीवन साहब के पिता खेती-बाड़ी करते थे। यह भी बचपन में अपने घर के गाय-बैलों को चराने ले जाया करते थे। पर इनका मन संसारी कामों में लगता नहीं था। बालपन से ही परमार्थ और सत्संग की ओर इनके चित्त का झुकाव था। कहते हैं कि एक दिन कहीं मैदान में जब यह बैल चरा रहे थे, दो महात्मा वहाँ अचानक पहुँचे—एक तो बुल्ला साहब और दूसरे गोविन्द साहब। उन्होंने जगजीवन से अपनी चिलम के लिए आग ले आने के लिए कहा। दौड़कर यह घर से आग तो लाये ही, कुछ दूध भी महात्माओं को पिलाने के लिए लोटे में ले आये। पर दूध को पिता से पूछकर नहीं लाये थे, इससे मन में कुछ डर रहे थे। बुल्ला साहब इसे भाँप गये। जगजीवन लौटकर जब घर आये, तो दूध का बर्तन उन्होंने वैसे-का-वैसा भरा हुआ पाया। देखकर चकित हो गये। फिर दौड़कर वहीं पहुँचे। दोनों साधु वहाँ से चल दिये थे। किन्तु उन्हें कुछ दूर जाकर पकड़ लिया, और बड़ा आग्रह

किया कि, 'मुझे आप अपना चेला बनालें।' बुल्ला साहब ने बालक के सिरपर हाथ रख दिया और उसके अन्तर का चोला पलट गया, उसपर प्रेम और वैराग्य का गहरा रंग चढ़ गया। दोनों साधु चलते समय बालक जगजीवन को अपना एक-एक चिह्न भी दे गये,—बुल्ला साहब ने अपने हुक्के में से तोड़कर एक काला धागा और गोविन्द साहब ने अपने हुक्के में से सफेद धागा लेकर उसकी दाहिनी कलाई पर बाँध दिया। जगजीवन साहब के सत्तनामी पंथवाले अनुयायी आज भी इस दोरंगे धागे को अपनी कलाई पर बाँधते हे और इसे वे 'आँदू' कहते हैं।

शंका उठाई जाती है कि बालक जगजीवन को चेतानेवाले महात्मा 'बावरी पथ' के प्रसिद्ध बुल्ला साहब थे या इसी नाम के कोई दूसरे संत, अथवा अवध के सत्तनामी-पंथ के प्रवर्त्तक जगजीवन साहब से भिन्न बुल्ला साहब के शिष्य यह कोई दूसरे जगजीवन साहब होंगे। सत्तनामियों का कहना है कि जगजीवन साहब किन्हीं विश्वेश्वर पुरी के शिष्य थे जो काशी में रहते थे, पर ऐसे विवादों में पड़ना व्यर्थ है। ऊँची गति को प्राप्त संतों के मार्ग-दर्शक गुरु अनेक हो सकते हैं। बावरी पंथ के ही बुल्ला साहब से उपदेश पाकर सत्तनामी पंथ को जगजीवन साहब ने अवध में चेताया, या किसी दूसरे इसी नाम के अथवा अन्य नाम के संत से शब्द-उपदेश लेकर, इस प्रकार के ऊहापोह में क्यों पड़ा जाये? पहुँचे हुओं का मत एक ही होता है और वह पंथों से कुछ भिन्न व परे भी हो सकता है और होता है।

जगजीवन साहब ने गृहस्थ-आश्रम में ही रहकर हजारों लोगों को परमार्थ का गहरा उपदेश दिया। इनकी दिन-दिन बढ़ती हुई महिमा को देखकर सरहदा गाँव के लोगों के मन में ईर्ष्या होने लगी। इसलिए सरहदा को छोड़कर यह वहाँ से छह मील दूर कोटवा गाँव में जाकर बस गये। कोटवा में जगजीवन साहब की आज भी समाधि और गद्दी है, जहाँ हर साल उनकी याद में एक बड़ा मेला लगता है। कोटवा शाखा के सत्तनामियों का यह बहुत बड़ा स्थान है। जगजीवन साहब ने इसी कोटवा में संवत् १८१८ में चोला छोड़ा था।

बानी-परिचय

कहा जाता है कि जगजीवन साहब ने ७ ग्रन्थ रचे थे—ज्ञान-प्रकाश, महाप्रलय, शब्द-सागर, अघविनाश, आगम-पद्धति, प्रथम-ग्रन्थ और प्रेम-ग्रन्थ। पर इनमें से प्रकाश में केवल शब्द-सागर ही आया है, जो दो भागों में "जगजीवन साहब की बानी" के नाम से इलाहाबाद के बेलवेडियर प्रेस से निकला है।

इनकी बानी बड़ी सरस और ऊँचे घाट की है। प्रेम और विरह और विनय का निरूपण कई पदों मे इन्होंने बड़ा सजीव किया है। सदाचारी जीवन पर बहुत ज़ोर दिया है। इनकी बानी में आत्मानुभूति की हम स्पष्ट झलक देखते हैं। वास्तव में जगजीवन साहब की बानी बहुत निर्मल और सुलझी हुई है। भाषा में स्वाभाविक प्रवाह और अच्छी सरसता है।

आधार

१ **जगजीवन साहब की बानी (दोनों भाग)**—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ **उत्तरी भारत की संत-परंपरा**—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, इलाहाबाद

जगजीवन साहब

शब्द

साईं, जब तुम मोहि बिसरावत।
भूलि जात भौजाल-जगत मां, मोहिं नाहिं कछु भावत॥
जानि परत पहिचान होत जब, चरन-सरन लै आवत।
जब पहिचान होत है तुमसे, सूरति सुरति मिलावत॥

शब्द

१. माँ=में। सूरति सुरति मिलावति=जब निरन्तर की लय तुम्हारे रूप से मिला देती

जो कोई चहै कि करौं बंदगी, बपुरा कौन कहावत।
चाहत खैंचि सरन ही राखत, चाहत दूरि बहावत॥
हौं अजान अज्ञान अहौं प्रभु, तुमतें कहिकै सुनावत।
जगजीवन पर करत हौ दाया, तेहिते नहिं बिसरावत॥१॥

तुमसों मन लागो है मोरा।
हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा॥
सत की सेज बिछाय सूति रहि, सुख आनन्द घनेरा।
करता हरता तुमहीं आहहु, करौं मैं कौन निहोरा॥
रह्यो अजान अब जानि परचो है, जब चितयो एक कोरा।
अब निर्वाह किये बनि आइहि, लाय प्रीति नहिं तोरिय डोरा॥
आवागमन निवारहु साईं, आदि-अंत का आहिउँ चोरा।
जगजीवन बिनती करि मांगै, देखत दरस सदा रहों तोरा॥२॥

चेतावनी

हमारा देखि करै नहिं कोई।
जो कोइ देखि हमारा करिहै, अंत फजीहति होई॥
जस हम चले चलै नहिं कोई, करी सो करै न सोई।
मानै कहा कहे जो चलिहै, सिद्ध काज सब होई॥
हम तो देह धरे जग नाचब, भेद न पाई कोई।
हम आहन सतसंगी-बासी, सूरति रही समोई॥
कहा पुकारि बिचारि लेहु सुनि, बृथा सब्द नहिं होई।
जगजीवनदास सहज मन सुमिरन, बिरले यहि जग कोई॥१॥

है। बपुरा=बेचारा। दूरि बहावति= परे फेंक देते हो।

२. जोरा=जोड़ा। सूति रहि=सोते है। आहहु=हो। निहोरा=विनती। एक कोरा= प्रेम की एक नज़र से। डोरा=प्रेम का धागा। आहिउँ=हूँ।

चेतावनी

१. हमरा देखि=हमारी देखादेखी, हमारी नकल। फजीहति=विडंबना। आहन=है। सूरति रही समोई=लय-ध्यान में हम तल्लीन हो गये हैं। सहज मन=सहज भाव से।

बौरे, जामा पहिरि न जाना ।
को तैं आसि कहाँ ते आइसि, समुझि न देखसि ज्ञाना ॥
घर वह कोन जहाँ रह बासा, तहाँ ते किहेउ पयाना ।
इहाँ तो रहिहौ दुई-चारदिन, अंत कहाँ-कहँ जाना ॥
पाप-पुन्न की यह बजार है, सौदा करु मन माना ।
होइहि कूच ऊँच नहिं जानसि, भूलसि नाहिं हैवाना ॥
जो जो आवा रहेउ न कोई, सबका भयो चलाना ।
कोऊ फूटि टूटि गारत भा, कोउ पहुँचा अस्थाना ॥
अब कि सँवारि सँभारि बिचारिले, चूका सो पछिताना ।
जगजीवन दृढ़ डोरिलाइ रहु, गहि मन चरन अडाना ॥२॥

नाम सुमिर मन बावरे, कहा फिरत भुलाना हो ॥
मट्टी का बना पूतला, पानी सँग साना हो ।
इक दिन हंसा चलि बसै, घर बार बिराना हो ॥
निसि अँधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती हो ।
बाँह पकरि जम लै चलै, कोउ संग न साथी हो ॥
गज रथ घोड़ा पालकी, अरु सकल समाजा हो ।
इक दिन तजि चल जायेंगे रानी औ राजा हो ॥
सेमर पर बैठा सुवना, लाल फर देख भुलाना हो ।
मारत टोंट भुआ उधिराना, फिरि पाछे पछिताना हो ॥
गूलर कै तू भुनगा, तू का आव समाना हो ।
जगजीवनदास बिचारि कहत, सबको वहँ जाना हो ॥३॥

---

२. जामा=देह से तात्पर्य है । आसि=है । आइसि=आया है । कहां कहँ=किस-किस योनि में । ऊँच=ऊँचा स्थान, ब्रह्मपद । हैवाना=पशु, मूढ़ । अडाना=टिकाना, अटकाना ।

४. अन्तर मिलु=कपट छोड़कर हृदय से मिल । बिराना=पराया । सुवना=तोता । फर=फल । टोंट=चोंच । उधिराना=उधड़ गया ।

गुरु और शब्द-महिमा

सुनु सुनु सखि री, चरनकमल तें लागि रहु री ।
नीचे तें चढ़ि ऊँचे पाउ । मंदिल गगन मगन ह्वै गाउ ॥
दृढ़करि डोरि पोढ़िकरि लाव । इत-उत कतहूँ नाहीं धाव ।
सत समरथ पिय जीव मिलाव । नैन दरस रस आनि पिलाव ॥
माती रहहु सबै बिसराव । आदि अंत तें बहु सुख पाव ।
सन्मुख ह्वै पाछे नहिं आव । जुग-जुग बाँधहु एहै दाँव ॥
जगजीवन सखि बना बनाव । अब मैं काहुक नाहिं डेराँव ॥१॥

तीरथ-व्रत की तजिदे आसा ।
सत्तनाम की रटना करिकै, गगन मंडल चढ़ि देखु तमासा ॥
ताहि मँदिल का अंत नहीं कछु, रबी बिहून किरिन परगासा ।
तहाँ निरास बास करि रहिये, काहेक भरमत फिरै उदासा ॥
देउँ लखाय छिपावहुँ नाहीं, जस में देखउँ अपने पासा ।
ऐसा कोऊ सब्द सुनि समुझै, कटि अघ-कर्म होइ तब दासा ॥
नैन चाखि दरसन-रस पीवै, ताहि नहीं है जस की त्रासा ।
जगजीवनदास भरम तेहि नाहीं, गुरु क चरन करै सुक्ख-बिलासा ॥२॥

कर्म-भर्म-निषेध

बहुतक देखादेखी करहीं ।
जोग जुक्ति कछु आवै नाहीं, अंत भर्म महँ परहीं ॥
गे भरुहाइ अस्तुति जेइ कीन्हा, मनहिं समुझि ना परई ।
रहनी गहनी आवै नाहीं, सब्द कहे तें लरई ॥

गुरु और शब्द-महिमा

१. गगन-मंदिल=शून्य मंदिर, निर्विकल्प लय की अवस्था । धाव=दौड़, डगमग हो । बनाव=अनुकूल अवसर ।

२. तमासा=अद्भुत रहस्य-लीला । रबी बिहून=बिना सूर्य के । निरास=निवृत्त, तटस्थ ।

कर्म-भर्म-निषेध

१. भरुहाइगे=फूल गये । सरई=बनता है । सिद्ध=पूर्ण, निःसंशय ।

नहीं विवेक कहै कछु औरे, औंर ज्ञान कथि करई।
सूझि बूझि कछ आवै नाहीं, भजन न एकौ सरई॥
कहा हमार जो मानै कोई, सिद्ध सत्त चित धरई।
जगजीवन जो कहा न मानै, भार जाय सो परई॥१॥

बहु पद जोरि-जोरि करि गावहिं।
साधन कहा सो काटि-कपटिकै, अपन कहा गोहरावहिं॥
निंदा करहिं विवाद जहाँ-तहँ, वक्ता बड़े कहावहिं।
आपु अंध कछ चेतत नाहीं, औरन अर्थ बतावहिं॥
जो कोउ राम का भजन करत है, तेहिकाँ कहि भरमावहि।
माला मुद्रा भेष किये बहु, जग परमोधि पुजावहिं॥
जहँते आये सो सुधि नाहीं, झगरे जन्म गँवावहिं।
जगजीवन ते निंदक वादी, बास नर्क महँ पावहिं॥२॥

मन महँ जाइ फकीरी करना।
रहै एकंत तंत तें लागा, राग निर्त नहिं सुनना॥
कथा चारचा पढ़ै-सुनै नहिं, नाहिं बहुत बक बोलना।
ना थिर रहै जहाँ तहँ धावै, यह मन अहै हिंडोलना॥
मैं तैं गर्व गुमान बिबादहिं, सबै दूर यह करना।
सीतल दीन रहै मरि अंतर, गहै नाम की सरना॥
जल पषान की करै आस नहिं, आहै सकल भरमना।
जगजीवनदास निहारि निरखिकै, गहि रहु गुरु की सरना॥३॥

बिरह व प्रेम का अंग

पैयाँ पकरि मैं लेहुँ मनाय।
कहौं कि तुम्हहीं कहँ मैं जानौं, अब हौं तुम्हरी सरनहिं आय।

---

२. काटि-कपटिकै=काट-छाँटकर। अपन कहा=अपना रचा हुआ। गोहरावहिं=कहते हैं, पुकारते हैं। परमोधि=प्रबोध या ज्ञान का उपदेश देकर। वादी=बकवादी।
३. तंत=तत्व-विचार। चारचा=चर्चा, वार्ता। रहै मरि अन्तर=अहंकार को मारकर। भरमना=भ्रम, धोखा।

बिरह व प्रेम का अंग

१. पइयाँ=पैर। अघाय=तृप्त होकर।

जोरी प्रीत, न तोरी कबहूँ, यह छबि सुरति बिसरि नहिं जाय ।।
निरखत रहौं निहारत निसु-दिन, नैन दरस-रस पियौं अघाय ।
जगजीवन के समरथ तुमहीं, तजि सतसंग अनत नहिं जाय ।।१।।

झमकि चढ़ि जाऊँ अटरिया री ।
ए सखि पूँछों साँई केहिं अनुहरिया री ।।
सो मैं चहौं रहौं तेहिं संगहिं, निरखि जाउँ बलिहरिया री ।
निरखत रहौं पलक नहि लाओं, सूतों सत्त-सेजरिया री ।।
रहौं तेहिं सँग रँग-रसमाती, डारौं सकल बिसरिया री ।
जगजीवन सखि पायन परिके, माँगि लेउँ तिन सनिया री ।।२।।

जोगिन भइउँ अँग भसम चढ़ाय ।
कब मोरा जियरा जुड़इहौ आय ।।
अस मन ललकै, मिलौं मैं धाय ।
घर-आँगन मोहिं कछु न सुहाय ।।
अस मैं ब्याकुल भइउँ अधिकाय ।
जैसे नीर बिन मीन सुखाय ।।
आपन केहि तें कहौं सुनाय ।
जो समुझौं तौ समुझि न आय ।।
सँभरि-सँभरि दुख आवै रोय ।
कस पापी कहँ दरसन होय ।।
तन मन सुखित भयो मोर आय ।
जब इन नैनन दरसन पाय ।।
जगजीवन चरनन लपटाय ।
रहै संग अब छूटि न जाय ।।३।।

---

२. झमकि=उमाह से ठुमककर । अनुहरिया=सूरत । सेजरिया=सेज, पलंग । सनिया=से ।

३. जुड़इहौ=ठंडा करोगे । ललकै=लालसा करता है । सुखाय=सूख जाती है । सँभरि-सँभरि=रह-रहकर; याद कर-कर ।

अब की बार तारु मोरे प्यारे, बिनती करिकै कहौं पुकारे।
नहिं बसि अहै केतौ कहि हारे, तुम्हरे अब सब बनहि सँवारे॥
तुम्हरे हाथ अहै अब सोई, और दूसरो नाहीं कोई।
जो तुम चहत करत सो होई, जल थल महँ रहि जोति समोई॥
काहुक देत हौ मंत्र सिखाई, सो भजि अंतर भक्ति दृढ़ाई।
कहौं तो कछू कहा नहि जाई, तुम जानत, तुम देत जनाई॥
जगत भगत केते तुम तारा, मैं अजान केतान बिचारा।
चरन सीस मैं नाहीं टारौं, निर्मल मूरत निरत निहारौं॥
जगजीवन काँ अब विस्वास, राखहु सतगुरु अपने पास॥४॥

अरी, मैं तो नाम के रँग छकी॥
जबतें चाख्यो बिमल प्रेमरस, तब तें कछु न सोहाई।
रैनि दिना धुनि लागि रहीं, कोउ केतौ कहै समुझाई॥
नाम पियाला घोंटिकै, कछु और न मोहिं चही।
जब डोरी लागी नाम की, तब केहिकै कानि रही॥
जो यहि रँग में मस्त रहत है, तेहि कैं सुधि हरना।
गगन-मँदिल दृढ़ डोरि लगावहु, जाहि रहौ सरना।
निर्भय ह्वैकै बैठि रहौं अब, माँगौं यह बर सोई॥
जगजीवन बिनती यह मोरी, फिरि आवन नहिं होई॥५॥

मैं तोहिं चीन्हा, अब तौ सीस चरन तर दीन्हा॥
तनिक झलक छवि दरस देखाय। तबतें तन मन कछु न सोहाय॥
कहा कहौं कछु कहि नहिं जाय। अब मोहि काँ सुधि समुझि न आय।
होइ जोगिन अँग भस्म चढ़ाय। भँवर-गुफा तुम रहेउ छिपाय॥
जगजीवन छवि बरनि न जाय। नैनन मूरति रही समाय॥६॥

रहिउँ मैं निरमल दृष्टि निहारी।
ए सखि मोहिं ते कहिय न आवै, कस-कस करहुँ पुकारी॥

---

४. समोई=व्याप्त। केतान=क्या।
५. छकी=मतवाली, मस्त। डोरी=लय। कानि=लोक-मर्यादा। सुधि=होश।
६. चीन्हा=पहचान लिया। आय=है। भँवर-गुफा=ब्रह्म-रंध्र।

रूप अनूप कहाँलगि बरनौं, डारौं सब कुछु वारी ।।
रवि ससि गन तेहिं छवि सम नाहीं, जिन केहु कहा बिचारी ।।
जगजीवन गहि सतगुरु चरना, दीजै सवै बिसारी ।।७।।

उपदेश का अंग

साधो नाम तें रहु लौ लाय, प्रगट न काहू कहहु सुनाय ।।
झूठै परगट कहत पुकारि, तातें सुमिरन जात बिगारि ।।
भजन बेलि जात कुम्हलाय, कौनि जुक्ति कै भक्ति दढ़ाय ।।
सिखि पढ़ि जोरि कहै बहु ज्ञान, सो तौ नाहिं अहै परमान ।।
प्रीति-रीति रसना रहै गाय, सो तौ राम कों बहुत हिताय ।।
सो तौ मोर कहावत दास, सदा बसत हौं तिनके पास ।।
मैं-मरि मन तें रहे हैं हारि, दिप्त जोति तिनकै उजियारि ।।
जगजीवनदास भक्त भे सोइ, तिनका आवागवन न होइ ।।१।।

कलि की रीति सुनहु रे भाई ।
माया यह सब है साईं की, आपुनि सब केहु गाई ।।
भूले फूले फिरत आय, पर केहुके हाथ न आई ।
जो है जहाँ तहाँ ही है सो, अंतकाल चाले पछिताई ।।
जहँ कहुँ होय नामरस चरचा, तहाँ आइकै और चलाई ।
लेखा-जोखा करहिं दाम का, पड़े अघोर नरक महँ जाई ।।
बूड़हिं आपु और कहँ बोरहिं, करि झूठी बहुतक बकताई ।
जगजीवन मन न्यारे रहिए, सत्तनाम तें रहु लय लाई ।।२।।

नाम बिनु नहिं कोउकै निस्तारा ।
जान परतु है ज्ञान तत्त तें, मैं मन समुझि बिचारा ।
कहा भये जल प्रात अन्हाये, का भये किये अचारा ।।

उपदेश का अंग

१. जात बिगारि=बिगड़ जाता है, विफल हो जाता है । जोरि=जोड़कर, कविता रचकर । परमान=प्रमाण, सत्य । हिताय=प्रिय लगती है ।

२. और चलाई=और दूसरी चर्चा चलाते हैं । अघोर=घोर । बोरहिं=डुबाते हैं । बक-ताई=बकवास ।

कहा भये माला पहिरे तें, का दिये तिलक लिलारा।
कहा भये व्रत अन्नहिं त्यागे, का किये दूध-अहारा॥
कहा भये पंचअगिन के तापे, कहा लगाये छारा।
कहा उर्धमुख धूमहिं घोंटें, कहा लोन किये न्यारा॥
कहा भये बैठे ठाढ़ें तें, का मौंनी किहे अमारा।
का पंडिताई का बकताई, का बहु ज्ञान पुकारा॥
गृहिनी त्यागि कहा बनबासा, का भये तन मन मारा॥
प्रीतिविहूनि हीन है सब कछु, भूला सब संसारा॥
मंदिल रहै कहूँ नहिं धावै, अजपा जपै अधारा।
गगन-मंडल मनि बरै देखि छवि, सोहै सबतें न्यारा॥
जेहि विस्वास तहाँ लै लागिय, तेहि तस काम सँवारा।
जगजीवन गुरुचरन सीस धरि, छूटि भरम कै जारा॥३॥

भेद का अंग

रँगि-रँगि चन्दन चढ़ावहु सांईं के लिलार रे॥
मन तें पुहुप माल गूँथिकै, सो लैकै पहिरावहु रे।
बिना नैन तें निरखु देखु छवि, बिन कर सीस नवावहु रे॥
दुइ कर जोरिकै बिनती करिकै, नाम कै मंगल गावहु रे।
जगजीवन बिनती करि माँगै, कबहुँ नहीं बिसरावहु रे॥१॥

सखि, बाँसुरी बजाय कहाँ गयो प्यारो॥
घर की गैल बिसरिगै मोहितें, अंग न बस्त्र सँभारो।
चलत पाँव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत पतवारो॥

---

३. निस्तारा=छुटकारा। अचारा=कर्मकाण्ड के अनुसार आचार। लिलारा=ललाट, माथा। छारा=भस्म। लोन किये न्यारा=नमक खाना छोड़ दिया। विहूनि=बिना। हीन=तुच्छ, व्यर्थ। मन्दिल=घर। मनि=मणि, ब्रह्मज्योति से तात्पर्य है। जारा=जाल।

भेद का अंग

१. रँगि-रँगि=रुचि से रच-रचकर। पुहुप=पुष्प, फूल। मंगल=स्वागत-गीत।

घर आँगन मोहिं नीक न लागै, सब्द-बान हिये मारो।
लागि लगन में मगन वाहिसों, लोक-लाज कुल-कानि बिसारो ॥
सुरति दिखाय मोर मन लीन्हों, मैं तौ चहों होय नहिं न्यारो।
जगजीवन छवि बिसरत नाहीं, तुमसे कहों सो इहै पुकारो ॥२॥

साध-महिमा

गऊ निकसि बन जाहीं। बाछा उनका घर ही माहीं ॥
तृन चरहिं चित्त सुत पासा। गहि जुक्ति साध जग-बासा ॥
साध तें बड़ा न कोई। कहि राम सुनावत सोई।
राम कही, हम साधा। रस एकमता औराधा ॥
हम साध, साध हम माहीं। कोउ दूसर जानै नाहीं ॥
जिन दूसर करि जाना। तेहिं होइहि नरक निदाना ॥
जगजीवन चरन चित लावै। सो कहिकै राम समुझावै ॥१॥

साध कै गति को गावै। जो अन्तर ध्यान लगावै।
चरन रहे लपटाई। काहू गति नाहीं पाई ॥
अन्तर राखै ध्याना। कोइ विरला करै पहिचाना ॥
जगत किहो एहि बासा। पै रहैं चरन के पासा ॥
जगत कहै हम माहीं। वै लिप्त काहु माँ नाहीं ॥
जस गृह तस उदयाना। वै सदा अहैं निरबाना ॥
ज्यों जल कमल कै बासा। वै वैसे रहत निरासा ॥
जैसे कुरम जल माहीं। वाकी स्तुति अंडन माहीं ॥
भवसागर यह संसारा। वै रहैं जुक्ति तें न्यारा ॥
जगजीवन ऐसें ठहराना। सो साध भया निरबाना ॥२॥

---

२ बाँसुरी=भँवर-गुफा के शब्द से तात्पर्य है। कानि=मर्यादा। सूरति=सूरत, रूप।

साध-महिमा

१. औराधा=आराधन किया। एकमता=अनन्य भाव से।

२. गति=भेद। उदयाना=वन। निरबाना=मुक्त। निरासा=अलिप्त। कुरम=कूर्म्म, कछवा। स्रुति=सुरति, ध्यान। जुक्ति=सावधानी।

मंगल

अरे, यहि जग आइके कहाँ गँवायो रे ।
निर्गुन तें फुटि आनि धरयो गुन, वह घर मन
बिसरायो रे ।।
कर्म-फाँसि माँ सुख भा, सुद्धि भुलायो रे ।
रचि-पचि मिलि माटी महँ सबै गँवायो रे ।।
बहुत लागि हित माया, मन बौरायो रे ।
भाई बन्धु कबीला सबै विचारयो रे ।।
जब तजि चलत है काया, सँग न सिधारे रे ।
रोवत मोहबस माया, ह्वैगे न्यारे रे ।।
जीवत कस नहिं त्यागहु, वृथा करि जानहु रे ।
आपुनि सुरति सँभारि, नाम गहि आनहु रे ।।
रहहु जगत की संगति, मन तें न्यारे रे ।
पुहमी पाँव उठावहु, रहहु बिचारे रे ।।
काँट गड़ै नहिं पावै, रहहु सँभारे रे ।।
काल तें कोइ नहिं बाचहि, सबकाँ खाइहि रे ।।
नाम सुकृत नहिं गहहि, अन्त पछिताइहि रे ।।
जस मोहिं समुझि परतु है, तस गोहरावौं रे ।।
सुनै बूझि मन समुझि, तौ पार उतारौं रे ।।
अचरज आवत देखिके रे, मन समुझि रहायो रे ।।
मैं तौ कछु नहि जान्यों गुरू जनायो रे ।।
रहौं बैठि तहवाँ मैं सुरति निहारौं रे ।
चरन सदा आधार, सीस मैं वारौं रे ।।
जगजीवन के साँई, तुम सब जानहु रे ।
दास आपना जानहु, अवर न आनहु रे ।।१।।

---

१. फुटि–फूटकर, छूटकर, विलग होकर । सुद्धि=सुध, याद । कबीला=स्त्री । न्यारे=अलिप्त । पुहमी पाँव उठावहु=धरती पर हलके पैर रखो, नम्रतापूर्वक चलो । गोहरावउँ–पुकारकर कहता हूँ ।

यहि नगरी में होरी खेलौं री ॥
हमरी पिया तें भेंट करावौ, तुम्हरे संग मिलि दौरौं री ॥
नाचौं नाच खोलि परदा में, अनत न पीव हँसौ री ।
पीव जीव एकै करि राखौं, सो छवि देखि रसौं री ॥
कतहूँ न बहौं रहौ चरनन ढिग, मन दृढ़ होय कसौं री ॥
रहौं निहारत पलक न लावौं, सर्बस और तजौं री ॥
सदा सोहाग भाग मोरे जागे, सतसंग सुरति बरौं री ।
जगजीवन सखि सुखित जुगन-जुग, चरनन सुरति धरौं री ॥१॥
अरी ए, नैहर डर लागै, सखी री, कैसे खेलौं मैं होरी ।
औगुन बहुत नाहिं गुन एकौ, कैसे गहों दृढ़ डोरी ॥
केहिं कौं दोष मैं देउँ सखी री, सबै आपनी खोरी ।
मैं तौ सुमारग चला चहत हौं, मैं तैं विष माँ घोरी ॥
सुमति होहि तब चढ़ौं गगन-गढ़, पिय तें मिलौं करि जोरी ॥
भीजौं नैनन चाखि दरसन-रस, प्रीति-गाँठि नहिं छोरी ॥
रहौं सीस दै सदा चरनतर, होउँ ताहिकी चेरी ।
जगजीवन सत-सेज सूति रहि, और बात सब थोरी ॥२॥

फुटकर शब्द

पंडित, काह करै पंडिताई ।
त्यागदे बहुत पढ़ब पोथी का, नाम जपहु चित लाई ॥
यह तो चार विचार जगत का, कहे देत गोहराई ।
सुनि जो करै तरै पै छिन महँ, जेहिं प्रतीति मन आई ॥

---

१. रसौं=आनन्द मनाऊँ । बहौं=इधर-उधर भटकूँ । दृढ़ होय कसौं=दृढ़ता से वश में करूँ । सत्संग सुरति बरौं री=अपनी लय को सत्संग के साथ वरण करूँ ।

२. खोरी=दोष । मैं तैं विष माँ=मैं और तू इस द्वैतभावरूपी विष में । सुमति होहि=सुबुद्धि उपजे । गगन-गढ़=निर्विकल्प समाधि की शून्यावस्था । सूति रहि=लय-समाधि के आनंद में अपने आपमें लीन करलूँ ।

फुटकर शब्द

१. चार=आचार । गोहराई=पुकारकर । प्रतीति= विश्वास । अजपा=उच्चारण न

पढ़ब पढ़ाउब बेधत नाहीं, बकि दिनरैन गँवाई।
एहि तें भक्ति होत है नाहीं, परगट कहौं सुनाई ॥
सत्त कहत हौं बुरा न मानौ, अजपा जपै जो जाई।
जगजीवन सत-मत तब पावैं, परमज्ञान अधिकाई ॥१॥

तुमहीं सों चित लागु है, जीवन कछु नाहीं।
मात पिता सुत बंधवा, कोउ संग न जाहीं ॥
सिद्ध साध मुनि गंध्रवा मिलि माटी माहीं।
ब्रह्मा बिस्नु महेस्वरा, गनि आवत नाहीं ॥
नर केतानि को बापुरा, केहि लेखे माहीं।
जगजीवन बिनती करै, रहै तुम्हरी छाँहीं ॥२॥

आनन्द के सिन्ध में आनि बसे, तिनको न रह्यो तन को तपनो।
जब आपु में आपु समाय गये, तब आपु में आपु लह्यो अपनो ॥
जब आपु में आपु लह्यो अपुनो, तब अपनो हो जाय रह्यो जपनो।
जब ज्ञान को भान प्रकास भयो, जगजीवन होय रह्यो सपनो ॥३॥

साखी

भूलु फूलु सुख पर नहीं, अबहूँ होहु सचेत।
साँई पठवा तोहि काँ, लावो तेहि ते हेत ॥१॥
तजु आसा सब झूठ ही, सँग साथी नहिं कोय।
केउ केहू न उबारिही, जेहि पर होय सो होय ॥२॥
कहँवाँ तें चलि आयहू, कहाँ रहा अस्थान।
सो सुधि बिसरि गई तोहिं, अब कस भयसि हेवान ॥३॥

किया जानेवाला नाम-स्मरण, जो श्वास-प्रश्वास के गमनागमनमात्र से होता रहता है। इस अजपा जप की संख्या एक दिन और रात में २१६०० मानी गई है।
२. गंध्रवा=गन्धर्व। बापुरा-बेचारा।

साखी

१. पठवा=भेजा, जन्म दिया। हेत=प्रेम।
२. केउ केहू न उबारही=कोई किसीको नहीं उबारता।

काया-नगर सोहावना, सुख तबहीं पै होय।
रमत रहै तेहिं भीतरे, दुख नहिं ब्यापै कोय ।।४।।
मृत-मंडल कोउ थिर नहीं, 'आवा सो चलि जाय।
गाफ़िल ह्वै फन्दा पर्‌यौ, जहँ-तहँ गयो बिलाय ।।५।।

५. मृत-मण्डल=मर्त्यलोक।

दरिया साहब

(बिहारवाले)

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७३१ वि०

जन्म-स्थान—धरकंधा (ज़िला आरा)

पिता—पीरनशाह (पूर्वनाम पृथुदास)

जाति—धर्मान्तरित मुसलमान (पूर्वजाति क्षत्रिय)

भेष—गृहस्थ; वस्तुतः विरक्त

मृत्यु-संवत्–१८३७ वि, भादों वदी ४

दरिया साहब के पूर्वज उज्जैन के क्षत्रिय थे, जो वहाँ से उठकर विहार में आ बसे थे। जगदीशपुर (ज़िला शाहाबाद) में ये लोग रहते थे, और इधर इनका राज भी था। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी की शोध के अनुसार दरिया साहब के पिता पृथुदास को औरंगजेब की बेगम की एक दर्जिन की लड़की के साथ वाध्यतः अपना दूसरा विवाह करना पड़ा था, और तभी से वह पृथुदास से पीरनशाह बन गये। अपनी नई ससुराल धरकंधा में जाकर वह बस गये। वहींपर ननिहाल में दरियादास का जन्म हुआ।

नौ बरस की उम्र में इनका विवाह हो गया। पत्नी का नाम राममती था। पर पन्द्रह बरस की उम्र में ही तीव्र वैराग्य हो जाने के कारण इन्होंने स्त्री का परित्याग कर दिया, गृहस्थी में नहीं फँसे। सहज साधना करते-करते इन्होंने ज्ञान और भक्ति का पूरा प्रकाश बीस बरस

की अवस्था में ही पा लिया। तीस बरस के जब हुए, तब 'तखत' पर बैठ गये। सत्संग कराना और सोते हुए को जगाना-चेताना शुरू कर दिया। दरिया साहब ने सबको सत्पुरुष का सच्चा भेद सुझाया, 'छप-लोक' (आत्मा की परात्पर स्थिति) का मार्ग बताया, और सदा शील-सदाचार का उपदेश दिया। कबीरदास की तरह दरिया साहब ने भी अवतार, मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन, जात-पांत वगैरा का खण्डन किया है। कबीरदास के मत और ज्ञान का इनपर पूरा प्रभाव पड़ा था, और कदाचित् इसीलिए इन्हें कबीर साहब का अवतारतक कहा जाता है।

दरिया-पंथ की पाँच गद्दियाँ हैं। मुख्य गद्दी या तख्त धरकंधा में है, जो डुमरांव से क़रीब १४ मील दूर है। दरिया साहब के ३६ चेलों में दलदासजी मुख्य थे।

दरिया-पंथियों के कई रिवाज मुसलमानों से मिलते-जुलते हैं। प्रार्थना ये खड़े-खड़े झुककर करते हैं, जिसे 'कोरनिश' कहते हैं, और वंदना को 'सिरदा' याने सिजदा। इनके मूलमंत्र का नाम 'बेवाहा' है। इनके हरेक साधु के पास एक मिट्टी का हुक्का होता है, जिसे ये 'रखना' कहते हैं, और पानी पीने के बर्तन को 'भरुका'।

बानी-परिचय

दरिया साहब की रची २० पुस्तकों का पता चला है, जिनका संक्षिप्त विषय-परिचय, डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री की शोध के अनुसार, 'उत्तरी भारत की संत-परम्परा' में उसके विद्वान् लेखक श्री परशुराम चतुर्वेदी ने किया है। किन्तु प्रकाश में केवल 'दरियासागर' और 'ज्ञानदीपक' ये दो ही पुस्तकें आई हैं। दरियासागर का प्रकाशन इलाहाबाद के बेलवेडियर प्रेस ने किया है। इसी प्रेस से "दरिया साहेब (बिहारवाले) के चुने हुए पद और साखी" नाम का एक सुन्दर संग्रह भी निकला है।

शोध में जिन २० पुस्तकों का पता चला है, वे ये हैं :—

(१) प्रेममूल, (२) ज्ञानरत्न, (३) भक्तिहेतु, (४) मूर्ति-उखाड़,

(५) शब्द व बीजक, (६) ज्ञान-स्वरोदय, (७) विवेकसागर, (८) दरियासागर, (९) ज्ञानदीपक, (१०) ब्रह्मविवेक, (११) अमरसार, (१२) निर्भय ज्ञान, (१३) सहस्रानी, (१४) ज्ञानमाला, (१५) दरिया नामा, (१६) अग्रज्ञान, (१७) ब्रह्मचैतन्य, (१८) ज्ञानमूल, (१९) कालचरित्र, और (२०) यज्ञसमाधि।

दरिया साहब की बानी में हम प्रत्यक्ष अनुभूति की स्पष्ट झलक पाते हैं। 'छपलोक' अर्थात् सत्यपुरुष के रहस्य-लोक या ब्राह्मी स्थिति का वर्णन ऐसा सजीव इन्होंने किया है मानो उसे अपने सामने देख रहे हों। बाह्य जगत् तथा अंतर्जगत् को इन्होंने एक पारदर्शी की दृष्टि से देखा था। विनय और विरह के पदों में गहरे भावों को सरल व कोमल भाषा में व्यक्त किया है।

आधार

१ दरिया सागर—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद,

२ दरिया साहेब के चुने हुए पद और साखी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

३ उत्तरी भारत की संत-परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, इलाहाबाद

दरिया साहब

(बिहारवाले)

पद

अबरी के बार बकसु मोरे साहेब। तुम लायक सब जोग, हे॥
गून बकसिहौ सब भ्रम नसिहौ। रखिहौ आपन पास, हे॥
अछै-बिरछि तरि लै बैठैहौ। तहवाँ धूप न छाँह, हे॥
चाँद न सुरज दिवस नहि तहवाँ। नहिं निसु होत बिहान, हे॥

पद

१. अबरी=अब (इस शब्द का अर्थ 'अबल' भी किया गयाहै, तब 'बार' का अर्थ

अमृतफल मुख चाखन दैहौ। सेज सुगन्ध सुहाय, हे ॥
जुग-जुग अचल अमर पद दैहौ। इतना अरज हमार, हे ॥
भवसागर दुख दारुन मिटिहैं। छुटि जैहैं कुल-परिवार, हे ॥
कह दरिया यह मंगल मूल। अनूप फुलैला जहाँ फूल, हे ॥१॥

अवरी के बार बकसु मोरे साहेब। जनम-जनम कैं चेरि, हे ॥
चरनकमल मैं हृदय लगाइब। कपट-कागज सब फाड़ि, हे ॥
मैं अबला किछुओ नहिं जानौं। परपंचन के साथ, हें ॥
पिया मिलन बेरी इन्ह मोरारोकल। तब जिव भयल अनाथ, हे ॥
जब दिल में हम निहचे जानल। सूझि परल जमफंद, हे ॥
खूलल दृष्टि दिया मनि नेसल। मानहुँ सरद के चन्द, हे ॥
कह दरिया दरसन-सुख उपजल। दुख सुख दूरि बहाय, हे ॥२॥

मैं कुलवंती खसम-पियारी। जाँचत तू लै दीपक बारी ॥
गंध सुगंध थार भरि लीन्हा। चंदन चर्चित आरति कीन्हा ॥
फूलन सेज सुगन्ध बिछायौं। आपन पिया पलंग पौढ़ायौं ॥
सेवत चरन रैनि गइ बीती। प्रेम-प्रीति तुम ही सौं रीती ॥
कह दरिया ऐसो चित लागा। भई सुलछनि प्रेम-अनुरागा ॥३॥

'बल' किया जाना चाहिए, अर्थात् 'अवल के बल'। पर यह खींच-तान का अर्थ होगा। इसलिए 'अवरी के बार' का सीधा अर्थ 'अब की वार तो' यही ठीक है। वकसु=बख़्श दो, माफ़ करदो। बकसिहौ बख़्शोगे, प्रदान करोगे। अछै-बिरिछ= जिस वृक्ष का कभी नाश न हो; सहज समाधि से अभिप्राय है। बिहान=सवेरा, दिन। सुहाय=सुन्दर। फुलैला=फूला है।

२. मोरा रोकल-मुझे रोक रखा। भयल=हुआ। परल=पड़ा। खूलल=खुलगई। नेसल=लेसल, जला दिया।

३. खसम=स्वामी। जांचत······बारी=अरे, तू मुझे दीपक जलाकर देखता-परखता है! चर्चित=लेपकर। सेवत=पलोटते या चाँपते हुए। सुलछनि=सुलक्षणी, सदाचारिणी।

झूलना

प्रेम-धगा यह टूटता ना,
गर टूटि कंठी फिर बाँधना क्या ।
यह तत्त-तिलक सतनाम छापा करु,
और विविध है साधना क्या ।
ग्यान का दण्ड न डगमगै कर,
दण्ड लियें काहू मारना क्या ।
यह झूलना दरिया साहेब कहा,
सतनाम सही, बहु पेखना क्या ॥१॥

फुटकर पद

भीतर मैल चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है ।
अविगत सुरति महल कै भीतर, वाका पंथ न जोवै है ॥
जुगति बिना कोइ भेद न पावै, साधु-संगति का गोवै है ।
कह दरिया कुटने वे गोदी, सीस पटकि का रोवै है ॥१॥
बिहंगम, कौन दिसा उड़ि जैहौ ।
नाम बिहूना सो परहीना, भरमि-भरमि भौ रहिहौ ॥
गुरुनिन्दक बद संत के द्रोही, निन्दै जनम गँवैहौ ।
परदारा परसंग परस्पर, कहहु कौन गुन लहिहौ ॥
मद पी माति मदन तन व्यापेउ, अंमृत तजि विष खैहौ ॥
समुझहु नहिं वा दिन की बातें, पल-पल घात लगैहौ ॥

झूलना

१. धगा=धागा; संबंध । कंठी=छोटी-छोटी तुलसी की गुरियों की माला, जिसे वैष्णव गले में पहनते हैं । छापा=मुद्रा; शंख, चक्र आदि के चिह्न, जिन्हें वैष्णव अपने अंगों पर गरम धातु से अंकित कराते हैं । दंड=संन्यासी का दंड । पेखना=देखना ।

फुटकर पद

१. चहल=कीचड़; बुरी वासनाओं से अभिप्राय है । महल=हृदय । जोवै है=देखता है । जुगति=योग-युक्ति । भेद=रहस्य । गोवै=जी छिपाता है । कुटने=धूर्त । गोदी=कायर ।

चरनकँवल बिनु सो नर बूड़ेउ, उभि चुभि थाप न पैहौ ॥
कहै दरिया सतनाम भजन बिनु, रोइ रोइ जनम गँवैहौ ॥२॥
बुधजन, चलहु अगम पथ भारी ।
तुमते कहौं समुझ जो आवै, अबरि के बार सम्हारी ॥
काँट कूस पापन नपिं तहँवाँ, नाहिं बिटप बन झारी ।
बेद कितेब पंडित नहिं तहँवाँ, बिनु मसि अंक सँवारी ॥
नहिं तहँ सरिता समुँद न गंगा, ग्यान के गमि उँजियारी ।
नहिं तहँ गनपति फनपति बरह्मा, नहि तहँ सृष्टि सँवारी ॥
सर्ग पताल मृतलोक के बाहर, तहवाँ पुरुष भुवारी ।
कहै दरिया तहँ दरसन सत है, संतन लेहु बिचारी ॥३॥

साखी

बेवाहा के मिलन सों, नैन भया खुसहाल ।
दिल मन मस्त मतवल हुआ, गूँगा गहिर रसाल ॥१॥
है खुसबोई पास में, जानि परै नहिं सोय ।
भरम लगे भटकत फिरे, तिरथ बरत सब कोय ॥२॥
बारिधि अगम अथाह जल, बोहित बिनु किमि पार ।
कनहरिया गुरु ना मिला, बूड़त हैं मँझधार ॥३॥
निकट जाय जमराज नहिं, सिर धुनि जम पछिताय ।
बुन्द सिंध में मिलि रहा, कवन सकै बिलगाय ॥४॥

---

२. बिहूना=रहित । परहीना=बिना पंख के । भौ=भव, संसार । गुन=लाभ से आशय है । मदन=कामदेव ।

३. अबरिके=अबकी । कूस=कुश । पाहन=पत्थर । झारी=झाड़ी । मसि=स्याही । फनपति=शेषनाग । भुवारी=भूपाल; राजा, स्वामी ।

साखी

१. बेवाहा=दरियापन्थियों का मूल मंत्र । मतवल=मतवाला ।

३. बोहित=जहाज । कनहरिया=कर्णधार, खेनेवाला । बुंद······बिलगाय=आत्मा जब परमात्मा में लीन हो गई, तब कौन उसे अलगा सकता है ?

पाँच तत्त की कोठरी, तामें जाल जंजाल।
जीव तहाँ बासा करै, निपट नगीचे काल ॥५॥
दरिया दिल दरियाव है, अगम अपार बेअंत।
सब महँ तुम, तुम में सभे, जानि मरम कोइ संत ॥६॥

दरिया-सागर

साखी

तीनि लोक के ऊपरे, अभय लोक बिस्तार।
सत्त सुकृत परवाना पावै, पहुँचै जाय करार ॥१॥
जोतिहि ब्रह्मा बिस्नु हहिं, संकर जोगी ध्यान।
सत्तपुरुष छपलोक महँ, ताको सकल जहान ॥२॥
सोभा अगम अपार, हंसवंस सुख पावहीं।
कोइ ग्यानी करै विचार, प्रेमतत्त जा उर बसै ॥३॥

चौपाई

जो सत सब्द बिचारै कोई। अभय लोक सीधारै सोई ॥
कहन सुनन किमिकरि बनि आवैं। सत्तनाम निजु परचै पावै ॥
लीजै निरखि भेद निजु सारा। समुझि परै तब उतरै पारा ॥
कंचन डाहै पावक जाई। ऐसे तन कै डाहहु भाई ॥
जो हीरा घन सहै घनेरा। होइ हिरंवर बहुरि न फेरा ॥
गहै मूल तब निर्मल बानी। दरिया दिल बिच सुरति समानी ॥
पारस सब्द कहा समुझाई। सतगुरु मिलै त देहि दिखाई ॥
सतगुरु सोइ जो सत्त चलावै। हंस बोधि छपलोक पठावै ॥
घर घर ग्यान कथै बिस्तारा। सो नहिं पहुँचै लोक हमारा ॥

---

५. निपट नगीचे=अत्यंत निकट।

१. अभय लोक=सत्यलोक, अथवा ब्राह्मी अवस्था; इसे दरिया साहब ने 'छपलोक' कहा है, अर्थात् गुप्त या रहस्य-लोक। करार=तट, निर्दिष्ट स्थान।

२. हहिं=हैं।

३. हंस-बंस=सिद्धपुरुषों की परम्परा से तात्पर्य है।

४. सीधारै=पहुँचता है। डाहै=जलाता है। हिरंवर=शुद्ध हीरा। फेरा=संसार में

आतमदेव पुजहु तुम भाई। का जग पाती तोरहु जाई॥
पाति तोरि निर्गुन नहिं पाई। आतम जीवघात इन्ह लाई॥४॥

साखी

परआतम के पूजते, निर्मल नाम अधार।
पंडित पत्थल पूजते, भटके जम के द्वार॥५॥

चौपाई

सब घट ब्रह्म और नहिं दूजा। आतम देव के निर्मल पूजा॥
बादिहि जनम गया सठ तोरा। अंत कि बात किया तैं भोरा॥
पढ़ि-पढ़ि पोथी भा अभिमानी। जुगति औंर सब म्रिथा बखानी॥
जौ न जानु छपलोक के मरमा। हंस न पहुँचिहि एहि षटकरमा॥
सार सब्द जब दृढ़ता लावै। तब सतगुरु किछु आपु लखावै॥
दरिया कहै सब्द निरबाना। अवरि कहौं नहि बेद बखाना॥
बेदै अरुझि रहा संसारा। फिरि-फिरि होहि गरभ अवतारा॥६॥

साखी

सुमिरन माला भेख नाहिं, नाहिं मसी को अंक।
सत्त सुकृत दृढ़ लाइकै तब तोरै गढ़ बंक॥७॥
ब्राह्मन औ संन्यासी, सबसौं कहा बुझाय।
जो जन सबदहि मानिहै, सेइ संत ठहराय॥८॥

फिर-फिर जन्म लेना। सुरित=लौ। वोधि–उपदेश देकर।

५. पत्थल=पत्थर, देव-मूर्त्ति।

६. वादिहि=व्यर्थ ही। जुगति=योग-युक्ति। म्रिथा=मिथ्या। मरमा=रहस्य। षट-करमा=ब्राह्मणों के छह कर्म; विविध कर्म-काण्ड। सब्द निरवाना=गुरुमुख द्वारा उपदिष्ट परमार्थ-ज्ञान से मोक्ष का रहस्य।

७. मसी को अंक=स्याही से लिखा अक्षर; कोरे पुस्तकी ज्ञान से आशय है। गढ़ बंक=माया का विकट किला।

चौपाई

हिन्दु तुरुक हम एकै जाना । जो एह मानै सब्द निसाना ॥
साहबका एह सब जिव अहई । बूझि बिचारि ग्यान निजु कहई ॥
अन पानी सब एकै होई । हिन्दु तुरुक दूजा नहिं कोई ॥
हिन्दु तुरुक इमि दुनों भुलाना । दुनों वादि ही वादि बिलाना ॥
वो हिरनी वो गाइहिं खाई । लोहु एक दूजा नहिं भाई ॥
दूजा दुविधा जेहि नहिं होई । भगत सुनाम कहावै सोई ॥
ब्राह्मन सो जो ब्रह्महि चीन्हा । ध्यान लगाय रहै लवलीना ॥
क्रोध मोह तृस्ना नहिं होई । पंडित नाम सदा है सोई ॥९॥

चौपाई

भूले संपति स्वारथ मूढ़ा । परे भवन में अगम अगूढ़ा ॥
संत निकट फिनि जाहिं दुराई । बिषय-बासरस फेरि लपटाई ॥
अब का सोचसि मदहिं भुलाना । सेमर सेइ सुगा पछताना ॥
मरनकाल कोइ संगि न साथा । जब जम मस्तक दीन्हेउ हाथा ॥
मात पिता धरनी घर ठाढ़ी । देखत प्रान लियो जम काढ़ी ॥
धन सब गाढ़ गाहिर जो गाड़े । छूटेउ माल जइँलगि भाँड़े ॥
भवन भया बन बाहर डेरा । रोवहिं सब मिलि आँगन घेरा ॥
खाट उठाइ काँध करि लीन्हा । बाहर जाइ अगिनि जो दीन्हा ॥
जरि गई खलरी भसम उड़ाना । सोचि चारि दिन कीन्हेउ ग्याना ॥
फिरि धंधे लपटाना प्रानी । बिसरि गया ओइ नाम निसानी ॥

---

९. अन=अन्न । वादि ही वादि बिलाना=बहस में इवार दोनों ही सच्चे रास्ते से भटक गये और नष्ट हो गये, ईश्वर या अल्लाह का सच्चा भेद किसीको न मिला । दूजा=-द्वैत-भाव ।

१०. अगम अगूढ़ा=माया में बुरी तरह लिप्त, जिसे छोड़कर परमार्थ की ओर जाना जिन्हें अशक्य है । फिनि=पुनः । जाहिं दुराई=सामने से भाग जाते हैं । बास=

खरचहु खाहु दया करु प्रानी । ऐसे बुड़े बहुत अभिमानी ॥
सतगुरु सबद साँच एह मानी । कह दरिया करु भगति बखानी ॥
भूलि भरम एह मूल गँवावै । ऐसन जनम कहाँ फिरि पावै ॥
धन संपति हाथी अरु घोरा । मरन अंत सँग जाहिं न तोरा ॥
मात पिता सुत बंधौ नारी । ई सब पाँवर तोहि बिसारी ॥१०॥

साखी

कोठा महल अटारिया, सुनेउ स्रवन बहु राग ।
सतगुरु सबद चीन्हें बिना, ज्यों पंछिन महँ काग ॥११॥

वासना । सुगा=तोता । घरनी=स्त्री । खलरी=खाल; ठठरी । कीन्हेउ ग्याना=मन को समझा लिया । बुड़े=डूब गये, नष्ट हो गये । मूल=पूँजी; परमार्थ । बंधौ=भाई-बंधु । पाँवर=नीच; मूढ़ ।

दरिया साहब

(मारवाड़वाले)

चोला परिचय

जन्म-संवत्—१७३३ वि०
जन्म-स्थान—जैतारन गाँव (मारवाड़)
जाति—धुनियाँ (मुसलमान)
पालनहारे—नाना कमीच व नानी कमीरा
गुरु—संत प्रेमजी
चोला-त्याग—संवत् १८१५ वि०

दरिया साहब जाति के धुनियाँ थे । उन्होंने स्वयं ही कहा है—
"जो धुनियाँ तौभी मैं राम तुम्हारा ।
अधम कमीन जाति मतिहीना, तुम तौ हौं सिरताज हमारा ।'

यह सात साल के थे, जब इनके पिता की मृत्यु हुई। रैन नाम के एक गांव में, जो मेड़ता परगने में था, इनके नाना-नानी ने इनको पाला-पोसा। यह पढ़े-लिखे नहीं थे। ईश्वर-भक्ति की पिपासा इनको बालपन से ही थी। कितने ही मुल्लों व पंडितों के द्वार खटखटाये, पर भक्तिरस का भेद कहीं भी नहीं पाया। वे सब के सब छूछे घड़े दीखे। अन्त में दरिया साहब प्रेमजी महाराज के पास पहुँचे, जो एक पहुँचे हुए संत थे। यह खियानसर गाँव (बीकानेर राज्य) में रहते थे, और स्वामी दादूदयालजी के शिष्य थे। प्रेम का असली मार्ग उन्होंने इन्हें पकड़ा दिया। उनके चरणों में बैठकर दरिया साहब ने भरपूर भक्ति-रस पिया और पिलाया। जिस परमतत्त्व के विरह में बरसों से तड़प रहे थे, वह इन्हें सहज ही मिल गया, भेद पा लिया।

कतिपय दरियापंथी भक्तों का विश्वास है कि दरिया साहब महात्मा दादूदयाल के अवतार थे। उनका कहना है कि दादूजी महाराज ने दरिया साहब के प्रकट होने से सौ बरस पहले यह साखी कही थी—

"देह पड़ंताँ दादू कहै, सौ बरसाँ इक संत।
रैन नगर में परगटै, तारै जीव अनंत॥"

बानी-परिचय

महात्मा दादूदयाल तथा अन्य अनेक संतों की तरह दरिया साहब ने भी विविध अंगों पर साखियाँ कही हैं। प्रेम और विरह के पद भी इनके गहरे और टकसाली हैं। नाद-परिचय और ब्रह्म-परिचय की साखियों में सूक्ष्म अभ्यास और गहरा अनुभव झलकता है। कहने का ढंग सुलझा हुआ, और भाषा सरल और मधुर है। शब्द-अभ्यासी संतों की बानियों में दरिया साहब की बानी ने खासा स्थान पाया है।

आधार

१ दरिया साहब (मारवाड़) की बानी और जीवन-चरित्र—
बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

दरिया साहब

(मारवाड़वाले)

सतगुरु का अंग

जन दरिया हरिभक्ति की, गुराँ बताई बाट।
भूला ऊजड़ जाय था, नरक पड़न के घाट ॥१॥

नहिं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान।
दरिया सुध बुध ग्यान दे, सतगुरु किया सुजान ॥२॥

सतगुरु सब्दाँ मिट गया, दरिया संसय सोग।
औषद दे हरिनाम का तनमन किया निरोग ॥३॥

रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय।
सतगुरु एकहि सब्द से, दीन्ही तुरत उड़ाय ॥४॥

जैसे सतगुरु तुम करी, मुझसे कछू न होय।
बिष-भाँडे विष काढ़कर, दिया अमीरस मोय ॥५॥

सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अँदेसा मोहि।
सतगुरु ने किरपा करी, खिड़की दीनीं खोहि ॥६॥

पान बेल से बीछुड़ै, परदेसाँ रस देत।
जन दरिया हरिया रहै, उस हरी बेल के हेत ॥७॥

सतगुरु का अंग

१. गुराँ=गुरुजी ने।

२. सुजान=ज्ञानवान्।

३. सब्दाँ=शब्दों से, उपदेशों से। सोग=शोक।

४. रंजी=रज, धूल। सास्तर=शास्त्र।

५. दिया मोय=भर दिया।

६. अँदेशा=डर, संशय। दीनीं खोहि=खोलदी।

सुमिरन का अंग

राम बिना फीका लगै, सब किरिया सास्तर ग्यान ।
दरिया दीपक कह करै, उदय भया निज भान ।।१।।
मुसलमान हिंदू कहा, षट दरसन रंक राव ।
जन दरिया हरिनाम बिन, सब पर जम का दाव ।।२।।
जो कोइ साधू गृही में, माहिं राम भरपूर ।
दरिया कह उस दास की, मैं चरनन की धूर ।।३।।
सतगुरु-संग न संचरा, रामनाम उर नाहिं ।
ते घट मरघट सारिखा, भूत बसैं ता माहिं ।।४।।
दरिया सुमिरन राम का देखत-भूली खेल ।
धन धन हैं वे साधवा, जिन लीया मन मेल ।।५।।
फिरी दुहाई सहर में, चोर गये सब भाज ।
सत्र फिरा मित्र जु भया, हुआ राम का काज ।।६।।

बिरह का अंग

दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाय ।
यह बिरहा मेरे साध को सोता लिया जगाय ।।१।।
दरिया बिरही साध का, तन पीला मन सूख ।
रैन न आवै नींदड़ी, दिवस न लागै भूख ।।२।।

सुमिरन का अंग

१. किरिया=क्रिया, कर्मकाण्ड ।

२. षटदरसन=छह शास्त्र ।

६. जो कोई······भरपूर=जो विरक्त और गृहस्थ दोनों में ही राम को व्यापक देखता है ।

४. संचरा=संचार हुआ । घट=शरीर ।

५. लीया मेल=लगा लिया, रमा लिया ।

विरह का अंग

१. पठाय=भेज दिया । सूख=उदास, रसहीन ।

बिरहिन पिउ के कारने, ढूंढ़न बनखण्ड जाय।
निस बीती, पिउ ना मिला, दरद रही लिपटाय ॥३॥
बिरहिन का घर बिरह में, ता घट लोहु न माँस।
अपने साहब कारने, सिसकै साँसों साँस ॥४॥

सूर का अंग

पंडित ग्यानी बहु मिले, वेद ग्यान परबीन।
दरिया ऐसा ना मिला, रामनाम लवलीन ॥१॥
बक्ता स्रोता बहु मिले, करते खैंचातान।
दरिया ऐसा ना मिला, जो सन्मुख झेलै बान ॥२॥
दरिया साँचा सूरमा, सहै सब्द की चोट।
लागत ही भाजै भरम, निकस जाय सब खोट ॥३॥
सबहि कटक सूरा नहीं, कटक माहिं कोइ सूर।
दरिया पड़ै पतंग ज्यों, जब बाजै रन तूर ॥४॥
भया उजाला गैब का, दौड़े देख पतंग।
दरिया आपा मेटकर, मिले अगिन के रंग ॥५॥
दरिया प्रेमी आत्मा, रामनाम धन पाया।
निरधन था धनवँत हुआ, भूला घर आया ॥६॥
सूर न जानै कायरी, सूरातन से हेत।
पुरजा-पुरजा हो पड़ै, तहू न छांड़ै खेत ॥७॥

---

३. दरद रही लिपटाय=अपने दर्द से चिपटकर वहीं सो गई।

सूर का अंग

२. खैंचातन=तर्क-वितर्क, नये-नये अर्थ लगाने में बाल की खाल खींचना। झेलै=अपने ऊपर ले।

४. कटक=सेना। तूर=तुरही, रण में बजाने का एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है।

५. उजाला गैब का=जो आँखों के सामने नहीं उस रहस्यमयी शून्यता में स्थित ब्रह्म-ज्योति का अद्भुत प्रकाश। पतंग=पतिंगे ; यहाँ प्रेमी साधकों से तात्पर्य है।

७. पुरजा-पुरजा=टुकड़ा-टुकड़ा।

दरिया सो सूरा नहीं, जिन देह करी चकचूर।
मन को जीत खड़ा रहै, मैं बलिहारी सूर ॥८॥

ब्रह्म-परचे का अंग

रतन अमोलक परखकर, रहा जौहरी थाक।
दरिया तहँ कीमत नहीं, उनमुन भया अवाक ॥१॥
धरती गगन पवन नहिं पानी, पावक चंद न सूर।
रात-दिवस की गम नहीं, जहँ ब्रह्म रहा भरपूर ॥२॥
पाप पुन्न सुख दुख नहीं, जहँ कोइ कर्म न काल।
जन दरिया जहँ पड़त है, हीरों की टकसाल ॥३॥
जीव जात से बीछड़ा, धर पँचतत का भेख।
दरिया निज घर आइया, पाया ब्रह्म अलेख ॥४॥
आँखों से दीखै नहीं, सब्द न पावै जान।
मन बुधि तहँ पहुँचै नहीं, कौन कहै सेलान ॥५॥
माया तहाँ न संचरै, जहाँ ब्रह्म का खेल।
जन दरिया कैसे बनै, रवि रजनी का मेल ॥६॥
जात हमारी ब्रह्म है, माता पिता है राम।
गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में बिसराम ॥७॥

साध का अंग

दरिया लच्छन साध का, क्या गिरही क्या भेख।
निःकपटी निरसंक रहि, बाहर भीतर एक ॥१॥

---

८. चकचूर=चूर-चूर, टुकड़ा-टुकड़ा।

ब्रह्म-परचे का अंग

१. उनमुन=मौन। अवाक=निःशब्द, मौन।

३. टकसाल=वह स्थान जहाँ सिक्के बनाये या ढाले जाते हैं।

४. जाति=असल जाति से अर्थात् ब्रह्मभाव से। तत=तत्त्व।

५. सेलान=निशान, रूप।

७. गिरह=गृह, घर।

साध का अंग

१. गिरही=गृहस्थ। भेख=वैरागी।

सत्त सब्द सत गुरमुखी, मत गजंद-मुखदंत।
यह तो तोड़ै पौलगढ़, वह तोड़ै करम अनंत ॥२॥
दाँत रहै हस्ती बिना, पौल न टूटै कोय।
कै कर धारै कामिनी, कै खेलाराँ होय ॥३॥
मतबादी जानै नहीं, ततबादी की बात।
सूरज ऊगा उल्लुवा, गिनै अँधारी रात ॥४॥
सीखत ग्यानी ग्यान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चाँदनी, भीतर काली रात ॥५॥

उपदेश का अंग

दरिया बहु बकबाद तज, कर अनहद से नेह।
औंधा कलसा ऊपरे, कहा बरसावै मेह ॥१॥
जन दरिया उपदेस दे, भीतर प्रेम सधीर।
गाहक हो कोइ हींग का, कहा दिखावै हीर ॥२॥
दरिया गैला जगत को, क्या कीजै सुलझाय।
सुलझाया सुलझै नहीं, सुलझ-सुलझ उलझाय ॥३॥
दरिया गैला जगत को, क्या कीजै समझाय।
रोग नीसरै देह में, पत्थर पूजन जाय ॥४॥

---

२. मत=मत्त, मतवाला। पौलगढ़=क़िले की ड्योढ़ी का फाटक।

३. दाँत रहै हस्ती बिना=यदि हाथी का दाँत हो, पर हाथी न हो; साधना के पक्ष में यह अर्थ होगा, कि यदि इन्द्रियों और मन का दमन न किया हो, केवल वाचनिक साधना हो। खेलाराँ=खिलौना।

४. मतवाद=भिन्न-भिन्न शास्त्रों के सिद्धान्तों की बात करनेवाले। ततवादी=तत्त्ववादी, शुद्ध आत्मज्ञानी।

उपदेश का अंग

२. सधीर=दृढ़, पक्का। हीर=हीरा।

३. गैला=गहिला, पागल।

४. रोग=चेचक से तात्पर्य है। नीसरै=निकलता है। पत्थर पूजन जाय=माता कहकर देवी पूजने जाते हैं।

कंचन कंचन ही सदा, काँच काँच सो काँच।
दरिया झूठ सो झूठ है, साँच साँच सो साँच ॥५॥

कानों सुनी सो झूठ सब, आँखों देखी साँच।
दरिया देखे जानिये, यह कंचन यह काँच ॥६॥

पारस का अंग

पारस परसा जानिये, जो पलटै अँग-अंग।
अंग-अंग पलटै नहीं, तौ है झूठा संग ॥१॥

पारस जाकर लाइये, जाके अँग में आप।
क्या लावै पाषान को, घस-घस होय संताप ॥२॥

दरिया बिल्ली गुरु किया, उज्जल बगु को देख।
जैसा को तैसा मिला, ऐसा जक्त अरु भेष ॥३॥

साध स्वाँग अस आँतरा, जेता झूठ अरु साँच।
मोती मोती फेर बहु, इक कंचन इक काँच ॥४॥

पाँच सात साखी कही, पद गाया दस दोय।
दरिया कारज ना सरै, पेट-भराई होय ॥५॥

मिश्रित साखी

बड़ के बड़ लागै नहीं, बड़ के लागै बीज।
दरिया नान्हा होयकर, रामनाम गह चीज ॥१॥

माया माया सब कहै, चीन्है नाहीं कोय।
जन दरिया निज नाम बिन, सबही माया होय ॥२॥

पारस का अंग

२. लाइए=छुआवे। आप=आब या जौहर।

३. जक्त=जगत, सांसारिक शिष्य से आशय है। भेख=सांसारिक साधु या गुरु से तात्पर्य है।

४. साध स्वांग=सच्चा साधु और झूठा भेषधारी साधु। कंचन=असली से तात्पर्य है। कांच=नकली से तात्पर्य है।

नारी आवै प्रीत कर, सतुगुर परसै आन।
दरिया हित उपदेस दे, माय बहिन धी जान ॥३॥
नारी जननी जगत की, पाल-पोस दे पोष।
मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष ॥४॥

राग भैरो

जाके उर उपजी नहिं भाई। सो क्या जानै पीर पराई ॥टेक॥
ब्यावर जानै पीर की सार। बाँझ नार क्या लखै बिकार ॥
पतिब्रता पति को ब्रत जानै। बिभचारिन मिल कहा बखानै ॥
हीरा पारख जौहरि पावै। मूरख निरखके कहा बतावै ॥
लागा घाव कराहै सोई। कोतगहार के दर्द न कोई ॥
रामनाम मेरा प्रान-अधार। सोई रामरस-पीवनहार ॥
जन दरिया जानैगा सोई। प्रेम की भाल कलेजे पोई ॥१॥

राग भैरो

जो धुनियाँ तौ मैं भी राम तुम्हारा।
अधम कमीन जाति मतिहीना, तुम तौ हौ सिरताज हमारा ॥टेक॥
काया का जंत्र, सब्द मन मुठिया, सुषमन ताँत चढ़ाई।
गगन-मंडल में धुनुआँ बैठा, मेरे सतगुर कला सिखाई ॥
पाप-पान हरि, कुबुधि-काँकडा, सहज-सहज झड़ जाई।
घुंडी गांठ रहन नहिं पावै, इकरंगी होय आई ॥
इकरँग हुआ भरा हरि चोला, हरि कहै, कहा दिलाऊँ ?
मैं नाहीं मेहनत का लोभी, बकसौ मौज भक्ति निज पाऊँ ॥

मिश्रित साखी

३. धी=लड़की, बेटी।

१. ब्यावर=बच्चा देनेवाली, जच्चा। कोतगहार=तमाशा देखनेवाला, नकल करनेवाला। पोई=चुभी है, आरपार चली गई है।

२. कमीन=नीच। जंत्र=धुनकी। सुखमन ताँत चढ़ाई=सुषुम्ना नाड़ी में प्राणों को लय करके। गगन-मण्डल=मन की शून्यावस्था अर्थात् निर्विकल्प समाधि की स्थिति। पाप-पान हरि=पापरूपी पत्ते निकालकर। कुबुधि काँकड़ा=दुर्बुद्धिरूपी बिनौला।

किरपा करि हरि बोले बानी, तुम तौ हौ मम दास ॥
दरिया कहै मेरे आतम भीतर, मेलौ राम भक्ति-बिस्वास ॥२॥

राग भैरो

आदि अनादी मेरा साँई ॥
द्रष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर, यह सब माया उनहीं माईं ॥
जो बनमाली सींचे मूल, सहजै पिवै डाल फल फूल ॥
जो नरपति को गिरह बुलावै, सेना सकल सहज ही आवै ॥
जो कोई कर भान प्रकासै, तौ निस तारा सहजहि नासै ॥
गरुड़ पंख जो घर में लावै, सर्प जाति रहने नहिं पावै ॥
दरिया सुमरै एकहि राम, एक राम सारै सब काम ॥३॥

राग बिहंगडा

नाम बिन भाव करम नहिं छूटै ॥
साध संग औ रामभजन बिन, काल निरंतर लूटै ॥
मल सेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै ॥
प्रेम का साबुन नाम का पानी, दोय मिल तांता टूटै ॥
भेद अभेद भरम का भाँडा, चौड़े पड़-पड़ फूटै ॥
गुरमुख सब्द गहै उर अन्तर, सकल भरम से छूटै ॥
राम का ध्यान तूँ धर रे प्रानी, अंमृत का मेंह बूटै ॥
जन दरियाव अरप दे आपा, जरा मरन तब टूटै ॥४॥

राग सोरठ

है को संत राम अनुरागी, जाकी सुरत साहब से लागी ॥
आरस-परस पिव के सँग राती, होय रही पतिबरता ॥
दुनिया-भाव कछू नहिं समझै, ज्यों समुँद समानी सलिता ।

भरा हरि चोला=घट में परमात्मा की व्यापकता प्रत्यक्ष हो गई । बकसौ मौज=आनन्दरस प्रदान करो ।

३. मुष्ट=गुप्त । माईं=में । गिरह=गृह । कर भान=भानुकर, सूर्य की किरण । नासै=छिप जाय । सारै=पूर्ण कर देता है ।

४. तांता=मल का लगाव; सत् से असत् का संबंध । चौड़े=मैदान में, स्पष्ट ही । बूटै=बरसे ।

मीन जायकर समुँद समानी, जहँ देखै तहँ पानी ॥
काल-कीर का जाल न पहुँचैं, निर्भय ठौर लुभानी ॥
बावन चन्दन भौंरा पहुँचा, जहँ बैठे तहँ गन्धा ॥
उड़ना छोड़िके थिर हो बैठा, निसदिन करत अनन्दा ॥
जन दरिया इक रामभजन कर, भरम-बासना खोई ॥
पारस परस भया लोह कंचन, बहुर न लोहा होई ॥५॥

राग सोरठ

बाबल कैसे बिसरा जाई ।
जदि मैं पति सँग रल खेलूँगी, आपा धरम समाई ॥
सतगुरु मेरे किरपा कीनी, उत्तम बर परनाई ।
अब मेरे सांई को सरम पड़ैगी, लेगा चरन लगाई ॥
थे जानराय मैं बाली भोली, थे निर्मल, मैं मैली ।
थे बतलाओ मैं बोल न जानूँ, भेद न सकूँ सहेली ॥
थे ब्रह्मभाव मैं आतम-कन्या, समझ न जानूँ बानी ।
दरिया कहै पति पूरा पाया, यह निश्चय कर जानी ॥६॥

राम केदारा

ऐसे साधू करम दहै ।
अपना राम कबहुँ नहि बिसरैं, बुरी भली सब सीस सहै ॥
हस्ती चलै भूँसैं वह कूकर, ताका औगुन उर न गहै ॥
वाकी कबहूँ मन नहिं आनैं, निराकार की ओर रहै ॥
धन को पाय भया धनवंता, निरधन मिल उन बुरा कहै ॥
बाकी कबहुँ न मन में लावै, अपने धन संग जाय रहै ॥

---

५. अरस परस=देखकर और भेंटकर । राती=प्रेम में रँग गई । सलिता=सरिता, नदी । काल-कीर=मृत्युरूपी बहेलिया ।

६. रल खेलूँगी=हिल-मिलकर क्रीड़ा करूँगी । परनाई=व्याह करा दिया । थे=तुम । जानराय=चतुर-शिरोमणि । बाली=लड़की । न सकूँ सहेली=समझ नहीं सकती ।

७. भूँसैं=भूँकें । कूकर=कुत्ते, निन्दकों से आशय है । भेख=पाखण्डी, भेषधारी

पति को पाय भई पतिबरता, बहु बिभचारिन हाँस करै ॥
वाके संग कबहुँ नहिं जावै, पति से मिलकर चिता जरै ॥
दरिया राम भजै जो साधू, जगत भेख उपहास करै ॥
वाका दोष न अन्तर आनै, चढ़ नाम-जहाज भौसागर तरै ॥७॥

वैरागी। माइं=हृदय में। मुआ पछे=मरने के बाद।

भीखा साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७७० वि०

जन्म-स्थान—खानपुर बोहना गाँव, ज़िला आज़मगढ़

जाति— ब्राह्मण चौबे

गुरु—गुलाल साहब

सत्संग-स्थान—भुरकुडा गाँव, ज़िला गाज़ीपुर

चोला-त्याग—संवत् १८२० वि०

घरेलू नाम इनका भीखानन्द था। बालपन से ही सत्संग में रस लेने लगे थे। बारह वर्ष की अवस्था में ही घर त्याग दिया! सतगुरु की खोज में निकल पड़े काशी की ओर। पर वहाँ कुछ मिला नहीं। लौट पड़े। रास्ते में सुना कि भुरकुड़ा गाँव में गुलाल साहब नाम के एक पहुँचे हुए महात्मा परमार्थ को दोनों हाथों लुटा रहे हैं; जो भी भक्ति-रस का प्यासा उनके द्वार पर जाता है, वह अघाकर ही लौटता है। भक्ति-रस के प्यासे भीखानन्द भुरकुड़ा पहुँचे, और गुलाल साहब के गुरुमुख चेले हो गये। भीखा साहब ने इस सुन्दर घटना को अपने एक पद में विस्तार से इस प्रकार कहा है—

"बीते बारह बरस उपजी रामनाम सों प्रीति।
निपट लागी चटपटी मानो चारिउ पन गये बीति॥
नहिं खान-पान सुहात तेहिं छिन, बहुत तन दुर्बल हुआ।
घर ग्राम लाग्यो बिषम, धन मनु सकल हार्‍यो है जुआ॥

ज्यों मृगा जूथ से फूटि परु, चित चकित ह्वै बहुतै डरो।
ढुंढ़त व्याकुल वस्तु जनु कै हाथ सो कछु गिरि परो॥
सतसंग खोजो चित्त सों जहँ बसत ग्रलख ग्रलेख।
कृपा करि कब मिलहिंगे दहुँ कहाँ कौने भेख॥
कोउ कहेउ साधू बहु बनारस भक्ति-बीज सदा रह्यो।
तहँ स्रास्त्र मत को ग्यान है, गुरुभेद काहू नहिं कह्यो॥
दिन दोय-चारि विचारि देख्यौं भरम करम ग्रपार है।
बहु सेव पूजा कीरतन मन माया-रस ब्योहार है॥
चल्यौं बिरह जगाय छिन-छिन उठत मन ग्रनुराग।
दहुँ कौन दिन ग्ररु घरी पल कब खुलैगो मम भाग॥
बहु रेखता ग्ररु कवित साखी सब्द सों मन मान।
सोइ लिखत सीखत पढ़त निसिदिन करत हरिगुन गान॥

इक ध्रुपद बहुत विचित्र सूनत, 'भोग' पूछेउ, है कहाँ।
नियरे भुरकुड़ा ग्राम जाके सब्द ग्रापे हैं तहाँ॥
चोप लागी बहुत जायके चरन पर सिर नाइया।
पूछेउ कहा कहि दियो ग्रादर सहित मोहि बैसाइया॥
गुरुभाव बूझि मगन भयो मनु जन्म को फल पाइया।
लखि प्रीति दरद दयाल दरवे ग्रापनो ग्रपनाइया॥
ग्रातमा निज रूप साँचो कहत हम करि कसम कै।
भीखा ग्रापे ग्राप घटघट बोलता सोहमस्मि कै॥"

इस शब्द में कितनी गहरी ग्रौर तीव्र सतगुरु से मिलने ग्रौर उनके ग्रनमोल वस्तु पाने की विरह-व्याकुलता है। सोते हुए विरह को जगा कर, ग्रनुराग की हिलोरों को उठाते हुए सतगुरु की खोज में भुरकुड़ा गाँव यह पहुँचे। ग्रद्भुत ध्रुपद कहीं एक सुन लिया था, जिसकी ग्राखिरी कड़ीं में 'गुलाल' यह छाप पड़ती थी। गहरी प्रीति ग्रौर विरह की भीतरी पीड़ देखते ही दयालु गुलाल साहब द्रवित हो गये, ग्रौर तुरन्त दरदवंत भीखा को ग्रपना लिया। १६ बरसतक भीखा साहब ने भुरकुड़ा में

बैठकर गुलाल साहब की खूब सेवा की और खूब सत्संग कमाया, और ५० बरस की अवस्था मे वहीं पर गुरुधाम में चोला छोड़ा।

बानी-परिचय

भीखा साहब की बानी में साखियाँ, पद, रेखते, कवित्त और कुण्डलियाँ विविध अंगों पर मिलती हैं। कहते हैं कि **'रामजहाज'** नाम का इनका रचा एक बड़ा ग्रंथ है। और भी कई पुस्तकें हैं, जिनमें से बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित संतबानी पुस्तकमाला के शोध-प्रेमी सम्पादक ने भीखा साहब की बानी का संकलन किया है।

कोमल, मधुर और अन्तर को वेधनेवाली बानी है भीखा साहब की। अनेक शब्दों में मौज की ऊँची लहरें उठती दिखाई देती हैं। शब्द-रहस्य के खुलने पर ऐसा लगता है मानों रस का निर्झर फूट पड़ा हो, गुलाल बिखर पड़ी हो।

भावों के अनुरूप अनेक अप्रयुक्त शब्दों का भी इन्होंने पटुतापूर्वक प्रयोग किया है।

सतगुरु से जो प्रसादी पाई थी उसे भीखा साहब ने बड़े जतन से सँवारा और अपनी गहरी बानी द्वारा जन-जन को दोनों हाथों लुटाया।

आधार

१ **भीखा साहब की बानी**—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

२ **साध-संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल**—स्वामी बाग, आगरा

भीखा साहब

उपदेश

जग के करम बहुत कठिनाई, तातें भरमि-भरमि जहँड़ाई॥
ज्ञानवंत अज्ञान होत है, बूढ़े करत लरिकाई।
परमारथ तजि स्वारथ सेवहि, यहधौं कौनि बड़ाई॥

उपदेश

१. जहँड़ाई=धोखा खाते हैं। लेहिं बिसाहि=खरीद लेते हैं। सोना नाम=सुवर्ण

बेद-बेदान्त कौ अर्थ विचारहिं, बहुबिधि रुचि उपजाईं।
माया-मोह-ग्रसित निसबासर, कौन बड़ो सुखदाईं॥
लेहिं बिसाहि काँच को सौदा, सोना नाम गँवाई।
अमृत तजि बिष अँचवन लागे, यह धौं कौनि सिटाई॥
गुरु-परताप साध की संगति करहु न काहे भाई।
अन्तसमय सब काल गरसिहै, कौन करौ चतुराई॥
मानुष-जनम बहुरि नहिं पैहौ, बादि चला दिन जाई।
भीखा कौ मन कपट कुचाली, धरन धरै मुरखाई॥१॥

समुझि गहो हरिनाम, मन तुम समुझि गहो हरिनाम।
दिन दस सुख यहि तन के कारन, लपटि रहो धन धाम॥
देखु बिचारि जिया अपने, जत गुनना गुनन बेकाम।
जोग जुक्ति अरु ज्ञान ध्यान तें, निकट सुलभ, नहिं लाम॥
इत उत की अब आसा तजिकै, मिलि रहु आतमराम।
भीखा दीन कहाँलगि बरनै, धन्य घरी वहि जाम॥२॥

राम सों करु प्रीति हे मन, राम सों करु प्रीति॥
राम बिना कोउ काम न आवै, अंत ढहो जिमि भीति॥
बूझि बिचारि देखु जिय अपनो, हरि बिन नहिं कोउ हीति॥
गुरु गुलाल के चरनकमल-रज, धरु भीखा उर चीति॥३॥

गुरु व नाम-महिमा

गरु दाता छत्री सुनि पाया। सिष्य होन द्विज जाचक आया॥
देखत सुभग सुन्दर अति काया। बचन सप्रेम दीन पर दाया॥

के जैसा हरिनाम। अँचवन लागे=पीने लगे। गरसिहै=ग्रस लेगा, पकड़ लेगा, निगल जायेगा। बादि=व्यर्थ। धरन=धारणा, टेक।

२. जत=जितना। लाम=लम्बा, दूर। जाम=याम, पहर।

३. अन्त···भीति=जैसे दीवार ढह पड़ती है, वैसे हीं अन्त में तुम्हारी देह भी गिर पड़ेगा। हीति=हितकारी। चीति=चेतकर।

गुरु व नाम-महिमा

१. छत्री=गुरु गुलाल साहब, जो क्षत्रिय थे। द्विज=भीखा साहब, जो ब्राह्मण थे।

बूझि बिचारि समुझि ठहराया। तन मन सों चरनन चित लाया॥
दिन-दिन प्रीति बढ़त गतमाया। कृपा करहिं जानहिं निजजाया॥
साहब आपै आप निराल। आतमराम को नाम गुलाल॥
सरब दान दियो रूप बिचारी। पाय मगन भयो बिप्र भिखारी॥१॥

मोहिं डहतु है मन माया॥
एकै सब्द ब्रह्म फिरि एकै, फिरि ऐकै जग छाया।
आतम जीव करम अरुझाना, जड़ चेतन बिलमाया॥
परमारथ को पीठ दियो है, स्वारथ सनमुख धाया।
नाम नित्य तजि अनितै भावै, तजि अंमृत बिष खाया॥
सतगुरु कृपा कोउ कोउ बाचै, जो सोधै निज काया।
भीखा यह जग रतो कनक पर, कामिनि हाथ बिकाया॥२॥

साधो, सब महँ निज पहिचानी, जग पूरन चारिउ खानी॥
अविगत अलख अखंड अमूरति, कोउ देखे गुरु ज्ञानी॥
ता पद जाय कोउ कोउ पहुँचे, जोग जुक्ति करि ध्यानी॥
भीखा धन जो हरि-रँग-राते, सोइ हैं साधु पुरानी॥३॥

अस करिये साहब दाया।
कृपा कटाच्छ होइ जेहितें प्रभु, छूटि जाय मन-माया॥
सोवत मोह-निसा निसबासर, तुमहीं मोहिं जगाया॥

गतमाया=माया क्षीण होती जाती है। जाया=पैदा किया हुआ, पुत्र। निराल=निराला, विलक्षण, अलौकिक।

२. डाहतु है=तंग कर रही है। जगछाया=यह जगत् ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। बिलमाया=ठहरा या रमा लिया है। अनितै=अनित्य जगत् ही। बाचै=बच पाता है। रतो=अनुरक्त या मोहित है।

३. निज=स्वरूप, अपनी आत्मा। चारिउ खानी=जीव के चारों प्रकार अर्थात् अंडज, स्वेदज, पिंडज, और उद्भिज। अविगत=जो जाना न जाय।

जनमत मरत अनेक बार, तुम सतगुरु होय लखाया ॥
भीखा केवल एक रूप हरि, व्यापक त्रिभुवन-राया ॥४॥

यार हो, हँसि बोलहु मोसों, भरम-गाँठि छूटै प्रभु तोसों ॥
पालन करि आये मोकहँ तुम, खाय जियाय कियो घर-पोसो ॥
बचन मेटि मैं कहौं गरज बसि, दरदवंद प्रभु करौ न गोसो ॥
हो करता करमन के दाता, आगे बुधि आवत नहिं होसो ॥
तुम अंतरजामी सब जानो, भीखा कहा करहि अपसोसो ॥५॥

ए साईं, तुम दीनदयाला, आयहु करत सदा प्रतिपाला ॥
केतिक अधम तरे तुम चरनन, करम तुम्हार कहा अहि जाला ॥
मन उनमेख छुटत नहिं कबहीं, सौच तिलक पहिरे गल माला ॥
तनिकौ कृपा करहु जेहिं जन पर, खूल्यो भाग तासुको ताला ॥
भीखा हरि नटवर बहुरूपी, जानहिं आपु आपनी काला ॥६॥

प्रीति की यह रीति बखानौ ॥
कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन-कमल कर ध्यानो ॥
हो चैतन्य बिचारि, तजो भ्रम, खाँड धूरि जनि सानौ ॥
जैसे चात्रिक स्वाँति बुन्द बिनु, प्रान-समरपन ठानौ ॥
भीखा जेहिं तन रामभजन नहिं, कालरूप तेहिं जानौ ॥७॥

कहा कोउ प्रेम बिसाहन जाय ।
महँग बड़ा गथ काम न आवै, सिर के मोल बिकाय ॥

---

४. त्रिभुवन-राया=तीन लोक के स्वामी ।

५. पोसो=पोषण किया । गरज=स्वार्थ । दरदवन्द=पीड़ित । गोसो=गुस्सा । होसो=होश । अपसोसो=अफसोस, पछतावा ।

६. करम=कृपा । कहि जाला=कहा जा सकता है । उनमेख=उन्मेष, खिलना; यहाँ मन की चंचलता से अभिप्राय है । काला=कला ।

७. खाँड़-धूरि=शकर और धूल; सत् और असत्; ब्रह्मरस और विषयरस । चात्रिक=चातक, पपीहा । ठानौ=निश्चय कर लिया ।

तन मन धन पहिले अरपन करि, जग के सुख न सोहाय।
तजि आपा आपुहि ह्वै जीवै, निज अनन्य सुखदाय॥
यह केवल साधन को मत है, ज्यों गूंगे गुड़ खाय।
जानहिं भले कहै सो कासों, दिल की दिलहिं रहाय॥
बिनु पग नाच नैन बिनु देखै, बिनु कर ताल बजाय।
बिनु सरवन धुनि सुनै बिबिध बिधि, बिनु रसना गुन गाय॥
निर्गुन में गुन क्योंकर कहियत, व्यापकता समुदाय।
जहँ नाहीं तहँ सब कुछ दिखियत, अँधरन की कठिनाय।
अजपा जाप अकथ को कथनो, अलख लखन किन पाय।
भीखा अविगत की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय॥८॥

होली

हरिनाम भजन हठ कीजै हो, स्वाँसा ढरकत रंगभरी।
हो होइ समय जात मानो गनि-गनि, सिरपर ठोकत काल घरी॥
फगुना जग भकुवा खेलतु है, स्वारथरत होरी जु परी।
परमारथ चेतन्न आतमा आइ सरूप गयो छरी॥
कहत है बेद बेदांत संत, को साँच भक्ति बिनु भव तरी।
परमारथ गुरु ज्ञान अनादर, लोक लाज कुल को डरी॥
जुग बरस मास दिन पहर घरी छिन, तन पर आय चढ़ी जरी।
बात कफ्फ पित कण्ठ गहो है, नैनन नीर लगो झरी॥
बिसर्यो गथ, औसान बुझावत, जहँ-जहँ वस्तु धरी।
हाहाकार करत घर पुर जन, थकित भयो का कहि करी॥

---

८. गथ=पूंजी, गाँठ का धन। सरवन=श्रवण, कान। धुनि=अनहद नाद से अभिप्राय है। बिनु रसना='अजपा' जप से तात्पर्य है। समुदाय=सर्वत्र। अविगत=जो जाना न जा सके। समाय=पहुँच, गति।

होली

१. ढरकत=ढलती या बीतती जाती है। घरी=घड़ियाल। भकुवा=मूर्ख। सरूप=स्वरूप, निजरूप। गयो छरी=छला गया। जरी=ज्वर, ताप। गथ=बोल। औसान=

चतुर प्रबीन बैद कोउ आवो, हाथ उठा देखो नरी।
भीखा बूझत कहत सबै अब, राम कृस्न बोलो हरी ॥९॥

जहाँतक समुँद दरियाव जल कूप है,
लहरि अरु बुंद को एक पानी।
एक सूबर्न को भयो गहना बहुत,
देखु बीचारकै हेम खानी।
पिरथी आदि घट रच्यो रचना बहुत,
मर्तिका एक खुद भूमि जानी।
भीखा इक आतमा रूप बहुतै भयो,
बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी ॥१०॥

विविध

राखो मोहिं अपनी छाया। लगै नहिं रावरी माया ॥
कृपा अब कीजिये देवा। करौं तुम चरन की सेवा ॥
आसिक तुम खोजता हारे। मिलहु मासूक आ प्यारे ॥
कहौं का भाग मैं अपना। देहु जब अजप का जपना ॥
अलख तुम्हरो न लख पाई। दया करि देहु बतलाई ॥
वारि वारि जावँ प्रभु तेरी। खबरि कछु लीजिये मेरी ॥
सरन में आय मैं गीरा। जानो तुम सकल परपीरा ॥
अंतरजामी सकल डेरो। छिपो नहिं कछु करम मेरो ॥
अजब साहब तेरी इच्छा। करो कछु प्रेम की सिच्छा ॥
सकल घट एक हौ आपै। दूसर जो कहै मुख कापै ॥

सुध-बुध। नरी=नाड़ी।

१०. हेम=सोना। खानी=खानि, उत्पत्ति-स्थान। मिर्तिका=मृत्तिका, मिट्टी। चीन्हैं=पहचाने।

विविध

१. रावरी=तुम्हारी। लगै नहिं=असर न कर सके। मासूक=प्रियतम, प्रेम-पात्र। वारि वारि=वलिहारी। गीरा=गिरा, आ पड़ा। डेरो=डेरा, निवास। मुख कापै=

निरगुन तुम आप गुनधारी । अचर चर सकल नरनारी ॥
जानों नहिं देव मैं दूजा । भीखा इक आतमा पूजा ॥१॥

जान दे, करौं मनुहरिया हो ॥
अनेक जतन करिके समझावों, मानत नाहिं गँवरिया हो ॥
करत करेरी नैन बैन सँग, कैसेके उतरब दरिया हो ॥
या मन तें सुर नर मुनि थाके, नर बपुरा कित धरिया हो ॥
पार भइलौं पिव पीव पुकारत, कहत गुलाल-भिखरिया हो ॥२॥

सब भूला किधौं हमहिं भुलाने । सो न भुला जाके आतमध्याने ।
सब घट ब्रह्म बोलता आही । दुनिया नाम कहौं मैं काही ॥
दुनिया लोक बेद मत थापे । हमरे गुरु गम अजपा जापे ॥
हरिजन जे हरिरूप समावे । घमासान भये सूर कहावे ॥
कहे भीखा क्यों नाहीं नाहीं । जबलगि साँच झूँठ तन माहीं ॥३॥

उठ्यो दिल अनुमान हरिध्यान ॥टेक॥
भर्मकरि भूल्यो आपु अपान । अब चीन्हो निजपति भगवान ॥
मन बच क्रम दृढ़ मत परवान । वारों प्रभु पर तन मन प्रान ॥
सब्द प्रकास दियो गुरु दान । देखत सुनत नैन बिनु कान ॥
जाको सुख सोइ जानत जान । हरिरस मधुर कियो जिन पान ॥
निर्गुन ब्रह्मरूप निर्बान । भीखा जल ओला गलतान ॥४॥

किस मुहँ से । गुनधारी=सगुण ।

२. मनुहरिया=विनती, हाहा खाना । धरिया=बिसात । भिखरिया=भिखारी; भीखा ।

३. दुनिया······काही=संसार यह नाम मैं किसे दूँ, जबकि सर्वत्र ब्रह्म-ही-ब्रह्म की सत्ता है, जगत् की सत्ता तो कहीं है ही नहीं । घमासान=घोर युद्ध । नाहीं-नहीं=नेति नेति ; ऐसा नहीं, जैसा कि वाणी द्वारा ब्रह्म का निरूपण करते हैं ।

४. आपु अपान=अपने आपको ; आत्मस्वरूप को । परवान=प्रमाण । सब्द प्रकाश=नाद-ब्रह्म का परिचय । जल ओला गलतान=ओला जैसे गलकर जल में लीन हो जाता है, वैसे ही जीवात्मा ब्रह्म में लीन अर्थात तद्रूप हो गई ।

कुण्डलिया

रामरूप को सो लखै, सो जन परम प्रबीन ॥
सो जन परम प्रबीन, लोक अरु बेद बखानै ।
सतसंगति में भाव-भक्ति परमानँद जानै ॥
सकल बिषय को त्याग बहुरि परवेस न पावै ।
केवल आपै आपु आपु में आपु छिपावै ॥
भीखा सब तें छोट होइ, रहै चरन लवलीन ।
रामरूप को जो लखै, सो जन परम प्रबीन ॥१॥

मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य ॥
राम भजै सो धन्य, धन्य बपु मंगलकारी ॥
रामचरन-अनुराग परम पद को अधिकारी ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह की लहरि न आवै ।
परमातम चेतन्यरूप महँ दृष्टि समावै ॥
व्यापक पूरनब्रह्म है भीखा रहनि अनन्य ।
मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य ॥२॥

धनि सो भाग जो हरि भजै, ता सम तुलै न कोइ ॥
ता सम तुलै न कोइ, होइ निज हरि को दासा ।
रहै चरन-लौलीन राम को सेवक खासा ॥
सेवक सेवकाई लहै भाव-भक्ति परवान ।
सेवा को फल जोग है भक्तबस्य भगवान ॥
केवल पूरन ब्रह्म है, भीखा एक न दोइ ।

कुण्डलिया

१. परवेस=प्रवेश, दखल ; आवागमन ।

२. बपु=शरीर । अनन्य=जहाँ दूसरा भाव न हो ।

३. परवान=प्रमाण, सच्चा ।

४. पाहुन=अतिथि ; सतगुरु से अभिप्राय है । भाव=प्रेम । का हनो=क्या पीटते, क्या पछताते हो । वाजी=दाँव, अवसर । अकाज=हानि ।

धन्य सो भाग जो हरि भजै, तासम तुलै न कोइ ॥३॥

पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज ॥
घर में नहीं अनाज, भजन बिनु खाली जानो।
सत्यनाम गयो भूल, झूठ मन माया मानो ॥
महाप्रतापी रामजी, ताको दियो बिसारि।
अब कर छाती का हनो, गयो सो बाजी हारि ॥
भीखा गये हरिभजन बिनु तुरतहि भयो अकाज।
पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज ॥४॥

वेद-पुरान पढ़े कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं ॥
अच्छर समुझा नाहिं, रहा जैसे का तैसा।
परमारथ सों पीठ, स्वार्थ सन्मुख होइ बैसा ॥
सास्तर मत को ज्ञान, करम भ्रम में मन लावै ॥
छुइ न गयो बिज्ञान परमपद को पहुँचावै ॥
भीखा देखे आपुको, ब्रह्मरूप हिये माहिं।
वेद-पुरान पढ़े कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं ॥५॥

साखी

ब्राह्मन कहिये ब्रह्म-रत, है ताका बड़ भाग।
नाहिंन पसु अज्ञानता, गर डारे तिन ताग ॥१॥
संत-चरन में लगि रहै, सो जन पावै भेव।
भीखा गुरु-परताप तें, काढ़ेव कपट-जनेव ॥२॥
संत-चरन में जाइकै, सीस चढ़ायो रेनु।
भीखा रेनु के लागते, गगन बजायो बेनु ॥३॥

---

५. अच्छर=अक्षर ; आत्मा का स्वरूप, जिसका नाश नहीं होता है। बैसा=बैठा सास्तर=शास्त्र। बिज्ञान=ब्रह्मज्ञान।

साखी

१. गर=गले में। तिन ताग=तीन तागे अर्थात् जनेऊ।

२. जन=हरिभक्त। भेव=भेद, आत्मा का रहस्य-ज्ञान। जनेव=जनेऊ।

३. रेनु=रेणु, रज, धूल। गगन बजायो बेनु=शून्यावस्था अर्थात् समाधि में अनहद नाद किया।

बेनु बजायो मगन ह्वै, छुटी खलक की आस।
भीखा गुरु-परताप तें लियो चरन में बास ॥४॥
भीखा केवल एक है, किरतिम भयो अनंत।
एकै आतम सकलघट, यह गति जानहिं संत ॥५॥
एकै धागा नाम का, सब घट मनिया माल।
फेरत कोई संतजन, सतगुरु नाम गुलाल ॥६॥

४. खलक=दुनिया।
५. किरतिम=कृत्रिम, मिथ्या नाम-रूप का संसार।
६. मनिया=मनका, गुरिया।

चरणदासजी

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७६० वि०, भादों सुदी ३
जन्म-स्थान—डेहरा गाँव (मेवात, राजस्थान)
पिता—मुरलीधर
माता—कुंजी
जाति—ढूसर बनिया
गुरु—शुकदेवजी
भेष—विरक्त
सत्संग-स्थान—दिल्ली
मृत्यु-संवत्—१८३९ वि०, अगहन सुदी ४
मृत्यु-स्थान—दिल्ली

चरणदासजी की पट्टशिष्या सहजोबाई ने एक पद में अपने गुरुदेव के जन्म-संवत् तथा कुल के विषय में कहा है—

"सखी री, आज धन धरती धन देसा।
धन डेहरा मेवात मँझारे, हरि आये जन-भेसा ॥

धन भादों धन तीज सुदी है, धन दिन मंगलकारी।
धन ढूसर-कुल बालक जनम्यौ, फुल्लित भये नरनारी॥
धन-धन माई कुंजी रानी, धन मुरलीधर ताता।
अगले दत्ताव अब फल पाये, जिनके सुत भयौ ज्ञाता॥"

चरणदासजी का पूर्व नाम रणजीतसिंह था। पिता मुरलीधर का स्वर्गवास हो जाने पर यह अपने नाना के पास दिल्ली में आकर रहने लगे। कहते हैं कि १९ वर्ष की अवस्था में जब यह भगवान् के विरह में एक दिन रो रहे थे, जंगल में शुकदेव मुनि ने इन्हें दर्शन दिया और भगवद्भक्ति का उपदेश किया। चरणदासजी ने अपने सद्गुरु शुकदेवजी को व्यासदेव का पुत्र शुकदेव मुनि कहा है। किन्तु खोज के आधार पर यह पाया जाता है कि व्यासपुत्र शुकदेव मुनि कहना तो केवल श्रद्धा-भावना की बात है, असल में इनके मंत्र-गुरु बाबा सुखदेवदास या सुखानन्द नाम के एक महात्मा थे, जो मुज़फ़्फ़रनगर के पास शूकरताल गाँव में रहते थे।

चरणदासजी ने अनेक तीर्थों का पर्यटन किया था, और ब्रज में भी यह कुछ काल रहे थे। श्रीमद्भागवत पर और विशेषकर उसके एकादश स्कन्ध पर इनकी भारी श्रद्धा-भक्ति थी। निर्गुणमार्गी महान् योगी होते हुए भी श्रीकृष्ण पर इनकी अगाध भक्ति थी। इन्हें हम योगमार्गी वैष्णव भी कह सकते हैं।

दिल्ली में बैठकर इन्होंने १४ वर्षतक योगाभ्यास किया था। दिल्ली को अपना सत्संग-स्थान बनाकर हज़ारों लोगों को इन्होंने हरि-भक्ति, ब्रह्मज्ञान और शब्द-योग का समन्वयात्मक उपदेश दिया और चेताया। इनके मुख्य शिष्य ५२ थे, जिनके नाम पर चरणदासी पंथ की ५३ शाखाएँ आजभी प्रसिद्ध हैं।

बानी-परिचय

महात्मा चरणदास की २१ रचनाओं का पता लगा है, किन्तु प्रामाणिक रचनाएँ निस्संदिग्ध रूप से ये १२ कही जाती हैं :

१ ब्रज-चरित्र
२ अष्टांगयोग-वर्णन
३ योग-संदेह-सागर
४ पंचोपनिषद्
५ भक्ति-पदार्थ-वर्णन
६ ब्रह्मज्ञान-सागर
७ धर्म-जहाज-वर्णन
८ अमरलोक-अखंडधाम-वर्णन
९ ज्ञान-स्वरोदय
१० मन-विक्तकरण गुटका सार
११ शब्द
१२ भक्ति-सागर

चरणदासजी की बानी बड़ी मधुर और सरस है। निर्गुण संतों की तथा सगुण भक्तों की दोनों ही शैलियों का सुन्दर संगम इनकी बानी में हमें मिलता है। भाषा में जो माधुर्य और प्रसाद है वह भी अनूठा है। अनेक पदों में ऊँचा भक्ति-भाव और गहरा रहस्य भरा हुआ है। साखियाँ भी खूब चेतानेवाली हैं। इनकी बानी में भागवत-भक्ति, परमार्थ-ज्ञान तथा शब्द-योग का समन्वयात्मक निरूपण बड़ी सरस एवं सरल शैली और भाषा में किया गया है। चरणदासजी ने जो कुछ भी कहा 'तन्मय' होकर कहा, और यही कारण है जो उनके कितने ही पदों में हम अध्यात्म-रस का निर्मल निर्झर पाते हैं।

आधार

१ चरनदासजी की बानी (पहला भाग)--बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ चरनदासजी की बानी (दूसरा भाग)--बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
३ चरनदासजी की बानी--नवलकिशार प्रेस, लखनऊ
४ उत्तरी भारत की संत-परम्परा--परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, इलाहाबाद

चरणदासजी

राग सीठना

टुक निर्गुन छैला सूँ, कि नेह लगाव री।
जाको अजर अमर है देस, महल बेगमपुर री॥

जहँ सदा सोहागिन होय, पिया सूँ मिलि रहु री।
जहँ आवागवन न होय, मुक्ति चेरी तेरी॥
कहै चरनदास गुरु मिले, सोई ह्वाँ रहु बौरी।
तब सुख-सागर के बीच, कलहरी ह्वै रहु री॥१॥

राग सीठना

तू सुन हे लंगर बौरी।
तू पाँचौ घेरि पचीसौ घेरी, विषै-वासना की है चेरी।
बारी बारी दौरी॥
तैं पिय भूली चौरासी डोली, अँग-अँग के सुख में फूली।
माया लाई ठौरी॥
तैं काम क्रोध सूँ नेह लगायो, मनमाना सब जग भरमायो।
मोह यार बाँको री॥
चरनदास सुकदेव बतावैं, निर्गुन छैला तोहि मिलावैं।
जो टुक चेतन हो, री॥२॥

राग बसंत

मेरे सतगुरु खेलत नित बसंत।
जाकी महिमा गावत साध संत॥
ज्ञान बिबेक के फूले फूल। जहँ साखा जोग, अरु भक्ति मूल।
प्रेमलता जहँ रही झूल। सत-संगति सागर के कूल॥
जहँ भर्म उड़त है ज्यों गुलाल। अरु चोवा चरचै निस्चय बाल।
जहँ सील छिमा को बरसै रंग। काम क्रोध को मान भंग॥
हरिचरचा जित है नितअनंत। सुनि मुक्त होत सब जीव-जंत।
आन धर्म सब जाहिं खोय। रामनाम की जै जै होय॥

---

१. छैला=सुन्दर (परम) पुरुष। बेगमपुर=जहाँ किसीकी गति या पहुँच नहीं। चेरी=दासी। कलहरी=प्रेम-मदिरा पीने व पिलानेवाली।

२. लंगर=मस्त; चपल। बारी बारी=बारबार जन्म-मरण के चक्कर में दौड़ती फिरी। चौरासी=८४ लाख योनियाँ। लाई ठौरी=टिक रही।

३. जोग=ज्ञानयोग, राजयोग, हठयोग आदि। भर्म=भ्रम, संशय। चोवा=एक प्रकार

तहँ अपने पीव को ढूँढ़ि लेव। अरु चरन कवँल में सुरति देव।
कहैं चरनदास दुख दुंद जाहिं। जब प्रीतम सुकदेव गहैं बाहिं ॥३॥

होली

प्रेमनगर के माहिं होरी होय रही।
जबसों खेली हमहूँ चित दै, आपनहूँ को खोय रही ॥
बहुतन कुल अरु लाज गँवाई, रहो न कोई काम।
नाचि उठै कभी गावन लागैं, भूले तन धन धाम ॥
बहुतन की मति रंग रंगी है, जिनको लागो प्रेम।
बहुतन को अपनी सुधि नाहीं, कौन करै अस नेम ॥
बहुतन की गदगद ही बानी, नैनन नीर ढराय।
बहुतन को बौरापन लागो, ह्वाँ की कही न जाय ॥
प्रेमी की गति प्रेमी जानै, जाके लागी होय।
चरनदास उस नेह-नगर की सुकदेवा कहि सोय ॥४॥

राग बिलावल

साँचा सुमिरन कीजिये, जामें मीन न मेख।
ज्यों आगे साधुन कियो, बानी में लो देख ॥
टेक गहो दृढ़ भक्ति की, नौधा हिय धारि।
संतन की सेवा करो, कुल-कानि निवारि ॥
जासूँ प्रेमा ऊपजै, जब हरि दरसायँ।
आगे पीछे ही फिरैं, प्रभु छोड़ि न जायँ ॥
चारि मुक्ति बाँदी, भँवैं सिधि चरनन माहिं ॥
तीरथ सब आसा करैं, अब देखि नसाहिं ॥
कहैं गुरु सुकदेवजी चरनदास गुलाम।
ऐसी साधन धारिये, रहिये निस्काम ॥५॥

का शीतल सुगंधित द्रव पदार्थ। चरचै=लेप करे। सुकदेव=चरणदासजी के गुरुदेव।
४. आपन······रही=अपने आपको भी प्रेम की नगरी में गँवा दिया; प्रेम में रोम-रोम विलीन कर दिया। नेम=रीति। ह्वाँकी=उस प्रेमनगर की लीला।
५. मीन न मेख=संदेह के लिए स्थान नहीं। बानी=संतों की वाणी। निवारि=त्यागकर। प्रेमा=प्रेमभक्ति। चारिमुक्ति=मोक्ष के चार प्रकार अर्थात सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य, और सायुज्य। बाँदी=दासी। भँवैं=घूमती रहती हैं;

राग बिलावल

करनी की गति और है, कथनी की औरे।
बिन करनी कथनी कथैं बकबादी बौरे॥
करनी बिन कथनी इसी, ज्यों ससि बिन रजनी।
बिन सस्तर ज्यों सूरमा, भूषन बिन सजनी॥
ज्यों पण्डित कथि-कथि भले बैराग सुनावैं।
आप कुटुँब के फँद पड़े, नाहीं सुरझावैं॥
बाँझ झुलावैं पालना, बालक नहिं माहीं।
बस्तु बिहीना जानिये, जहँ करनी नाहीं॥
बहु डिंभी करनी बिना कथि-कथिकरि सूए।
संतो कथि करनी करी, हरि के सम हूए॥
कहैं गुरु सुकदेवजी चरनदास बिचारौ।
करनी रहनी दृढ़ गहौ, थोथी कथनी डारौ॥६॥

राग कान्हरा

कुटुँब सँघाती स्वारथ लागे, तेरी काहू कूँ नहिं चीता॥
तैं प्रभु ओरी सूँ मुख मोड़ा, झूँठे लोगन सूँ हित कीता।
अरु तैं अपनी आँखौं देखा, कई बार दुख सुख हो बीता॥
सम्पति में सबहीं घिरि आवैं, बिपति परे अधिको दुख दीता।
मूठी बाँधि जनम नर लायो, हाथ पसारि चलैगो रीता॥
धरि-धरि स्वाँग फिरै तिन कारन, कपि ज्यों नाचत ताता थीता।
मुए न संगी होहिं तिहारे, बाँधि जलावैं देइ पलीता।
गुरुसेवा सतसंग न कीन्हा, कनक कामिनी सों करि प्रीता।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, मरत-मरत हरिनाम न लीता॥७॥

---

६. इसी=ऐसी। सस्तर=शस्त्र, हथियार। सजनी=स्त्री। वस्तु=तत्व। विहीना=निस्सार। डिम्भी=दंभी, पाखंडी। थोथी=सारहीन।

७. सँघाती=संगी, साथी। चीता=चिंता, चाह। कीता=किया। घिरि आवैं इकट्ठे हो जाते हैं। दीता=दिया। रीता=खाली हाथ। ताता थीता=नृत्य में एक प्रकार का बोल। बाँधि=अर्थी पर बांधकर। पलीता=कपड़े की मोटी बत्ती। लीता=लिया।

मंगल

सोई सोहगिनि नारि पिया मन भावई।
अपने घर को छोड़ि न परघर जावई।।
अपने पिय का भेद न काहू दीजिये।
तन मन सुरति लखायके सेवा कीजिये।।
पति की आग्या चाल, पाल पिय को कहो।
लाज किये कुलवन्त जतन हीं सूँ रहो।।
पिया कूँ चाहो रूप सिँगार बनाइये।
पतिब्रता कुल दोय में सोभा पाइये।।
नौधा-बस्तर पहिरि दया रँग लाल है।
भूषन बस्तर धारि बिचित्तर बाल है।
रंगमहल निरदोष ह्वाँ झिलमिल नूर है।।
निरगुन-सेज बिछाय सबी करि दूर से।
मन्दिर दीपक बाल बिन बाती घीव की।
सुन्दर चतुर गुनरासि लाड़िली पीव की।।
कहे गुरु सुकदेव यों बालम मोहिये।
चरनदास ले सीख जो प्रेम समोइये।।८।।

बिनती

राग बिलावल

तुम साहब करतार हो, हम बन्दे तेरे।
रोम-रोम गुनेगार हैं, बखसो हरि मेरे।।
दसों दुवारे मैल है, सब गंदमगंदा।
उत्तम तेरो नाम है, बिसरै सो अंधा।।
गुन तजिकै औगुन कियो तुम सब पहिचानो।
तुम सूँ कहा छिपाइये हरि घट की जानो।।
रहम करो रहमान सूँ यह दास तिहारो।
भक्ति-पदारथ दीजिये आवागवन निवारो।।

---

९. गुनेगार=गुनहगार, अपराधी। बखसौ=माफ करो। निवारौ=छुटकारा देदो।

गुरु सुकदेव उबारिलो अब मेहर करीजै।
चरनदास गरीब कूँ अपनो करि लीजै॥९॥

राग विहाग

राखो जी लाज गरीबनिवाज।
तुम बिन हमरे कौन सँवारै, सबहीं बिगरे काज॥
भक्तबछल हरि नाम कहावो, पतित उधारनहार।
करो मनोरथ पूरन जन को, सीतल दृष्टि निहार॥
तुम जहाज मैं काग तिहारो, तुम तजि अंत न जाऊँ।
जो तुम हरिजू मारि निकासो, और ठौर नहिं पाऊँ॥
चरनदास प्रभु सरन तिहारी, जानत सब संसार।
मेरी हँसी सो हँसी तुम्हारी, तुमहूँ देखु विचार॥१०॥

राग कल्यान

सतगुरु, पाँचौ भूत उतारौ।
जनम-जनम के लागेहिं आये, दे मंतर अब तिन्हैं विडारौ॥
काम, क्रोध, मोह, लोभ, गर्व ने मन बौराय कियो अपभायो।
जिनके हाथ परो जिव मेरो, घेरा घेरि बहूत दुख पायो॥
एक घरी मोहिं छोड़त नाहीं, लहरि चढ़ायकै बहुत निवायो।
कपि ज्यों घर-वर द्वार नचावैं, उत्तम हरि को नाम छुटायो॥
अब की सरन गही है तुम्हरी चरनहिंदास अजाने।
किरपा करि यह व्याधि छुटावो, गुरु सुकदेव सयाने॥११॥

राग बिलास

घट में तीरथ क्यों न नहावो।
इत-उत डोलो पथिक बनें हीं, भरमि भरमि क्यों जन्म गँवावो॥

---

१०. सीतल=कृपा और करुणा से पूर्ण। अंत=अनत,दूसरी जगह।

११. बिडारौ=मारकर भगादो। अपभायो=अपना मनचाहा। निवायो=झुकाया, नीचा दिखाया। अजानै=मूढ़।

१२. सुकारथ=सुकृत ; साधक। हितकरि=प्रेम से। रेवा=नर्मदा। बोझा=कर्मों का

गोमती कर्म सुकारथ कीजै, अधरम मैल छुटावो ॥
सील-सरोवरि हितकरि न्हैये, काम-अगिन की तपन बुझावो ॥
रेवा सोई छिमा को जानो, तासें गोता लीजै ॥
तन में क्रोध रहन नहिं पावै, ऐसी पूजा चित दै कीजै ॥
सत जमुना, संतोष सरस्वती, गंगा धीरज धारो ॥
झूँठ पटकि निर्लोभ होयकरि, सबहीं बोझा सिर सूँ डारो ॥
दया तीर्थ कर्मनासा कहिये, परसै बदला जावै ॥
चरनदास सुकदेव कहत हैं, चौरासी में फिर नहिं आवै ॥१२॥

राग सोरठ

जो नर इतके भये न उतके ।
उतकी प्रेम-भक्ति नहिं उपजी, इत नहिं नारी सुत के ।
घर सूँ निकसि कहा उन कीन्हा, घर- घर भिच्छा माँगी ॥
बाना सिंह, चाल भेड़न की, साध भये कै स्वाँगी ।
तन मूँड़ा पै मन नहिं मूँड़ा, अनहद चित्त न दीन्हा ।
इन्द्री स्वाद मिले विषयन सूँ, बकबक बकबक कीन्हा ॥
माला कर में, सुरति न हरि में, वह सुमरिन कहु कैसा ।
बाहर भेख धारिके बैठे, अन्तर पैसा पैसा ॥
हिंसा अकस कुबुधि नहिं छोड़ी, हिरदै साँच न आया ।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, बाना पहिरि लजाया ॥१३॥

राग बिलावल

ब्राह्मन सो जो ब्रह्म पिछानै । बाहर जाता भीतर आनै ॥
पाँचौ बस करि झूँठ न भाखै । दया-जनेऊ हिरदे राखै ॥

भार । परसै बदला जावै=स्पर्श करने या नहाने से काया-पलट हो जाता है । चौरासी=चौरासी लाख योनियाँ ।

१३. इतके न उतके=न लोक के, न परलोक के । बाना=भेष । मन नहि मूँड़ा=मन को वश में नही किया । अंतर पैसा पैसा=अंदर पैठा हुआ है पैसा, पैसे का ध्यान लगा है : पैसा ही पैसा । अकस=वैर, विरोध ।

१४. बाहर जाता भीतर आनै=विषयों की ओर जाते हुए मन को अंतर्मुखी करले ।

आतम-विद्या पढ़ै पढ़ावै। परमातम का ध्यान लगावै ॥
काम क्रोध मद लोभ न होई। चरनदास कहैं ब्राह्मन सोई ॥१४॥

राग बिलावल

थोथे सुमिरन कहा सरे ॥
मन के रोग सोग नहिं खोये, हिंसा डूबे, अकस जरे ॥
नारी सुत सूँ मोह कियो है, नेक न हरि के प्रेम अड़े।
माला तिलक सुधारि सँवारे, राखत छल बल मकर घने ॥
अंतर और निरंतर औरै, सिंह गऊमुख रहत बने।
ऐसी भक्ति मुक्ति नहिं पावै, करम लगैं अरु नरक परै ॥
जम को दंड दहक पावक की, जनम मरन यों नाहिं टरै।
लच्छन प्रेम सहित जप कीजै, भीतर बाहर उघर नचै ॥
चरनदास सुकदेव कहत हैं, हरि रीझैं जब व्याधि बचै ॥१५॥

राग बरवा

या तन को कह गर्ब करत हैं, ओला ज्यों गलि जावै रे ॥
जैसे बरतन बनौ कांच को, ठपक लगे बिनसावै रे।
झूँठ कपट अरु छलबल करिकै, खोटे कर्म कमावै रे ॥
बाजीगर के बांदर सा ज्यों, नाचत नाहिं लजावै रे।
जबलौं तेरी देह पराक्रम, तबलौं सबन सोहावै रे ॥
माय कहै मेरा पूत सपूता, नारी हुकुम चलावै रे।
पल पल पल पल पलटै काया, छिन छिन माहि घटावै रे ॥
बालक तरुन होइ फिर बूढ़ा, जरा मरन पुनि आवै रे।
तेल फुलेल सुनन्ध उबटनो, अम्बर अतर लगावै रे ॥

---

१५. सोग=शोक। अकस=वैर, विरोध। टहल=सेवा। मकर=धूर्तता। निरन्तर=बाहर। सिंह गऊमुख=अन्दर सिंहमुख अर्थात् हिंसक और बाहर गोमुख अर्थात् शीलवान्। लच्छन प्रेम=सबसे ऊँची प्रेम-लक्षणा भक्ति। व्याधि=भवबाधा, मोहजनित दुःख।

१६. ठपक=ठोकर, धक्का। सुहावै=प्रिय लगता है। घटावै=क्षीण होती जाती है। जरा=बुढ़ापा। अम्बर=एक इत्र। पिंड=शरीर। समावै=सजाता है। धूरि समावै=

नाना बिधि सूँ पिंड सँवारै, जरि बरि धूरि समावै रे।
कोटि जतन सूँ बचै न क्यूँहीं, देवी देव मनावै रे॥
जिनकूँ तू अपनो करि जानै, दुख में पास न आवै रे।
कोई झिड़कै कोइ अनखावै, कोई नाक चढ़ावै रे॥
यह गति देखि कुटुँब अपने की, इनमें मत उरझावै रे।
अबहीं जम सूँ पाला परिहै, कोई नाहिं छुड़ावै रे।
औसर खोवै पर के काजे, अपनो मूल गँवावै रे।
बिन हरिनाम नहीं छुटकारो वेद पुराण बतावै रे॥
चेतनरूप बसै घट अंतर, भर्म सूल बिसरावै रे।
जो टुक ढूँढ़ खोज करि देखै, सो आपहि में पावै रे॥
जो चाहे चौरासी छूटै, आवा गवन नसावै रे।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, सत-संगति मन लावै रे॥१६॥

राग काफी

वह बोलता कित गया नगरिया तजिकै।
दस दरवाजे ज्यों के त्योंही कौन राह गया भजिकै॥
सूना देस, गाँव भया सूना, सूने घर के वासी।
रूप रंग कछु औरै हूआ, देही भई उदासी॥
साजन थे सो दुरजन हूए, तन को बाँधि निकारा।
चिता सँवारि लिटा करि तापै ऊपर धरा अंगारा॥
ढह गया महल, चुहल थी जामें, मिल गया माटी माहीं।
पुत्र कलित्तर भाई बंधू, सबहीं ठोंक जलाहीं॥
देखत ही का नाता जग में, मुए संग नहिं कोई।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, हरि बिन मुक्त न होई॥१७॥

राग बिलावल

अजब फकीरी साहबी भागन सूँ पैये।
प्रेम लगा जगदीश का कछु और न चैये॥

मिट्टी में मिल जाता है। क्यूंही=किसीभी तरह। अनखावै=नाराज होता है।
१७. बोलता=जीव। उदासी=फीकी। चुहल=रंगरेलियाँ। कलित्तर=कलत्र, स्त्री।

राव रंक कूँ सम गिनैं, कुछ आसा नाहीं।
आठ पहर सिमिटे रहैं, अपने ही माहीं॥
वैर प्रीत उनके नहीं, नहिं वाद-विवादा।
रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा॥
जो बोलैं तो हरि-कथा, नहिं मौनै राखैं।
मिथ्या कडुवा दुरबचन, कबहूँ नहिं भाखैं॥
जीव-दया अरु सीलता, नख-सिख सूँ धारैं।
पाँचौं दूतन बसि करैं, मन सूँ, नहिं टारैं॥
दुख सुख दोनों के परे, आनँद दरसावैं।
जहाँ जायँ अस्थल करैं, माया-पवन न जावै।
हरिजन हरि के लाड़िले, कोई लहै न भेवा।
सुकदेव कही चरनदास सूँ, कर तिनकी सेवा॥१८॥

राग बिलावल

भक्ति गरीबी लीजिये तजिये अभिमाना।
दो दिन जग में जीवना आखिर मरि जाना॥
पाप पुन्न लेखा लिखैं, जम बैठे थाना।
कहा हिसाब तुम देहुगे जब जाहि दिवाना॥
मात पिता कोइ ह्वाँ नहीं, सबही बेगाना।
द्रव्य जहाँ पहुँचै नहीं, नहिं मीत पिछाना॥
एक सों एकहि होयगी, ह्वाँ साँच तुलाना॥
काहू की चालै नहीं छनै दूध अरु पाना॥
साहब की कर बन्दगी, दे भूखे दाना।
समुझावै सुकदेवजी चरनदास अयाना॥१९॥

---

१८. चैये=चाहिए। सिमटे···माहीं=सदा अन्तर्मुखी रहते हैं, अर्थात् सब विषयों से चित्तवृत्ति हटाकर अपनी आत्मा के ध्यान में ही लीन रहते हैं। रूठे-से=उदासीन। पाँचो दूतन=पाँचों ज्ञान-इन्द्रियों को। मनसूँ नहिं हारैं=मन के वश में नहीं होते हैं। अस्थल करैं=आसन मारकर बैठ जाते हैं। माया पवन न जावै=माया की हवा भी नहीं पहुँचती।

१९. दिवाना=दीवान; कर्मों का लेखा रखनेवाले चित्रगुप्त से आशय है। बेगाना=

साखो

गुरू कहैं सो कीजिये, करैं सो कीजै नाहिं।
चरनदास की सीख सुन, यही राख मन माहिं ॥१॥
अबके चूके चूक है, फिर पछितावा होय।
जो तुम जक्त न छोड़िहौ, जन्म जायगो खोय ॥२॥
जग माहीं न्यारे रहो, लगे रहो हरि-ध्यान।
प्रथिवी पर देही रहै, परमेसुर में प्रान ॥३॥
सब सूँ रख निरबैरता, गहो दीनता ध्यान।
अंत मुक्ति-पद पाइहौ, जग में होय न हानि ॥४॥
दया नम्रता दीनता, छिमा सील संतोष।
इनकूँ लै सुमिरन करै, निस्चय पावै मोष ॥५॥
मिटते सूँ मत प्रीत करि, रहते सूँ करि नेह।
झूठे कूँ तजि दीजिये, साँचे में करि गेह ॥६॥
ब्रह्म-सिन्ध की लहर है, तामें न्हाव सँजोय।
कलिमल सब छुटि जाहिंगे, पातक रहै न कोय ॥७॥
क तपस्या नाम बिन, जोग जग्य अरु दान।
चरनदास यों कहत हैं, सबहीं थोथे जान ॥८॥
गई सो गई अब राखिलै, एहो मूढ़ अयान।
निःकेवल हरि कूँ रटो, सीख गुरू की मान ॥९॥

पराये। पाना=पानी।

साखी

१. करैं···नाहिं=जो काम गुरु करते हों, उसकी नकल नहीं करनी चाहिए।
२. जक्त=जगत।
३. न्यारे=अनासक्त।
५. मोष=मोक्ष
६. मिटते सूँ=अनित्य संसार से। रहते सूँ=नित्य आत्मा से।
८. थोथे=फोकट; निस्सार।
९. अयान=अज्ञानी। निःकेवल=विशुद्ध, माया-रहित।

जागै ना पिछले पहर, ताके मुखड़े धूल।
सुमिरै ना करतार कूँ, सभी गँवावै मूल ॥१०॥
पिछले पहरे जागकरि, भजन करै चित लाय।
चरनदास वा जीव की, निस्चै गति ह्वै जाय ॥११॥
पहिले पहरे सब जगैं, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोर ही, चौथे जोगी जान ॥१२॥
जो कोइ बिरही नाम के, तिनकूँ कैसी नींद।
सस्तर लागा नेह का, गया हिये कूँ बींध ॥१३॥
सोये हैं संसार सूँ, जागे हरि की ओर।
तिनकूँ इकरस हीं सदा, नहीं सांझ नहिं भोर ॥१४॥
सोवन जागन भेद की, कोइक जानत बात।
साधूजन जागत तहाँ, जहाँ सबन की रात ॥१५॥
जो जागै हरि-भक्ति में, सोई उतरै पार।
जो जागै संसार में, भवसागर में ख्वार ॥१६॥
सतगुरु से माँगूँ यही, मोहि गरीबी देहु।
दूर बड़प्पन कीजिये, नान्हा हीं कर लेहु ॥१७॥
आदिपुरुष किरपा करौ, सब औगुन छुटि जाहिं।
साध होन लच्छन मिलैं, चरनकमल की छाँहि ॥१८॥
हिय हुलसो आनँद भयो, रोम-रोम भयो चैन।
भये पवित्तर कान ये, मुनि सुनि तुम्हरे बैन ॥१९॥

---

१०. ताके मुखड़े धूल=उसे धिक्कार है।

११. गति=सद्गति, मोक्ष।

१२. भोगी=विषयी जीव।

१३. सस्तर=शस्त्र, हथियार। गया बींध=आरपार हो गया।

१४. सोये हैं संसार सूँ=सान्सारिक विषय-सुखों की ओर से अचेत। भोर=सवेरा, दिन।

१५. कोइक=बिरला ही।

१६. ख्वार=नष्ट।

गुरु-महिमा

किसू काम के थे नहीं, कोइ न कौड़ी देह ।
गुरु सुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह ॥१॥
सीधी पलक न देखते, छूते नाहीं छांहिं ।
गुरु सुकदेव कृपा करी, चरनोदक ले जाहिं ॥२॥
दूसर के बालक हुते, भक्ति बिना कंगाल ।
गुरु सुकदेव कृपा करी, हरिधन किये निहाल ॥३॥
बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदके जावँ ।
जीव ब्रह्म छिन में कियो, पाई भूली ठावँ ॥४॥
जाति बरन कुल मन गया, गया देह-अभिमान ।
अपने मुखसूँ क्या कहूँ, जग ही करै बखान ॥५॥
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट ।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भ्रम्म का कोट ॥६॥
सतगुरु शब्दी तेग है, लागत दो करि देहि ।
पीठ फेरि कायर भजै, सूरा सनमुख लेहि ॥७॥
सतगुरु शब्दी तीर है, तन मन कीयो छेद ।
बेदरदी समझै नहीं, बिरही पावै भेद ॥८॥
सतगुरु शब्दी लागिया, नावक का सा तीर ।
कसकत है निकसत नहीं, होत प्रेम की पीर ॥९॥

गुरु-महिमा

२. पलक=नजर से । चरनोदक ले जाहिं=अब लोग मेरे पैरों का धोवन ले-ले जाते हैं ।

३. हरिधन किये निहाल=हरिनाम का धन देकर भरपूर कर दिया ।

४. सदके=बलिहारी । ठाँव=जीव का निजस्थान, ब्रह्म-पद ।

६. भ्रम्म=भ्रम, अविद्या ।

७. दो करि देहि=दो टुकड़े कर देती है । भजै=भाग जाती है । सूरा सनमुख लेहि=वार को सामने लेता है ।

८. बेदरदी=दरद के भेद को न जाननेवाला; अनधिकारी । भेद=मर्म, रहस्य ।

सतगुरु शब्दी बान है, अंग अंग डारे तोड़।
प्रेम-खेत घायल गिरै, टाँका लगै न जोड़ ॥१०॥
ऐसी मारी खैंचकर, लगी वार गई पार।
जिनका आपा ना रहा, भये रूप ततसार ॥११॥
बचन लगा गुरुदेव का, छुटे राज के ताज।
हीरा, मोती, नारि, सुत, सजन, गेह, गज, बाज ॥१२॥
बचन लगा गुरु ज्ञान का, रूखे लागे भोग।
इन्द्रकि पदवी लौं उन्हें, चरनदास सब रोग ॥१३॥

भक्त-महिमा

प्रभु अपने मुख सूँ कहेव, साधू मेरी देह।
उनके चरनन की मुझे प्यारी लागै खेह ॥१॥
प्रेमी को रिनिया रहूँ, यही हमारो सूल।
चारि मुक्ति दइ ब्याज में, दै न सकूँ अब मूल ॥२॥
भक्त हमारो पग धरै, तहाँ धरूँ मैं हाथ।।
लारे लागो ही फिरूँ, कबहुँ न छोडूँ साथ ॥३॥
प्रिथवी पावन होत है, सब ही तीरथ आदि।
चरनदास हरि यौं कहैं, चरन धरैं जहँ साध ॥४॥

विरह और प्रेम

हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलकै आय।
सोइ छका हरि-रस-पगा, वा पग परसौ धाय ॥१॥

---

११. आपा=अहंता, खुदी। ततसार=तदाकार; ब्रह्मरूप
१२. सजन=सम्बन्धी। बाज=वाजि, घोड़ा।

भक्ति-महिमा

१. खेह=धूल।
२. सूल=उसूल; प्रतिज्ञा।
३. लारे=पीछे, साथ।

विरह और प्रेम

१. छका=मस्त। पगा=लीन, रँगा हुआ।

पीव बिना तो जीवना, जगमें भारी जान।
पिया मिलै तो जीवना, नहीं तो छूटै प्रान ॥२॥
वह बिरहिन बौरी भई, जानत ना कोइ भेद।
अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद ॥३॥

मन और इन्द्रियाँ

बहु बैरी घट में बसैं, तू नहिं जीतत कोय।
निस-दिन घेरे ही रहैं, छुटकारा नहिं होय ॥१॥
या मन के जाने बिना, होय न कबहूँ साध।
जक्त-बासना ना छुटै, लहै न भेद अगाध ॥२॥
सरकि जाय बिष ओरहीं, बहुरि न आवै हाथ।
भजन माहिं ठहरै नहीं, जो गहि राखूँ नाथ ॥३॥
इन्द्री पलटैं मन बिषै, मन पलटै बुधि माहिं।
बुधि पलटै हरि-ध्यान में, फेरि होय लय जाहिं ॥४॥
तन मन जारै काम हीं, चित कर डावाँडोल।
धरम सरम सब खोयके, रहै आप हिये खोल ॥५॥
मोह बड़ा दुखरूप है, ताकूँ मारि निकास।
प्रीत जगत की छोड़दे, जब होवै निर्बास ॥६॥
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अंबुज सर माहिं।
रहै नीर के आसरे, जल छूवत नाहिं ॥७॥
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों जिह्वा मुख माहिं।
घीव घना भच्छन करै, तोभी चिकनी नाहिं ॥८॥

---

३. भेद=मर्म ;

मन और इंद्रियाँ

२. अगाध भेद=आत्मज्ञान का गहरा रहस्य।
४. लै होय जाहिं=तद्रूप हो जाते हैं।
६. निर्वास=वासना-रहित।
७. अंबुज=कमल। सर=तालाब।

जा घट चिन्ता-नागिनी, ता मुख जप नहिं होय।
जो टुक आवै याद भी, उहीं जाय फिर खोय ॥९॥
आसा-नदिया में चलै, सदा मनोरथ-नीर।
परमारथ उपजै, बहै, मन नहिं पकरै धीर ॥१०॥
अभिमानी मींजे गये, लूट लिये धन बाम।
निर अभिमानी हो चले, पहुँचे हरि के धाम ॥११॥
चरनदास यों कहत हैं, सुनियो सन्त सुजान।
मुक्तिमूल आधीनता, नरकमूल अभिमान ॥१२॥

अष्टपदी

रूपवन्त गरबावै। कोइ मोसम दृष्टि न आवै॥
तरुनापा गर्बाना। वह अँधरा होवै राना॥
कहै धन-मद में परवीना। सब मेरे ही आधीना॥
कहै कुल-अभिमानी सूचा। मैं सब जातिन में ऊँचा॥
वह विद्या-गर्व जो भारी। करै वाद-विवाद अनारी॥
अरु भूप करै अभिमाना। उन आपै हीं कूँ जाना॥
उन काल नहीं पहिचाना। सो मार करै घमसाना॥
गुरु सुकदेव चितावैं। तोहि परगट नैन दिखावैं॥
जम बाँधि पकरि ले जावैं। वै बहुतै त्रास दिखावैं॥
तब कहाँ जाय अभिमाना। मोर नीका सुन यह ताना॥
फिर डारै नरक मँझारी। सुन चेतौ नर अरु नारी॥
तौ मद मत्सर तजि दीजै। साधों के चरन गहीजै॥
हरिभक्ति करौ चित लाई। जब सकल ब्याधि छुट जाई॥
करि जाति बरन कुल दूरा। हो सतसंगति में पूरा॥

---

९. टुक=ज़रा-सा।
१०. नहिं पकरै धीर=निश्चल नहीं होता है।
११. मींज गये=धूल में मिला दिये गये, वाम=वामा, स्त्री।
१२. आधीनता=नम्रता।
१३. तरुनापा=तरुणाई, जवानी। सूचा=शुचि, पवित्र। अनारी=अनाड़ी, मूर्ख।

जब मुक्तिधाम कूँ पावै । फिर गर्भ-जोनि नहिं आवै ॥
कहै गुरु सुकदेव बखानो । यह चरनदास मति आनो ॥१३॥

नवधा भक्ति

दोहा

नवों अंग के साधते, उपजै प्रेम अनूप ।
रनजीता यौं जानिये, सब धर्मन का भूप ॥१॥

अष्टपदी

वह जात बरन कुल खोवै । अरु बीज बिरह का बोवै ॥
जो प्रेम तनिक चित आवै । वह औगुन सबै नसावै ॥
प्रेम-लता जब लहरै । मन बिना जोग ही ठहरै ॥
कोई चतुर खिलारी खेलै । वह प्रेम-पियारा झेलै ॥
जो धड़ पै सीस न राखै । सोइ प्रेम पियाला चाखै ॥
तन मन सूँ जो बौराई । वह रहै ध्यान लौ लाई ॥
वह पहुँचै हरि के पासा । यों कहैं चरन ही दासा ॥२॥

पतिव्रता

दोहा

पतिवता वहि जानिये, आज्ञा करै न भंग ॥
पिय अपने के रंग-रतै, और न सोहै ढंग ॥१॥
अपने पिय कूँ सेइये, आन पुरुष तजि देह ॥
परघर नेह निवारिये, रहिये अपने गेह ॥२॥
आज्ञाकारी पीव की, रहै पिया के संग ॥
तन मन सूँ सेवा करै, और न दूजो रंग ॥३॥

मत्सर=ईर्ष्या, द्वेष । गहीजै=पकड़ ले । चित लाई=मन लगाकर ।

नवधा भक्ति

२. बिना जोग ही ठहरै=बिना योग साधे ही निश्चल हो जाय । खिलारी=प्रेम का साधक । प्रेम-पियाला झेलै=प्रेम के नशे की लहर को सहन कर सके । बौराई=मस्त हो जाय ।

रंग होय तौ पीव को, आन पुरुष विषरूप ॥
छाहँ बुरी परघरन की, अपनी भली जु धूप ॥४॥
अपने घर का दुख भला, परघर का सुख छार।
ऐसे जानै कुलबधू, सो सतवंती नार ॥५॥
पति की ओर निहारिये, औरन सूँ क्या काम।
सबैं देवता छाड़िकै, जपिये हरि का नाम ॥६॥
खसम तुम्हारे राम हैं, इत उत रुख मत मारि।
चरनदास यों कहत है, यही धारना धारि ॥७॥

पतिव्रता

५. छार=धूल के समान तुच्छ। सतवंती–सती, पतिव्रता।

७. रुख मत मारि=मन मत डिगा।

सहजो बाई

चोला-परिचय

जीवन-काल—अनुमानतः सं० १७४० से सं० १८२० वि०

जन्म-स्थान—डेहरा गाँव (मेवात, राजस्थान)

जाति—ढूसर बनिया

पिता—हरिप्रसाद

भेष—ब्रह्मचारिणी

गुरु—महात्मा चरणदास

सहजोबाई का जीवन-वृत्त इससे अधिक कुछ नहीं मिलता। इन्होंने अपने गुरु चरणदासजी के विषय में तो अपने दो पदों द्वारा उनका जन्म-संवत् व तिथि, जन्म-स्थान, पिता का नाम, कुल आदि सब विवरण दिया है, पर अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा। पर यह निश्चित है कि यह आजीवन कुमारी ब्रह्मचारिणी रहीं। दिल्ली में यह तथा इनकी गुरु-बहिन दयाबाई महात्मा चरणदास की सेवा में सदा निरत रहा करती थीं। यह उच्चकोटि की साधिका थीं।

बानी-परिचय

कुछ फुटकर पदों और कुण्डलियों के अतिरिक्त इनकी प्रसिद्ध रचना 'सहज-प्रकाश' है, जिसे लिखकर इन्होंने संवत्. १८०० में परीक्षितपुर, दिल्ली में समाप्त किया था। गुरु का गुण-गान करने बैठी थीं, कुछ दोहे चौपाई रचे थे, पर धीरे-धीरे सहज में ही वह एक पोथी बन गई—

"फाग महीना अष्टमी, सुकल पाख बुधवार।
संवत अठारह सैं हुते, सहजो किया विचार॥
गुरु-अस्तुति के करन कूँ, बाढ्यौ अधिक हुलास।
होते-होते हो गई पोथी सहज-प्रकास॥"

गुरु-महिमा, वैराग-उपजावन, नाम, प्रेम, साध-महिमा आदि अनेक अंगों पर दोहे चौपाइयाँ निरूपण के रूप में इन्होंने रची हैं। गुरु-भक्ति को सबसे अधिक दृढ़ाया है। पद भी इनके अतिमधुर और सरस हैं। निर्गुण और सगुण दोनों ही पक्षों पर इनके रचे अनेक सुन्दर पद हैं। कृष्ण-भक्ति के कुछ पद तो मीरांबाइ के पदों से मिलते हैं। शैली मनोहर और भाषा सरल और प्रांजल है।

आधार

सहजोबाई की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

सहजो बाई

गुरु-महिमा

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ। गुरु के सम हरि को न निहारूँ॥
हरि ने जन्म दियो जगमाहीं। गुरु ने आवागवन छुटाहीं॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा॥
हरि ने कुटुँब-जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता-बेरी॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुटायौ॥

गुरु-महिमा

१. गेरी=डाल दिया, फँसा दिया। बेरी=बेड़ी। बंध=बंधन।

हरि ने कर्म भर्म भरमायौ । गुरु ने आतमरूप लखायौ ॥
हरि ने मोसूँ आप छिपायौ । गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ ॥
फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये । गुरु ने सब ही भर्म मिटाये ॥
चरनदास पर तन मन वारूँ । गुरु न तजूं हरि कूँ तजि डारूँ ॥१॥

दोहा

सब परबत स्याही करूँ, घोलूँ समुन्दर जाय ।
धरती का कागद करूँ, गुरु-अस्तुति न समाय ॥२॥
ज्ञानदीप सतगुरु दियौ, राख्यौ काया-कोट ।
साजन बसि, दुर्जन भजे, निकस गई सब खोट ॥३॥
सहजो गुरु दीपक दियौ, देख्यौ आतमरूप ।
तिमिर गयौ चांदन भयौ, पायौ परघट भूप ॥४॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मेट्यौ मन सन्देह ।
रोम-रोम सूँ प्रेम उठि, भीज गई सब देह ॥५॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मूंद लिये दोउ नैन ।
फिर मोसूँ ऐसे कही, समझ लेहि यह सैन ॥६॥
चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों ना ठहराय ।
सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय ॥७॥
सहजो सिष ऐसा भला, जैसे माटी मोय ।
आपा सौंपि कुम्हार कूँ, जो कछु होय सो होय ॥८॥
सहजो गुरु बहुतक फिरैं, ज्ञान ध्यान सुधि नाहिं ।
तार सकैं नहिं एककूँ, गहैं बहुत की बाहिं ॥९॥

---

२. न समाय=पूरी नहीं लिखी जा सकती ।

३. कोट=किला । भजे=भाग गये । साजन=सज्जन; सत्य, संयम, प्रेम इत्यादि सद्गुणों से आशय है । दुर्जन=काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि से तात्पर्य है ।

४. परघट=प्रकट । भूप=परमात्मा से अभिप्राय है ।

६. सैन=संकेत; ध्यान में लव लगाकर निजरूप देखने की ओर इशारा ।

८. सिष=शिष्य । कुम्हार=सद्गुरु से अभिप्राय है । जो कछु होय सो होय=चाहे जैसा रूप घड़ दे ।

सहजो गुरु रंगरेज सा, सबहीं कूँ रंग देत।
जैसा तैसा बसन ह्वै, जो कोई आवै सेत ॥१०॥
चरनदास के चरन पर, सहजो वारै प्रान।
जगत ब्याध सूँ काढ़ि कर, राख्यो पद निरबान ॥११॥

साध-महिमा

साध मिले गुरु पाइया, मिठि गये सब सन्देह।
सहजो कूँ समही भयो, कहा गिरवर कहा गेह ॥१॥
साध बृच्छ, बानी कली, चर्चा फूले फूल।
सहजो संगति बाग में, नाना फल रहे झूल ॥२॥
जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय ॥३॥

साध-लक्षण

चौपाई

साध सोइ जो काया साधै। तजि आलस औ बाद-बिबादै॥
गहै धारना सब गति भारी। तजै बिकलता अस्तुति गारी॥
छिमावन्त धीरज कूँ धारै। पाँचो बस करि मन कूँ मारै॥
त्यागै झूँठ साँच मुख बोलै। चित इस्थिर इत उत ना डोलै॥
तन जग में मन हरि के पासा। लोकभोग सूँ सदा उदासा॥
जतसत नखसिख लीनलताई। तनमन बचन सकल सुखदाई॥

---

१० सेत=सफेद, शुद्ध, निर्मल।

११. निरवान=निर्वाण, मोक्ष।

साध-महिमा

१. समही=भयो=सब एकसमान ही दीखने लगा।

२. रहे झूल=लटक रहे हैं।

साध-लक्षण

१. साधै=संयम से वश में रखता है। पाँचों=पाँचों ज्ञान-इंद्रियों को। उदासा=विरक्त

निगुन ध्यानी ब्रह्म गियानी। मुख सूँ बोलै अंमृत बानी॥
समझ एकता भाव न दूजे। जिनके चरन सहजिया पूजे॥१॥

दोहा

निर्द्वन्दी निर्बैरता, सहजो अरु निर्वास।
संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस॥२

जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागैं हरिनाम।
जो बोलैं तो हरि-कथा, भक्ति करैं निहकाम॥३॥

नित ही प्रेम पगे रहैं, छके रहैं निजरूप।
समदृष्टी सहजो कहै, समझैं रंक न भूप॥४॥

साध असंगी सँग तजैं, आतम ही को संग।
बोधरूप आनंद सें, पियैं सहज को रंग॥५॥

मुए दुखी जीवत दुखी, दुखिया भूख अहार।
साध सुखी सहजो कहै, पायो नित्त बिहार॥६॥

वैराग-उपजावन का अंग

जैसे सँड़सी लोह की, छिन पानी छिन आग।
ऐसे दुख सुख जगत के, सहजो तू मत पाग॥१॥

जबलग चावल धान में, तबलग उपजैं आय।
जग छिलके कूँ तजि निकस, मुक्तिरूप ह्वै जाय॥२॥

दरद बटाय सकैं नहीं, मुए न चालैं साथ।
सहजो क्योंकर आपने, सब नाते बरबाद॥३॥

जत=यत, संयत, निरुद्ध।

२. निर्वास=वासनारहित। निर्द्वन्दी=अभेदभाव वर्तनेवाला।

३. सुन्न में=समाधि में।

५. असंगी=अनासक्त संग=आसक्ति। बोध=ज्ञानरूप। सहज को रंग=सहज अवस्था का आनन्दरस।

६. नित्त विहार=सहज समाधि का आनन्द।

वैराग-उपजावन का अंग

१. मत पाग=आसक्त मत हों।

सहजो जीवत सब सगे, मुए निकट नहिं जायँ।
रोवैं स्वारथ आपने, सुपने देख डरायँ ॥४॥
सहजो नौवत स्वास की, बाजत है दिन-रैन।
मूरख सोवत है महा, चेतन कू नहिं चैन ॥५॥
बैठि बैठि बहुतक गये, जग-तरवर की छांहि।
सहजो बटाऊ बाट के, मिलि-मिलि बिछुड़त जाहिं ॥६॥
झुरि-झुरि के पिंजर भये, रोय गँवाये नैन।
मरे गये सो ना मिले, सहजो सुनै न बैन ॥७॥
जो रोये सूँ बाहुरै, तौ रोवौ दिन-रात।
तन छीजै वह ना मिलै, सहजो कूड़ी बात ॥८॥
देह निकट तेरे पड़ी, जीव अमर है नित्त।
दुइ में मूवा कौन सा, का सूँ तेरा हित्त ॥९॥

नाम का अंग

पारस नाम अमोल है, धनवन्ते घर होय।
परख नहीं कंगाल कूँ, सहजो डारै खोय ॥१॥
सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदै माहिं दुराय।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ॥२॥
राम-नाम यों लीजिये, जानै सुमिरनहार।
सहजो कै कर्तार ही, जानै ना सन्सार ॥३॥
कामी मति भिष्टल सदा, चलै चाल बिपरीत।
सील नहीं सहजो कहै, नैनन माहिं अनीति ॥४॥

---

५. नौवत=पहर-पहर पर बजनेवाले नगाड़े और शहनाई। मूरख=अचेत चेतन=जो चेत या जाग गया है।

७. झुरि-झुरिके=सूख-सूखकर। पिंजर=हड्डियों की ठठरी।

८. बाहुरै=वापस आजाय। कूड़ी=बेकार।

९. हित्त=प्रेम।

नाम का अंग

४. भिष्टल=भ्रष्ट। अनीति=बुरी वासना।

सदा रहै चित भंग ही, हिरदे थिरता नाहिं।
रामनाम के फल जिते, काम-लहर बहि जाहिं ॥५॥

सहजो क्रोधी अति बुरो, उलटी समझै बात।
सबही सू ऐंठो रहै, करै बचन की घात ॥६॥

मन मैला तन छीन ह्वै, हरि सूँ लगै न नेह।
दुखी रहै सहजो कहै, मोह बसै जा देह ॥७॥

मोह-मिरग काया बसै, कैसे उबरै खेत।
जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सू हेत ॥८॥

प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ।
अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होय ॥९॥

नन्हा महाउत्तम का अंग

सीस कान मुख नासिका, ऊँचे-ऊँचे ठाँव।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव ॥१॥

नन्ही चींटी भवन में, जहाँ-तहाँ रस लेइ।
सहजो कुंजर अति बड़ो, सिर पै डारै खेह ॥२॥

बड़ा न जाने पाइहै, साहेब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागिहै, सहजो मोटी मार ॥३॥

भली गरीबी नवनता, सकै नहीं कोइ मार।
सहजो रुई कपास को, काटै ना तरवार ॥४॥

साहन कूँ तो भय घना, सहजो निर्भय रंक।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसंक ॥५॥

---

५. भंग=अस्थिर, डांवाडोल। थिरता=स्थिरता, शान्ति।
८. मिरग=मृग। उबरै=बचे।

नन्हा महाउत्तम का अंग
१. ठाँव=स्थान।
२. कुंजर=हाथी। खेह=मिट्टी।

प्रेम का अंग

प्रेम-दिवाने जो भये, पलटि गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कहा भूप ॥१॥
प्रेम-दिवाने जो भये, जाति बरन गइ छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट ॥२॥
प्रेम-दिवाने जो भये, सहजो डिगमिग देह।
पाँव पड़ैं कितकै किती, हरि सम्हाल तब लेह ॥४॥
मन में तौ आनन्द रहै, तन बौरा सब अंग।
ना काहू के संग है, सहजो ना कोइ संग ॥४॥

सत्त वैराग जगत मिथ्या का अंग

सहजो सुपने एक पल, बीतैं बरस पचास।
आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घट-बास ॥१॥
जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माहिं ॥२॥
धूवाँ को सो गढ़ बन्यो, मन में राज संजोय।
झाईं माईं सहजिया, कबहूँ साँच न होय ॥३॥

चौपाई

नेत नेत कहि बेद पुकारै। सो अधरन पर मुरली धारै ॥
जाकूँ ब्रह्मादिक मुनि ध्यावैं। ताहि पूत कहि नन्द बुलावै ॥
सिव सनकादिक अन्त न पावै। सो सखियन संग रासरचावै ॥

प्रेम का अंग

२. गये सब फूट=छोड़-छोड़कर अलग हो गये।
३. कितकै किती=कहीं के कहीं

सत्त वैराग जगत मिथ्या का अंग

१. घटवास=देह में जीव का रहना।
२. मोती=बूंद से तात्पर्य है।
३. सँजोय=कल्पना से रचना करके। झाईं माईं=परछाईं में; भ्रांति में।

संजम साधन ध्यान न आवै। सो ग्वालन सँग खेल मचावै ॥
अनन्त लोक मेटै उपजावै। सो मोहन ब्रजराज कहावै ॥
निर्विकार निर्भय निर्वाना। कारन भक्त धरे तन नाना ॥
निर्गुन सर्गुन भेद न दोई। आदि अंत मधि एकहिं होई ॥
गूँगे को सुपनो यह बाता। सहजो कहै कौन के साथा ॥१॥

दोहा

निर्गुन सर्गुन एक प्रभु, देख्यो समझ विचार।
सतगुरु ने आँखी दई, निस्चै कियौ निहार ॥२॥
सहजो हरि बहु रंग है, वही प्रगट वहि गूप।
जल पाले में भेद ना, ज्यों सूरज अरु धूप ॥३॥
चरनदास गुरु की दया, गयो सकल संदेह।
छूटे वाद-विवाद सब, भई सहज गति तेह ॥४॥

पद

राग सोरठ

हमारें गुरुबचनन की टेक।
आन धरम कूँ नाहिं जानूँ, जपूँ हरि हरि एक ॥
गुरु बिना नहिं पार उतरै, करौ नाना भेख।
रमौ तीरथ बर्त राखौ, होइ पंडित सेख ॥
गुरु बिना नहिं ज्ञान-दीपक, जाय ना अँधियार।
काम क्रोध मद लोभ माहीं, उरझिया संसार ॥
चरनदास गुरु दया करिकै, दिये मन्तर कान।
सहजो घट परगास हूवा, गयौ सब अज्ञान ॥१॥

---

३. नेत नेत=नेति नेति; ऐसा नहीं ऐसा नहीं, (जैसा कि वाणी से ब्रह्म का निरूपण किया जाता है।) निर्वाना=मुक्त।

३. पाले में=बरफ़ में।

पद

१. टेक=सहारा। सेख=शेख, मुसलमान उपदेशक। परगास=प्रकाश।

राग बिलावल

हरि बिनु तेरौ ना हितू, कोइ या जग माहीं ॥
अन्त समय तू देखिले, कोइ गहै न बाँहीं ॥
जम सूँ कहा छुटा सकै, कोइ संग न होई ।
नारीं हू फटि रहि गई, स्वारथ कूँ रोई ॥
पुत्र कलित्तर कौन के, भाई और बंधा ।
सबहीं ठोक जलाइहैं, समझै नहिं अन्धा ॥
महल दरब ह्याँही रहै, पचि पचि करि जोड़ा ।
करहा गज ठाढ़े रहैं, चाकर और घोड़ा ॥
परकाजे बहु दुख सहै, हरि-सुमिरन खोया ।
सहजो बाई जम घिरैं, सिर धुनि-धुनि रोया ॥२॥

राग असावरी

बाबा, काया-नगर बसावौ ।
ज्ञानदृष्टि सूँ घट में देखौ, सुरति निरति लौ लावौ ॥
पाँच मारि मन बसि कर अपने, तीनौं ताप नसावौ ।
सत सन्तोष गहौ दृढ़सेती, दुर्जन मारि भजावौ ॥
सील छिमा धीरज कूँ धारौ, अनहद बम्ब बजावौ ।
पाप बानिया रहन न दीजै, धरम-बजार लगावौ ॥
सुबस बास होवै जब नगरी, बैरी रहै न कोई ।
चरनदास गुरु अमल बतायौ, सहजो सँभलौ सोई ॥३॥

राग होरी

साधो, भवसागर के माहिं, काल होरी खेलाई ॥
भाँति भाँति के रंग लिये हैं, करत जीवन की घात ।
बूढ़ा बाला कछू न देखै, देखै ना दिन-रात ॥

२. बाँहीं=हाथ । कलित्तर=कलत्र, स्त्री, ; दरब=द्रव्य, धन-संपत्ति । करहा=ऊंट ।
३. निरति=अत्यन्त प्रीति, लीन होने का भाव। दृढ़ सेती=मज़बूती से ।

निहचै मौत लिये सँग रानी, नाना रंग सम्हार।
बड़े-बड़े अभिमानी नामी, सोभी लीन्हे मार ।।
सुरज चंद वा भय तें काँपैं, स्वर्ग माहिं सब देव ।।
तनधारी सबही थर्रावैं, ज्ञानी जानत भेव ।।
आपनकूँ देही नहिं जानै, जानत आतम साँच।
चरनदास कह सहजो बाई, ताहि न आवै आँच ।।४।।

राग बसंत

सो बसंत नहिं बारबार। तैं पाई मानुष देह सार ।।
यह औसर बिरथा न खोव। भक्तिबीज हिये-धरती बोव ।।
सतसंगत को सींच नीर। सतगुरुजी सों करौ सीर ।।
नीको बार बिचार देव। परन राख याकूँ जु सेव ।।
रखवारी कर हेत-खेत। जब तेरी होवै जैत जैत ।।
खोट-कपट पंछी उड़ाव। मोह-प्यास सबही जलाव ।।
सँभलैं वाड़ी नऊ अंग। प्रेमफूल फूलैं अंग अंग ।।
पुहुप गूँध माला बनाव। आदिपुरुषकूँ जा चढ़ाव ।।
तौ सहजो बाई चरनदास। तेरे गन की पुरवैं सकल आस ।।५।।

राग भैरौं

हम बालक तुम माय हमारी। पल-पल माहिं करो रखवारी ।।
निसदिन गोदी ही में राखो। इत वित बचन चितावन भाखो।
बिषै ओर जान नहिं देवो। ढुर ढुर जाउँ तो गहि गहि लेवो ।।
मैं अनजान कछू नहि जानूँ। बुरी भली को नहिं पहिचानूँ।
जैसी तैसी तुमही चीन्हेव। गुर ह्वै ध्यान-खेलौना दीन्हेव ।।
तुम्हरी रच्छा ही से जीऊँ। नाम तुम्हारो इंमृत पीऊँ।
दिष्टि तिहारी ऊपर मेरे। सदा रहूँ मैं सरनै तेरे ।।

---

४. भेव=भेद, मर्म।

५. सार=उत्तम। सीर=नमी, तरी। परन=प्रण, टेक। जैत जैत=जय-जय। नऊ अंग=नवधा भक्ति से; सब प्रकार से। पुरवैं=सफल करें।

६. इत वित वचन चितावन=इधर उधर सब ओर से बचने से, सावधान होने के

मारौ झिड़कौ तौ नहिं जाऊँ। सरक सरक तुमहीं पै आऊ।
चरनदास है सहजो दासी। हो रच्छक पूरन अबिनासी ॥६॥

लिए। डुर डुर=विचलित हो जाऊँ।

दया बाई

चोला-परिचय

जीवन-काल—अनुमानतः सं० १७५० से सं० १८३० वि०
जन्म-स्थान—डेहरा गाँव (मेवात—राजस्थान)
जाति—ढूसर बनिया
गुरु—महात्मा चरणदास
भेष—ब्रह्मचारिणी
सत्संग-स्थान—दिल्ली

यह सहजो बाई की गुरुबहिन थीं। दिल्ली में अपने गुरु चरणदास-जी की सेवा में यह भी रहा करती थीं। 'दया-बोध' नामक ग्रंथ इन्होंने चैत्र सुदी ७, संवत् १८१८ को समाप्त किया था। बस, इतना ही इनका जीवन-वृत्त मिलता है।

बानी-परिचय

'दया-बोध' में दया बाई ने गुरु-महिमा, सुमिरन, सूरमा, प्रेम, बैराग, साध आदि अनेक अंगों पर दोहे और कुछ चौपाइयाँ लिखी हैं। शैली और भाषा लगभग सहजो बाई की जैसी है। इनका अधिक बल्कि पूरा झुकाव भक्ति की तरफ़ रहा है। निर्गुण निरंजन, या त्रिवेणी और अजपा पर इन्होंने जो दोहे लिखे हैं, उनमें इनकी वैसी तन्मयता हम बहुत कम पाते हैं, जैसी कि इनकी भक्तिविषयक रचना में देखते हैं।

'विनय-मालिका' के दोहों में 'दयादास' की छाप आई है, पर वे दयाबाई के ही रचे हुए हैं, क्योंकि शैली और भाषा में कोई अन्तर नहीं आया है। भगवान् को अनेक नामों से संबोधन इसमें किया गया है।

अनेक भक्तों का भी उल्लेख उनकी कथाओं के साथ इसमें आया है। मुख्यतः यह सगुण-उपासना-परक रचना है।

आधार

दयाबाई की बानी—वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

दया बाई

गुरु-महिमा का अंग

दोहा

बंदों श्री सुखदेवजी, सब बिधि करो सहाय।
हरो सकल जग-आपदा, प्रेम-सुधा-रस प्याय ॥१॥
चरनदास गुरुदेवजू, ब्रह्मरूप सुख-धाम।
ताप-हरन सब सुख-करन, दया करत परनाम ॥२॥
अंधकूप जग में पड़ी, दया करम-बस आय।
बूड़त लई निकासि करि, गुरु-गुन-ज्ञान गहाय ॥३॥
सतगुरु ब्रह्मसरूप हैं, मनुषभाव मत जान।
देहभाव मानैं दया, ते हैं पसू समान ॥४॥

सुमिरन का अंग

दोहा

हरि भजते लागै नहीं, काल-व्याल दुख-भाल।
तातें राम सँभालिये, दया छोड़ जग-जाल ॥१॥
जे जन हरि-सुमिरन-बिमुख, तासूँ मुखहुँ न बोल।
रामरूप में जे पगे, तासूँ अंतर खोल ॥२॥

गुरु-महिमा का अंग

३. गहाय=ग्रहण कराकर, सौंपकर।

सुमिरन का अंग

१. झाल=ज्वाला। सँभालिये=स्मरण व सेवा करे।

२. अन्तर खोल=हृदय की गुप्त-से-गुप्त बात स्पष्ट बतलादे।

रामनाम के लेतहीं, पातक झुरैं अनेक।
रे नर हरि के नाम को, राखो मन में टेक ॥३॥
नारायण के नाम बिन, नर नर नर जा चित्त।
दीन भयो बिल्लात है, माया-बसि ना थित्त ॥४॥

सूर का अंग

दोहा

गुरु-सब्दनकूँ ग्रहन करि, बिषयनकूँ दे पीठ।
गोबिंदरूपी गदा गहि, मारो करमन डीठ ॥१॥
सूरा वही सराहिये, बिन सिर लड़त कबंद।
लोक-लाज कुल-कानकूँ, तोड़ि होत निबंद ॥२॥
सूरा सम्मुख समर में, घायल होत निसंक।
यों साधू संसार में, जग के सहै कलंक ॥३॥
कायर काँपै देख करि, साधू को संग्राम।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पावै निज ठाम ॥४॥

प्रेम का अंग

दोहा

प्रेम-मगन जे साध जन, तिन गति कही न जात।
रोय रोय गावत हँसत, दया अटपटी बात ॥१॥

---

३. झुरैं=जल जाते हैं।

४. नर नर नर जा चित्त=जिसके चित्त में मनुष्य-ही-मनुष्यसम्बन्धी विचार घूमते रहते हैं। बिल्लात है=आशा के वश गिड़गिड़ाता है। थित्त=स्थित, स्थिर।

सूर का अंग

१. डीठ=दृष्टि; बुरी नज़र।

२. कबंद=कबंध; बिना सिर का केवल धड़।

४. ठाम=स्थान; लक्ष्य।

प्रेम का अंग

१. तनि=तनिक भी। झुके=मस्त। थके नेम व्रत माहिं=नियमों और व्रतों का जिन्हें ध्यान नहीं रहता, अर्थात् त्याग चुके हैं।

हरिरस-माते जे रहैं, तिनको मतो अगाध।
त्रिभुवन की संपति दया, तृनसम जानत साध ॥२॥

कहूँ धरत पग परत कहुँ, उमगि गात सब देह।
दया मगन हरिरूप में, दिन दिन अधिक सनेह ॥३॥

हँसि गावत रोवत उठत, गिरि-गिरि परत अधीर।
पै हरिरस-चसको दया, सहै कठिन तन पीर ॥४॥

विरह ज्वाल-उपजी हिये, राम-सनेही आय।
मन-मोहन मोहन सरल, तुम देखन दा चाय ॥५॥

काग उड़ावत थके कर, नैन निहारत बाट।
प्रेमसिन्ध में पर्‌यो मन, ना निकसन को घाट ॥६॥

रे मन, तू निकसत नहीं, है तू बड़ा कठोर।
सुन्दर स्याम सरूप बिन, क्यों जीवत निस-भोर ॥७॥

बैराग का अंग

दोह

दयाकुँवर या जक्त में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय ॥१॥

जैसो मोती ओस को, तैसो यह संसार।
बिनसि जाय छिन एक में, दया प्रभू उर धार ॥२॥

तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल्ह में तुम चलौ, दया होहु हुसियार ॥३॥

---

४. चसको=चसका, मज़ा।
५. दा=का (पंजाबी प्रयोग) चाय=चाह, लालसा।
७. भोर=दिन।

वैंराग का अंग

१. जक्त=जगत्।
२. मोती=बूँद से आशय है।

बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय।
राजा राना छत्र-पति, सबकूँ लीले जाय ॥४॥
बिनसत बादर बात बसि, नभ में नाना भाँति।
इमि नर दीसत कालबस, तऊ न उपजै साँति ॥५॥

साध का अंग

दोहा

दया दान अरु दीनता, दीना-नाथ दयाल।
हिरदै सीतल दृष्टि सम, निरखत करैं निहाल ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ नहिं, षट विकार करि हीन।
पंथ कुपंथ न जानहीं, ब्रह्मभाव-रस-लीन ॥२॥
साधसंग छिन एक को, पुन्न न बरन्यो जाय।
रति उपजै हरिनाम सूँ, सबही पाप बिलाय ॥३॥
साधू बिरला जगत में, हर्ष सोक करि हीन।
कहन सुनन कूँ बहुत हैं, जन-जन आगे दीन ॥४॥
साधसंग जग में बड़ो, जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारै खोय ॥५॥

अजपा का अंग

दोहा

दया कह्यो गुरदेव ने, कूरम को ब्रत लेहि।
सब इन्द्रिनकूँ रोकि करि, सुरत स्वाँस में देहि ॥१॥

---

४. लीले जाय=निगलता जा रहा है।

५. बात=वायु। साँति=शान्ति।

साध का अंग

२. षट विकार=मन के छह दोष--काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। करि=से।

४. रति=प्रीति।

५. कलमख=पाप।

अजपा का अंग

१. कूरम को व्रत=कछुवा का अपने सब अंगों का सिकोड़ लेना; यहाँ इन्द्रियों को विषयों की ओर से अन्तर्मुखी कर लेने से अभिप्राय है।

बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय।
दया दया गुरदेव की, बिरला जानै कोय ॥२॥
हृदयकमल में सुरति धरि, अजप जपै जो कोय।
विमल ज्ञान प्रगटै तहाँ, कलमख डारै खोय ॥३॥
जहाँ काल अरु ज्वाल नहिं, सीत उस्न नहिं बीर।
दया परखि निजधामकूँ, पायो भेद गँभीर ॥४॥
पिय को रूप अनूप लखि, कोटि भान उँजियार।
दया सकल दुख मिटि गयो, प्रगट भयो सुखसार ॥५॥
अनंत भान उँजियार तहँ, प्रगटी अद्‌भुत जोत।
चकचौंधी सी लगति है, मनसा सीतल होत ॥६॥
बिन दामिन उँजियार अति, बिनघन परत फुहार।
मगन भयो मनुवाँ तहाँ, दया निहार निहार ॥७॥
जग परनामी है मृषा, तन-रूपी भ्रमकूप।
तू चेतन्न सरूप है, अद्‌भुत आनँदरूप ॥८॥
भोर भये गुरु ज्ञान सूँ, मिटी नींद अज्ञान।
रैन अविद्या मिटि गई, प्रगट्यो अनुभव-भान ॥९॥
चरनदास की कृपा तें, मन में उपज्यो चेत।
'दयाबोध' बरनन कियो, परमारथ के हेत ॥१०॥

विनयमालिका

दोहा

किस बिधि रीझत हौ प्रभू, का कहि टेरूँ नाथ।
लहर मेहर जबहीं करो, तबहीं होउँ सनाथ ॥१॥

---

४. उस्न=उष्ण, गरम।। ज्वाल=संसार का त्रिविध ताप; इस शब्द को 'ज़वाल' का अपभ्रंश मानकर इसका 'आफ़त' या 'झंझट' अर्थ भी किया गया है। बीर=भाई या सखी।

६. मनसा=मनोवृत्ति; हृदय।

८. परनामी=परिणामी; जो स्वभावतः सदा बदलता रहता है।

९. भोर=सवेरा

भवजल नदी भयावनी, किस विधि उतरूँ पार ।
साहिब मेरी अरज है, सुनिये बारम्बार ।।२।।

तुम ठाकुर त्रैलोक-पति, ये ठग बस करि देहु ।
दयादास आधीन की, यह बिनती सुनि लेहु ।।३।।

नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथव्रत दान ।
मात-भरोसे रहत है, ज्यों बालक नादान ।।४।।

लाख चूक सुत से परै, सो कछु तजि नहिं देह ।
पोष चुचुक ले गोद में, दिन दिन दूनो नेह ।।५।।

चकई कल में होत है, भान-उदय आनंद ।
दयादास के दृगन तें, पल न टरो ब्रजचंद ।।६।।

बड़े-बड़े पापी अधम, तरत लगी ना बार ।
पूँजी लगै कछु नंद की, हे प्रभु हमरी बार ।।७।।

तुमहीं सूँ टेका लगो, जैसे चन्द्र चकोर ।
अब कासूँ झंखा करौं, मोहन नंदकिसोर ।।८।।

कब को टेरत दीन भो, सुनौ न नाथ पुकार ।
की स्रवन ऊँचौ सुनो, की दीन्हों बिरद बिसार ।।९।।

तातें तेरे नाम की, महिमा अपरम्पार ।
जैसे किनका अनल को, सघन बनौ दे जार ।।१०।।

विनयमालिका

३. ठग=काम, क्रोध, लोभ आदि मनोविकारों से आशय है ।

५. चुचुक=चुमकारकर

६. कल=चैन

७. नंद का=श्रीकृष्ण के अभिभावक नंद बाबा; क्या मुझे तारने में तुम्हारे बाप की पूँजी खर्च होती है ?

८. टेका=टेक । झंखा=झींखना, कुढ़ना ।

९. बिरद=बाना; बड़ा नाम ।

पलटू साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अज्ञात

जन्म-स्थान—नगपुर जलालपुर (ज़िला फ़ैज़ाबाद)

जाति—काँदू बनिया

गुरु—गोविंद साहब

भेष—गृहस्थ; पीछे विरक्त

सत्संग-स्थान—अयोध्या

मृत्यु-संवत्—अज्ञात

काल—विक्रम की १९ वीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान।

बस, पलटू साहब का इतना ही, और यह भी बहुत-कुछ आनुमानिक इतिवृत्त मिलता है। जन्म-स्थान का परिचय भी इनके भाई पलटू-परसाद ने अपनी 'भजनावली' में दिया है, और वह इस प्रकार—

नंगा जलालपुर जन्म भयो है, बसे अवध के खोर।
कहैं पलटूपरसाद हो, भयो जगत में सोर॥
चार बरन को मेटिके, भक्ति चलाई मूल।
गुरु गोविंद के बाग में, पलटू फूलेउ फूल॥
सहर जलालपुर मूँड़ मुँड़ाया, अवध तुड़ी करधनियाँ।
सहज करै व्योपार घटहि में पलटू निर्गुन बनियाँ॥

ननपुर जलालपुर का ही उल्लेख अपने रचे दोहे में पलटूपरसाद ने नंगा जलालपुर के नाम से किया है। जन्म पलटू साहब का नगपुर जलालपुर में हुआ था. पर बाद में रहने लगे अयोध्या में। मूँड़ अपने गाँव में ही मुँड़ा लिया था, पर करधनी या जनेऊ अयोध्या में जाकर तोड़ा था। गुरु इनके गोविंद साहब थे, जो प्रसिद्ध संत भीखा साहब के शिष्य थे। गोविन्द साहब पहले पलटूदासजी के पुरोहित थे।

अयोध्या में पलटू साहब ने सत्संग स्थापित किया, और वहीं अपना चोला भी त्यागा। अयोध्या में इनकी दिन-दिन बढ़ती हुई कीर्ति को

देखकर मन्दिरों और अखाड़ों के वैरागी इनसे बहुत जलते थे। पर यह उनकी परवा नहीं करते थे, हमेशा अपनी मौज में मस्त रहते थे। जहाँ एक तरफ़ वैरागी और पण्डित इनसे जलते थे, तहाँ बड़े-बड़े सेठ और अमीर-उमरा इनके द्वार पर बड़ी-बड़ी भेंट लिये खड़े रहते थे। अपनी एक कुंडलिया में पलटू साहब कहते हैं :—

"लैलै भेंट अमीर नाम का तेज विराजा।
सब कोउ रगरैं नाक आइकै परजा राजा।।
सकलदार मैं नहीं, नीच फिर जाति हमारी।
गोड़ धोय षट करम बरन पीवैं लै चारी।।
बिन लसकर बिन फौज मुलुक में फिरी दुहाई।
जन-महिमा सतनाम आपु में सरस बड़ाई।।
सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गँभीर।
हाथ जोरि आगे मिलै लै-लै भेंट अमीर।।"

बानी-परिचय

पलटू साहब की बानी इलाहाबाद के बेलवेडियर प्रेस से तीन भागों में प्रकाशित हुई है। पहले भाग में कुण्डलियाँ हैं, दूसरे भाग में रेखते, झूलने, अरिल, कवित्त और सवैये, और तीसरे भाग में शब्द या पद और साखियाँ।

कुण्डलियाँ पलटू साहब की बहुत प्रसिद्ध हैं और बड़े मार्के की हैं, कई कुण्डलियाँ इन्होंने कबीरदास की साखियों पर भाष्यरूप में लिखी हैं, और कुछ कुण्डलियाँ लोकोक्तियों पर भी रची हैं।

इसी प्रकार झूलने और अरिल भी इनके खूब मस्तीभरे और जोरदार हैं।

शब्द भी इनके ऊँचे घाट के हैं। साखियाँ भी सीधे चोट करती हैं।

इनके कहने का ढंग कबीरदासजी से खूब मिलता है। यह वैसे ही निडर और फक्कड़ आलोचक थे, जैसेकि कबीर साहब।

और साधना-पक्ष में भी यह बहुत गहरे उतरे थे। ब्राह्मी स्थिति का इन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया था। अपने एक शब्द में अपनी गहरी एवं मधुरतम आत्मानुभूति का वर्णन यह परमार्थी बनिया, राम का मोदी, इस प्रकार कर रहा है–

"कौन करै बनियाई अब मोरे, कौन करै बनियाई।
त्रिकुटी में है भरती मेरी, सुखमन में है गादी।
दसवें द्वारे कोठी मेरी, बैठा पुरुष अनादी॥
इंगला पिंगला पलरा दूनौं, लागि सुरति की जोती।
सत्त सबद की डांडीं पकरौं, तौलों भरि भरि मोती॥
चाँद सुरज दोउ करैं रखवारी, लगी सत्त की ढेरी।
तुरिया चढ़िके बेचन लागा ऐसी साहिबी मेरी॥
सतगुरु साहिब किहा सिपारस, मिली राम-मोदियाई।
पलटू के घर नौबति बाजै, निति उठि होति सवाई॥"

इनकी बानी का सारा रंग और ढंग देखकर जो इनको दूसरा कबीर साहब कहा जाता है उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं, क्योंकि उसमें प्रायः वैसी ही स्पष्टवादिता, वैसी ही निर्भीकता, वैसी ही सरसता और लगभग वैसी ही शैली हम पाते हैं। भाषा भी अच्छी ज़ोरदार और सरल और सरस है।

आधार

१ पलटू साहब की बानी (पहला भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ पलटू साहब की बानी (दूसरा भाग)— ,, ,,
३ पलटू साहब की बानी (तीसरा भाग)— ,, ,,
४ उत्तरी भारत की संत-परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भण्डार, इलाहाबाद

पलटू साहब

कुण्डलियाँ

नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार ॥
कैसे उतरै पार पथिक बिस्वास न आवै।
लगै नहीं बैराग यार कैसेकै पावै ॥
मन में धरै न ज्ञान, नहीं सतसंगति रहनी।
बात करै नहिं कान, प्रीति बिन जैसे कहनी ॥
छूटि डगमगी नाहि, संत को वचन न मानै।
मूरख तजै बिवेक, चतुरई अपनी आनै ॥
पलटू सतगुरु सब्द का तनिक न करै बिचार।
नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार ॥१॥
साहिब वही फकीर है, जो कोइ पहुँचा होय ॥
जो कोइ पहुँचा होय, नूर का छत्र बिराजै।
सबर-तखत पर बैठि, तूर अठपहरा बाजै ॥
तम्बू है असमान, जमीं का फरस बिछाया।
छिमा किया छिड़काव, खुशी का मुस्क लगाया ॥
नाम खजाना भरा, जिकिर का नेजा चलता।
साहिब चौकीदार देखि इबलीसहुँ डरता ॥
पलटू दुनिया दीन में उनसे बड़ा न कोय।
साहिब वही फकीर है, जो कोइ पहुँचा होय ॥२॥
लहना है सतनाम का जो चाहै सो लेय ॥
जो चाहै जो लेय जायगी लूट औराई।
तुम का लुटिहौ यार, गाँव जब दहिहै लाई ॥

कुण्डलियाँ

१. यार=मित्र, परमात्मा। कान करै=ध्यान देकर सुने। डगमगी=अस्थिरता, दुविधा।

२. नूर=ज्ञान का अखंड प्रकाश। सबर=संतोष। तूर=बाजे, नौवत। मुस्क=मुश्क, कस्तूरी; इत्र। जिकिर=अध्यात्म-चर्चा। नेजा=भाला। इबलीस=शैतान।

३. लहना=लाभ, धन। औराई जायगी=खतम हो जायगी। मोट=गठरी। सितावी=जल्दी।

ताकै कहा गँवार, मोटभर बाँध सितावी।
लूट में देरी करै ताहि की होय खराबी॥
बहुरि न ऐसा दाँव, नहीं फिर मानुष होना।
क्या ताकै तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना॥
पलटू मैं ऊरिन भया, मोर दोस जिन देय।
लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय॥३॥

दीपक बारा नाम का, महल भया उँजियार॥
महल भया उँजियार, नाम का तेज बिराजा।
सब्द किया परकास, मानसर ऊपर छाजा॥
दसो दिसा भई सुद्ध, बुद्ध भई निर्मल साची।
छुटी कुमति की गाँठि, सुमति परगट होय नाची॥
होत छतीसो राग, दाग तिर्गुन का छूटा।
पूरन प्रगटे भाग, करम का कलसा फूटा॥
पलटू अँधियारी मिटी, बाती दीन्हीं बार।
दीपक बारा नाम का, महल भया उँजियार॥४॥

हाथ जोरि आगे मिलैं, लै-लै भेंट अमीर।
लै-लैं भेंट अमीर, नाम का तेज बिराजा।
सब कोउ रगरै नाक, आइकैं परजा राजा॥
सकलदार मैं नहीं, नीच फिर जाति हमारी।
गोड़ धोय षटकरम बरन पीवैं लै चारी॥
बिन लसकर बिन फौज मुलुक में फिरी दुहाई।
जन-महिमा सतनाम आपु में सरस बड़ाई॥
सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गँभीर।
हाथ जोरि आगे मिलैं लै-लैं भेंट अमीर॥५॥

---

४. बारा=जलाया। छाजा=शोभित हुआ। सुमति=शुद्ध बुद्धि। नाची=प्रफुल्लित हो गई। दाग=धब्बा, मैल। तिर्गुन=माया के तीन गुण सत्व, रज और तम। कलसा=घड़ा।

५. सकलदार=सुन्दर। गोड़...चारी=छहो कर्म करनेवाले और चारों वर्णों के लोग पैर धो-धोकर पीते हैं। दुहाई=अमल। गँभीर=महान्।

संत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास ॥
जैसे सहत कपास, नाय चरखी में ओटै ।
रूई घर जब तुनै हाथ से दोउ निभोटै ॥
रोम रोम अलगाय पकरिकै धुनिया धूनी ।
पिउनी नहँ दै कात, सूत ले जुलहा बूनी ॥
धोबी भट्टी पर धरी, कुन्दीगर मुगरी मारी ।
दरजी टुक-टुक फारि जोरिकै किया तयारी ॥
परस्वारथ के कारने दुख सहै पलटूदास ।
संत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास ॥६॥
क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत ॥
चाला जात बसंत, कंत ना घर में आये ।
धृग जीवन है तोर, कंत बिन दिवस गँवाये ॥
गर्व गुमानी नारि फिरै जोबन की माती ।
खसम रहा है रूठि, नहीं तू पठवै पाती ॥
लगै न तेरो चित्त, कंत को नाहिं मनावै ।
कापर करै सिंगार, फूल की सेज बिछावै ॥
पलटू ऋतु भरि खेलिले, फिर पछतावै अंत ।
क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत ॥७॥
ज्यों-ज्यों सूखै ताल है, त्यों-त्यों मीन मलीन ॥
त्यों-त्यों मीन मलीन, जेठ में सूख्यो पानी ।
तीनों पन गये बीति, भजन का मरम न जानी ॥

---

६. सासना=कष्ट । नाय=डालकर । तुनै=रुई के रेशे अलग-अलग करता है । धूनी=धुनकी । पिउनी=पूनी । नहँदै=बढ़े हुए नाखून में छेद करके उसमें से बारीक-से-बारीक सूत निकालकर ।

७. माती=मतवाली । खसम=स्वामी, परमपुरुष परमात्मा से तात्पर्य है । कापर=किसे रिझाने के लिए ।

८. ज्यों-ज्यों⋯मलीन=आशय है कि ज्यों-ज्यों शरीर जीर्ण-शीर्ण होता जाता है, त्यों-त्यों मन की वृत्ति उदास होती है, जैसे तालाब का पानी सूखने पर मछली व्याकुल

कँवल गये कुम्हिलाय, हंस ने किया पयाना।
मीन लिया कोउ मारि, ठाँव ढेला चिरहाना ॥
ऐसी मानुष-देह वृथा में जात अनारी।
भूला कौल करार, आपसे काम बिगारी ॥
पलटू बरस औ मास दिन, पहरघड़ी पल छीन।
ज्यों-ज्यों सूखै ताल है, त्यों-त्यों मीन मलीन ॥८॥

पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय ॥
आपुइ गई हिराय, कवन अब कहै सँदेसा।
जेकर पिय में ध्यान, भई वह पिय के भेषा ॥
आगि माहिं जो परै, सोउ अग्नी ह्वै जावै।
भृंगी कीट को भेंट आपुसम लेइ बनावै ॥
सरिता बहिकैं गई, सिंध में रही समाई।
सिव सक्ती के मिले नहीं फिर सक्ती आई ॥
पलटू दिवाल कहकहा, मत कोउ झाँकन जाय।
पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय ॥९॥

सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं ॥
सहज आसिकी नाहिं, खाँड खाने को नाहीं।
झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहीं ॥

हो जाती है। कँवल गये कुम्हिलाय=आशय यह कि इन्द्रियाँ थकित हो गईं। हंस=जीव। ढेला चिहराना=पानी सूख जाने पर तली फटकर मिट्टी का थक्का बन गया। अनारी=अनाड़ी, मूर्ख। भूला कौल-क़रार=गर्भवास में हरिभजन करने का जो प्रण किया था उसे भूल गया।

९. हिराय गई=खो गई, तदाकार हो गईं। भेषा=रूप। कहकहा दिवाल=चीन देश की पन्द्रह सौ मील लम्बी, पच्चीस फुट ऊँची और इतनी ही चौड़ी दीवार जिसे असल में मंगोल जातियों के हमले को रोकने के लिए बनवाया गया था, पर जिसके विषय में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि उसपर चढ़कर दूसरी ओर झाँकने से परिस्तान दीख पड़ता है और उसे देखकर इतना अधिक आनन्द होता है कि देखनेवाला हठात् उसपर से कूद पड़ता है और वहाँ लापता हो जाता है।

जीते-जी मरि जाय, करै ना तन की आसा।
आसिक का दिनरात रहै सूली पर बासा॥
मान बड़ाई खोय नींदभर नाहीं सोना।
तिलभर रक्त न माँस, नहीं आसिक को रोना॥
पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं।
सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं॥१०॥

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहि॥
खाला का घर नाहिं, सीस जब धरै उतारी।
हाथपाव कटि जाय, करै ना संत करारी॥
ज्यों-ज्यों लागैं घाव, तेहुँ-तेहुँ कदम चलावै।
सूरा रन पर जाय, बहुरि ना जियता आवै॥
पलटू ऐसे घर महैं, बड़े मरद जे जाहिं।
यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं॥११॥*

लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम॥
और बिगाड़ैं काम, साइत जनि सोधैं कोई।
एक भरोसा नाहिं कुसल कहुवाँ से होई॥
जेकरे हाथैं कुसल ताहिको दिया बिसारी।
आपन इक चतुराइ बीच में करै अनारी॥
तिनका टूटैं नाहि बिना सतगुरु की दाया।
अजहूँ चेत गँवार, जगत है झूठी काया॥

---

१०. सहज=आसान। आसिकी=प्रेम लगाना। बेकूफ़=बेवकूफ़, मूर्ख।

११. खाला का घर=मौसी का घर, ऐसी जगह जहाँ बिना मेहनत के आसानी से चाहे जब चले गये। करारी=कराह; इनकार। कदम चलावै=आगे बढ़ता जाता है।

१२. साइत=शुभ मुहूर्त। एक भरोसा नाहिं=एक परमात्मा पर विश्वास नहीं है। जेकर=जिसके। दाया=दया, कृपा।

*कबीरदासजी की प्रसिद्ध साखी—"यह तौ घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं—" पर यह कुण्डलियाँ रची गई हैं।

पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।
लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम ॥१२॥
सोई सती सराहिए, जरै पिया के साथ॥
जरै पिया के साथ, सोइ है नारि सयानी।
रहै चरन चित लाय एक से और न जानी॥
जगत करै उपहास, पिया का संग न छोड़ै।
प्रेम की सेज बिछाय, मेहर की चादर ओढ़ै॥
ऐसी रहनी रहै तजै जो भोग-बिलासा।
मारै भूख-पियास याद सँग चलती स्वासा॥
रैन-दिवस बेहोस पिया के रंग में राती।
तन की सुधि है नाहिं पिया संग बोलत जाती॥
पलटू गुरु-परसाद से किया पिया को हाथ।
सोई सती सराहिये, जरै पिया के साथ॥१३॥
तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर॥
अपनी आप निबेर, छोड़ि गुड़ विष को खावै।
कूवाँ में तू परै, और को राह बतावै॥
औरन को उँजियार, मसालची जाइ अँधेरे।
त्यों ज्ञानी की बात मया से रहते घेरे॥
बेचत फिरै कपूर आप तो खारी खावै।
घर में लागी आग दौरिके घूर बुतावै॥
पलटू यह साँची कहै, अपने मन का फेर।
तुझे पराई क्या परी, अपनी ओर निबेर॥१४॥*

---

१३. बेहोश=सांसारिक सुखों की ओर से अचेत। परसाद=प्रसाद, कृपा। हाथ किया=वश में कर लिया।

१४. निबेर=सुलझाना, निबटाना। मया=माया। खारीं=खड़िया मिट्टी। घूर=कूड़े का ढेर। बुतावै=बुझाता। है

* कबीरदासजी की साखी—"तुझे पराई क्या परी"—पर यह कुंडलिया रची गई है।

पलटू नीच से ऊँच भा, नीच कहै ना कोय ।।
नीच कहै ना कोय, गये जब से सरनाई ।
नारा बहिकै मिल्यो गंग में गंग कहाई ।।
पारस के परसंग, लोह से कनक कहावै ।
आगि माँहै जो परै, जरै आगई होइ जावै ।।
राम का घर है बड़ा, सकल ऐगुन छिपि जाई ।
जैसे तिल को तेल फूल सँग बास बसाई ।।
भजन केर परताप तें, तन मन निर्मल होय ।
पलटू नीच से ऊँच भा, नीच कहै ना कोय ।।१५।।

मन मिहीन कर लीजिये, जब पिउ लागै हाथ ।।
जब पिउ लागै हाथ नीच ह्वै सब से रहना ।
पच्छापच्छी त्यागि ऊँच बानी नहिं कहना ।।
मान बड़ाई खोय खाक में जीते मिलना ।
गारी कोउ दै जाय छिमाकरि चुपके रहना ।।
सबकी करै तारीफ, आपको छोटा जानै ।
पहिले हाथ उठाय सीस पर सबकी आनै ।।
पलटू सोइ सुहागनी, हीरा झलकै माथ ।
मन मिहीन कर लीजिये जब पिउ लागै हाथ ।।१६।।

पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर ।।
मुवा मुसाफिर प्यास, डोर औ लुटिया पासै ।
बैठ कुवाँ की जगत, जतन बिनु कौन निकासै ।।
आगे भोजन धरा थारि में खाता नाहीं ।
भूख भूख करै सोर, कौन डारै मुखमाहीं ।।

---

१५. नारा=नाला । ऐगुन=अवगुण, दोष ।

१६. मिहीन=क्षीण, सूक्ष्म, अत्यन्त संयत । नीच=नम्र । पच्छापच्छी=अपना पक्ष और दूसरे का पक्ष; वादविवाद । ऊँच बानी=आवेश या क्रोधपूर्ण वाणी । सीस...... आनै=सिर झुकाकर प्रणाम करे । पिउ लागै हाथ=प्रियतम वश में हो ।

दीया बाती तेल, आगि है नाहिं जरावै।
खसम खोया है पास, खसम को खोजन जावै॥
पलटू डगरा सूध, अटकिकै परता गिर-गिर।
पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर॥१७॥

संत-चरन को छोड़िकै पूजत भूत बैताल॥
पूजत भूत बैताल मुए पर भूतइ होई।
जेकर जहवाँ जीव, अन्त को होवै सोई॥
देव पितर सब झूठ, सकल यह मन की भ्रमना।
यही भरम में पड़ा, लगा है जीवन-मरना॥
देई-देवा सेइ परमपद केहिने पावा।
भैरों दुर्गा सीव बाँधिकैं नरक पठावा॥
पलटू अंत घसीटिहै, चोटी धरि धरि काल।
संत-चरन को छोड़िकै, पूजत भूत बैताल॥१८॥

जैसे नदी एक है, बहुतेरे हैं घाट॥
बहुतेरे हैं घाट, भेद भक्तन में नाना।
जो जेहि संगत परा, ताहिके हाथ बिकाना॥
चाहै जैसी करै भक्ति, सब नामहिं केरी।
जाकी जैसी बूझ, मारग सो तैसी हेरी॥
फेर खाय इक गये, एक ठौ गये सिताबी।
आखिर पहुँचे राह, दिना दस भई खराबी॥
पलटू एकै टेक ना, जेतिक भेष तै बाट।
जैसे नदी एक है बहुतेरे हैं घाट॥१९॥

---

१७. मुआ=मर गया। थारि=थाली। डगरा=रास्ता। सूद=सीधा।

१८. देई=देवी। सीव=शिव। बैताल=इस शब्द का अर्थ भाट या बन्दी होता है, पर यहाँ इसका प्रयोग प्रेत के अर्थ में हुआ है।

१९. ताहि के हाथ बिकाना=उसी संत-मत का हो गया। बूझ=बुद्धि। हेरी=खोज लिया। फेरि=चक्कर। सितावी=जल्दी। तै=उतनी।

लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठि बाढ़त रार ॥
नित उठि बाढ़त रार, काहिको सरबरि कीजै ।
तजिये ऐसा संग, देस चलि दूसर लीजै ॥
जीवन है दिन चारि, काहे को कीजै रोसा ।
तजिये सब जंजाल, नाम कै करौ भरोसा ॥
भीख माँगि बरु खाय, खटपटी नीक न लागै ।
भरी गौन गुड़ तजै, तहाँ से साँझै भागै ॥
पलटू ऐसन बूझिकै डारि दिहा सिर भार ।
लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठि बाढ़त रार ॥२०॥
जल पषान को छोड़िकै पूजौ आतमदेव ।
पूजौ आतमदेव, खाय औ बोलै भाई ।
छाती दैकैं पाँव पथर की मुरत बनाई ॥
ताहि धोय अन्हवाय बिंजन लै भोग लगाई ।
साच्छात भगवान द्वार से भूखा जाई ॥
काह लिये बैराग, झूँठ कैं बाँधैं बाना ।
भाव-भक्ति को मरम कोइ है बिरले जाना ॥
पलटू दोउ कर जोरिकैं गुरु संतन को सेव ।
जल पषान को छोड़िकै पूजौ आतमदेव ॥२१॥

झूलना

बोलु हरि-नाम तू छोड़िदे काम सब,
सहज में मुक्ति होइ जाय तेरी ।

---

२०. रार=झगड़ा । सरवरि=बराबरी, सामना । रोसा=रोष, क्रोध । नाम कै=रामनाम का । बरु=चाहे । गौन=खुर्जी, बोरा । साँझइ भागै=शाम को ही चलदे, एक रात भी न ठहरे ।

२१. पषान=पाषाण, पत्थर की मूर्तियाँ । जल=गंगा, गोदावरी आदि नदियाँ । बाना=भेष ।

झूलना

१. छोड़िदे काम सब=सारी वासनाओं को त्यागदे । फेरी=चक्कर । बिलम=

दाम लागै नहीं काम यह बड़ा है,
सदा सतसंग में लाउ फेरी ॥
बिलम ना लाइकै डारि सिर भार को,
छोड़ि दे आस संसार केरी ॥
दास पलटू कहै यही सँग जायगा,
बोलु मुख राम यह अरज मेरी ॥१॥

पूरब में राम है पच्छिम खुदाय है,
उत्तर औ दक्खिन कहो कौन रहता ?
साहिब वह कहाँ है, कहाँ फिर नहीं है,
हिन्दू और तुरुक तोफान करता ॥
हिन्दू और तुरक मिलि परे हैं खैंचि में,
आपनी बर्ग दोउ दीन बहता ।
दास पलटू कहै, साहिब सब में रहै,
जुदा ना तनिक, मैं साँच कहता ॥२॥

जाहि तन लगी है सोइ तन जानिहै,
जानिहै वही सतसंग-बासी ।
कोटि औषधि करै बिरह ना जायगा,
जाहि के लगी है बिरहगाँसी ॥
नैन झरना बन्यौ, भूख ना नींद है,
परी है गले बिच प्रेम-फाँसी ।
दास पलटू कहै, लगी ना छूटिहै,
सकल संसार मिलि करै हाँसी ॥३॥

होय रजपूत सो चढ़ै मैदान पर,
खेत पर पाँच पच्चीस मारै ।

विलम्ब, देर ।

२. तोफान=झगड़ा । खैचि=खींचतान ।

३. गाँसी=तीर या बर्छी का फल ।

काम औ क्रोध दुइ दुष्ट ये बड़े हैं,
ज्ञान के धनुष से इन्हैं टारैं ॥
कूद परि जायकै कोट काया मँहै,
आगि लगाय के मोह जारैं ।
दास पलटू कहै सोइ रजपूत है,
लेहि मन जीति तब आपु हारैं ॥४॥

राज तन में करैं, भक्ति जागीर लैं,
ज्ञान से लरैं रजपूत सोई ।
छमा-तलवार से जगत को बसि करैं,
प्रेम की जुज्झ मैदान होई ॥
लोभ औ मोह हंकार दल मारिकै,
काम औ क्रोध ना बचैं कोई ।
दास पलटू कहै तिलकधारी सोई,
उदित तिहुँ लोक रजपूत सोई ॥५॥

गाय-बजायके काल को काटना,
और की सुनैं कछु आपु कहना ।
हँसना-खेलना बात मीठी कहै,
सकल संसार को बस्सि करना ॥
खाइये-पीजिये मिलैं सो पहिरिये,
संग्रह औ त्याग में नाहिं परना ।
बोलु हरिभजन को मगन ह्वै प्रेम से,
चुप्प जब रहौ तब ध्यान धरना ॥६॥

---

४. टारैं=मारकर फेंकदे । आपु हारैं=अपने आपको कुर्बान करदे ।

५. जुज्झ=युद्ध । अहंकार । तिलकधारी=वह राजा जिसे राजतिलक हुआ है । उदित=उजागर ।

६. बस्सि करना=वश में कर लेना । संग्रह औ त्याग में नाहिं परना=संग्रह और त्याग दोनों के ही झगड़े में न पड़ सहजवृत्ति से रहे ।

सुन्दरी पिया की पिया को खोजती,
भई बेहोस तू पिया कै कै।
बहुत-सी पदमिनी खोजती मरि गईं,
रटत ही पिया पिया एक एकै॥
सती सब होति हैं जरत बिनु आगि से,
कठिन कठोर वह नाहिं झाँकै।
दास पलटू कहै सीस उतारिकै,
सीस पर नाचु जो पिया ताकै॥७॥

पूरब ठाकुरद्वारा पच्छिम मक्का बना,
हिन्दू औ तुरुक दुइ ओर धाया।
पूरब मूरति बनी, पच्छिम में कबुर है,
हिन्दू औ तुरुक सिर पटकि आया॥
मूरति औ कबुर ना बोलै ना खाय कछु,
हिन्दू औ तुरुक तुम कहा पाया।
दास पलटू कहै पाया तिन्ह आपमें,
मूए बैल ने कब घास खाया॥८॥

सील की अवध, सनेह का जनकपुर,
सत्त की जानकी ब्याह कीता।
मनहिं दुलहा बने आपु रघुनाथजी,
ज्ञान के मौर सिर बाँधि लीता॥
प्रेम-बारात जब चली है उँमगिकै,
छिमा बिछाय जनवाँस दीता।

---

७. कै कै=कह-कहकर, रट-रटकर। पदमिनी=सुन्दरी स्त्रियाँ, यहाँ जीवात्माओं से आशय है। झाँकै=ध्यान देती है। ताकै=खोजै।

८. कबुर=रसूल की कब्र।

९. कीता=किया। बाँधिलीता=बाँध लिया। मौर=ताड़पत्र और फूलों का मुकुट जिसे वर विवाह में अपने सिरपर पहनता है। जनवाँस=जनवासा, बारात का डेरा। दीता=दिया।

भूप अहंकार के मान को मर्दिकै,
थीरता-धनुष को जाय जीता ॥९॥

बाह्मन तो भये जनेउ को पहिरि कै,
बाह्मनी के गले कुछ नाहिं देखा।
आधी सूद्रिनि रहै घरै के बीच में,
करै, तुम खाहु यह कौन लेखा॥
सेख की सुन्नति से मुसलमानी भई,
सेखानी को नाहिं तुम कहौ सेखा।
आधी हिन्दुइन रहै वरै के बीच में,
पलटू अब दुहुन के मारु मेखा ॥१०॥

तुरुक लै मुर्दा को कब्र में गाड़ते,
हिन्दू लै आग के बीच जारैं।
पूरब वै गये हैं वै पच्छूँ को,
दोऊ बेकूफ ह्वै खाक टारैं॥
वै पूजैं पत्थर को, कबर वै पूजते,
भटककै मुए दै सीस मारैं।
दास पलटू कहै, साहिब है आपमें,
आपनी समझ बिनु दोउ हारैं ॥११॥

सन्तन के बीच में टेढ़ रहैं,
मठ बाँधि संसार रिझावते हैं।
दस बीस सिष्य परमोधि लिया,
सबसे वह गोड़ धरावते हैं॥

---

१०. करै तुम खाहु=वह रसोई बनाती है और तुम खाते हो। सुन्नति=खतना; मुसलमानी संस्कार जिसमें मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग का कुछ चमड़ा काट देते हैं। मारु मेखा=खतम करदे।

११. पच्छूँ=पश्चिम। मुए दै सीस मारैं=बेजान के आगे माथा टेकते हैं।

१२. टेढ़=ऐंठ से। बाँधि=बनाकर। परमोधि लिया=प्रबोध करा दिया; ज्ञान की

सन्तन की बानी काटिके, जी।
जोरि-जोरिकै आपु बनावते हैं॥
पलटू कोस चारि-चारि के गिर्द में, जी।
सोइ चक्रवर्ती कहलावते हैं॥१२॥
सच्चे साहिब के मिलने को,
मेरा मन लीहा बैराग है, जी।
मोह-निसा में मैं सोइ गई,
चौंक परी उठि जाग है, जी॥
दोउ नैन बने गिरि के झरना,
भूषन बसन किया त्याग है, जी।
पलटू जीयत तन त्यागि दिया,
उठी बिरह की आगि है, जी॥१३॥
साहिब के दास कहाय यारो,
जगत की आस न राखिये, जी।
समरथ स्वामी को जब पाया,
जगत से दीन न भाखिये, जी॥
साहिब के घर में कौन कमी,
किस बात को अंतै आखिये, जी।
पलटू जो दुख सुख लाख परै,
वहि नाम-सुधा-रस चाखिये, जी॥१४॥
घर घर से चुटकी माँगि के, जी।
छुधा कौ चारा डारि दीजै॥
फूटा इक तुम्बा पास राखौ,
ओढ़न को चादर एक लीजै॥

कुछ बातें समझादीं। गोड़ धरावते हैं=पैर पुजाते हैं।

१३. लीहा=लिया, धारण किया।

१४. दीन=दीनता के वचन। अंतै=दूसरी जगह या द्वार पर। आखिये=कहे।

१५ चुटकी=मुट्ठीभर भीख। चारा=दाना। महजित=मस्जिद। पीजै=पीता रहे।

हाट बाट महजित में सोय रहौ,
दिनरात सतसंग का रस पीजै।
पलटू उदास रहौ जक्त सेती,
पहिले बैराग यहि भाँति कीजै ॥१५॥

जब मैं नाहीं, तब वह आया,
मैं, ना वह, यह कौन मानै।
गूँगे ने गुड़ खाइ लिया,
जबान बिना क्या सिफत आनै।
दरियाव औ लहर तो दोय नाहीं,
समा औ रोसनी कौन छानै।
पलटू भगवान की गती न्यारी,
भगवान की गति भगवान जानै ॥१६॥

अरिल्ल

ऋद्धि सिद्धि से बैर, सन्त दुरियावते।
इन्द्रासन बैकुण्ठ बिष्ठा सम जानते ॥
करते अबिरल भक्ति, प्यास हरिनाम की।
अरे हाँ, पलटू संत न चाहैं मुक्ति तुच्छ केहिं काम की ॥१॥

आगम कहैं न सन्त, भड़ेरिया कहत हैं।
सन्त न औषध देत, बैद यह करत हैं ॥
झार फूँक ताबीज ओझा को काम है।
अरे हाँ, पलटू संत रहित परपंच राम को नाम है ॥२॥

सेती=ओर से। सिफत आवै=गुण या स्वाद कहे।

१६. समा=शमा, ज्योति। छानै=अलग-अलग करे।

अरिल्ल

१. दुरियावते=ठुकरा देते हैं। अविरल=सघन, निरंतर।

२. आगम=भविष्य की बातें, होनहार। भड़ेरिया=भड्डरी। ओझा=सयाना।

करते बट्टा ब्याज कसब है जगत का।
माया में हैं लीन, बहाना भगति का॥
कहीं तनिक नहिं छुई गया बैराग है।
अरे हाँ, पलटू जनमें पूत कपूत लगाया दाग है॥३॥

पगरी धरी उतारि टका छह सात का।
मिला दुसाला आय रुपैया साठ का॥
गोड़ धरे कछु देहि मुँड़ाये मूँड़के।
अरे हाँ, पलटू ऐसा है रुजगार कीजिये ढूँढ़िके॥४॥

मसक्कत ना ह्वै सकी मुँड़ाया मूँड़ तब।
सेंति-मेंति में खाय मिला औसान अब॥
तब नागा ह्वै लिहिन, रहे ना काम के।
अरे हाँ, पलटू मारि-पीटिके खाहिं सो बेटा राम के॥५॥

करामाति नट-खेल अन्त पछितायगा।
चटक-मटक दिन चारि, नरक में जायगा॥
भीर-भार से सन्त भागिके लुकत हैं।
अरे हाँ, पलटू सिद्धाई को देखि सन्तजन थुकत हैं॥६॥

भूलि रहा संसार काँच की झलक में।
बनत लगा दस मास, उजाड़ा पलक में॥
रोवनवाला रोया आपनि दाह से।
अरे हाँ, पलटू सब कोइ छेंके ठाढ़, गया किस राह से॥७॥

---

३. कसब=धंधा, व्यापार। दाग=कलंक।

४. मुंड के मूँड़ाये=दीक्षा लेने के समय। गोड़ धरे=पैर पुजाने में। ढूँढ़िके= प्रयत्न करके।

५. ह्वै लिहिन=हो लिये, बन गये।

६. भीरभार=भीड़-भाड़। लुकत हैं=छिपते हैं। सिद्धाई=करामात दिखाने की कला से तात्पर्य है। थुकत=थूकते हैं, तुच्छ समझते हैं।

७. काँचि की झलक=दर्पण में की परछाइँ। छेंके ठाढ़=खड़े सब रोके रहे।

कच्चा महल उठाय, कच्चा सब भवन है।
दस दरवाजा बीच झाँकता कवन है॥
कच्ची रैयत बसै, कच्ची सब जून है।
अरे हाँ, पलटू निकरि गया सरदार, सहर अब सून है॥८॥

हाथ गोड़ सब बने, नाहिं अब डोलता।
नाक कान मुख ओहि, नाहिं अब बोलता॥
काल लिहिसि अगुवाय, चलै ना जोर है।
अरे हाँ, पलटू निकरि गया असवार, सहर में सोर है॥९॥

आया मूठी बाँधि, पसारे जायगा।
छूछा आवत जात, मार तू खायगा॥
किते बिकरमाजीत साका बाँधि मरि गये।
अरे हाँ, पलटू रामनाम है सार सँदेसा कहि गये॥१०॥

टोप-टोप रस आनि मक्खी मधु लाइया।
इक लै गया निकारि सबै दुख पाइया॥
मोको भा बैराग ओहि को निरखिकै।
अरे हाँ, पलटू माया बुरी बलाय तजा मैं परखिकै॥११॥

फूलन सेज बिछाय महल के रंग में।
अतर फुलेल लगाय सुन्दरी संग में॥
सूते छाती लाय परम आनन्द है।
अरे हाँ, पलटू खबरि पूत को नाहिं काल को फन्द है॥१२॥

---

८. जून=पुराना। सरदार=जीव से आशय है। सून=सूना, खाली।

९. सब बने=सब वैसे के वैसे ही हैं। अगुवाय लिहिसि=आगे करके ले चला।

१०. छूछा=खाली हाथ, बिना सत्कर्मों की पूँजी के। बिकरमाजीत=विक्रमादित्य। साका बाँधि=संवत्‌रूपी कीर्ति-स्तंभ खड़ा करके।

११. टोप-टोप=बूँद-बूँद।

१२. सूते छाती लाय=हृदय से लगाकर सोये। पूत=बच्चा; मौज में मस्त मूढ़ मनुष्य से आशय है।

पहिले कबर खुदाय, आसिक तब हूजिये।
सिर पर कप्फन बाँधि, पाँव तब दीजिये॥
आसिक को दिनराति नाहिं है सोवना।
अरे हाँ, पलटू बेदर्दी मासूक दर्द कब खोवना॥१३॥

कडुवा प्याला नाम पिया जो, ना जरै।
देखा-देखी पिवै ज्वान सो भी मरै॥
धर पर सीस न होय, उतारै भुँइ धरै।
अरे हाँ, पलटू छोड़ै तन की आस सरग पर घर करै॥१४॥

देव पित्र दे छोड़ि जगत क्या करैगा।
चला जा सूधी चाल, रोइ सब मरैगा॥
जाति-बरन-कुल खोइ करौ तुम भक्ति को।
अरे हाँ, पलटू कान लीजिये मूँदि, हँसै दे जक्त को॥१५॥

केतिक जुग गये बीति माला के फेरते।
छाला परि गये जीभ राम के टेरते॥
माला दीजे डारि, मनै को फेरना।
अरे हाँ, पलटू मुँह के कहे न मिलै, दिलैं बिच हेरना॥१६॥

तीसो रोजा किया, फिरे सब भटकिकै।
आठों पहर निमाज मुए सिर पटकिकै॥
मक्के में भी गये, कबर में खाक है।
अरे, हाँ पलटू एक नबी का नाम सदा वह पाक है॥१७॥

---

१३. पाँव तब दीजिए=तब प्रेम-पंथ पर पैर रखे। मासूक=प्रेम-पात्र, प्रियतम।

१४. ज्वान=अभिमानी। धर=धड़; सीस=अहंता या खुदी से तात्पर्य है। भुइँ धरे=मिट्टी में मिलादे। सरग=ब्रह्मलोक; अधर।

१५. पित्र=पितर। हँसै दे जक्त को=जगत को हँसने दे, तू पर्वा न कर।

१६. टेरते=पुकारते हुए। मनै को फेरना=मन को ही मोड़ना है विषयों की ओर से। हेरना=ध्यान लगाकर देखना है।

१७. नबी=पैगम्बर। पाक=पवित्र।

डाँड़ी पकरे ज्ञान, छिमा कै सेर है।
सुरत सबद से तौल मनै का फेर है॥
भला-बुरा इक भाव निबाहै ओर है।
अरे हाँ, पलटू सन्तोष की करै दुकान महाजन जोर है॥१८॥
चलती चक्की देखि दिया मैं रोय है।
पीस गया संसार, बचा ना कोय है॥
अधबीचे में परा कोऊ ना निरबहा।
अरे हाँ, पलटू बचिगा कोऊ सन्त जो खूँटे लगि रहा॥१९॥
दुरमति जेहि माँ बसैं ज्ञान हर लेति है।
तुरत करत है नास बड़ा दुख देति है॥
तेजपुंज हर लेय बुद्धि बल भावना।
अरे हाँ, पलटू दुरमति बसै बिलाय गया है रावना॥२०॥

शब्द

चितावनी का अंग

कहवाँ से जिव आये, कहाँ समाने हो, साधो।
का देखि रहेउ भुलाय कहाँ लिपटाने हो, साधो॥
निर्गुन से जिव आये, सर्गुन समाने हो, साधो।
भूलि गये हरिनाम, माया लिपटाने हो, साधो॥

---

१८. डाँढी=तराजू। सेर=एक सेर का बाँट। सुरत=ध्यान, लय। फेर=दुविधा, संकल्प-विकल्प।

१९. निरबहा=साबित बचा। जो खूँटे लगि रहा=चक्की की खूँटी के पास जो अनाज था वह पिसने से बच गया। इसी प्रकार भगवान् के चरणों की शरण जिसने पकड़ली वह माया के चक्कर से बच गया।

२०. दुरमति=कुबुद्धि। बिलाय गया है रावना=रावण-जैसे प्रतापी राजा का भी नाम-निशान न रहा।

चितावनी का अंग

१. सर्गुन=सगुण। कौनिक=किस द्वार से। आलहि=ताजे या गीले। डँडिया=

आठ काठ कै पिंजरा, दस दरवाजा हो, साधो।
कौनिक निकसा प्रान, कौन दिसि भागा हो, साधो॥
रोवत घर की नारि केस-लट खोले हो, साधो।
आज मंदिर भयो सून, कहाँ गये राजा हो, साधो॥
आलहि बाँस कटाइन डँडिया फँदाइन हो, साधो।
पाँच पचीस बराती लेइ सब धाये हो, साधो॥
तीरे दिहिन उतारि, सकल नहवावैं हो, साधो।
करि सोरहो सिंगार, सबै जुरि आये हो, साधो॥
आलहि चँदन कटाइन, घेरि घर छाइन हो साधो।
लोग कुटुँम परिवार, दिहिन पहुड़ाई हो, साधो॥
लाइ दिहिन मुख आगि, काठ करि भारा हो, साधो।
पुत्र लिये कर बाँस सीस गहि मारा हो, साधो॥
चहुँ दिसि पवन झकोरै तरवर डोलै हो, साधो।
सूझत वार न पार, कौन दिसि जाना हो, साधो॥
हियवाँ नहिं कोइ आपन, जे से मैं बोलों हो, साधो।
जस पुरइन कर पात अकेला मैं डोलों हो, साधो॥
बिष बोयों संसार, अमृत कैसे पावौं हो, साधो।
पुरब जनम कर पाप दोस केहि लावौं हो, साधो॥
भौसागर की नदिया, पार कैसे पावौं हो, साधो।
गुरु बैठे मुख मोड़, मैं केहि गोहरावौं हो, साधो॥
जेहि बैरिन कर मूल ताहि हित मान्यो हो, साधो।
पलटूदास गुरु-ज्ञान सुनत अलगान्यो हो, साधो॥१॥
पाती आई मोरे पीतम की, साइँ तुरत बुलायो हो॥
इक अँधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती।
बाँह पकरि जम ले चले, कोइ संग न साथी॥

अर्थी। बराती=मुर्दा को ले जानेवाले। घर छाइन=चिता बनादी। पहुड़ाइ दिहिन=चिता पर लिटा दिया। हियवाँ=यहाँ; यमलोक में। पुरइन=कमल का पत्ता। गुहरावौं=पुकारूँ। अलगान्यो=मुक्त हो गया।

सावन की अँधियरिया, भादौं निज राती।
चौमुख पवन झकोरही, धड़कै मोरि छाती॥
चलना तौ हमैं जरूर है, रहना यहँ नाहीं।
का लैके मिलब हजूर से, गाँठी कछु नाहीं॥
पलटूदास जग आयके, नैनन भरि रोया।
जीवन जनम गँवायके, आपै से खोया॥२॥

कै दिन का तोरा जियना रे, नर चेतु गँवार॥
काची माटि कै घैला हो, फूटत नहिं बेर।
पानी बीच बतासा हो, लागै गलत न देर॥
धूआँ कौ धौरेहर हो, बारू कै भीत।
पवन लगे झरि जैहै हो, तृन ऊपर सीत॥
जस कागद कै कलई हो, पाका फल डार।
सपने कै सुख संपति हो, ऐसो संसार॥
घने बाँस का पिंजरा हो, तेहि बिच दस हो द्वार।
पंछी पवन बसेरू हो, लावै उड़त न बार॥
आतसबाजी यह तन हो, हाथे काल के आग।
पलटूदास उड़ि जैवहु हो, जब देइहि दाग॥३॥

बिरह का अंग

जेकरे अँगने नौरँगिया, सो कैसे सोवै हो।
लहर लहर बहु होय, सबद सुनि रोवै हो॥
जेकर पिय परदेस, नींद नहिं आवै हो।
चौंकि-चौंकि उठै जागि, सेज नहि भावै हो॥

---

२. निजराती=घोर अँधेरी रात। हजूर=स्वामी।

३. जियना=जीवन। घैला=घड़ा। बतासा=बुलबुला। धौरेहर=मीनार। सीत=सीथ, पके हुए अन्न का दाना। दाग देइहि=आग लगा देगा।

बिरह का अंग

१. नौरंगिया=परम विरहासक्ति। अमी=अमृत। अभरन=आभरण, गहने। देहु

रैन-दिवस मारै बान, पपीहा बोलै हो।
पिय पिय लावै सोर, सवति होइ डोलै हो॥
बिरहिन रहै अकेल, सो कैसेकै जीवै हो।
जेकरे अमी कै चाह, जहर कस पीवै हो॥
अभरन देहु बहाय, बसन धै फारौ हो।
पिय बिन कौन सिंगार, सीस दै मारौ हो॥
भूख न लागै नींद, बिरह हिये करकै हो।
माँग सेंदुर मसि पोंछ, नैन जल ढरकै हो॥
केकहैं करै सिंगार, सो काहि दिखावै हो।
जेकर पिय परदेस, सो काहि रिझावै हो।
रहै चरन चित लाइ, सोइ धन आगर हो।
पलटूदास कै सबद, बिरह कै सागर हो॥१॥

अब तो मैं बैरागभरी, सोवत से मैं जागि परी॥
नैन बने गिरि के झरना ज्यों, मुख से निकरै हरी हरी॥
अभरन तोरि बसन धै फारौं, पापी जिव नहिं जात मरी॥
लेउँ उसास सीस दैं मारौं, अगिनि बिना मैं जाऊँ जरी॥
नागिनि बिरह डसत है मोको, जात न मोसे धीर धरी॥
सतगुरु आइ किहिन बैदाई, सिर पर जादू तुरत करी॥
पलटूदास दिया उन मोको, नाम सजीवन मूल जरी॥२॥

प्रमबान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर॥
जोगिया कै लालि लालि अँखियाँ हो, जस कँवल कै फूल।
हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनों भये तूल॥

बहाय=फेंकदो। करकै=कसकता है, रह-रहकर पीड़ा देता है। मसि=अंजन, काजल। आगर=चतुर।

२. बैदाई=वैद्यक, रोग का उपचार।

३. चुनरिया=लाल रँगी साड़ी जिसके बीच में थोड़ी-थोड़ी दूर पर बुँदकियाँ होती हैं। तूल=तुल्य, एकसमान। मृगछलवा=मृगछाला, मृगचर्म। गुदरिया=गुदड़ी,

जोगिया कैं लेउँ मिर्गछलवा हो, आपन पट चीर।
दूनौं के सियब गुदरिया हो, होइ जाब फकीर॥
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।
चितवन में मन हर लियो हो, जोगिया बड़ चोर॥
गंग-जमुन के बिचवाँ हो, बहै झिरहिर नीर।
तेहिं ठैयाँ जोरल सनेहिया हो, हरि ले गयो पीर॥
जोगिया अमर मरै नहिं हो, पुजवल मोरी आस।
करम लिखा वर पावल हो, गावै पलटूदास॥३॥

प्रेम का अंग

जल औ मीन समान, गुरु से प्रीति जो कीजै॥
जल से बिछुरै तनिक एक जो, छोड़ि देति है प्रान।
मीन कँहै लै छीर में राखै, जल बिनु है हैरान॥
जो कछु है सो मीन के जल है, उहिके हाथ बिकान।
पलटूदास प्रीति करै ऐसी, प्रीति सोइ परमान॥१॥

उपदेश का अंग

मितऊ देहला न जगाय, निंदिया बैरिन भैली॥
की तो जागै रोगी, की चाकर की चोर।
की तो जागै संत बिरहिया, भजन गुरू कै होय॥
स्वारथ लाय सभै मिलि जागैं, बिन स्वारथ ना कोय।
परस्वारथ को वह नर जागै, किरपा गुरु की होय॥

कंथा। सिंगिया=तुरही, सींग का बाजा, जिसे योगीजन फूंककर बजाते हैं। गगना में=भँवरगुफा में। गंग जमुन के बिचवाँ=पिंगला और इड़ा नाड़ियों के बीच सुषुम्ना नाड़ी; इसीसे होकर कुंडलिनी शक्ति ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। इन तीनों नाड़ियों का ब्रह्मरंध्र में संगम हुआ है, जिसे योगी प्रयाग कहते हैं। ठइयाँ=स्थान। जोरल=जोड़ा। पुजवल=पूरी की।

प्रेम का अंग

१. कँहै=को। परमान=प्रमाणरूप, सत्य।

उपदेश का अंग

१. मितऊ=मित्र ने, प्रियतम ने। देहला न जगाय=जगा न दिया, चेताया नहीं।

जागे से परलोक बनतु है, सोये बड़ दुख होय ॥
ज्ञान-खरग लिये पलटू जागै, होनी होय सो सोय ॥१॥

को खोलै कपट-किवरिया हो, बिन सतगुरु साहिब ॥
नैहर में कछु गुन नहिं सीख्यो, ससुरे में भई फुहरिया हो
अपने मन की कुलवंती, छुए न पावै गगरिया हो ॥
पाँच पचीस रहै घंट भीतर, कौन बतावै डगरिया हो ।
पलटूदास छोड़ि कुल जतिया, सतगुरु मिले सँघतिया हो ॥२॥

साहिब से परदा का कीजै, भरि-भरि नैन निरखि लीजै ॥
नाचै चली घूँघट क्यों काढ़ै, मुख से अंचल टारि दीजै ॥
सती होय का सगुन बिचारै, कहि के माहुर क्या पीजै ॥
लोक-वेद तन-मन की डर है, प्रेम-रंग में क्या भीजै ॥
पलटूदास होय मरजीवा, लेहि रतन नहिं तन छीजै ॥३॥

चलहु सखी वहि देस, जहवाँ दिवस न रजनी ॥
पाप पुन्न नहिं चाँद सुरज नहिं, नहीं सजन नहिं सजनी ॥
धरती आग पवन नहिं पानी, नहिं सूतै नहिं जगनी ॥
लोक बेद जंगल नहिं बस्ती, नहिं संग्रह नहिं त्यगनी ॥
पलटूदास गुरू नहिं चेला, एक राम रम रमनी ॥४॥

वाचक ज्ञान का अंग

वाचक ज्ञान न नीका ज्ञानी, ज्यों कारिख का टीका ॥
बिनु पूँजी को साहु कहावै, कौड़ी घर में नाहीं ।
ज्यों चोकर कै लड्डू खावै, का सवाद तेहि माहीं ॥

विरहिया=विरही । लाय=के लिए ।

२. फुहरिया=फूहड़, अनाड़िन । डगरिया=डगर, रास्ता । जतिया=जात-गाँत । सँघतिया=साथी ।

३. माहुर=ज़हर । सूतैं=सोना ।

४. त्यगनी=त्याग । रमनी=जीवात्मा से तात्पर्य है ।

वाचक ज्ञान का अंग

१. वाचक=शाब्दिक, कथनीमात्र । सुवान=श्वान, कुत्ता । अहमक=मूर्ख । अमल=

ज्यों सुवान कुछ देखिकै भूँकै, तिसने तो कछु पाई ।
वाकी भूँक सुने जो भूँकै, सो अहमक कहवाई ।।
बातन सेती नहीं होइ राजा, नहिं बातन गढ़ टूटै ।
मुलुक मँहै तब अमल होइगा, तीर तुपक जब छूटै ।।
बातन से पकवान बनावै, पेट भरे नहिं कोई ।
पलटूदास करै सोइ कहना, कहे सेती क्या होई ।।१।।

मिश्रित शब्द

जहाँ कुमति कै बासा है, सुख सपनेहुँ नाहीं ।।
फोरि देति घर मोर तोर करि, देखै आपु तमासा है ।।
कलह काल दिन रात लगावै, करै जगत उपहासा है ।।
निर्धन करै खाये बिनु मारै, अछत अन्न उपवासा है ।।
पलटूदास कुमति है भोंड़ी, लोक परलोक दोउ नासा है ।।१।।
है कोइ सखिया सयानी, चलै पनिघटवा पानी ।।
सतगुरु घाट गहिर बड़ा सागर, मारग है मोरी जानी ।
लेजुरी सुरति सबद कै घैलन, भरहु तजहु कुलकानी ।।
निहुरिके भरै वयल नहिं फूटै, सो धन प्रेम-दिवानी ।
चाँद सुरुज दोउ अंचल सोहैं, बेसर लट अरुझानी ।।
चाल चलै जस मैगर हाथी, आठ पहर मस्तानी ।
पलटूदास झमकि भरि आनी, लोक-लाज ना मानी ।।२।।
माया तू जगत पियारी वे, हमरे काम की नाहीं ।
द्वारे से दूर हो लंडी रे, पइठु न घर के माहीं ।।

अधिकार ।

मिश्रित शब्द

१. फोरिदेति=फूट डाल देती है । कलहकाल=झगड़ा । अछत=होते हुए । भोंड़ी=दुष्ट ।

२. लेजुरी=रस्सी । घैलन=घड़ों से । निहुरिके=शील और विनय के साथ । चाँद सुरुज=इड़ा और पिंगला नाड़ी से आशय है । बेसर=सुषुम्ना नाड़ी से आशय है । मैगर=मतवाला । झमकि=उमंग से ठमककर ।

माया आपु खड़ी भइ आगे, नैनन काजर लाये।
नाचै गावै भाव बतावै, मोतिन माँग भराये॥
रोवै माया खाय पछारा, तनिक न गाफिल पाऊँ।
जब देखौं तब ज्ञान ध्यान में, कैसे मारि गिराऊँ॥
ऋद्धि सिद्धि दोउ कनक समाजी, बिस्नु डिगन को भेजा।
तीन लोक में अमल तुम्हारा, यह घर लगै न तेजा॥
तू क्या माया मोहिं नचावै, मैं हौं बड़ा नचनियाँ।
इहवाँ बानिक लगै न तेरी, मैं हौं पलटू बनियाँ॥३॥
पाप कै मोटरी बाह्मन भाई, इन सबही जग को बगदाई।
साइत सोधिकै गाँव बेढ़ावैं, खेत चढ़ायकै मूँड़ कटावैं।
रास वर्ग गन मूर को गाड़ी, घर कै बिटिया चौके राँड़ी।
और सभन को गरह बतावै, अपने गरह को नाहिं छुड़ावै।
मुक्ति के हेतु इन्हें जग मानै, अपनी मुक्ति कै मरम न जानै।
औरन को कहते कल्यान, दुख माँ आपु रहैं हैरान।
दूध-पूत औरन को देते, आप जो घर-घर भिच्छा लेते।
पलटूदास की बात को बूझै, अन्धा होय तेहुको सूझै॥४॥

साखी

गुरु का अंग

पलटू ऐना संत है, सब देखैं तेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुँह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं॥१॥

---

३. लंडी=लौंड़ी। लाए=लगाए हुए। डिगन=डिगाने व फँसाने को। तेजा=जोर। बानिक=दावँ।

४. बगदाई=भ्रम में डालकर बरवाद कर दिया। विढ़ावैं=नाश करें। रास...... राँडी=राशि, वर्ग, गण और मूल से जन्मपत्री को मिलाकर विवाह कराते है, पर कहाँ गया उनका ज्योतिप जव कि मण्डप के नीचे ही उनकी लड़की विधवा हो जाती है? गरह=ग्रह।

साखी

१. ऐना=आईना, दर्पण। सोझ=सीधा।

जो दिन गया सो जान दे, मूरख अबहूँ चेत।
कहता पलटूदास है, करिले हरि से हेत ॥२॥
पलटू नर-तन जातु है, सुन्दर सुभग सरीर।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुबीर ॥३॥
पलटू ऐसी प्रीति करु, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक-टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग ॥४॥
पलटू बाजी लाइहौं, दोऊ बिधि से राम।
जो मैं हारौं राम को, जो जीतौं तौ राम ॥५॥
लगा जिकर का बान है, फिकर भई छैकार।
पुरजे-पुरजे उड़ि गया, पलटू जीति हमार ॥६॥
बखतर पहिरे प्रेम का, घोड़ा है गुरुज्ञान।
पलटू सुरति कमान लै, जीति चले मैदान ॥७॥
सोइ सिपाही मरद है, जग में पलटूदास।
मन मारै सिर गिरि पड़ै, तन की करै न आस ॥८॥
पलटू हरिजन मिलन को, चलि जइये इक धाप।
हरिजन आये घर महैं, तो आये हरि आप ॥९॥
पलटू तीरथ को चला, बीच मां मिलिगे संत।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गइ मुक्ति अनंत ॥१०॥
सीस नवावै संत को, सीस बखानौं सोय।
पलटू जे सिर ना नवै, बेहतर कद्दू होय ॥११॥

---

४. मजीठ=पक्का लाल रंग।

५. लाइहौं=लगाऊँगा।

६. जिकर=नाम-स्मरण, सुरति, लय। छैकार=नष्ट।

७. बख्तर=कवच। कमान=धनुष।

९. धाप=टप्पा, एक साँस में जितना लम्बा दौड़ा जा सके; उमंग से उतावला होकर।

११. बखानौं=असल में उसीको कहता हूँ। कद्दू=कुम्हड़ा।

सुनिलो पलटू भेद यह, हँसि बोले भगवान ।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान ॥१२॥
बिन खोजे से ना मिलै, लाख करै जो कोय ।
पलटू दूध से दही भा, मथिबे से घिव होय ॥१३॥
गारी आई एक से, पलटे भई अनेक ।
जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक ॥१४॥
जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काम ।
पलटू तन करु देहरा, मन करु सालिगराम ॥१५॥
वृच्छा फरैं न आपको, नदी न अँचवै नीर ।
परस्वारथ के कारने, संतन धरैं सरीर ॥१६॥
बड़े बड़ाई में भुले, छोटे हैं सिरदार ।
पलटू मीठो कूप-जल, समुँद पड़ा है खार ॥१७॥
सब तीरथ में खोजिया, गहरी बुड़की मार ।
पलटू जल के बीच में, किन पाया करतार ॥१८॥
पलटू जहवाँ दो अमल, रैयत होय उजाड़ ।
इक घर में दस देवता, क्योंकर बसै बजार ॥१९॥
हिन्दू पूजैं देवखरा, मुसलमान महजीद ।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद ॥२०॥
कमर बाँधि खोजन चले, पलटू फिरै उदेस ।
षट दरसन सब पचि मुए, कोउ न कहा सँदेस ॥२१॥
खोजत गठरी लाल की, नहीं गाँठि में दाम ।
लोक-लाज तोड़ै नहीं, पलटू चाहै राम ॥२२॥

---

१५. देहरा=देव-मंदिर । सरा=पूरा होय ।

१६. अँचवै=पीती है ।

१८. बुड़की=डुबकी ।

१९. अमल=शासन, राज ।

२०. देवखरा=देवालय । दीद बरदीद=नज़र के सामने ।

२१. षटदरसन=छह शास्त्र ।

तुलसी साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१८१७ वि० (मतान्तर से संवत् १८४५)

जन्म-स्थान—अज्ञात

सत्संग-संवत्—हाथरस (उत्तर) के समीप जोगिया गाँव

भेष—विरक्त

मृत्यु-स्थान—१८९९ वि० (मतान्तर से सं० १९००, जेठ सुदी २)

तुलसी साहब का परिचय निश्चित रूप से कुछ भी नहीं मिलता है। इतना ही पता चलता है कि हाथरस के आसपास और दूर-दूर भी एक काला कंबल ओढ़े और हाथ में डंडा लिये यह चले जाया करते थे। यह एक अलमस्त पहुँचे संत थे।

इनके जीवन-परिचय के संबंध में यह कथा प्रचलित है कि पूना के पेशवा बाजीराव द्वितीय के यह बड़े भाई थे, और नाम इनका श्यामराव था। किन्तु वैराग्य का ऐसा गाढ़ा रंग चढ़ा कि पेशवाई का लोभ छोड़कर फकीरी का बाना ले लिया, और हाथरस में जाकर बैठ गये। यह भी कहा जाता है कि जब बाजीराव द्वितीय को सं० १८७६ में गद्दी से उतारकर बिठूर भेज दिया गया था, तब ४२ बरस बाद तुलसी साहब उनसे वहाँ जाकर मिले थे।

किन्तु इस कथा या प्रवाद के पीछे कोई ऐतिहासिक पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। बाजीराव के बड़े भाई का उल्लेख इतिहास-ग्रन्थों में अमृतराव के नाम से किया गया है, श्यामराम के नाम से नहीं। यह अमृतराव भी असल में रघुनाथराव पेशवा के दत्तक पुत्र थे।

तुलसी साहब के पूर्वजन्म की भी कथा इनकी 'घट रामायन' में मिलती है। उसके अनुसार पूर्वजन्म में 'रामचरित मानस' के रचयिता गोसाईं तुलसीदास यही थे। लिखा है कि 'घट रामायन' का लिखना इन्होंने संवत् १६१८ को आरम्भ किया था। पर उसमें प्रकट किये

गये इनके विचारों को तब काशी के पंडितों ने पसंद नहीं किया, और इनका भारी विरोध हुआ, इसलिए इन्होंने 'घट रामायन' को तब गुप्त कर दिया, और साधारण जनता के लिए 'रामचरित-मानस' रच दिया।

मालूम यह होता है कि तुलसी साहब के किसी 'बेहद भक्ति' से प्रेरित अनुयायी ने 'घट रामायन' में इस विचित्र कथा को पीछे से जोड़ दिया है। क्षेपक-जोड़कों के लिए ऐसा करना बहुत सहज है।

अपने रचे 'रत्नसागर' में कलियुग के प्रभाव का वर्णन करते हुए स्वयं तुलसी साहब ने गोसाईं तुलसीदास की रामायण को प्रमाण माना है। उन्होंने कहा है :—

'बड़ा कलूजुग सब कहैं संत वचन के मायँ।
रामायन के बाक में तुलसी कही बनाय॥'

प्रमाणरूप मे उन्होंने तुलसी-कृत रामायण (रामचरित-मानस) में से इस चौपाई को और इस दोहे को थोड़े-से पाठ-भेद के लाथ वहाँ उद्धृत भी किया है :—

'कलिकर एक पुन्न परतापू। मानस पुन्न होय नहिं पापू॥'
(शुद्ध पाठ—कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्न होहिं नहिं पापा॥)
'कलिजुग सम नहिं आन जुग, जो नर करै विश्वास।
नाम डारि गहि भव तरै, जा मन तुलसीदास॥'
(शुद्ध पाठ—कलिजुग सम जुग आन नहिं, जो करै नर विश्वास।)
गाइ रामगुनगन विमल, भव तर बिनहि प्रयास॥)

समझ में नहीं आता कि इस प्रकार की विचित्र कथाओं और क्षेपकों को जोड़कर भक्त अनुयायियों को आखिर क्या लाभ होता है।

तुलसी साहब एक ऊँची रहनी के संत थे, भगवद्विरह और भगवत्प्रेम में हर हमेश मस्त रहनेवाले। शब्दयोग के गहरे साधक थे। स्वभाव के बड़े फक्कड़ थे।

कहते हैं कि एक बार आप घूमते हुए एक धनाढ्य के दरवाजे पर पहुँचे। उसने बड़ा सत्कार किया, और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि, मुझे दया करके एक पुत्र बख्शा जाय। तुलसी साहब ने अपना सोंटा उठाया

और यह कहते हुए चल दिये कि 'संतों की दया तो यह है कि अगर उनके दास की औलाद मौजूद भी हो तो उसे उठालें, और अपने दास को निर्बन्ध करदें।'

तुलसी साहब का कोई गुरु नहीं था। पर सद्गुरु की तलाश में अथवा कहना चाहिए कि सद्गुरुरूप अपने 'स्वरूप' की ही तलाश में वे विरहातुर रहा करते थे, जैसा कि उनकी इस कड़ी से प्रकट होता है—

मिलै कोइ संत फिरौं तेहि लारे।'

बानी-परिचय

तुलसी साहब के रचनाओं के रूप में तीन ग्रन्थ मिले हैं—'घट रामायन' 'रत्न सागर' और 'शब्दावली'। ये तीनों ही ग्रन्थ बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में हमने 'शब्दावली' में से इनके कुछ मधुर पदों का संकलन किया है। कुछ दोहे 'रत्न सागर' में से भी लिये हैं। तुलसी साहब की अति सरस रचना 'शब्दावली' में ही मिलती है। ऐसी सरसता न 'घट रामायन' में मिलती है, न 'रत्न सागर' में ही। कभी-कभी तो पढ़ते-पढ़ते यहाँतक लगने लगता है कि कहीं ये कृतियाँ दो भिन्न संतों की रची तो नहीं हैं। पर ऐसी बात असल में है नहीं। 'घट रामायन' और 'रत्न सागर' में रूपकों और संवादों द्वारा वेदान्त और योग का जिस शैली में निरूपएा किया गया है, वह स्वभावतः वैसी सरस हो नहीं सकती। अन्य अनेक संतों और कवियों की रचनाओं में भी बहुधा इसी प्रकार का अंतर देखा गया है। मुक्तक पदों में जहाँ रस-व्यंजना का मुक्त क्षेत्र कवि को मिलता है तहाँ प्रबन्धात्मक रूपकों और संवादात्मक निरूपएों से रस की धारा स्वतः अवरुद्ध-सी हो जाती है। विरह और प्रेम के पद इनके बड़े ही मर्मभरे और सरस हैं, वहाँ की जगमग ज्योति का और मुरली की अनहद तान का वर्णन बड़ा ही सरस इन्होंने किया है।

रेखते, गजलें, अरिल, कुंडलियाँ, झूलने, सवैये, कवित्त, लावनी, पश्तो आदि कितने ही छन्दों में तुलसी साहब ने सरस रचना की है। पद तो अनेक रागों में हैं ही।

भाषा मीठी और जोरदार है। फ़ारसी शब्दों का भी इन्होंने कितने ही पदों और दूसरे छंदों के बहुलता से प्रयोग किया है।

आधार

१ तुलसी साहब की शब्दावली—वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

२ घट रामायन (दोनों भाग)— " "

३ रत्न-सागर— " "

४ उत्तरी भारत की संत-परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, इलाहाबाद

तुलसी साहब

शब्द

कोइ सतगुर देव री बताइ, चरन गहूँ ताहिके ॥
चहुँ दिसि ढूँढ़ि फिरी कोइ भेदी, पूछत हौं गुहराइ।
उनसे कहूँ बिथा सब अपनी, केहि बिधि जीव जुड़ाइ ॥
जो कोइ सखी सुहागिन होवै, कहे तन तपन बुझाइ।
पिउ की खोल खबर कहै मोसे, मरूँ री विकल कर हाइ ॥
जो न्यामत दुनिया दौलत की, सो सब देउँ बहाइ।
बारम्बार वार तन डारूँ, यह कहा मोल बिकाइ ॥
बिन स्वामी सिंगार सुहागिन, लानत तोबा ताइ।
पिय बिन सेज बिछावे ऐसी, नारि मरै विष खाइ ॥
सतगुरु बिरहिन बान कलेजे, रोवै औ चिल्लाइ।
हाय हाय हिये में निसबासर, हरदम पीर पिराइ ॥
इह झुंड में कोइ पाक पियारी, पिया-दुलारी आहि।
मैं देखिया हौं दर्द-दिवानी, प्रीतम-दरस लखाहि ॥

शब्द

१. गुहराइ=पुकारकर। जुड़ाइ=ठंडा हो, शान्ति मिले। लानत=धिक्कार। तोबा=तौबः; यहाँ पर घृणा प्रकट करने के अर्थ में प्रयोग हुआ है। ताइ=उसको। पिराइ=कसकती हैं। पाक=पवित्र, सती।

तुलसी प्यास तौ बुझै प्यार से, चढ़ घर अधर समाइ ।
किरपावंत संत समझावैं, और न लगै उपाइ ॥१॥
प्यारे पिया पैहौं कौने भेस, मैं तो हारी ढूँढ़ि सारा देस ।
जोग-जुगति जोगी ठगे, ब्रह्मा विस्नु महेस ।
बेद-बिधी बंधन भये, देव मुनी औ सेस ॥
ब्रह्मचार बैराग लौ, संन्यासी दुरवेस ।
परमहंस बेदांत को पढ़ि भाषत ब्रह्म नरेस ॥
तीरथ बरत अन्हान को, चार बरन परवेस ।
काल करम करता करै, बाँधे जम धर केस ॥
जगत-जाल-जंजाल से, कोइ नहिं पावत पेस ।
मैं सतगुर सरना लिया, तुलसी सकल तजि ऐस ॥२॥

ग़ज़ल

तेरा है यार तेरे तन के माईं ।
कहते सब संत साध सास्तर भाई ॥
पूजन आतम आदि सबने गाई ।
भूखे को देख दीन देना जाई ॥
तुलसी यह तत्त मत्त चीन्हें नाहीं ।
चीन्हे जिन भेद पाइ बूझे साईं ॥१॥
ऐ बेहोस प्यारे, तैं यार बिसारा ।
खिलकत का खेल जान सबै झूठ पसारा ॥
इक पल में फना होत देख जक्क असारा ।
यह नैनों से देख तेरा को है प्यारा ॥

---

२. दुरवेस=दरवेश, फकीर । परवेस=प्रवेश ; अधिकार । नरेस=त्रिलोक के नाथ से आशय है । धर केस=चोटी पकड़कर । पावत पेस=जीत सकता है । ऐस=ऐश, भोग-विलास ।

ग़ज़ल

१. माईं=अन्दर । सास्तर=शास्त्र । मत्त=मत, सिद्धान्त । बूझे=समझ लिया ।
२. यार=प्रियतम, परमात्मा । खिलकत=सृष्टि । फना=नष्ट । सेल=बरछा, भाला ।

तेरी तू आदि देख कहाँ से आया ।
उस यार को बिसारके लौ कहँको लाया ॥
हमने दिल बीच यार अंदर पाया ।
उस बिरहिन के तन में रोम-रोम में छाया ॥
वह मरती बेहाल पिया पिया पुकारै ।
तन मन में नहीं होस नहीं बदन निहारैं ॥
ऐसी बेहोस सूल सहै कटारी ।
जैसैं तन बीच सेल तेगा मारी ॥
ऐसी बिरहिन के बीच बिरह सँवारी ।
सोई बिरहिन तो लगी पिउ को प्यारी ॥
जिसका यह हाल सोई अधर सिधारी ।
तुलसी सो नारि भई जग से न्यारी ॥२॥

कुण्डलिया

सतगुर दीनदयाल बिन, जुग-जुग मारे जायँ ॥
जुग-जुग मारे जाँय, खायँ फिर जम की लाती ।
ऐसे मूरख लोग, चलैं वाही के साथी ॥
सुन-सुन कथा पुरान जानकर जनम बिगारा ।
सिम्रित सास्तर बेद काल ने किया पसारा ॥
तुलसी सतसँग संत बिन फिर-फिर खेही खायँ ।
सतगुर दीनदयाल बिन, जुग-जुग मारे जायँ ॥१॥
जग जग कहते जुग भये, जगा न एको बार ।
जगा न एको बार, सार कहु कैसे पावै ।
सोवत जुग-जुग भये, संत बिन कौन जगावै ॥

तेगा=खांडा । अधर=विना आधार का स्थान, शून्य पद ; निर्विकल्प समाधि की अवस्था । न्यारी=निराली ; अलौकिक ।

कुण्डलिया

१. लाती=लात, ठोकर । सिम्रित=स्मृति, धर्मशास्त्र । खेही खाय=धूल चाटते हैं ।

पड़े भरम के माहिं बंद से कौन छुड़ावै ।
जो कोइ कहै बिवेक ताहि की नेक न भावै ।।
तुलसी पंडित भेष से सब भूला संसार ।
जग जग कहते जुग भये, जगा न एको बार ।।२।।
तन पाये तत ना लखा, चखा न गुरपद-सार ।
चखा न गुरपद सार, पार कहु कैसे पावैं ।
जम के हाथ बिकाय, लिये चौरासी धावैं ।।
जुग-जुग भरमत जाय, काल से बाजी हारा ।
ऐसा जगत अचेत भरम में किया पसारा ।।
तुलसी सतगुर संत बिन करम न काटनहार ।
तन पाये तत ना लखा, चखा न गुरपद सार ।।३।।

झूलना

अरे, देख निहार बजार है रे, जगबीच न काम कोइ आवता है ।।
सुत मात पिता नर नार त्रिया, देख अंत कोउ संग न जावता है ।।
तुलसी बिचार जमफाँस है रे, बिधि बाँधिके काल चबावता है ।।१।।
हाय हाय जहान में मौत बुरी, काल जाल से रहन नहिं पावता है ।।
दिन चार संसार में कार करले, फिर जालके खाक मिलावता है ।।
तुलसी कर ख्वाब का ज्वाब दूरी, लख लाभ जो यार को पावता है ।।२।।
अरे, देख निहार बिचार करो, जग-जार न पार कोई पावता है ।।
भवकूप असार को पार किया, भ्रम-भूल के भार उठावता है ।।
तुलसो को जानके सूझ परा, सोइ आदि अनादि को गावता है ।।३।।

---

२. जग जग=जाग, जाग । बंद=बंधन । भेष=बाहर का रूप और आचार ।
३. तत=तत्व, आत्मस्वरूप ।

झूलना

१. विधि बाँधिके=मौका पाकर ।
२. रहन नहिं पावता है=छूट नहीं सकता । कार=काम । जालके=जलाकर । ज्वाब=जवाब ।
३. जार=जाल ।

लावनी

पिया दरस बिना दीदार दरद दुख भारी।
बिना सतगुरु के धृग जीवन संसारी ।।
क्या जनम लिया जगमाहिं मूल नहिं जाना।
पूरनपद को छाँड़ि किया जुलमाना।
जुग-जुग में जीवन-मरन, आज नरदेही।
सुख-संपति में पारपुरुष नहिं सेई ।।
जग में रहना दिन चार बहुरि मरना री।
बिना सतगुरु के धृग जीवन संसारी ।।१।।

यह नरतन दुरलभ माहिं हाय नहिं लाई।
जाले अँखियों में पड़े करम दुखदाई ।।
पिया है हरदम हिये मांहिं परख नहिं पाई।
बिन सतगुरु के कौन कहै दरसाई ।।
खोजत रही री दिनरात ढूँढ़कर हारी।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी ।।२।।

अरी, यह मट्टी तन-साज, समझ, बिनसैगा।
छिन में छूटै बदन काल गिरसैगा।।
आसा-बंधन जग रोज जन्म धरना री।
दुख सुख बेड़ी बिषम भोग करना री ।।
भुगतैं चौरासी खान जुगन जुग चारी।
बिना सतगुरु के धृग जीवन संसारी ।।३।।

लावनी

१. मूल=जड़ की बात; स्वरूप का ज्ञान। पारपुरुष=परमपुरुष परमात्मा।

२. यह···लाई=हाय ! इस दुर्लभ नर-देह में प्रभु से लौ नहीं लगाई।

३. गिरसैगा=ग्रस लेगा, निगल जायेगा। विषमभोग करना=कठिन दण्ड भोगना है।

कोई भेटै दीनदयाल डगर बतलावै ।
जेहि घर से आया जीव तहाँ पहुँचावै ।।
दरसन उनके उर माहिं करै बड़भागी ।
उनके तरने की नाव किनारे लागी ।।
कहिं वे दाता मिल जायँ करैं भवपारी ।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी ।।४।।

सतसँग करना मन तोड़ सरन संतन की ।
अंदर अभिलाषा लाग रहै चरनन की ।।
सूरति तन मन से साँच रहै रस पीती ।
कोई जावै सज्जन कुफर काल को जीती ।
अंमृत हरदम कर पान चुवै चौधारी ।।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी ।।५।।

सावन

प्रथम सरन सतगुरु गहो, निरखो नैन निहार ।
वारपार परखत रहो, गुरुपद-पदम अधार ।।
संतचरन चित हित करो, सूरति संध सँवार ।
आदि अंत घर लखि परै, सूझै पिउ-दरबार ।।
अब जग की गति मति कहूँ, बिन सतसँग अँधियार ।
मन इंद्री गुन-लोभ में, बिन सतनाम अधार ।।
यह भव-सिंध अगाध है, बूड़े भवजल-धार ।
बिन सतगुरु भरमत फिरै, कैसे उतरैं पार ।।

---

४. डगर=रास्ता । भवपारी=संसार से पार ।

५. मन तोड़=जी तोड़कर, पूरा साधन करके । कुफर=इसका असल अर्थ है मुसलमानी मत से भिन्न अन्य मत; पर यहाँ अधर्मी या दुष्ट से अभिप्राय है । चौधारी···चारो ओर से । चुवै=चूता है, टपकता है ।

सावन

१. सूरति-संध=सुरति अर्थात् लय ध्यान का मेल । सुरजन=सज्जन । बंद=बन्धन ।

सुरति-सहर घर आदि है, पावैं सुरजन साध।
दुरजन दुख सुख में रहैं, करमबंद बहै वाद॥
जग-रचना जमकाल की, फँसि फँसि मुए अजान।
ज्ञान-गली चीन्हे बिना, भरमत सकल जहान॥
पिउ परचे पाये बिना, निसदिन फिरत बेहाल।
जुगन जुगन भटकत फिरै, निज घर सुरति न चाल॥
पिय की सेज सूनी पड़ी, कीन्ह और लगवार।
तासु पुरुष घर ना मिले, भयउ करम भवभार॥
जिन पिय की बिरहा बसैं, छिन-छिन छीन सरीर।
नैन नीर ढुरि-ढुरि बहै, कसकै तन मन पीर॥
प्रेम-प्रीति नदिया बहै, सावन भादों मास।
राति-दिवस लागी रहै, बरसै झड़ि निस-बास॥
पिय की पीर पलपल बसै, सूरति अंत न जाइ।
जैसे चंद्र चकोर को, निरखत नाहिं अघाइ॥
गरज घुमर बदरी बहै, चमकै चमचम बीज।
मोर सोर पिउ पिउ करै, तड़फ तड़फ तन छीज॥
घन सुनि धीर न आवही, पाति लिखूँ पिय पास।
मन सूरत कासिद करूँ, पहुँचै अगम निवास॥
खबर खुसी पिय की सुनूँ, हरखत हिया हित मोर।
तुलसी तलब पिय की लगी, जग तिनका अस तोर॥१॥

मोरे पिय छाँड्यो बिदेस में, सइयाँ संग भयो री बिछोह ॥टेक॥
बैरन नींद न आवही, सखि सुख भोर न होइ।
रोइ रैन अँखियाँ बहीं, सखि भरि साँसो साँस॥

बहै वाद=वाद-विवाद में भटकते हैं। जग-रचना जम काल की=सारी ही सृष्टि मरणशील है। लगवार=यार। अंत=अन्यत्र, और जगह। बहै=घुमड़ती है। बीज=बिजली। कासिद=संदेसा ले जानेवाला। तलब=चाह। तिनका अस तोर=तृण की तरह तोड़कर। बिदेस=कर्मलोक से आशय है, जो देह-संबन्ध का कारण है।

बिरह-लहर-नागिन डसै, बिन सइयाँ तड़प उचाट।
चमक उठै जस बीजुली, छतियन धड़क समात ॥
प्रबल अगिनि हिय में उठै, एरी, धूआँ प्रगट न होइ।
सोई अकेली सेज पै, पूरब लिख्यौ री बिजोग ॥
खबर खोज कासे कहौं, पतियाँ लिखौं केहि देस।
अंग भभूति रमाइहौं, करिहौं मैं जोगिनि-भेस ॥
सतगुरु सोधि सरने रहौं, गहौं पिय डगर निमाप।
मोर मनोरथ सुरति से, तुलसी मिलन मिलाप ॥२॥

चितावनी

क्या सोवत गाफ़िल, चेत, सिर पर काल खड़ा ॥
जोर जुलम की रीति बिचारी, करि माया से हेत।
जम की जब्र खबर नहिं जानी, बाँधि नरक दुख देत ॥
बिनसै बदन अगिन बिच जारैं, खीर खाँड़ रस लेत।
फिरि फिरि काल कमान चढ़ावै, मार लेत खुल खेत ॥
विष-रस-रंग संग बहु कीन्हा, करि-करि बैस बितेत।
बृद्ध बनाय बूढ़ तन भइया, कारे केस सपेत ॥
सुत दारा आदर अलसाने, बुढ़वा मरे परेत।
छल बल माया करि-करि गई रे, ये दुनिया के हेत ॥
मनी मान से धनी न चीन्हा, चिड़ियाँ चुग गइँ खेत।
तुलसी चरन सरन सतगुर बिन, ग्रासत रबि जस केत ॥१॥
जिंदड़ी दा साहिब बेली वे।
काहू लगाया बाग बगीचा, काहू लगाया चमेली वे ॥

---

२. उचाट=उदासी, विरक्ति। बिजोग=वियोग। डगर=रास्ता। निमाप=बिना माप या ओरछोर।

चितावनी

१. रसलेत=स्वाद लेता है। खुल खेत=सामने खुले मैदान में। विष=विषय। बैस बितेत=उम्र बितादी। आदर अलसाने=सम्मान करने में आलस्य किया। ग्रासत=ग्रस लेता है, निगल जाता है,। केत=केतु ग्रह।

काहू ने जोड़ा माल खजाना, काहू चुनाई हवेली वे ॥
तुलसी सोध बोध सतगुर को, यह संगत अलबेली वे ॥२॥

होली

थिर न कोइ या जग में री, सौदागर लादि चले री ॥
जो कुछ माल भरो भरती में, दुख-सुख करम करे री ॥
भीषम करन द्रोन जरजोधन, भावीबस भरमि मरे री ।
राज रनखेत लरे री ॥

रावन लंकपती पै हतो, सो रती नहिं बास बसे री ।
पंडौ पाँच गये तजि देही, सोई हाड़ हिमाले गले री ।
डगर जम ने घटघेरी ॥

जो-जो देह धरे तनधारी, राजा रंक रचे री ।
को नर नारि पसू गति गावे, भव-सुख-सोक पके री ।
लखे नहिं आदि अजे री ॥

पंडित भेष भगति नहिं जाने, ग्यान के मान भरे री ।
सतगुर सोध बोध बिन मारग, जमपुर फाँस फँसे री ॥
भली तुलसी मति फेरी ॥१॥

कोइ पूछो री या सतगुर से ।
बाल तरुन बिरधापन बीता, प्रीत करी सोइ रीत सखी नहिं धुर से ॥
जोग ग्यान बैराग बिरह नहिं, घटत स्वास नित सुर से ॥
बीतत बदन बिषय-रस मांहीं, भेंट नहीं पिया-पुर से ॥

---

२. दा=का (पंजाबी प्रयोग) । बेली=सहायक, सहारा ।

होली

१ जरजोधन=दुर्योधन । रती=थोड़ा-सा भी । घटघेरी=चारों ओर से घेर ली । भव-सुख-सोक-पके=संसार के सुख-दुःख में पचते रहे । अजे=अजेय; अजन्मा भी अर्थ हो सकता है । भेष=भेषधारी साधु । मान=अभिमान ।

२. बीतत=क्षीण होता जा रहा है । पिया-पुर=प्रियतम का नगर; ब्रह्मलोक ।

हिये में हिलोर पिया बिन प्यारी, उठत अगिनि जिया झुरसे ॥
तुलसी ताप तपैदिक माहीं, मरत जिया बिन जुर से ॥२॥

शब्द

कछू न सुहाय मोकों पिया के वियोगी ॥
बिरह की बेली हेली फैली चहुँ दिसकूँ, दरद-दखी जस रोगी ॥
अस री हिलोर मोर मन आवै, तन तजि अब न जियोंगी ॥
हार-सिंगार सखि नीको न लागैं, माहुर घोर पियोंगी ॥
रैन न चैन दिवस दुख बीते, आवत नींद न औंगी ॥
तुलसी तलब मिटै सतगुर से, चित्त धर चरन छुवोंगी ॥१॥

एरी आली, संत-चरन सुखबास ॥
अंत सखी सुख नेक न पैहो, सहिहो री जम की त्रास ॥
भाई बंद कुटुम्ब सुत नारी, इन सँग रहो रीं उदास ॥
यह सब समझ-बूझ भवसागर, लख चौरासी-फाँस ॥
जुग-जुग जनम धरे तन तुलसी, आवागमन-निवास ॥२॥

सोहागिन सुन्दरी, तुम बसहु पिया के देस ॥
नैहर-नेह छाँड़ि देवो री, सुन सतगुर-उपदेस ॥
कोटि करो इहाँ रहन न पैहो, क्या धनि रंक नरेस ॥
प्रभु के देस परम सुख पूरन, निरभय सुनत सँदेस ।
जरा-मरन तन एक न व्यापै, सोक मोह नहिं लेश ॥
सब से हिलमिल बैर बिसन तज, परम प्रतीत प्रवेस ।
दम पर दम हरदम प्रीतम सँग, तुलसी मिटा कलेस ॥३॥

हिलोर=दर्द की कसक या मरोड़ । झुरसे=झुलसता है । तपैदिक=क्षयरोग । जुर=ज्वर ।

शब्द

१. हेली=हे सखी । माहुर=विष । औंगी=चुप्पी, चैन । तलब=चाह, गहरी खोज ।
२. नैहर=मायका, पीहर; माया का लोक । बिसन=व्यसन, बुरे कर्म ।

साखी

तन मन से साँचा रहै, गहै जो सतगुर बाँह ।
काल कधी रोकै नही, दे बताइ धुर राह ।।१।।

अब समझे से का भयो, चिड़ियाँ चुग गईं खेत ।
चेत किया नहिं आपमें, रहे कुटुँब के हेत ।।२।।

आँखी में जाले पड़े, काढ़ै कौन निकारि ।
जब सथिया नस्तर भरै, सुरति-सलाई डारि ।।३।।

जुलमी की जाली पड़े, बड़े-बड़े उमराव ।
दाँव कधी लागै नहीं, भागन कवन उपाव ।।४।।

खाय पिये उतना रखै, बाकी रखै न पास ।
और आस व्यापै नहीं, सतगुरु का बिस्वास ।।५।

विस्वामित्र वसिष्ठ को, भयो परस्पर बाद ।
उन तप को कीन्हा बड़ा, इन सतसंग अगाध ।।६।।

जल मिसरी कोइ ना कहै, सरबत नाम कहाय ।
यों घुलके सतसँग करै, काहे भरम समाय ।।७।।

सूरा रन में सीस को, धरै हथेली माहिं ।
सरा सती जरि जाय जो, पिल पैठै घर माहिं ।।८।।

साखी

१. कधी=कभी । धुर=सही , ठीक-ठिकाने की ।

३. सथिया=जर्राह । नस्तर भरै=चीरा लगाते है ।

४. जाली=जाल, फंदा ।

५. बाकी=अतिरिक्त वस्तु । और आस ब्यापै नहीं=दूसरों की आशा नहीं सताती ।

६. उन⋯ ⋯अगाध=विश्वामित्र ने तप को बड़ा बताया, और वसिष्ठ ने सत्संग को बड़ा कहा ।

७. समाय=पड़े ।

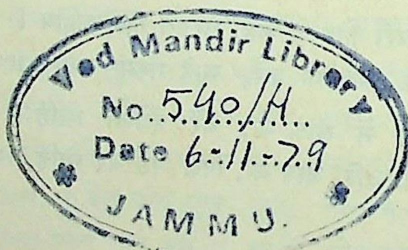
८. सरा=अग्नि, चिता । पिल=हिम्मत के साथ घुसकर । घर=प्रियतम (परमात्मा) के सत्यलोक से आशय है ।

मुरसिद सतगुर चरन का, आठ पहर अनुराग ।
सो भागे भव-चक्र से, उनको लगा न दाग ॥९॥
नरतन दुरलभ ना मिलै, खिलैं कँवल रसमाँय ।
खाय अमर फल अगम के, जो सतगुरु सरनाय ॥१०॥

---

९. दाग=(माया का) कलंक ।

१०. कँवल=हृदय-कमल से आशय है । रसमाँय=ब्रह्मानन्द में । अमरफल=मोक्ष ।



अं

ज़ डाक्टरी र

दिल औ

. और कभ

है